गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
सितम्बर 2022
Vol. 10, Issue 9

Impact Factor : 2.636

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में

संपादक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग
एडवोकेट

विशेषांक संपादक :
डॉ. (श्रीमती) मंजूलता कश्यप

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed & Refereed Journal

वर्ष : 10 अंक : 9(1) सितम्बर : 2022 आईएसएसएन : 2321–8037

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष डॉ. विश्वकीर्ति

संरक्षक :
हरविन्द्र कमल, पटियाला

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज पफॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्रेष्ठ चौधरी
सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑपफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीनादेवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. मन्जुलता कश्यप
जांजगीर, छतीसगढ़

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

सम्पादकीय कार्यालय :
6–एच 30, जवाहर नगर,
श्रीगंगानगर, राजस्थान–335001

परीक्षण समिति (Peer Reviewed Committee)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)

डॉ. सुमित्रा देवी
गीता को–एजुकेशन टीटी कॉलेज, घरसाणा, राजस्थान।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर (राजस्थान)

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज धरवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. मोहनलाल जाट
पीजी कन्या महाविद्यालय, सैक्टर–11, चंडीगढ।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. सतपाल स्वामी
गीता को–एजुकेशन टीटी कॉलेज, घरसाणा, राजस्थान।

डॉ. पूजा धमीजा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, हरियाणा सरकार तोशाम (हरियाणा)

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय, सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुकेश चंद
राजकीय महाविद्यालय, बाडी, धौलपुर, राजस्थान।

डॉ. पवन ठाकुर
बरेली (उत्तर प्रदेश)

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

कानूनी सलाहकार : डॉ. रामपफल दलाल एडवोकेट, भिवानी
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट, पटियाला।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग,** एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज,** पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाउफसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 ;हरियाणाद्ध से जारी किया।

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed & Refereed Journal

An International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 2.636
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परिवेदना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. मंजुलता कश्यप	08–08
2.	शुभकामना संदेश		09–12
3.	समाज उत्थान मे शिक्षा की भूमिका	डॉ. अनिल कुमार शर्मा	13–14
4.	देश में भारतीय शिक्षा और हिन्दी भाषा	डॉ. अन्नपूर्णा दाधीच	15–16
5.	मातृभाषा हिन्दी	अनुराधा चतुर्वेदी	17–18
6.	बूंदी राज्य में 19वीं शताब्दी में हिन्दी का प्रखर स्वरूप	डॉ. अरविन्द कुमार सक्सेना	19–21
7.	हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, भारतीय राष्ट्रीयता का इतिहास	प्रो. अरविन्दनाथ तिवारी	22–27
8.	संस्कृति और साहित्य	आशा रानी	28–32
9.	चम्बा के लोक साहित्य में राम कथा का स्वरूप	अविनाश कुमार	33–38
10.	''माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति रूचि एवं अभिवृत्ति का अध्ययन''	डॉ. बबीता सोलंकी	39–43
11.	मधुकर सिंह के उपन्यासों में दलित विमर्श	भीम सिंह	44–47
12.	जनसंचार माध्यमों और पत्रकारिता में हिंदी की प्रयोजनीयता	डॉ. बिक्रम कुमार साव	48–54
13.	समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका	धर्मेंद्र सिंह	55–56
14.	भारतीय शिक्षा और हिन्दी भाषा	मेर धीरा भाई बोधा भाई	57–60
15.	हिन्दी भाषा का सांस्कृतिक चेतना में योगदान	दीप्ति प्रधान	61–63
16.	समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका	डॉ0 फरहत मंसूरी	64–67
17.	समाज उत्थान में हिंदी साहित्य की भूमिका	गरिमा आर जोशी	68–71
18.	भारतीय परिवेश में हिन्दी साहित्य व समाज का संबंध	गिरीश कुमार गौतम	72–73
19.	हिन्दी कविता में प्रेम की अभिव्यक्ति	हेमपुष्पा नायक	74–82
20.	भारतीय संविधान और हिंदी भाषा	डॉ.जे.के. संत	83–85
21.	हिन्दी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान	डॉ. शबाना मनियार	86–89
22.	मध्यकालीन काव्यों में संस्कृति का अंतः संबंध	डॉ. जाविद साब मनियार	90–93
23.	साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का सम्बंध	डॉ. ज्योति पटेल	94–97
24.	समाज के उत्थामन में शिक्षा की भूमिका	डॉ. कल्पना जैन	98–102
25.	हिन्दी साहित्य में वैश्विक चेतना	कुलदीप शर्मा	103–109
26.	अन्य भाषाओं और हिंदी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन	लवली	110–114
27.	भारतीय संविधान और हिंदी भाषा	डॉ0 मधु वर्मा	115–117
28.	''हिंदी साहित्य एवं दलित विमर्श का सामयिक अध्ययन''	मनीष कुमार महरा	118–123
29.	हिन्दी भाषा और रोजगार	मन्जू रानी, डॉ. शिवचरण शर्मा	124–126
30.	हिंदी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. माया पारस	127–130
31.	समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. अल्पना शर्मा, मीना शर्मा	131–137
32.	हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भारतीय सिनेमा का योगदान	मौहम्मद रहबर	138–140

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ
33. भारतीय हिन्दी सिनेमा – दलित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के मूल्यांकन की प्रासंगिकता	डॉ. नम्रता जैन	141–148
34. भारतीय संविधान और हिन्दी भाषा	नीलम कुमारी	149–154
35. हिन्दी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन एवं विवेचन	नेहा प्रधान	155–159
36. हिन्दी भाषा के विकास में संविधान की भूमिका	डॉ. निकिता शर्मा	160–164
37. विषय : मातृ भाषा हिन्दी	निर्मला	165–166
38. राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की भूमिका	डॉ. नूपुर अग्रवाल	167–168
39. भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी भाषा की संभावनाएँ	ओमवती	169–172
40. मातृभाषा हिंदी एवं शिक्षा	पायल शर्मा	173–177
41. समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका	डॉ. पीयूष किरण माथुर	178–183
42. राजेश जोशी की कविताओं की भाषिक संरचना	पीयूष कुमार	184–190
43. हिन्दी भाशा की संवैधानिक स्थिति	पूजा मंगल	191–194
44. भारतीय सिनेमा और हिंदी भाषा	पूजा	195–199
45. ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली हिंदी का विवाद	प्रभंजन कुमार झा	200–204
46. समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका	प्रमिला देवी	205–209
47. समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका	प्रतिमा सिंह	210–212
48. वैश्विक भाशा की ओर अग्रसर – हिन्दी	डॉ. प्रेमलता शुक्ला	213–215
49. भारतीय समाज एवं हिन्दी साहित्य	डॉ. राकेश गौतम	216–217
50. वैश्वीकरण एवं हिन्दी	रामसेवक राम भगत, डॉ. डीएस मरावी	218–223
51. भारतीय सिनेमा और हिंदी भाषा	डॉ. रानी कुमारी	224–229
52. हिन्दी भाषा का स्वरूप एवं विकास	रणवीर सिंह सोढ़ी	230–232
53. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में मध्यवर्ग के परिपेक्ष्य में	रहिम पूशाम, प्रो. नीलमणी दूबे	233–237
54. हिंदी साहित्य के विकास में सूर्य कान्त त्रिपाठी "निराला" का योगदान	डॉ. रत्नेश कुमार जैन	238–241
55. गांधी के शैक्षिक विचार	रीता रानी रिहालिया, डॉ. महेन्द्र सिंह यादव	242–247
56. हिन्दी में भाषा शिक्षण के महत्व का विवेचन	रेणु शर्मा	248–250

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ
57. वैश्वीकरण के बदलते परिप्रेक्ष्य में अनुवाद की भूमिका	रिंकी कुमारी	251–255
58. वैश्विक परिपेक्ष्य में हिंदी भाषा और संभावनाएं	डॉ0 रूबी चौधरी	256–263
59. भारतीय सिनेमा और हिंदी भाषा	सुश्री संगीता कुमारी	264–267
60. समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ0 संगीता यादव	268–273
61. वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा	प्रा. डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे	274–278
62. हिन्दी भाषा का महत्व	Dr. Savitri Chaudhary	279–281
63. कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में सामाजिक चेतना	सीमा देवी	282–285
64. भारतीय शिक्षा और हिन्दी भाषा	सीमा शर्मा,	
	डॉ. पूर्णचन्द उपाध्याय	286–287
65. साहित्य शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध	शाजिया सुल्तान	288–290
66. समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका	Smt. Shakuntala Kosariya	291–296
67. डॉ. रामकुमार घोटड़ जी की लघुकथाओं में परिवार		
और सामाजिकता का चित्रण	शिवराज,	297–302
68. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और संभावनाएँ	डॉ. श्याम मनोहर गौतम	303–305
69. हिन्दी एवं उसकी उपभाषाओं का उद्भव एवं विकास	स्नेहलता शर्मा	306–308
70. आंचलिक हिंदी पत्रकारिता – समाचारों में भाषा पर एक दृष्टि	डॉ. सुदीप शुक्ल	
	डॉ. श्रीमती कमला चतुर्वेदी	309–316
71. एक हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के सन्दर्भ में	डॉ. सुमन कौशिक	317–321
72. प्राचीन भारतीय शिक्षा के केन्द्र	Suman	322–325
73. वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की प्रासंगिकता	सुमित्रा देवी	326–329
74. समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. सुनीता राठौर	330–336
75. प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानी 'तरकीब'		
में नारी पात्र	उधम सिंह	337–341
76. समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका	विनय कुमार	342–346
77. 21 वीं सदी में हिन्दी की चुनौतियां	डॉ. विनीता स्वर्णकार	347–350
78. समाज उत्थान एंव हिन्दी भाशा में बाल साहित्य की भूमिका	अजय कुमार	351–353

विशेषांक सम्पादक
डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप की कलम से..

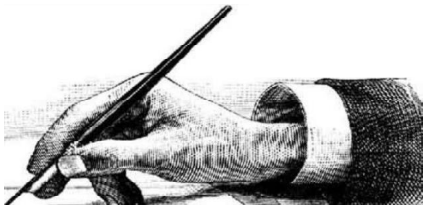

''हिंदी एक ऐसी माला है जिसमें सम्पूर्ण देश के साहित्य और संस्कृति को पिरोया जा सकता है।"

हिंदी अपने आप में पूरी संस्कृति है। इसके विकास के लिए आवश्यक है कि हम इस पर गर्व करें। इसके लिए बच्चों को बचपन से ही हिंदी साहित्य और मूल्यों से अवगत कराना जरूरी है। उन्हें सही हिंदी लिखना–बोलना सिखाएं और बेहतर हिंदी बोलने पर प्रोत्साहित करना चाहिए। राष्ट्र के विकास की नींव और सर्वांगीण विकास की कल्पना भाषा के जरिए ही शुरू होती है। हिंदी का विकास करना सिर्फ एक वर्ग का दायित्व नहीं बल्कि यह जनमानस का सामूहिक प्रयास होना चाहिए। भाषा का सही प्रयोग, उच्चारण, शब्दों का चयन, शिक्षण में भाषा का समुचित संकलन, साहित्य में हिंदी भाषा को प्रमुखता मिलनी चाहिए। हिन्दी भाषा का विकास संस्कृत से हुआ है और इसकी पुरातन विकास धारा वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से पाली, पाली से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी भाषा के विकास की मानी जाती है। हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है जो ध्वनि प्रधान हैं। इसे विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक, सरल एवं सुबोध भाषा माना गया है। यदि हमें हिन्दी का विस्तार विश्वपटल पर रेखांकित करना है तो इसकी भाषाई व सांस्कृतिक उत्कृष्टता को आत्मसात करने की प्रवृत्ति को भी विश्व पटल तक विस्तृत करने के प्रयास इसकी मानकता को सुनिश्चित करते हुए करने होंगे।

हिंदी दिवस पर गुरु फाउंडेशन, रोहतक, संगम अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका, श्रीगंगानगर तथा बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग द्वारा एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें हिंदी : भाषा, शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के शोध पत्र आमंत्रित किए गए। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न राज्यों से प्राध्यापक व शोधार्थियों ने जो शोध आलेख प्रस्तुत किए। उनको हम इस विशेषांक में प्रकाशित कर रहे हैं।

हम आशा और उम्मीद करते हैं कि यह विशेषांक हिन्दी भाषा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अंक सिद्ध होगा। जिसका उपयोग शोधार्थियों, प्राध्यापकों द्वारा भविष्य में किए जाने वाले शोध कार्य में सम्मिलित कर अपने शोध प्रबंधों को पूर्ण करेगें। संगोष्ठियों में पधारे प्रतिभागियों को हृदय से धन्यवाद जिन्होंने हिन्दी साहित्य शिक्षा संस्कृति पर अपना–अपना शोध आलेख प्रस्तुत कर संगोष्ठी को सफल बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप, सहायक प्राध्यापक,
अर्थशास्त्र शासकीय टी.सी.एल. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जांजगीर, छत्तीसगढ़

CHAUDHARY BANSI LAL UNIVERSITY, BHIWANI

(A State University established under Haryana Act No. 25 of 2014)

Mrs. Reetu Singh
Registrar

No./CBLU/Reg/2066 Dated: 27/9/2022

आदरणीय नरेश जी,

सादर अभिवादन। यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा) की मासिक पत्रिका संगम का सितम्बर, 2022 अंक हिन्दी भाषा: शिक्षा, साहित्य एवं संस्कृति के संदर्भ में विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस हेतु आपको तथा आपकी संस्था को हमारी ओर से बहुत–बहुत बधाई एवं शुभकामनाएँ।

संगम पत्रिका के उक्त विशेषांक में देश के विभिन्न राज्यों के प्राध्यापकों/शिक्षकों एवं शोधार्थियों आदि के हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

आशा है कि आप द्वारा प्रकाशित हिन्दी विशेषांक हिन्दी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण संदर्भ के रूप में उपयोगी साबित होगा।

हिन्दी विशेषांक के प्रकाशन पर पुनः हार्दिक बधाई एवं शुभकामना के साथ।

आदर सहित।

आपकी
Reetu Singh 27/09/2022
कुलसचिव

प्रतिष्ठा में,

डॉ0 नरेश कुमार सिहाग
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान
202 ओल्ड हाउसिंग बोर्ड, भिवानी
127021(हरियाणा)

Website: www.cblu.ac.in Phone : 01664-245220 cbluregistrar@gmail.com

BABA MASTNATH UNIVERSITY

Asthal Bohar, Rohtak, NH-10, NCR, Haryana-124021(India)

Established under Haryana Private Universities Act, 2006

Recognized by UGC

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि **"गुरु फाउंडेशन"** एवं **"गिना शोध संगम"** पत्रिका के संयुक्त तत्त्वावधान में **बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल–बोहर (रोहतक)** में **मानविकी संकाय** के **शिक्षा विभाग** द्वारा **एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी** का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। इस अवसर पर **गिना शोध संगम पत्रिका** के विशेषांक का भी लोकार्पण किया गया।

यह अत्यंत हर्ष की बात है कि इस बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय पत्रिका के माध्यम से निरंतर नारी शक्ति, शिक्षा, धर्म, अध्यात्म तथा सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर विभिन्न क्षेत्रों के अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित होते रहते हैं, जो शोध के क्षेत्र में रुचि रखने वालों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक सिद्ध होते हैं। मैं, **गुरु फाउंडेशन** तथा **गिना शोध संगम पत्रिका** के सफलतापूर्वक अनवरत प्रकाशन की कामना करती हूँ, साथ ही यह अपेक्षा एवं विश्वास करती हूँ कि यह पत्रिका अपने सारगर्भित लेखों के माध्यम से सदैव समाज को एक नई दिशा प्रदान करती रही रहेगी।

शुभं करोति कल्याणम् की भावना से मैं पत्रिका एवं गुरु फाउंडेशन को **हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ** प्रदान करती हूँ।

डॉ० अंजना राव
प्रति कुलाधिपति
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
अस्थल–बोहर रोहतक (हरियाणा)

राजस्थान साहित्य अकादमी

(राजस्थान सरकार का उपक्रम)

मीरां भवन, ज्ञान नगर, हिरण मगरी, सेक्टर-4, उदयपुर (राज) 313002

डॉ. दुलाराम सहारण
अध्यक्ष

0294-2461717
sahityaacademy.udr@rajasthan.gov.in
president.rsaudr@gmail.com
www.rsaudr.org

901
15.9.22

आदरणीय नरेश जी ,

सादर अभिवादन । यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि **गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)** की मासिक पत्रिका **संगम** का सितम्बर, 2022 अंक हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य एवं संस्कृति के सन्दर्भ में विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस हेतु आप तथा आपकी संस्था को हमारी ओर से बहुत-बहुत बधाई एवं शुभकामनाएं ।

संगम पत्रिका के उक्त विशेषांक में देश के विभिन्न राज्यों के शोधार्थियों, प्राध्यापकों आदि के हिन्दी भाषा से संबंधित विभिन्न विषयों पर लिखे गए आलेखों का प्रकाशन किया जाना निश्चय ही हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण उपलब्धि होगा।

आशा है आप द्वारा प्रकाशित हिन्दी विशेषांक हिन्दी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सन्दर्भ के रूप में उपयोगी साबित होगा।

हिन्दी विशेषांक के प्रकाशन पर पुनः हार्दिक बधाई एवं शुभकामना के साथ ।

आदर सहित -

आपका

18.09.22

(डॉ.दुलाराम सहारण)
अध्यक्ष

प्रतिष्ठा में ,

डॉ. नरेश जी
सचिव , गीना देवी शोध संस्थान
202 ओल्ड हाउसिंग बोर्ड,
भिवानी – 127 021 (हरियाणा)
grngobwn@gmail.com

d/office letter aug.2022

e-mail : sahityaacademy.udr@rajasthan.gov.in

निवास : पार्क के पास, गांधीनगर, चूरू-331001 राजस्थान
+91-9414327734, +91-8619951603 ★ drsaharan09@gmail.com ★ www.dularam.com

।। श्री गुरु जम्भेश्वराय नमः।।

9897390866
9812108255

जाम्भाणी साहित्य अकादमी

(पंजीकरण क्रमांक: S/1151/ SDM/NW/2012)

मुख्यालय: सैक्टर-1, ई-134, जयनारायण व्यास कॉलोनी, बीकानेर-334003 (राज.)

Website : www.jambhani.com

क्रमांक.....

दिनांक : 19-09-2022

सेवा में

आदरणीय डॉ. नरेश जी सिहाग,
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
202 ओल्ड हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)

शुभाशीष

यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि 'गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा) की मासिक पत्रिका संगम का सितम्बर माह 2022 का हिन्दी भाषा अंक प्रकाशित किया जा रहा है। इस विशेषांक द्वारा हिन्दी भाषा का प्रचार प्रसार तो होगा ही साथ ही साथ विभिन्न विषयों का अवलोकन पठन पाठन जिज्ञासुजनों द्वारा होगा तो ज्ञान ध्यान की अभिवृद्धि का सुअवसर प्राप्त होगा। अध्ययन कर रहे विद्यार्थी एवं शोधार्थी कुछ नवीन विषयों का अवलोकन करके (करेंगे) तो सुयोग्य विद्वान बनेंगे और पठन, पाठन की प्रवृति को बढ़ावा मिलेगा जो वर्तमान युग में आवश्यक भी है।

आपके द्वारा यह महनीय कार्य करने में अभिरुचि में उत्तरोतर वृद्धि और समृद्धि होती रहे यही मंगलमय कामनाएं जाम्भाणी साहित्य अकादमी संस्थान, बीकानेर द्वारा आपको, आपके सहयोगी सज्जनों को देते हुए अति हर्ष की अनुभूति हो रही है।

आपके द्वारा प्रकाशित हिन्दी विशेषांक हिन्दी भाषा अर साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कड़ी प्रमाणित होगा। इसी प्रकार से विद्या संवर्धन के कार्य करते रहे यही मेरी शुभकामनाएं हैं। जाम्भाणी साहित्य अकादमी (संस्थान) बीकानेर हिन्दी विशेषांक प्रकाशन हेतु कोटि-कोटि हार्दिक बधाई देते हुए विशेषांक सफलता की कामना करती है।

अस्तु!

आचार्य कृष्णा नन्द
अध्यक्ष

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 13-14

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

डॉ० अनिल कुमार शर्मा
सहायक आचार्य, जवाहरलाल नेहरू शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, कोटा

शिक्षा और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक है । शिक्षा के बिना समाज अधूरा है और समाज के बिना शिक्षा । मानव सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है और अपने क्रियाकलापों का निर्वाह करता है। समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप से मानव का संबंध स्थापित होता है। इस संबंध को मजबूत और सुदढ़ बनाने के लिए शिक्षा की आपश्यकता होती है। शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के सामन होता है शिक्षा ही एक मजबूत समाज का आधार है। समाज में कर्तव्य व विचारो का आदान प्रदान शिक्षा के आध्यम से ही संभव है।

समाज की रचना मनुष्य ने की है और समाज का आधार क्रिया है ये अन्तः क्रिया सदैव चलती रहती है और शिक्षा की क्रिया के अन्तर्गत होती है इसीलिए शिक्षा व्यवस्था जहां समाज से प्रभावित होती है वहीं समाज को परिवर्तित भी करती है जैसे कि स्वतंत्रता के पश्चात् सबके लिये शिक्षा एवं समानता का पुराना ढ़ाचा परिवर्तन होने लगा। आध्यात्मिक मूल्यों के स्थान पर भौतिक मूल्य अधिक लोकप्रिय हुआ। सादा जीवन उच्च विचार से अब हर वर्ग अपनी इच्छाओं के अनुरूप जीना चाहता है। शिक्षा ने जातिगत व लैंगिक असमानता को काफी हद तक दूर करने का प्रयास किया। ग्रामीण समाज अब शहरी समाजो में बदलने लगे और सामहिक परिवारों का चलन कम हो रहा है। शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तन और इसके द्वारा शिक्षा पर प्रभाव दोनो की तथ्य पूर्णतः अपने स्थान पर स्पष्ट है।

हमारे जीवन में स्कूली शिक्षा का भी बहुत महत्व और प्रभाव होता है एक बच्चा पारिवारिक परिवेश से समाज में विलयेता की और स्वयं और समाज के उत्थान की और एक कदम बढ़ाता है। पारिवारिक संस्कारों से युक्त होकर देश समाज की संस्कृति को सीखता है, प्रयोग करता है। समाज में स्वयं की हिस्सेदारी निर्धारित करने हेतु अनथ परिश्रम और समाजी के प्रति संवेदनशीलता मुख्यता जीवन का उद्देश्य होना आंरभ हो जाता है। भारतीय संस्कृति में हमेशा से शिक्षा और शिक्षक का विशेष महत्व रहा है। माता पिता की आक्षा और अध्यापक के वचनों का सीधा प्रभाव केवल भारत देश में ही दिखाई देता है। अध्यपाक द्वारा कहे गये वचन छात्र के लिए जीवन भर उत्साह और ऊजर्र करते रहते है। अतः शिक्षक और शिक्षक समाज का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग है जिसका दायित्व समाज की परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित होता है।

समाज शिक्षा को प्रभावित करता है तो दूसरी और शिक्षा समाज के स्वरूप को निश्चित करती है। शिक्षा मानव समाज की आधारशिला है। वह समाज का निर्माण करती है उसमें परिवर्तन करती है और उसका विकास करती है। जैसे जैसे शिक्षा का प्रचार प्रसार होता गया इसने समाज में व्यक्तियों के दृष्टिकोण, रहन सहन, खान–पान, रीति रिवाजो पर असर डाला और इससे सम्पूर्ण समाज का स्वरूप बदलता है।

शिक्षा व सामाजिक सुधार एवं प्रगति शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओ कुरीतियो गलत परम्पराओं के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते है और धीरे धीरे समाज में परिवर्तन होता जाता है। शिक्षा समाज के प्रति लोगो को जागरूक बनाते हुये उसमें प्रगति का आधार बनाती है। जैसे शिक्षा पूर्व में वर्ग विशेष का अधिकार थी, अब शिक्षा समाज के सभी वर्गो के लिये अनिवार्य बनी जिससे कि स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक प्रगति एवं सुधार स्पष्ट परिलक्षित हो रहे है।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 15-16

देश में भारतीय शिक्षा और हिन्दी भाषा

डॉ. अन्नपूर्णा दाधीच,
सहायक आचार्य, जवाहरलाल नेहरू शिक्षा शास्त्री महाविद्यालय, सकतपुरा, कोटा (राज.)

प्रस्तावना :-

भारतीय शिक्षा हमारे में बहुत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा के बिना जिंदगी पशु के समान है। शिक्षित होने से और मानसिक और सामाजिक दोनों तरह से जागरूक होता है, और लोगो के बीच सम्मान बढ़ता है।

शिक्षा आपको आस–पास होने वाली हर चीज से अवगत कराती है चाहे आप बच्चे हो या वयस्क। शिक्षा एक स्थायी प्रक्रिया है, जो मृत्यु के साथ समाप्त होती है।

भारतीय शिक्षा का महत्त्व :-

यह एक व्यक्ति के समग्र विकास में मदद करता है, क्योकिं हम शिक्षा के माध्यम से ज्ञान, कौशल और कई अन्य चीजें हासिल कर सकते है। एक व्यक्ति दृष्टिकोण और व्यक्तित्व उसकी शिक्षा पर अत्यधिक निर्भर करता है। यह व्यक्ति को जीवन में सफल बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रोजगार अभी तक शिक्षा प्राप्त करने का एक और लाभ है, शिक्षित होने पर लोगों को नौकरी मिलने की सम्भावना अधिक होती है। यह लोगों के भाषण और संचार के तरीके को भी बेहतर बनाता है। शिक्षित लोग अपने शब्दों और कार्यो से समाज को बहुत प्रभावित कर सकते है। क्योंकि वे खुद को अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त कर सकते है।

वर्तमान युग की विभिन्न तकनीकों का उपयोग करने पर शिक्षित लोग अधिक प्रभावी होते है। इस प्रकार शिक्षा हमें कई गैजेटस और प्रौधोगिकियों से अवगत कराने में एक महान भूमिका निभाती है, जो जीवन की गुणवत्ता में सुधार कर सकती है। दूसरी ओर अशिक्षित लोगों को तकनीक के इस आधुनिक युग को झेलना काफी मुश्किल लगता है।

शिक्षा भी व्यक्ति को अपने निर्णयों में परिपक्व और प्रभावी बनाती है। शिक्षित लोग अनुशासन और समय प्रबंधन के महत्त्व को जानते है और इस प्रकार जीवन में सफल व्यक्ति बनने के अधिक से अधिक अवसर होते है।

हिन्दी भाषा :-

हमारे भारत देश में बहुत सारी भाषाऐं बोली जाती है। हर एक देश की पहचान उस देश की भाषा और

संस्कृति से होती है। हर एक देश की अपनी–अपनी भाषा और संस्कृति होती है।

हिन्दी भाषा का महत्त्व :–

हमारे देश में हिन्दी भाषा का सबसे ज्यादा महत्त्व है। यह भारत देश की प्रमुख भाषा है। हिन्दी भाषा यह देश के सभी लोगों को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य करती है। हर एक देश की भाषा यह देश की उन्नति का मार्ग होती है। हमारे देश में हिन्दी भाषा ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

"मातृभाषा बिन व्यर्थ है, दुनिया का सब ज्ञान,
भारत माँ की बोली हिन्दी, कसे इसका सम्मान।"

कहा गया है कि हिन्दी भाषा का महत्त्व इसके सरल उच्चारण के कारण है, क्योंकि यह भाषा उच्चारण के अनुसार ही लिखी जाती है। हिन्दी भाषा में 11 स्वर और 33 व्यंजन है, हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है। हिन्दी दुनिया में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। इस भाषा में उर्दू, फारसी, भाषाओं के शब्द भी मिलाए गए है, जो इसमें मेलजोल करते है। आज से कुछ साल पहले भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने कहा था।

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा के ज्ञान के मिटत न हिय के शूल।"

निष्कर्ष :–

हिन्दी केवल एक भाषा ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा है, इसलिए हिन्दी के महत्व को खुद समझे और दूसरों को भी समझाए।

"सौधी है सुगंध मीठी सी भाषा
गर्व से कहो, हिन्दी है मेरी भाषा।"

संदर्भ ग्रन्थ :–

(1) ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास– डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल
(2) मनोभाषा विकास – वशिनी शर्मा

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 17-18

मातृ भाषा हिन्दी

अनुराधा चतुर्वेदी, भारती टी टी कॉलेज
कोटा विश्वविद्यालय कोटा, महावीर नगर विस्तार योजना कोटा राजस्थान

भूमिका :–

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक भाषा होती है। जिसे हम मातृभाषा के नाम से जानते हैं। यह मातृभाषा हमारी न संस्कृति इतिहास को परम्परा को एक सूत्र मे जोड़कर रखने का कार्य करती है। यह हमारी परम्परा को वैश्विक स्तर पर एक अलग पहचान दिलाती है। हमारे देश भारत मे विभिन्न प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया जाता है प्रत्येक क्षेत्र में अलग अलग प्रकार की भाषाओं को बोला जाता है जैसे पंजाब मे पंजाबी, राजस्थान में राजस्थानी, महाराष्ट्र में मराठी आदि किंतु भारत देश मे हिन्दी भाषा को देश की मातृभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है क्योंकि हिन्दी भाषा का प्रयोग हर क्षेत्र में हो रहा है वर्तमान समय में हिन्दी भाषा की जरूरत हर प्रांत के व्यक्ति को पड़ती है ।

मातृभाषा का अर्थ :–

जब मनुष्य जन्म लेता है तो उसे एक विशेष परिवार मिलता है। परिवेश मिलता है उसे संस्कार दिये जाते हैं आचरण सिखाया जाता है। उस उसकी इसकी बोलचाल वाली सम्प्रेषण वाली भाषा को मातृभाषा का दर्जा दिया जाता है। यह मातृभाषा मनुष्य को सामाजिक परिदृश्य में एक अलग पहचान दिलाती है। अपनी मातृभाषा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी जड़ो से जुड़ा रहता है। वह अपनी पहचान को पहचान पाता है। यह भाषा बालक को प्रारम्भिक ज्ञान से जोड़ती है तथा उसके जीवन को आगे बढ़ाने का कार्य करती है। सामान्य अर्थ मे देखा जाऐं तो यह भाषा मनुष्य जन्म से मृत्यु तक बोलता है वह भाषा मातृभाषा कहलाती है।

बालक के जीवन में मातृभाषा का स्थान :–

बालक जन्म से जिस भाषा का प्रयोग करता है वही भाषा मातृभाषा कहलाती है। विद्वानों का मत है कि बिना मातृभाषा के किसी प्रकार की उन्नति सम्भव नही है। मातृभाषा के द्वारा बच्चे के मानसिक विकास के साथ साथ सांस्कृतिक विकास भी होता है उसके दूसरे विषयों की योग्यता व ज्ञान पूर्णतः मातृभाषा की सफलता पर ही निर्भर होता है। ऐसा माना जाता है कि अगर मातृभाषा का ज्ञान भली प्रकार है तो आप अन्य विषयो का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त कर सकते है। इसी कारण से भारतीय शिक्षा के पाठ्यक्रम मे शुरू से ही त्रिभाषा सूत्र को जोड़ा गया है। जिसमे मातृभाषा को प्रथम स्थान दिया गया है क्योंकि यह भाषा बालक के सामान्य बोल चाल की भाषा है इस भाषा की सहायता से वह वातावरण में समायोजित स्थापित कर सकता है क्योंकि यह भाषा भावनात्मक रूप से जुड़ी हुयी होते है। इस भाषा की सहायता से वह अपना समूह निर्माण करता है तथा समाज में एक उत्तम नागरिक बनने का प्रयास शुरू करता है। यह भाषा मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब

होती है।

मातृभाषा के रूप मे हिन्दी भाषा का महत्व :–

जितना प्राचीन मनुष्य का इतिहास है उतना ही प्राचीन हिन्दी भाषा का इतिहास है। संस्कृत भाषा हिन्दी की जननी मनी जाती है। इसे संस्कृत की बड़ी बेटी भी माना जाता है ।

हिन्दी हमारी मातृभाषा के रूप में जानी जाती है क्योंकि इसका प्रयोग हिन्दी भाषी क्षेत्रो के साथ साथ गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रो में भी होने लगा है।

हमारी मातृभाषा हिन्दी सरल, सुगम व वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त भाषा है। इसके महत्व को समझने का प्रयास अब सभी प्रांतो में किया जा रहा है। मातृभाषा के साथ साथ हिन्दी भी अनिवार्य रूप से सिखायी जा रही है । 14 सितम्बर 1949 को हिंदी भाषा को राष्ट्र भाषा घोषित कर दिया गया था। यह भाषा हमे अंतार्राष्ट्रीय स्तर पर गौरव प्रदान करवाती है। हिन्दी केवल काम में आने वाली भाषा नहीं है अपितु यह व्यक्तियों को आपस में जोड़ने का कार्य करती है। आज हिन्दी भाषा का महत्व केवल भारत में नही बल्कि विदेशो में भी देखा जाता है मातृभाषा हिन्दी का उपयोग आज लगभग सभी क्षेत्रो में तेजी से हो रहा है अब यह भाषा केवल दैनिक बोलचाल की भाषा नहि अपितु धीरे धीरे अपने पैर सभी क्षेत्रों मे पसार रही है। इसका महत्व मेडिकल, कानून इंटरनेट सभी क्षेत्रो में होने लगा है ।

मातृभाषा हिन्दी का प्रसार हमारे कवियो व लेखको की देन है। महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद मुंशी प्रेमचन्द आदि ऐसे लेखक हैं जिन्होने मातृभाषा हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष स्थान दिलाया है। इनंटरनेट पर हिन्दी भाषा का उपयोग किया जा रहा है। गूगल पर भी हिन्दी मे टाईप कर सकते है व किसी भी साइड पर जा सकता है ।

उपसंहार :–

मातृभाषा हिन्दी हमारे भारत वर्ष की सम्मान की भाषा है। इसके विकास के लिये हमे प्रायासरत रहना चाहिये। इसके प्रचार प्रसार में प्रत्येक भारतीय को अपना योगदान देना चाहिये। इस भाषा का प्रयोग हम शर्म से नही बल्कि गर्व से करे क्योंकि यह हमारी जननी भाषा है। यह इतिहास की भाषा है हमारी संस्कृति की पहचान है। इसलिये आज आवश्यकता है इसके विकास को इसकी पहचान की ।

सन्दर्भ ग्रंथ :–

1. चौहान रीता अग्रवाल पब्लिकेशन
2. जीत योगेन्द्र विनोद पुस्तक मन्दिर
3. यादव पवन कुमार लक्ष्मी बुक डिपो
4. https://blog.mygov.in
5. https://thesimplehelp.com
6. https://en.m.wikipedia.org
7. http://hindiwebduniya.com
8. https://www.artofliving.com
9. https://www.bhaskar.com

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 19-21

बूंदी राज्य में 19वीं शताब्दी में हिन्दी का प्रखर स्वरूप

डॉ. अरविन्द कुमार सक्सेना
सेवानिवृत्त उपप्रधानाचार्य
राजकीय महाविद्यालय, कोटा राज.

संस्कृत के लौकिक स्वरूप से निस्तृत हिन्दी भाषा की खड़ी बोली से पूर्व आंचलिक स्वरूप विकसित हुए थे उनमें राजस्थान के डिंगल, ढूंढाड़ी, बागड़ी, शेखावाटी व मेवाड़ी के अतिरिक्त मेवाती, बृज व मालवी आदि भिन्नताएं प्रमुख थीं। डिंगल को बृज से समन्वित करके 19वीं शताब्दी ईस्वी के मिश्रण जाति के चारण कवि सूर्यमल्ल ने डिंगल नामक लोकभाषा को विकसित किया एवं अपने महाकाव्य वंशभास्कर में राजस्थान की राजपूत जाति के राजवंशों के राजनैतिक इतिहास को चम्पू शैली में छन्दबद्ध करके इतिहास के महत्वपूर्ण स्त्रोत से सम्बद्ध साहित्य प्रस्तुत किया है। महाराव रामसिंह के शासनकाल में साहित्यिक विकास के प्रमुखतम उन्नायक कविवर सूर्यमल्ल मिश्रण थे। जिनका जन्म 19 अक्टूबर 1815 ई0 व मृत्यु 20 जून 1868 ई. में हुई। ये चारणों की 120 वीं शाखाओं में से एक मिश्रण शाखा के थे। ये महाकवि चंडीदान के पुत्र थे। सूर्यमल्ल बाल्यकाल से ही नितांत कुशाग्र बुद्धि और अपूर्व स्मरण शक्ति सम्पन्न थे। 'वंशभास्कर' में बताया गया है कि उन्होंने एक ही वर्ष में संधि ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वंशभास्कर की मूल पांडुलिपि में यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है। जिसमें चौहानों व बूंदी की हाड़ा वंशावली का क्रमबद्ध इतिहास काव्य रूप में रचा गया है। बूंदी नरेश रामसिंह के निर्देश पर कवि ने इसकी रचना की थी।

ज्योतिष की नितांत सूक्ष्म गणना के आधार पर वंश भास्कर का रचनाकाल निर्धारित करते हुए कवि ने स्पष्ट लिखा है कि ''वि. सं. 1897 वैशाख सुदी सोमवार को वंश भास्कर की रचना प्रारंभ हुई। यह ग्रन्थ अधूरा ही रहा। इसमें लगभग ढाई हजार मुद्रित पृष्ठ हैं। संक्षिप्त टीका सहित इसके पृष्ठों की संख्या 4368 तक पहुंची है। सामान्यतया वंश भास्कर का निर्माण एक राशि के उपरांत दूसरी और तीसरी राशि के क्रम से हुआ, पर फिर उसमें नाना विषयों की योजनाओं का लक्ष्य रहने के कारण कुछ ऐसे प्रसंग भी छूट गए हैं, जिनकी रचना का उद्देश्य था। मदिरापान के फलस्वरूप कवि ग्रन्थ में न केवल ऐतिहासिक सन् संवतों की बड़ी भूलें कर गया है अपितु षटपात छंद में उसने सात पदों तक की रचना कर डाली है।

सूर्यमल्ल ने वंश भास्कर की रचना एक पूर्व निर्धारित सुनिश्चित योजना के आधार पर की है। उसने नियमान्तर्गत स्पष्ट लिखा है कि ''रवि के दो अयन 12 अंश और सहस्त्र मयूख हैं एक अयन में विविध वंशीय

अनेक नरेशों के चरित्र वर्णन का विधान है और दूसरे अयन में चतुष्ठय के साथ देशी प्राकृतादि भाषाओं का विवेचन है परन्तु वंश भास्करकार अपनी इस योजना को क्रियान्वित नहीं कर सका। 212 मयूखों में 6 राशियों की रचना कर पूर्वायण की समाप्ति के उपरांत उत्तरायण में 7वीं राशि लिखकर 8वीं राशि पूरी न कर पाया था और जब सूर्यमल्ल महाराव राजा रामसिंह का चरित्र वर्णन कर रहे थे, तब वे इसकी रचना से विमुख हो गए। सूर्यमल्ल के मरणोपरांत उनके दत्तक पुत्र मुरारीदान से साढ़े साठ मयूख लिखवाकर महाराव राजा रामसिंह ने इस राशि की पूर्ति करवाई।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बृज, मारवाड़ी एवं डिंगल भाषाओं में इस गन्थ की रचना की गई है। इसमें ग्रहों–उपग्रहों का वर्णन किया गया है। विविधि पौराणिक कथाएं लिखी गई हैं। अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति व वंशावली दी गई है। विशेषतया क्षत्रिय जाति का वर्णन किया गया है। जिनमें भी अग्निवंशी कहे जाने वाले क्षत्रियों की चार शाखाओं का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है –प्रतिहार, परमार, चालुक्य, चौहान। इसके पश्चात् चौहान शाखा की विशेषता का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है और उसकी अनेकानेक शाखाओं का वर्णन व उनके द्वारा किए गए युद्धों का वर्णन है। महाभारतकालीन भीष्म पितामह के पिता शातंनु ने भी कई पीढ़ियों पूर्व के समय से चौहानवंश का वर्णन आरंभ करके चौहान की हाड़ा शाखा के बूंदी नरेश महाराव रामसिंह तक का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह इतिहास वृतान्त के रूप में एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। स्पष्ट है कि सूर्यमल्ल एक अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे।

सूर्यमल्ल मिश्रण के दत्तक पुत्र मुरारीदान भी हिन्दी व डिंगल के उच्च कोटि के विद्वान थे। उन्होंने वंश भास्कर को पूरा करने के अतिरिक्त वंश समुच्चय तथा डिंगलकोष नामक उत्तम ग्रन्थों की रचना की। बृजराज शर्मा ने यह समीक्षा की है '' इनकी रचना प्रौढ़, मंजी हुई व प्रभावशालिनी है।'' इनके अतिरिक्त राव गुलाबसिंह बूंदी के प्रतिष्ठित कवि हुए जो डिंगल, पिंगल व संस्कृत के विद्वान थे। इन्होंने छोटे –बड़े 33 ग्रन्थों की रचना की। इनकी भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न थी।

श्री गुलाब जी के भतीजे राव रामनाथ जी भी कवि कार्य में कुशल तथा डिंगल, पिंगल के विद्वान थे। इन्होंने 11 पुस्तकें लिखीं। इनकी समस्यापूर्तियां, चमत्कारपूर्ण होती थीं। इसी काल में 18 ग्रन्थों के रचयिता श्री जगदीशलाल, आशु कवि ग्यारसीराम, कविवर जगन्नाथ, कन्हैयालाल, कदम्बलाल तथा कुंवर माधोसिंह आदि हुए। इनकी रचनाएं मधुर और प्रभावोत्पादिनी हैं। इसी काल में कविवर गुलाबसिंह की सेविका चंद्रकला बाई ने भी अपनी रचनाओं से पिंगल साहित्य की वृद्धि में योग दिया। इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे जिनमें डिंगल रामायण प्रमुख है। इनकी रचना आडम्बररहित किन्तु भावपूर्ण है।

महाराव रघुवीरसिंह के दरबार में कुंजबिहारी लाल शर्मा नामक कवि को उच्च सम्मान प्राप्त था। ये संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी, बृज व डिंगल के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने विविध संग्रह तथा वृत्त रत्नावली नामक हिन्दी ग्रन्थ लिखे। इनकी कई फुटकर कविताएं भी प्राप्त होती हैं।

महाराव राजा रघुवीरसिंह द्वारा बूंदी में गोविंदनाथ के मंदिर में एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया गया था जिसमें एकत्रित अनेक राजाओं में जोधपुर नरेश भी सपरिवार आए थे। जोधपुर नरेश के राजकुमारों की देखभाल के लिए

अंग्रेज नर्सें थीं, जो बूंदी के बाजार में राजकुमारों को अंक में समेटे बग्घी में इधर–उधर घूमने निकलती थीं, कुंज बिहारी कवि लाल ने तत्काल एक गीत द्वारा व्यंग्य किया–

रूडो जग कीन्हो जी बूंदी दीवान
जस थांको छायो जी सकल जहान
उच्छव में इक भयो अचंभो सो करहूं बखान
बालक दोयसिंह के देखे वानरिया लिपटान,
रूडो जब कीन्हो जी बूंदी दीवान।

इनकी प्रौढ़ावस्था में रचनाएं कृष्ण भक्तिपरक हो चली थीं। श्रीकृष्ण मनोरमा, गोपीश तक इनके इसी प्रकार के प्रकाशित ग्रन्थ हैं। इसके अलावा नाना वृत्ताष्टक ग्रन्थ तथा सैंकड़ों अप्रकाशित फुटकर छंद हैं।

ईश्वरप्रसाद नामक एक चारण कवि भी उल्लेखनीय है जिसने एक ठिकानेदार पृथ्वीसिंह हाड़ा की मृत्यु पर उनकी स्मृति में पृथ्वी पच्चीसी नामक फुटकर छंद रचना की। इसे 1904 ई में प्रकाशित किया गया। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि बूंदी में समृद्ध हिन्दी काव्य की रचना हुई। जो राज्याश्रय एवं व्यक्तिगत प्रयास, दोनों का सुपरिणाम था। यहां के काव्य में व्यक्तिपूजा, धर्मोपासना, राष्ट्रप्रेम एवं नायिकाभेद के तत्वों की प्रचुरता रही। दर्शन एवं राजनीति पर भी यहां उत्तम काव्य की रचना की गई।

बूंदी में हिन्दी गद्य लेखन भारतेन्दु युग से आरंभ हुआ। यहां के अनेक साहित्यकारों ने खड़ी बोली में डिंगल, पिंगल, संस्कृत व उर्दू के शब्दों का सम्मिश्रण करके गद्य लेखन किया। इस क्षेत्र में प्रमुखतम बात यह रही कि बूंदी के गद्य लेखक प्रायः गुरू–शिष्य परम्परा को महत्व देते थे अस्तु यहां गद्य लेखन की प्रतिभा एक के बाद एक शिष्य गण अपने गुरूओं से ग्रहण करते थे। यहां गद्य लेखनक मेहता लज्जाराम शर्मा हिन्दी साहित्य के अत्यन्त अखिल भारतीय उन्नायक सिद्ध हुए।

जब भारतेन्दु हरिशचन्द्र युग में जब हिन्दी की खड़ी बोली का व्याकरण निर्मित हो रहा था उस काल में डिंगल भाषा अपने पूर्ण व्याकरण, शब्दविन्यास व अलंकारित रीतियों में विभिन्न रसों द्वारा पूर्ण साहित्यिक वैभव प्राप्त कर चुकी थी। वंशभास्कर इसका स्पष्ट प्रमाण है कि इतिहास, दार्शनिक क्रोचे के कथनानुसार ''इतिहास , अतीत को वर्तमान से सम्बद्ध करता है।'' यह उक्ति वंशभास्कर में चरितार्थ है। मैकियावली की उक्ति ''इतिहास विजेताओं की गाथा है।'' का भी इसमें अवगाहन किया गया है। डॉ. आलमशाह खान, डॉ ओंकारनाथ चतुर्वेदी राजस्थानी विद्वानों के अतिरिक्त डॉ रघुवीर सिंह, सर जदुनाथ सरकार व डॉ. मथुरालाल शर्मा आदि राष्ट्रस्तरीय विद्वानों ने भी वंशभास्कर का ऐतिहासिक विमर्श विवेचित करके इसे महत्व प्रदान किया है।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 22-27

हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, भारतीय राष्ट्रीयता का इतिहास।

प्रो. अरविन्दनाथ तिवारी
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
पी.यू.एस.टी. महिला महाविद्यालय
बगहा, पश्चिम चंपारण, बिहार

हिन्दी और पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। यूं तो भारतीय पत्रकारिता सनातन है। महर्षि नारद और देवता हनुमान जी सनातन पत्रकार है, परन्तु भारत के अंग्रेजी काल में जब पत्रकारित की बात आती है तो प्रेस की स्थापना का श्रेय अंग्रेजों को जाता है। 18 वीं शदी के दुसरे चरण में युरोपियनों के द्वारा पत्रकारिता की जो स्थापना कलकत्ता, बंबई और मद्रास में की गयी, उसका मकसद भारतीयों का मनोरंजन करना था, परन्तु 1780 ई. में प्रकाशित हिक्की (Hickey) का ''कलकत्ता गजट'' का प्रकाशन पत्रकारिता की दिशा बदल दी और अंग्रेजी शासन से ठन गयी। हिक्की को गिरफ्तार कर हिक्की के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दी गयी। यह कहा जा सकता है कि 'हिक्की' पत्रकारिता के लिए पहला मार्ग दर्शक था। मिस्टर कार्नवालिस के बाद वेलजली ने 1799 में प्रेस सेंसर लागू किया। बंगाल के संपादक किलकारू को इंग्लैण्ड इसलिए भेजवा दिया, क्योंकि उसने एक आदालत की कार्रवाई की आलोचना लिखी थी। सन् 1823 में यह नियम लागू हुआ कि सभी प्रेस अपना लाइसेंस बनवायें। बिना लाइसेंस बनवाये कोई पुस्तक तक प्रकाशन नहीं कर सकता है, जिसका विरोघ राजा राम मोहनराय ने किया, जिसे बाद में सरचार्ल्समैट काफने रद्द कर दिया, सभी सामाचार पत्र स्वतंत्र हो गये। फिर उसे भारत से इंग्लैण्ड वापस बुला लिया गया, ऐसे वातावरण में भारत में प्रकाशित होने वाला पहला हिंदी भाषा का अखबार, उदंतमार्तंड (दराइजिंगसन), 30 मई 1826 को शुरू हुआ, जिसे ''हिंदी पत्र कारिता दिवस'' के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि इसने हिंदी भाषा में पत्रकारिता की शुरुआत को चिह्नित किया था। वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता ने अंग्रेजी पत्रकारिता के दबदबे को खत्म किया।

हिंदी साहित्य के इतिहास में 1826 ई. से 1873 ई. तक को हिंदी पत्रकारिता का पहला युग माना जाता है। 1873 ई. में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ''हरिश्चंद्र मैगजीन'' की स्थापना की। एक वर्ष बाद यह पत्र ''हरिश्चंद्र चंद्रिका'' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे भारतेन्दु का ''कवि वचन सुधा'' पत्र 1867 में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्वपूर्ण भाग लिया था, परंतु नई भाषा शैली का प्रवर्तन 1873 में ''हरिश्चंद्र मैगजीन''

से ही हुआ। इस बीच के अधिकांश पत्र प्रयोग मात्र कहे जा सकते हैं और उनके पीछे पत्र कला का ज्ञान अथवा नए विचारों के प्रचार की भावना नहीं है। ''उदन्तमार्तण्ड'' के बाद प्रमुख पत्र हैं : बंगदूत (1829), प्रजामित्र (1834), बनारस अखबार (1845), मार्तंडपंच भाषीय (1846), ज्ञानदीप (1846), मालवा अखबार (1849), जगद्दीप भास्कर (1849), सुधाकर (1850), साम्यदन्तमार्तंड (1850), मजहरुल सरूर (1850), बुद्धिप्रकाश (1852), ग्वालियर गजेट (1853), समाचार सुधा वर्षण (1854), दैनिक कलकत्ता, प्रजा हितैषी (1855), सर्वहित कारक (1855), सूरज प्रकाश (1861), जग लाभचिंतक (1861), सर्वोपकारक (1861), प्रजाहित (1861), लोकमित्र (1835), भारत खंडामृत (1864), तत्वबोधिनी पत्रिका (1865), ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका (1866), सोमप्रकाश (1866), सत्यदीपक (1866), वृत्तांतविलास (1867), ज्ञान दीपक (1867), कवि वचन सुधा (1867), धर्मप्रकाश (1867), विद्याविलास (1867), वृत्तांतदर्पण (1867), विद्यादर्श (1869), ब्रह्मज्ञानप्रकाश (1869), अलमोड़ा अखबार (1870), आगरा अखबार (1870), बुद्धिविलास (1870), हिंदूप्रकाश (1871), प्रयागदूत (1871), बुंदेलखंड अखबर (1871), प्रेमपत्र (1872) और बोधा समाचार (1872)। इन पत्रों में से कुछ मासिक थे, कुछ साप्ताहिक। दैनिक पत्र केवल एक था ''समाचार सुधा वर्षण'' जोद्विभाषीय (बंगला हिंदी) था और कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह दैनिक पत्र 1871 तक चलतारहा।अधि कांश पत्र आगरा से प्रकाशित होते थे जो उन दिनों एक बड़ा शिक्षा केंद्र था और विद्यार्थी समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। शेष ब्रह्म समाज, सनातन धर्म और मिशनरियों के प्रचार कार्य से संबंधित थे। हिंदी प्रदेश के प्रारंभिक पत्रों में ''बनारस अखबार'' (1845) काफी प्रभावशाली था और उसी की भाषा नीति के विरोध में 1850 में तारा मोहन मैत्र ने काशी से साप्ताहिक ''सुधाकर'' और 1855 में राजा लक्ष्मण सिंह ने आगरा से ''प्रजाहितैषी'' का प्रकाशन आरंभ किया। इस दौरान राजा शिव प्रसाद का ''बनारस अखबार'' उर्दू भाषा शैली को अपनाता था तो ये दोनों पत्र पंडिता ऊतत्सम प्रधान शैली की ओर झुकते थे। इस प्रकार देखते हैं कि 1867 से पहले भाषा शैली के संबंध में हिंदी पत्रकार किसी निश्चित शैली का अनुसरण नहीं कर सके थे। इस वर्ष 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन हुआ और एक तरह से हम उसे पहला महत्वपूर्ण पत्र कह सकते हैं, पहले यह मासिक था, फिर पाक्षिक हुआ और अंत में साप्ताहिक। इन अखबारों पर अंग्रेजी सरकार नियंत्रण करने के लिए 1857 के विद्रोह दौरान कई प्रतिबन्ध लगायी, पर बाद में प्रतिबन्ध हटाने पड़े। फिर 1860 में तेजी से कई अखबार निकलें जिसमें ' दी बंगाली' अमृत बाजार ' कोलकता और लाहौर से' अखबारे आम' का नाम शामिल है।

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के इतिहास में दूसरा युग 1873 से 1900 तक माना गया है, जिसे भारतेन्दु युग भी कहा जाता है। इस युग के एक छोर पर भारतेन्दुका ''हरिश्चंद्र मैगजीन'' था और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदन प्राप्त ''सरस्वती''। इन 27 वर्षों में प्रकाशित पत्रों की संख्या 300–350 से ऊपर है, जो नागपुर तक फैले हुए थे। साप्ताहिक पत्रों में समाचारों और उन पर टिप्पणियों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में दैनिक समाचार के प्रति उस समय विशेष आग्रह नहीं था और कदाचित इसीलिए उन दिनों साप्ताहिक और मासिक पत्र कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे। उन्होंने जन जागरण में अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के इन 27 वर्षों का आदर्श भारतेन्दु की पत्रकारिता थी। ''कवि वचन सुधा'' (1867), ''हरिश्चंद्र मैगजीन''

(1874), श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका'' (1874), बालबोधिनी (स्त्री जन की पत्रिका, 1874) के रूप में भारतेन्दु ने इस दिशा में पथ प्रदर्शन किया था। उन की टीका टिप्पणियों से अधिकारी तक घबराते थे और ''कवि वचन सुधा'' के ''पंच'' पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेन्दु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना भी बंद करा दिया था। इसमें संदेह नहीं कि पत्रकारिता के क्षेत्र भी भारतेन्दु पूर्णतया निर्भीक थे और उन्होंने नये – नये पत्रों को प्रोत्साहन दिया। ''हिंदी प्रदीप'', ''भारत जीवन'' आदि अनेक पत्रों का नाम करण भी उन्होंने ही किया था, उनके युग के सभी पत्रकार उन्हें अग्रणी मानते थे।

भारतेन्दु युग के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में जो पत्रकार आए, उनमें प्रमुख रूप से – पंडित रुद्रदत्त शर्मा, (भारत मित्र, 1877), बाल कृष्णभट्ट (हिंदी प्रदीप, 1877), दुर्गा प्रसाद मिश्र (उचित वक्ता, 1878), पंडित सदानंद मिश्र (सार सुधा निधि, 1878), पंडित वंशीधर (सज्जन–कीर्ति–सुधाकर, 1878), बदरीनारायण चौधरी ''प्रेमधन'' (आनंद कादंबिनी, 1881), देवकी नंदन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार, 1882), राधाचरण गोस्वामी (भारतेन्दु, 1882), पंडित गौरीदत्त (देव नागरी प्रचारक, 1882), राज रामपाल सिंह (हिंदुस्तान, 1883), प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण, 1883), अंबिका दत्त व्यास, (पीयूष प्रवाह, 1884), बाबूराम कृष्ण वर्मा (भारत जीवन, 1884), पं. रामगुलाम अवस्थी (शुभ चिंतक, 1888), योगेश चंद्र वसु (हिंदी बंगवासी, 1890), पं. कुंदनलाल (कवि व चित्रकार, 1891) और बाबू देवकी नंद नखत्री एवं बाबू जगन्नाथदास (साहित्य सुधा निधि, 1894) का नाम शामिल हैं। 1895 ई. में ''नागरी प्रचारिणी पत्रिका'' का प्रकाशन आरंभ होता है। इस पत्रिका से गंभीर साहित्य समीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिए हम इसे एक निश्चित प्रकाश स्तंभ मान सकते हैं। 1900 ई. में ''सरस्वती'' और ''सुदर्शन'' के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है। इन 27 वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई। प्रारंभिक पत्र शिक्षा प्रसार और धर्म प्रचार तक सीमित थे। भारतेन्दु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित कीं। उन्होंने ही ''बाला बोधिनी'' (1874) नाम से पहला स्त्री–मासिक–पत्र चलाया। कुछ वर्ष बाद महिलाओं को स्वयं इस क्षेत्र में उतरते देखते हैं, जिनमें ''भारत भगिनी'' (हरदेवी, 1888), ''सुगृहिणी'' (हेमंत कुमारी, 1889) का नाम शामिल हैं।

तीसरे चरण में बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता हमारे लिए अपेक्षाकृत निकट है और उसमें बहुत कुछ पिछले युग की पत्रकारिता की ही विविधता और बहुरूपता मिलती है। 19वीं शती के पत्रकारों को भाषा–शैली क्षेत्र में अव्यवस्था का सामना करना पड़ा था। उन्हें एक ओर अंग्रेजी और दूसरी ओर उर्दू के पत्रों के सामने अपनी वस्तु रखनी थी। अभी हिंदी में रुचि रखने वाली जनता बहुत छोटी थी। धीरे–धीरे परिस्थिति बदली और हम हिंदी पत्रों को साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व करते पाते हैं। इस शताब्दी से धर्म और समाज सुधार के आंदोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे–धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया। फलतः अधिकांश पत्र, साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले। साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में पहले दो दशकों में आचार्य द्विवेदी द्वारा संपादित ''सरस्वती'' (1903–1918) का नेतृत्व रहा। वस्तुतः इन बीस वर्षों में हिंदी के मासिक पत्र एक महान साहित्यिक शक्ति के रूप में सामने आए। शृंखलित उपन्यास कहानी के रूप में कई पत्र प्रकाशित हुए

– जैसे उपन्यास 1901, हिंदी नाविल 1901, उपन्यास लहरी 1902, उपन्यास सागर 1903, उपन्यास कुसुमांजलि 1904, उपन्यास बहार 1907, उपन्यास प्रचार 1912। केवल कविता अथवा समस्या पूर्ति लेकर अनेक पत्र उन्नीस वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में निकलने लगे थे। समालोचना के क्षेत्र में ''समालोचक''(1902) और ऐतिहासिक शोध से संबंधित ''इतिहास'' (1905) का प्रकाशन भी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। परंतु सरस्वती ने ''मिस्लेनी'' के रूप में जो आदर्श रखा था, वह अधिक लोकप्रिय रहा और इस श्रेणी के पत्रों में उसके साथ कुछ थोड़े ही पत्रों का नाम लिया जा सकता है, जैसे ''भारतेन्दु'' (1905), नागरी हितैषिणी पत्रिका, बाँकीपुर (1905), नागरी प्रचारक (1906), मिथिला मिहिर (1910) औरइंदु (1909)। ''सरस्वती'' और ''इंदु'' दोनों हिन्दी की साहित्य चेतना के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हैं और एक तरह से हम उन्हें उस युग की साहित्यिक पत्रकारिता का शीर्षमणि कह सकते हैं। ''सरस्वती'' के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और ''इंदु'' के माध्यम से पंडित रूपनारायण पांडेय ने जिस संपादकीय सतर्कता, अध्यवसाय और ईमानदारी का आदर्श हमारे सामने रखा वह हिन्दी पत्रकारिता को एक नई दिशा देने में समर्थ हुआ, परंतु राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता को नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका। पिछले युग की राजनीतिक पत्रकारिता का केंद्र कलकत्ता था। परंतु कलकत्ता हिंदी प्रदेश से दूर पड़ता था और स्वयं हिंदी प्रदेश को राजनीतिक दिशा में जागरूक नेतृत्व कुछ देर में मिला। हिंदी प्रदेश का पहला दैनिक राजा रामपाल सिंह का द्विभाषीय ''हिंदुस्तान'' (1883) है, जो अंग्रेजी और हिंदी में कालाकाँकर से प्रकाशित होता था। दो वर्ष बाद (1885 में), बाबू सीता राम ने ''भारतोदय'' नाम से एक दैनिक पत्र कानपुर से निकालना शुरू किया। परंतु ये दोनों पत्र दीर्घजीवी नहीं हो सके और साप्ताहिक पत्रों को ही राजनीतिक विचार धारा का वाहन बनना पड़ा। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी में कलकत्ता के भारत मित्र, वंगवासी, सारसुधा निधि और उचित वक्ता ही हिंदी प्रदेश की राजनीतिक भावना का प्रतिनिधित्व करते थे। इनमें कदाचित् ''भारत मित्र'' ही सबसे अधिक स्थायी और शक्तिशाली था। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल और महाराष्ट्र लोक जाग्रति के केंद्र थे और उग्र राष्ट्रीय पत्रकारिता में भी ये ही प्रांत अग्रणी थे। हिंदी प्रदेश के पत्रकारों ने इन प्रांतों के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया और बहुत दिनों तक उनका स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सका। फिर भी हम ''अभ्युदय'' (1905), ''प्रताप'' (1913), ''कर्मयोगी'', ''हिंदीकेसरी'' (1904–1908) आदि के रूप में हिंदी राजनीतिक पत्रकारिता के आयाम को आगे बढ़ाते रहें, जिसको अंग्रेजी शासन के लिए सहन करना मुश्किल था, इसलिए 1908 ई. के कठोर एक्ट के कारण 'युगांतर', वंदेमातरम' और संध्या को अपना प्रकाशन बन्द करना पड़ा। प्रथम महायुद्ध की उत्तेजना ने एक बार फिर कई दैनिक पत्रों को जन्म दिया। कलकत्ता से ''कलकत्ता समाचार'', ''स्वतंत्र'' और ''विश्वमित्र'' प्रकाशित हुए, बंबई से ''वेंकटेश्वर समाचार'' ने अपना दैनिक संस्करण प्रकाशित करना आरंभ किया और दिल्ली से ''विजय'' निकला। 1910 का भारतीय प्रेस अधिनियम ने मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार दे दिया कि मुद्रकों और प्रकाशकों से कम से कम 500 रूपया और अधिक से अधिक 2000 की जमानत प्राप्त करें। स्थानीय सरकार को भी उपर्युक्त अधिकार प्राप्त था । एक्ट में आपत्तिजनक और विद्रोहात्मक परिभाषा निश्चित कर दी गई । इस अधिनियम से भारतीय समाचार का मुंह बन्द कर दिया गया। इस एक्ट के कारण 359 प्रेस, 1400 प्रकाशक जहां

दण्डित हुए वहीं 200 से अधिक छापेखाने बन्द हो गये, इन परिस्थितियों में 1921 से ''आज'' काशी और कानपुर से ''वर्तमान'' प्रकाशित होने लगा। इस प्रकार देखते हैं कि 1921 में हिंदी पत्रकारिता फिर एक बार करवटें ली और राजनीतिक क्षेत्र में अपना नया जीवन आरंभ कर दी। हमारे साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में भी नई प्रवृत्तियों का आरंभ इसी समय से होता है। फलतः बीसवीं शती के पहले बीस वर्षों को हम हिंदी पत्रकारिता का तीसरा चरण कह सकते हैं।

1921 के बाद हिंदी पत्रकारिता का समसामयिक युग आरंभ होता है। इसी समय में हिंदी का प्रवेश विश्व विद्यालयों में हुआ और कुछ ऐसे कृती संपादक सामने आए जो अंग्रेजी की पत्रकारिता से पूर्णतः परिचित थे और जो हिंदी पत्रों को अंग्रेजी, मराठी और बँगला के पत्रों के समकक्ष लाना चाहते थे। फलतः साहित्यिक पत्रकारिता में एक नए युग का आरंभ हुआ। राष्ट्रीय आंदोलनों ने हिंदी की राष्ट्रभाषा के लिए योग्यता पहली बार घोषित की ओर जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलनों का बल बढ़ने लगा, हिंदी के पत्रकार और पत्र अधिक महत्त्व पाने लगे। 1921 के बाद गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन मध्य वर्ग तक सीमित न रहकर ग्रामीणों और श्रमिकों तक पहुंच गया और उसके इस प्रसार में हिंदी पत्र कारिता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। सच तो यह है कि हिंदी पत्रकार राष्ट्रीय आंदोलनों की अग्रपंक्ति में थे और उन्होंने विदेशी सत्ता से डटकर मोर्चा लिया। विदेशी सरकार ने अनेक बार नये–नये कानून बना कर समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात किया परंतु जेल, जुर्माना और अनेकानेक मानसिक और आर्थिक कठिनाइयाँ झेलते हुए भी हिन्दी पत्रकारों ने स्वतंत्र विचार की दीपशिखा जलायें रखी। 1921 के बाद साहित्य क्षेत्र में जो पत्र आए उनमें प्रमुख हैं–स्वार्थ (1922), माधुरी (1923), मर्यादा, चाँद (1923), मनोरमा (1924), समालोचक (1924), चित्रपट (1925), कल्याण (1926), सुधा (1927), विशाल भारत (1928), त्यागभूमि (1928), हंस (1930), गंगा (1930), विश्वमित्र (1933), रूपाभ (1938), साहित्य संदेश (1938), कमला (1939), मधुकर (1940), जीवन साहित्य (1940), विश्वभारती (1942), संगम (1942), कुमार (1944), नया साहित्य (1945), पारिजात (1945), हिमालय (1946) आदि। राजनीतिक पत्रकारिता के क्षेत्र में ''आज'' (1921) और उसके संपादक स्वर्गीय बाबूराव विष्णु पराड़कर का लगभग वही स्थान है जो साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है। अंग्रेजी सरकार 1932 सेलेकर 1948 तक कानून बनाकर प्रेस को प्रताड़ित करती रही। प्रताड़ना के दौर में भी ''आज'' ने पत्र कला के क्षेत्र में एक महान संस्था के रूप में काम किया, जो आज भी जारी है। आधुनिक साहित्य के अनेक अंगों की भाँति हिन्दी पत्रकारिता भी नई कोटि की है। वास्तव में पिछले 200 वर्षों का सच्चा इतिहास हमारी पत्र–पत्रिकाओं से ही संकलित हो सकता है। भाषा शैली के निर्माण और जातीय शैली के विकास में पत्रों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा, परंतु बीसवीं शती के पहले दो दशकों के अंत तक मासिक पत्र और साप्ताहिक पत्र ही हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म देते और विकसित करते रहे हैं। द्विवेदी युग के साहित्य को हम ''सरस्वती'' और ''इंदु'' में जिस प्रयोगात्मक रूप में देखते हैं, वही उस साहित्य का असली रूप है।

भारत की आजादी के बाद 1974–75 के वर्ष में प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी के शासन काल में आपातकाल

लागू हूआ। 25 जून 1975 को प्रेससेंशर करके यह लागू कर दिया गया, कि बगैर एसडीएम की स्वीकृति बिना कोई खबर प्रकाशित नहीं होगा। हिंदी अखबारों के प्रकाशक, संपादक और पत्रकारों ने अपनी हिंदी भाषा के माध्यम से आपातकाल का विरोध किया। आंदोलन का नेतृत्व जयप्रकाशनारायण श्रीवास्तव ने संभाला। 1977 के लोक सभा चुनाव में इंदिरा गांधी की हार हो गयी और मोरार जी देशाई की सरकार बनी। वहीं 1990 के दशक में भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमर उजाला, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण आदि के नगरों–कस्बों से कई संस्करण निकलना शुरू हुआ। भूमंडलीकरण के बाद आयी नई तकनीक, बेहतर सड़क और यातायात के संसाधनों की सुलभता की वजह से छोटे शहरों, कस्बों से भी नगर संस्करण का छपना आसान हो गया। साथ ही इन दशकों में ग्रामीण इलाकों, कस्बों में फैलते बाजार में नई वस्तुओं के लिए नये उपभोक्ताओं की तलाश भी शुरू हुई। हिंदी के अखबार इन वस्तुओं के प्रचार–प्रसार का एक जरिया बनकर उभरा है। साथ ही साथ अखबारों के इन संस्करणों में स्थानीय खबरों को प्रमुखता से छापा जाता है। इससे अखबारों के पाठकों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई। सन् 2014 के बाद पत्र पत्रिकाओं का डिजिटल करण हो गया । नेटों के माध्यम से लोग आज की घटना आज ही पढ़ने लगे। बदलते परिवेश में सरकारों के बदलने के साथ, पत्र पत्रिकाओं के साथ संपादक और पत्रकारों के तेवर भी बदलने लगे हैं, जैसे मानों ये बंधक हो गये हों, कल तक सामाज और राजनीतको बदलने के दावे करने वाले मानों नागपाश में बंध गये हो। इन बन्धनों से छूटकारा की निजात अभी ढूंढ़ ही रहे थे, तब तक कोरोना काल में अपने अस्तित्व को बचाने के लिए आर्थिक संकट से अब तक जुझना पड़ रहा है। बहरहाल देश की आजादी में हिंदी और पत्रकारिता के लिए भारतेन्दु हरिश्चंद्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबू देवकी नंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथ दास चिरस्मरणीय रहेंगे, यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्रचार– प्रसार में पत्रकारिता की जितनी बड़ी भूमिका है, उतनी ही पत्रकारिता की लोकप्रियता में हिन्दी की भी बड़ी भूमिका रहीं। और दोनों के सामंजस्य से गांधी और सुभाष जी का आंदोलन राष्ट्रीयता का रूप लिया, जिससे देश को आजादी मिली।

सन्दर्भ – आधुनिक भारत का इतिहास – लेखक प्रो. महाबीर सिंह त्यागी, विकीपीडिया

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 28-32

संस्कृति और साहित्य

आशा रानी, प्रवक्ता हिन्दी
राजकीय उत्कृष्ट वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय कोटला बेहड़, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश –11

सारांश

संस्कृति और साहित्य का परस्पर घनिष्ट संबंध रहा है। संस्कृति आंशिक रूप में धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों में और सर्वाधिक साहित्यिक ग्रन्थों में व्यक्त होती है। धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों से हम किसी समाज के धर्म–दर्शन सम्बन्धी दृष्टि का परिचय तो प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन उस समाज के लोगों के जीवन–यापन की विधियों एवं व्यवस्थाओं का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। अतएव किसी समाज की संस्कृति को समग्रतः से जानने के लिए उसके धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उस जाति अथवा समाज के साहित्य का गहन अध्ययन भी नितान्त अपेक्षित है।

साहित्य में संस्कृति की अखण्ड अभिव्यक्ति होती है। साहित्य में साहित्यकार के जो भाव एवं विचार व्यक्त होते हैं, वे एक सुदीर्घ संस्कृति के परिणाम होते हैं। साहित्य में राष्ट्र एवं समाज के धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज, कला, दर्शन आदि सांस्कृतिक तत्त्व स्वतः अभिव्यक्त होते रहते हैं। यदि कोई साहित्यकार अपने देश की संस्कृति से कटकर साहित्य–सृजन करेगा तो उसका साहित्य अल्पकाल में ही अवांछित होकर विस्मृति के गर्त में समा जायेगा। इसके विपरीत संस्कृति का संवाहक साहित्य युगों तक साहित्येतिहास में अपना चिर महत्त्व बनाए रखता है। इसका सर्वोच्च कारण यह है कि 'साहित्य मूलतः और अनिवार्यतः एक संस्कृति की उपज होता है और उस संस्कृति का स्वर उस साहित्य में पड़ना चाहिए। संस्कृति को समझने का सबसे बढ़िया आधार एवं उपकरण काव्य–साहित्य ही रहता है। बात यह है कि जाति–विशेष के काव्य – साहित्य में उसके दूसरे मूल्यों के साथ आध्यात्मिक मूल्य भी प्रतिफलित हो ही जाते हैं। इसके विपरीत दार्शनिक एवं आध्यात्मिक साहित्य के अनुशीलन से जीवन की विविधता व उसके मूल्यों का व्यापक परिचय हो ही नहीं सकता।

जो साहित्य किसी एक संस्कृति का प्रतिबिम्बन करता है, उसका अपना व्यक्तित्व, अपनी अस्मिता होती है और जब वह व्यक्तित्व उसके क्षेत्र के बाहर पहचान चाहता है, तभी दूसरे संस्कृति–समाजों में उसे महत्त्व दिया जाता है और उसके ग्रहण और मूल्यांकन की प्रवृत्ति होती है। दूसरे शब्दों में, तभी वह विश्व–साहित्य में स्थान पाता है। जिस साहित्यिक रचना में संस्कृति का स्वर नहीं बोलता, उसका विश्व–साहित्य में स्थान पाने का कोई

सवाल ही नहीं उठता ।'[1] अतः साहित्यकार अपने देश की संस्कृति का संवाहक होता है।

प्रत्येक देश का साहित्य उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है। इस तथ्य को एकाधिक उदाहरणों से सिद्ध किया जा सकता है। मुस्लिम संस्कृति में भौतिकता की प्रधानता है। शारीरिक सुख एवं भोग–विलास के प्रति विशेष आकर्षण उसकी प्रमुख प्रवृत्ति है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव मुस्लिम साहित्य में देखा जा सकता है। भोग–प्रधान संस्कृति के कारण मुस्लिम साहित्य में इश्क, सुरा, साकी, रत्न जड़ित पलंग, जरीदार वस्त्र, सुगन्धित तेल, इत्र, दरबारी वैभव आदि विभिन्न विलासितापूर्ण उपादानों की अबाध अभिव्यक्ति हुई है। 'हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भी इसी फारसी संस्कृति का प्राधान्य उत्तरी भारत में रहा, क्योंकि मुगलों के शासनकाल में इसी फारसी संस्कृति का प्रभुत्व न केवल दिल्ली एवं आगरा के अन्तर्गत दिखाई देता है, अपितु मुगलों से सम्बन्धित सम्पूर्ण देशी राज्यों में भी इसी संस्कृति की छाप अंकित हो गई थी।

इसलिए उस समय जो कुछ भी हिन्दी साहित्य लिखा गया, उसमें भी भोग–विलास की अत्यन्त रोचक एवं मनमोहक सामग्रियों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन कवियों में से केशव, बिहारी, देव, पद्माकर आदि हिन्दी के सभी कवियों ने सुरा, सुराही और सुन्दरी के अतिरिक्त गिलम, गलीचा, फुव्वारे, गजल आदि का चित्रण अत्यन्त बहुलता के साथ किया है।'[2] इसी प्रकार अंग्रेजों की संस्कृति भी भौतिकता प्रधान है। वे इहलौकिक प्रत्यक्ष जीवन से अधिक अनुराग रखते हैं और दैहिक सुख प्रदान करने वाली सांसारिक सामग्रियों के प्रति उनका विशेष आकर्षण है। चेतना अथवा आत्मा की अपेक्षा जीवन के भौतिक पक्ष को सर्वप्रकारेण समृद्ध बनाने की उनमें उत्कट लालसा रहती है। शरीर का उन्मुक्त उपभोग उनका जीवन दर्शन है। उनकी संस्कृति की इस विशेषता के कारण ही अंग्रेजी साहित्य में ऐन्द्रिय वासना तथा स्थूल मांसल सौन्दर्य की प्रचुर अभिव्यक्ति हुई है और उसमें भौतिक वैभव एवं सुख–समृद्धि का विशेष चित्रण हुआ है।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति की मुख्य दृष्टि आध्यात्मिक रही है। यद्यपि भौतिकता को भी उसने सर्वथा नकारा नहीं है, फिर भी भौतिकता को आध्यात्मिकता से निरंतर संयुक्त रखना उसे अभीष्ट रहा है। भारतीय संस्कृति इहलौकिक आनन्द के साथ पारलौकिक आनन्द को कभी भूली नहीं, बल्कि ऐन्द्रिय आनन्द की अपेक्षा आत्मिक आनन्द को उसने अधिक महत्त्व दिया है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में भौतिक जीवन के साथ आध्यात्मिक जीवन की समस्याओं का भी सूक्ष्म वर्णन हुआ है, काम के साथ मोक्ष का भी निरूपण हुआ है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में जिन चार पुरुषार्थी को महत्त्व दिया गया है, यहाँ के साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति अनेकत्र देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति की विशेषता वर्णाश्रम व्यवस्था का उल्लेख यहाँ के साहित्य में प्रायः मिलता है। अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैवाद आदि विभिन्न आध्यात्मिक दर्शन, जो भारतीय संस्कृति के सार है, की अभिव्यक्ति भी हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति–काव्य में अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है ।

संस्कृति साहित्य के कथ्य को ही प्रभावित नहीं करती है, अपितु साहित्यकार को साहित्य सृजन की प्रेरणा भी प्रदान करती है। जिस प्रकार के सांस्कृतिक परिवेश में साहित्यकार रहता है, वह सांस्कृतिक परिवेश अपनी

अभिव्यक्ति के लिए साहित्यकार को रचना – प्रेरणा प्रदान करती है। सांस्कृतिक परिवेश से अयुक्त साहित्यकार किसी कालजयी कृति की रचना नहीं कर सकता। अपने सांस्कृतिक परिवेश में जब वह धर्म, दर्शन, परम्परा आदि के रूप में संस्कृति के विभिन्न तत्त्व पाता है तो उनसे प्रेरणा प्राप्त कर वह स्थायी साहित्य के सृजन की दिशा में अग्रसर होता है। यदि तुलसी के सांस्कृतिक परिवेश में राम की मान्यता प्रचलित न होती तो 'रामचरितमानस' जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना कभी न होती। सूरदास जिस युग और सांस्कृतिक समाज के निवासी थे, उसमें यदि कृष्ण की मान्यता न होती तो 'सूरसागर जैसे उत्तम ग्रन्थ की कल्पना ही सम्भव न थी ।

वस्तुतः जिस प्रकार की स्थितियाँ किसी सांस्कृतिक परिवेश में परिव्याप्त रहती हैं, वे उसी प्रकार की रचना–प्रेरणा साहित्यकार को प्रदान करती हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दी साहित्य के आदिकाल में भारत की उत्तरी सीमाओं पर यवनों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे, सारा देश छोटे–छोटे प्रदेशों और उप–प्रदेशों में विभक्त हो गया था, सम्पूर्ण देश को एक मानने की अपेक्षा प्रान्तीयता और प्रादेशिकता की संकीर्ण भावना विकसित हो चली गई थी, भोग–विलास के प्रति लोगों की अनुरक्ति विशेष रूप से बढ़ चली थी, लेकिन साथ ही 'बरिस अठारह छत्रि जीवै, आगे जीवन को धिक्कार 'राजपूतों का आदर्श बन चुका था, अतः वे प्रायः युद्धों में ही संलग्न रहते थे। इस समूचे सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश ने अपने युग के चन्दबरदाई, नरपति नाल्ह, जगनिक आदि साहित्यकारों को साहित्य सृजन की प्रेरणा दी जिन्होंने अपने काव्यों में युद्धप्रियता, पारस्परिक कलह, राज्य–भक्ति, वीर–स्तुति, प्रेम–विरह, ब्राह्मण–सम्मान तथा नारी को भोग–विलास का साधन मानना प्रभृति तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं का निरूपण किया।

ऐसा नहीं है कि केवल संस्कृति ही साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, साहित्य भी संस्कृति के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः साहित्य संस्कृति का जीवनाधार है। यदि संस्कृति को साहित्यिक प्रश्रय न मिले तो वह विकसित एवं समुन्नत नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, साहित्य के अभाव में संस्कृति के नष्ट हो जाने की आशंका भी निरन्तर बनी रहती है, क्योंकि संस्कृति का विवरण साहित्य के माध्यम से ही सुरक्षित रहता है। वस्तुतः किसी राष्ट्र का समस्त सांस्कृतिक चिन्तन साहित्य के रूप में व्यक्त होकर ही कालजयी बन पाता है। बेबीलोनिया, असीरिया आदि अनेक संस्कृतियों का मूल स्वरूप हमें आज इसलिए ज्ञात नहीं है, क्योंकि ये संस्कृतियाँ जिस साहित्य में व्यक्त हुई थीं, वह साहित्य आज उपलब्ध नहीं। यह सत्य है कि संस्कृति के स्वरूप की यत्किंचित रक्षा ताम्रपत्रों, शिलालेखों, वास्तुकला, चित्रकला, शिल्पकलाओं, लोकवार्ताओं तथा अनुश्रुतियों आदि के माध्यम से भी हो सकती है। लेकिन इन समस्त उपादानों से किसी संस्कृति के अवशिष्ट चिह्न ही सुरक्षित रह सकते हैं, उसका समग्र स्वरूप नहीं। संस्कृति का समग्र स्वरूप साहित्य के माध्यम से भली भाँति सुरक्षित रह सकता है, क्योंकि साहित्य में ही किसी देश के समस्त चिन्तन, दर्शन, धार्मिक मान्यताओं, विश्वासों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों आदि का विस्तृत एवं सूक्ष्म निरूपण रहता है।

वेदों, आरण्यक ग्रन्थों, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परम्परा सुरक्षित है। लेकिन यदि दुर्भाग्यवश यह समस्त साहित्य किसी कारणवश नष्ट हो जाता और

हमें आज उपलब्ध न होता तो हमें भारतीय संस्कृति की प्राचीन मूलभूत विशेषताओं का सम्यक् बोध कभी न हो पाता। हम भारतीय संस्कृति के प्राचीन स्वरूप को जानते हैं, इसका एकमात्र कारण यही है कि भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने वाला अपेक्षित साहित्य आज हमें उपलब्ध है। 'भारतीय–संस्कृति के उद्घोषक अनेक शिल्प शत्रुओं द्वारा विध्वंस हो गये, अनेक चित्र काल के गर्त में विलीन हो गये, अनेक शिलालेख धराशायी होकर धूल में मिल गये, अनेक ताम्रपत्र एवं सिक्के नष्ट–भ्रष्ट होकर पृथ्वी में समा गये तथा अनेक भौतिक अवशेष लुप्त हो गये, परन्तु साहित्य की स्रोतस्विनी अविरल गति से आज तक प्रवाहित हो रही है, जो अपनी कल–कल ध्वनि में भारतीय संस्कृति की गरिमा एवं महिमा का स्तवन कर रही है।'[3]

साहित्य दूरवर्ती समाजों की संस्कृतियों के स्वरूप का ज्ञान कराने वाला सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक सरल साधन है। यदि साहित्य न हो तो हम अति दूरस्थ समाज की संस्कृति का परिचय तब तक नहीं पा सकते, जब तक कि हम उस समाज में जाकर वहाँ के लोगों के बीच जीवन का कुछ काल व्यतीत न करें। किसी समाज में कुछ काल तक रह चुकने के पश्चात् ही हम उस समाज के लोगों के धर्म, दर्शन, आचार–विचार, रीति–रिवाज, जीवन–यापन की पद्धति आदि से परिचित हो सकते हैं। लेकिन यदि हमें उस समाज की संस्कृति का संवाहक साहित्य उपलब्ध हो तो हम उस समाज से दूर रहते हुए भी उसकी संस्कृति का ज्ञान उसके साहित्य के अध्ययन माध्यम से सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। इंग्लैंड की भूमि पर जीवनभर पैर न रखने वाला व्यक्ति भी अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन से यह जान जाता है कि वहाँ के लोगों की संस्कृति में भौतिकता की प्रधानता है, शारीरिक प्रेम एवं सौन्दर्य के प्रति वहाँ के लोगों में विशेष आकर्षण है, वे राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण हैं और यह भी कि उनमें विज्ञान के प्रति उत्कट जिज्ञासा है। यह ज्ञान साहित्य के द्वारा सहज सम्भव है।

साहित्य किसी संस्कृति के स्वरूप का ज्ञान ही नहीं कराता, बल्कि संस्कृति के प्रचार–प्रसार का कार्य भी करता है। जब किसी देश की संस्कृति का वाहक साहित्य अपने से भिन्न संस्कृति वाले किसी अन्य देश में पहुँचता है तो वह वहाँ के निवासियों को प्रभावित करता है।

वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, अभिज्ञान शाकुन्तल आदि ग्रन्थ जब मूल अथवा अनूदित रूप में विदेशों में पहुँचे तो उन्होंने वहाँ के निवासियों को भारतीय संस्कृति की महत्ता से परिचित ही नहीं कराया, अपितु अनुभूति के स्तर पर उन्हें प्रभावित भी किया। विदेशियों और विशेषतः यूरोपीय लोगों पर भारतीय संस्कृति का यह प्रभाव प्रत्यक्षतः एवं स्पष्टतः देखा जा सकता है। विभिन्न यूरोपीय देशों से शान्ति की खोज में भारत–भूमि पर आने वाले अंग्रेज इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। विभिन्न देशों में, और भारत में भी रूसी दूतावासों द्वारा रूसी साहित्य का सस्ते मूल्य पर वितरण निरर्थक नहीं है। इसका एकमात्र सार्थक प्रयोजन यही है कि रूस अपने साहित्य के माध्यम से इतर संस्कृति वाले लोगों को अपनी संस्कृति का ज्ञान कराकर उसका विस्तार करना चाहता है, क्योंकि साहित्य ही संस्कृति के विस्तार एवं प्रसार का श्रेष्ठ साधन है। यदि ऐसा न होता तो कोई यूरोपीय व्यक्ति भारतीय साहित्य के अध्ययन के माध्यम से यहाँ की अध्यात्मोन्मुखी संस्कृति से प्रभावित होकर आत्मिक शान्ति की खोज में भारत न आता और न रूस महंगाई के इस युग में अपने साहित्य को इतने सस्ते मूल्य पर दूसरे

देशों में वितरित करता ।

संस्कृति और साहित्य का परस्पर अविच्छिन्न सम्बद्ध है 'दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरा निष्प्रभ एवं पंगु है। दोनों एक–दूसरे से रस ग्रहण करते हैं। जो देश या समाज सुसंस्कृत होगा, उसका साहित्य भी अनिवार्य रूप से उदात्त एवं महनीय होगा। संस्कृति किसी देश या समाज के स्थायी तत्त्वों की अभिव्यक्ति है जिनसे साहित्य निरन्तर प्रभावित होता है। वास्तव में साहित्य संस्कृति की प्रयोगशाला है जिसमें सांस्कृतिक तत्त्वों की व्यावहारिक क्षमता का विश्लेषण होता है।'[4] अतः श्रेष्ठ साहित्य और समृद्ध संस्कृति ही किसी देश, राष्ट्र एवं समाज के अभ्युथान के निष्कर्ष हैं जिनके आधार पर उनकी उपलब्धि मूल्यांकित हो सकती है।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन से यह स्वतः सिद्ध है कि संस्कृति और साहित्य का घनिष्ट संबंध हैं। अतः प्रत्येक देश का साहित्य उसकी संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। संस्कृति साहित्य के कथ्य को ही प्रभावित नहीं करती अपितु साहित्यकार को साहित्य सृजन की प्रेरणा भी प्रदान करती है। जिस प्रकार की स्थितियां किसी सांस्कृतिक परिवेश में परिव्याप्त रहती है वे उसी प्रकार की रचना – प्रेरणा साहित्यकार को प्रदान करती है। केवल संस्कृति ही साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु साहित्य भी संस्कृति के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। वस्तुतः साहित्य संस्कृति का जीवनाधार है। कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्र का समस्त सांस्कृतिक चिंतन साहित्य के रूप में व्यक्त होकर ही कालजयी बन जाता है।

संदर्भ

1. डॉ० देवराज, भारतीय संस्कृति
2. अज्ञेय, संस्कृति रू यहाँ, वहाँ या कब्र में
3. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, निबंध नवनीत
4. डॉ० रघुवीर सिंह वोकन, भारतीय संस्कृति का स्वरूप

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 33-38

चम्बा के लोक साहित्य में राम कथा का स्वरूप

अविनाश कुमार, शोधार्थी
हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश
विश्व विद्यालय शिमला–05

सारांश :–

लोक साहित्य को लोक मानस का दर्पण कहा जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव उद्‌भव की कहानी है। मानव मन के भावों की जैसी अभिव्यक्ति लोक साहित्य में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं देखी जा सकती है। श्रीराम ऐसे महान विभूति है जिनके व्यक्तित्व से सारा संसार प्रभावित है। साहित्यकारों के साहित्य से जनमानस रामायण हो गया है। श्रीराम का चरित्र लोक साहित्य तथा उपभाषाओं के साहित्य में भी चित्रित है। रामचरितमानस के महानायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भूखंडों की सीमाओं को तोड़कर विश्व जनमानस में व्याप्त हैं। प्रायः सर्वत्र श्री रामचरित को पढ़ा, गाया–सुनाया जाता है। लोक साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से हैं जिसकी रचना लोक द्वारा की जाती है। लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना की मानव। इसीलिए उसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय तथा प्रकृति सभी कुछ समाहित है। लोक साहित्य लोक द्वारा निर्मित, लोक विषयक और लोक प्रचलित साहित्य है। इसका जुड़ाव विशेष रूप से श्रम और संस्कार से होता है। यह सामूहिकता की भावना को सूचित करता है, इसीलिए इसका पाठ विभिन्न उत्सवों एवं अवसरों पर होता है। लोक साहित्य हमारे पुरखों का साहित्य है। हमारे पुराने समाज का साहित्य है। इसमें जीवन के विभिन्न प्रसंगों से प्राप्त अनुभवों एवं सत्यों की वास्तविक अभिव्यक्ति होती है। इसमें भावों की अभिव्यक्ति में किसी तरह का बनावटीपन नहीं होता बल्कि भावों का भदेसपन लोक साहित्य की अपनी विशेषता होती है। इसलिए इस साहित्य की टेकनीक और टेक्सचर में लोक की ज्यादा उपस्थिति होती है। वास्तव में लोक साहित्य मौलिक साहित्य है। वह कच्चे–कलेवर भावों का साहित्य है। यह शास्त्रीय ज्ञान के बोझ से मुक्त तथा छंद एवं अलंकार की चिंता से रहित साहित्य है। यह अपने वाचिक रूप में किसी व्यक्ति विशेष द्वारा सृजित साहित्य नहीं हैं, यह जनता का, जनता के लिए और जनता से जन्मा साहित्य है।

लोक साहित्य के संदर्भ में डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार, "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।" अतः कहा जा सकता है कि यह किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष का साहित्य न होकर जनमानस का साहित्य है। इसमे लोकजीवन की सभी प्रकार की भावनाएं बिना किसी कृत्रिमता से समाई रहती है। देवेन्द्र

सत्यर्थी के शब्दों में, "लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र है, लोकगीत लोकजीवन की अभिव्यक्ति का जीवंत और सशक्त माध्यम है इसमें लोक हृदय के उद्‌गार होते हैं।" अतः लोकगीत लोक संस्कृति का ही पर्याय हैं। लोक जीवन से जुड़े लोकगीत हमारी संस्कृति की संगीतमय अभिव्यक्ति है। इस आधार पर लोक साहित्य समृद्ध साहित्य है।

राम और कृष्ण मनुष्यता के बहुत बड़े सपनों के नाम हैं। वे हमारी पुतलियों में नाचते हैं, धमनियों में तैरते हैं। रामकथा की जड़ें बहुत गहराई में जमी हुई हैं। इसकी उपस्थिति विभिन्न अक्षांशों एवं देशांतरों से परे है। इसीलिए यह केवल भारतीय या उत्तर भारतीय कथा नहीं है बल्कि पूर्वोत्तर भारत की कला, साहित्य एवं संस्कृति में भी यह कथा उतनी ही रची–बसी है। आदिकवि वाल्मीकि की रामकथा के बाद यदि हम आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में रचित राम कथाओं पर गौर करें तो हम पाते हैं। आज लोकसाहित्य हाशिए पर जा रहा है और उसे समझने की काबिलियत भी लोगों में खत्म होती जा रही है। उदाहरण के रूप में रामकथा की बात करें तो लोकसाहित्य हमें वह बताता है जो न हमें वाल्मीकि बताते है न तुलसीदास बताते है और न ही कोई दूसरा। यह कमी लोक साहित्य से पूरी होती है।

रामचरितमानस के महानायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भूखंडों की सीमाओं को तोड़कर विश्व जनमानस में व्याप्त हैं। प्रायः सर्वत्र श्रीरामचरितमानस को पढ़ा, गाया–सुनाया जाता है। नाट्य–मंचों के माध्यम से भी भारत में परंपरित 'रामलीला' को स्थानक भाषा, संगीत व योगेता के माध्यम से अभिनीत किया जाता है। विश्व के हर क्षेत्र के रचनाकारों ने 'मति अनुरूप राम गुन गावऊं' अर्थात अपनी–अपनी भावना और मति के अनुसार रामचरित गान किया है। श्रीरामचरित कथा तो 'नाना निगम पुराणागमारिसम्मत' है। विद्वानों के अनुसार राम की प्राथमिक उपस्थापना महर्षि वाल्मीकि ने त्रेता युग में ही कर दी थी। पौराणिक मान्यता के अनुसार राक्षसों की अधार्मिक प्रवृत्तियों को नष्ट करने के लिए ही भगवान् विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया और सामाजिक मर्यादा प्रतिष्ठित की। एक मतानुसार यह ऐतिहासिक घटना समाज के मार्गदर्शन के लिए थी। श्रीराम के अवतरण की आवश्यकता की पृष्ठभूमि में यही सद्‌चिंतन प्रमुख रहा।

साहित्य सृजन के उपजीव्य रूप में लोक मानस की भूमिका को नकार नहीं सकते। श्रीराम कथा अपने मूल स्वरूप में सनातन, सार्वभौम है जो महर्षि वाल्मीकि रामायण और संत तुलसीदास के काव्य दोनों रचनाओं में घटनाक्रम में अंतर होना स्वाभाविक है। इन रचनाओं के आधार होने में भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में श्रुत परंपरा में प्रचलित–परंपरित रामायण या रामकथा प्रसंगों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस पक्ष में अनेक विद्वानों ने शोध किए हैं। कुछ दशक पूर्व रामानंद सागर द्वारा प्रस्तुत रामायण सीरियल में हमने देखा की उन्होंने कितने ही रामायण गिनाए हैं जिनके कथानकों का सम्यक अध्ययन कर इसकी सृजना हुई है। महर्षि वाल्मीकि का रामायण संस्कृत में आदि महाकाव्य है और तुलसीकृत रामचरितमानस अवधी भाषा में है। प्रथम की शैली श्लोक है, दूसरे की दोहा, चौपाई आदि छंद। एक रचना विद्वानों तक सीमित रही, दूसरी कथावाचकों, रामलीला नृत्य–नाट्यों की मंडलियों के माध्यम से घुम्मकड़–स्वरूप पाकर नगरों, गांवों–कस्बों में विचरण करती, लोकरंजन के साथ धार्मिक महत्त्व पाती, सर्वव्यापक हो गई।

ऐसे प्रभाव हिमाचल के हर भू–भाग में बसे लोकमानस में भी घर कर गए जिसके फलस्वरूप यहां की स्थानक भाषा–बोलियों में लोकरामायण की रचना हुई जो श्रुत परंपरा में प्रचलित रही। हिमाचल में रामकथा या लोकरामायण का गायन ऐहंचली, बरलाज, ठामरू आदि शैलियों में परंपरित है। रमैणी, रमीणी आदि इसकी स्थानक संज्ञाएं हैं। हिमाचली भाषा रूप भारोपीय और तिब्बती परिवार प्रभावित है। अतः हिमाचल के समतलीय और पर्वतीय या जनजातीय भू–भागों में प्रचलित लोकरामायण के कथा–बिंदुओं या घटना–वर्णन में स्थानीय लोकमानस की विद्यमानता के कारण बड़े रोचक और भिन्न कथा–प्रसंग भी मिलते हैं।

चम्बयाली लोकसाहित्य में रामायण का ऐतिहासिक महत्त्व है। चम्बा लोकसाहित्य की अनेक विधाओं में लोकगाथा गायन की भी समृद्ध परंपरा प्रचलित है। इन विधाओं में ऐंचलघी व मुसाधा का विशेष स्थान है जिला चम्बा में 'मुसाधा गायन' अत्यन्त प्रसिद्ध है। मुसाधा गायन का अर्थ मुख–साधा गायन है। मूल रूप से 'ख' ध्वनि का लोप सम्भव है अर्थात् मुख साधा से मुसाधा प्रचलित हुआ। मुसाधा गायन में गायक जबानी लोकगाथा या लोकगीत को गाकर श्रोताओं को सुनाता है। एक बार गाकर उसे आम श्रोता की सुविधा के लिए मौखिक व्याख्या भी करता है। गायन के संचालन के लिए एक श्रोता को 'हुंकारी' भरने के लिए नियुक्त किया जाता है। वह मुसाधा गायक के गायन को प्रोत्साहित करने के लिए बीच–बीच में 'हुंकारा' भरता रहता है जिससे गायक और श्रोता दोनों जागृत रहते हैं। मुसाधा गायन में कथा का विषय रामायण, महाभारत या कोई पौराणिक आख्यान हो सकता है। सावित्री सत्यवान, श्रवण कुमार, नल–दमयन्ती, भक्त प्रहलाद, पूर्णाभक्त या अन्य कोई भी प्रसंग सुनाया जाता है।

ऐंचलघी और मुसाधा लोक गाथा गायन की शैली में अंतर पाया जाता है। ऐंचलघि में तो केवल गाथा का गायन होता है, परंतु मुसाधा में गाथा गायन का प्रसंग गाने के उपरांत बीच–बीच में स्थानीय भाषा में उसकी व्याख्या कथा के रूप में की जाती है। ऐंचलघी गायन में चार लोक गायक कलाकार होते हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'बंदे' या 'ऐंचलेडे' कहते हैं। मुसाधा गायन में मात्र दो कलाकार होते हैं। पुरुष कलाकार को 'घुराई' और स्त्री कलाकार को 'घुरैण' कहते हैं। मुसाधा लोक कलाकार शायद विश्व में पहला लोक कलाकार है जो एक साथ दो वाद्य यंत्रों को बजाते हुए गाता है। एक हाथ में वाद्ययंत्र खंजरी से ताल बजाता है और दूसरे हाथ से गले में लटका वाद्य यंत्र रुबाना (वाद्य) से संगीत देते हुए गाता है। घुरैण (स्त्री कलाकार) हाथों में कंसी बजाते हुए गाने में साथ देती है। ऐंचलघी लोक गाथा और मुसाधा लोक गाथा नुआलघ उत्सव में गाई जाती हैं। नुआलघ यानि भगवान् शिव के निमित्त पूजा है, जिसे विशेष पारंपरिक लोकाचार विधि से किया जाता है। चार लोक गायक अपने लोक वाद्य यंत्रों के साथ गाते हैं। पहले दो लोक कलाकार अपने ढोलक और नगाड़ा की ताल पर पहली कड़ी गाते हैं तो दूसरे दो व्यक्ति (लोक कलाकार) जिनमें एक के पास घड़े (कुंभ) पर उलटी कांसे की थाली रखी होती है, उसे लगभग एक फुट लंबी बारीक लकड़ी की छड़ी से बजाते हुए प्रथम गाई हुई कड़ी को दोहराते हैं। मुसाधा लोक गायन का आयोजन नई फसल होने पर लोक गायक घर–घर जाकर अपना गायन सुना कर भी नई फसल बधाई के रूप में प्राप्त करते हैं। एक प्रसंग यहां उदृधत है जिसमें महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ को

समझाते हुए कहते हैं कि जो तेरे सात कुल (वंश) जलमग्न हुए हैं, उनके उद्धार के लिए तुम कौशल्या से विवाह कर लो। राम का अवतार होगा, तेरे वंशजों को स्वर्ग प्राप्ति होगी, राक्षसों का संहार होगा, तेरे पाप भी समाप्त हो जाएंगे। प्रस्तुत है लोकगाथा का मूल अंश :–

'सत्त कुल तेरे जला विच डुब्बे हो, ते सेईयो कुल तरण तेरे स्वर्गा !!
सत्त कुल तेरे३ते विश्वामित्र लगा वो समझाणा हो, ते सुणे दस्सरथा तू गल मेरी हो!!
ते विश्वामित्र३ते गढ़लंका वसदा कोई राजा हो, ता अठकौंसल राजा वो लोढा हो!!
ता तिस राजे दे घरे कोई कन्या हो, तिस कन्या दा नां कुसल्लेया हो!!
ता तिस कन्या जो राजा तू वियाल्ला हो, ता तां हूणे घरे राम अवतारा हो!!
तां तेरे सत्त कुल वो तरी जाणे हो, ते तेरी जुद्देया था होणा उजाला हो!!
ते तेरी देही दे पाप घटी जाणे हो, ते राजा असूर संघार होई जाणे हो!!

राजा दशरथ का कौशल्या के साथ विवाह उसके पश्चात् रानी कैकेई तथा सुमित्रा के साथ विवाह होना परन्तु राजा दशरथ के औलाद न होना राजा दशरथ द्वारा यज्ञ करवाना तथा अग्निदेव का प्रकट होकर पुत्रप्राप्ति का वरदान देना उपरोक्त पंक्तियों में दर्शाया गया है :–

इक दिन कैसे बरतोरे हां जी वो महाराजा हरिगोविन्द मेरेया दशरथ राजा,
रानी कौशल्या बिहाई हां जी और रानी कैकेई और सुमित्रा विहाई हां जी
महाराज दशरथ दे घरे पुत्र न भुंदे थिए फिरी उनी महाराज पुत्र रे तांई यक्ष लाऊ थु
फिरी दशरथ दे घरे अग्नि देव प्रकट हुए हां जी..

भगवान् राम का अवतार उसके पश्चात् लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का अवतार किस प्रकार से हुआ इसे प्रस्तुत **प्रसंग में बताया गया है :–**

मेरे रामा लैणा तेरा नाम हां जी। अग्निदेव जी प्रगट हुए जी हां जी ।।
उनी थाल खीर थिया लेऊरा हां जी हरि भजो राम भजो हो जी ।।
हरि मेरेया रामा वो फिरी राम। अवतार जे हुआ हाँ रामा हो जी ।।
फिरी लक्ष्मण भरत और शत्रुघना। रा अवतार जे हुआ हाँ रामा हो जी ।।

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन का जन्म तथा ऋषि विश्वमित्र के साथ जाने का वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में देखा जा सकता है –

राम लक्ष्मण शत्रु भरत जन्मे राजे भरत अवतारे जे लेया हां जी
विश्वामित्र लेई करी चले हो सबो मेरेयो हां जी

भगवान् राम जब सीता स्वयंबर में जाते हैं तो बड़े–बड़े नरेश उस शिव धनुष को उठाने के लिए पधारे हैं जहां भगवान् राम ने शिव धनुष को उठाया ही नहीं बल्कि तोड़ डाला इस प्रकार राम और सीता का विवाह हुआ। प्रस्तुत प्रसंग में देखा जा सकता है :–

धन परमात्मा जाणे नरैणा मेरेया हो हां जी हो जी
मेरे रामा जनक पुरी आए नरैणा मेरेया हो हां जी
नरैणा मेरेया हो हां जी
सुबाहु ताड़का रा वध करूरा जग संवारे
परमेश्वर मेरे जान धरत फुल बरसारे मेंरे
जुध्या रे रामा हो जी
गुजरे दिन तेरे शुभ छूरै मेरे राम बड़े–बड़े नरेश छूरै मेरे राम
जनकपुरी धनुष उठाए मेरे राम

भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों भाइयों का विवाह हो रहा है भगवान् राम सीता के साथ विवाह करके पहुंच रहे हैं :–

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न विवाह भला हो राजेया रामा हो
राम लक्ष्मण शत्रुघन भरत हो राजेया रामा हो
चारा भाई रे ब्याह लगूरे मेरेया राजेया रामा हो
राम मेरे सीता ब्याही करी पुजदै हो राजेया रामा हो
हो मेरया राजेया रामा हो

प्रस्तुत चम्बा क्षेत्र की लोकगाथा में मुसाधा के माध्यम से पंचवटी का संक्षिप्त वृत्तांत है। एक दिन पंचवटी के जंगल में राम, लक्ष्मण और सीता संग शिकार खेलने के लिए गए हुए थे। विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के छांव तले बैठ गए। उस वृक्ष पर बहुत सी चिड़ियों के बच्चों ने शोर मचाया हुआ था। लक्ष्मण बहुत क्रोधित हुए और अपने धनुष–बाण से उन्हें मारने लगे। राम ने लक्ष्मण को समझाया कि यह जंगल के पंछी हैं। यह बोलते ही रहते हैं। इन्हें मत मारो, इन्होंने हमारा क्या बिगाड़ा है। अतः तुम शांत हो जाओ और आराम करो। परंतु लक्ष्मण नहीं माना और अपने धनुष बाण से चिड़ियों के बच्चों सहित घोंसला नीचे जमीन पर गिरा दिया। बच्चे सब मर गए। प्रस्तुत लोकगाथा का थोड़ा सा मूल अंश :–

'इक्क ता रामा कैसे वरतोरे, राम जाणे हो, महाराज जाते हो जी३
राम लछमण ते सीता अनार, राम जाते हो, महाराज जाते हो जी३
पंचवटी मझ डेरे थिए लगोरे, राम जाणे महाराज जाणे हो जी३
कथा के रूप में स्थानीय भाषा में, जी साहब जी

इक्क दिन कदेया वरतोरा जी, भगुआन राम लछमण ते सीता माता ने पंजवटी मझ डेरा लाई थिए वठोरे ते चोदाह साले था वणवास दिए गुजारणा लगोरे फिर अग्गे कै हुन्दा सुणा महाराज जी!

लोकगाथा के पदों में इतिहास ऐंचलघी लोकगाथा के सात पदों में राजा दशरथ के सात वंशों के जलमग्न होने तथा विश्वामित्र द्वारा उनके उद्धार के लिए कौशल्या से विवाह करने का प्रस्ताव ऐतिहासिक है। विष्णु के

सप्तम अवतार की पृष्ठभूमि गाथा के इन सात पदों में निबद्ध है। रामायण के इस ऐतिहासिक आख्यान को गाथाकार ने अपनी बोली में निबद्ध किया है। ऐंचलघी गायन वस्तुतः श्रुति परंपरा से चला करता है। यह गायन एक विशिष्ट परंपरा में चला करता है। रामायण के कथानक और उपाख्यान पृथक–पृथक रूप से इस गायन परंपरा में प्रस्तुत किए जाते हैं। मुसाधा गायन में पहले गाथा प्रस्तुत की जाती है, तत्पश्चात् उसके कथानक को कथा शैली में प्रस्तुत किया जाता है।

मुसाधा के पदों और कथा प्रसंगों में भी रामायण के राम, लक्ष्मण, सीता, दशरथ और अन्य ऐतिहासिक चरित्र निबद्ध हैं। ऐंचलघी गाथाकार और मुसाधा गाथाकार रामायण के कथानकों, आख्यानों और युगयुगीन कालक्रमिक ऐतिहासिक संदर्भों को मधुर शैली में आज भी प्रस्तुत करते हैं। यही ऐंचलघी और मुसाधा गाथाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। परंतु धीरे–धीरे विशुद्ध परंपरा विलुप्त होती जा रही है। इसका संरक्षण और संवर्धन करना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक साहित्य का क्षेत्र बेहद विस्तृत है। लोक साहित्य का मानव जाति से अटूट संबंध रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ लोक साहित्य का भी विकास होता है। चम्बा के लोक साहित्य में भी राम कथा के स्वरूप को देखा जा सकता है। साहित्य की भांति ही लोक साहित्य में भी रामायण का अपना विशेष महत्त्व है जो सामान्य लोगों के हृदय में समाहित रहता है जिसे लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोककथाओं के माध्यम से गाया व सुनाया जाता है। इसमें आंचलिक मिट्टी की खुशबू आती है और निजत्व प्रस्फुटित होता है साथ–साथ इसमें जनमानस का अपनत्व जुड़ा रहता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ० सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान
2. डॉ० देवेन्द्र सत्यर्थी, बेला फूले आधी रात
3. डॉ० कर्म सिंह, हिमाचल प्रदेश लोक रामायण
4. हरिचंद पराशर, पहाड़ी लोकरामायण
5. डॉ० विद्याचंद ठाकुर, पहाड़ी रामायण के लोक प्रसंग

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 39-43

"माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति रूचि एवं अभिवृत्ति का अध्ययन"

डॉ. बबीता सोलंकी, (सहायक आचार्य)
जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर शिक्षक–प्रशिक्षण
महाविद्यालय, सकतपुरा, कोटा

प्रस्तावना –

व्यक्ति के विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करती है। शिक्षा का पहला कदम भाषा ज्ञान है। यह भाषा ज्ञान, सरल, सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया से होता है, भाषा ज्ञान की प्राप्ति के क्रम में व्यक्ति सर्वप्रथम अपनी मातृभाषा का ज्ञान प्राप्त करता है। भाषा सम्प्रेषण का प्रमुख माध्यम है – भाषा। एक समुदाय क्षेत्र और देश के लोगों के मध्य एकता, आत्मीयता और निकटता लाने का कार्य करती है – भाषा। इस रूप में भाषा का राष्ट्रीय महत्व है।

भाषा एक ऐसा माध्यम है, जो समाज या राष्ट्र के रंगमंच पर होने वाले विविध क्रिया–कलापों, घात–प्रतिघात तथा घटनाओं से उद्वेलित मानव मन के उद्‌गारों को वाणी प्रदान करता है। भाषा हमारी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के बिना विषय प्रकटीकरण करना सम्भव नहीं है। हमारे शिक्षा क्रम में भाषा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

मूलभूत शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कई तत्व होते हैं परन्तु कक्षा में समझने तथा समझाने के लिए भाषा की प्रमुख भूमिका होती है न केवल कक्षा में बल्कि परिवार तथा समाज में भी सम्पर्क का माध्यम भाषा ही होती है। ऐसी भाषा में शिक्षा देना भारत जैसे देश में जहाँ शिक्षक प्रशिक्षण का स्तर कमजोर हो, स्कूल में सुविधाओं की कमी हो, पाठ्यक्रम अपर्याप्त हो, अधिकांश लोग गाँवों में निवास करते हो, निर्धनता व ड्रापआउट दर अधिक हो, स्त्री शिक्षा की कमी हो, शिक्षा में विषमता हो, तब तो मातृभाषा के अतिरिक्त किसी विदेशी भाषा में शिक्षा देना सार्थक नहीं है।

मातृभाषा में शिक्षित छात्र विदेशी भाषा में शिक्षित छात्र से अधिक भावनापूर्ण एवं संवेदनशील होता है। आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, तथा स्वयं की पहचान, मातृभाषा में शिक्षा के द्वारा अधिक विकसित होती है। प्रेरकता तथा सृजनशीलता भी विदेशी भाषा की तुलना में मातृभाषा में पढ़ने पर अधिक ग्रहण की जा सकती है।

मातृभाषा से अभिप्राय है कि बालक विद्यालय में प्रवेश के पूर्व जिस भाषा में अपनी अभिव्यक्ति, घर, परिवार, पड़ौस, परिचितों से करता है, वह उसकी ''मातृभाषा'' होती है। भारत के प्रत्येक राज्य में उसकी अपनी मातृभाषा होती है। जिसे राज्य के नागरिक बोलकर अपनी भावना व्यक्त करते है। बालक घर में जो शब्द काम में लेता है, विद्यालय प्रवेश के बाद परिष्कृत शब्द या भाषा सीखने बोलने लगता है। मातृभाषा के रूप में बालक अक्षर बोध से शिक्षा प्रारम्भ करता है। इस तरह बालक का सहज और स्वाभाविक विकास मातृभाषा के वातावरण में ही होता है। बालक के लिए मातृभाषा में बोलना, पढ़ना, सहज होता है।

एनसीईआरटी द्वारा विकसित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में मातृभाषा शिक्षण पर बल दिया गया साथ ही मातृभाषा को परिभाषित करते हुए कहा – ''इसके अन्तर्गत घर की भाषाओं, बड़े कुनबे की भाषा, आस–पड़ौस की भाषा इत्यादि आ जाती है जिन्हें बच्चे स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण में ग्रहण कर लेते है।''

14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा के 324 सदस्यों में से 312 ने हिन्दी के पक्ष में मतदान करके हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा का महत्व भली–भांति उजागर हो जाता है। मातृभाषा व्यक्ति को अपनी धरती से जोड़ती है तो राष्ट्रभाषा विभिन्न प्रदेशों को एकता के सूत्र में बांधकर राष्ट्र को सुदृढ़ और ओजस्वी बनाती है।

भाषा हमारी मां है। वह हमारे सांस्कृतिक शरीर की रचना करती है। उसका पोषण करती है, उसे अनुप्राणित करती है। हिन्दी भारतीय भाषाओं की सखी और सहेली है। संस्कृत की पुत्री है। स्वभाषा के बिना जनता का विकास सम्भव नहीं हैं। चीनियों ने पिछले कई वर्षों में जो भी विकास किया है, उसका मूलमंत्र चीनी भाषा का प्रयोग है जो उनकी मातृभाषा है।

मातृभाषा के द्वारा जो बच्चे पढ़ते हैं, उनमें सांस्कृतिक संरक्षण बना रहता है ऐसा बहुत से विद्वान, मनोवैज्ञानिक देश की स्वतंत्रता के नेता लोगों ने कहा है।

बालक मातृभाषा में पढ़ना प्रारम्भ करता है, तब उसे शिक्षण बोझ नहीं लगता है। सम्पूर्ण देश के शिक्षा शास्त्री तथा भाषा विशेषज्ञों का कहना है कि प्राथमिक शिक्षण मातृभाषा में ही होना चाहिये। मातृभाषा की बुनियाद मजबूत होगी तो किसी भी भाषा का ज्ञान सहजता से लिया जा सकता है।

मातृभाषा में शिक्षण के संवर्द्धन हेतु यूनेस्कों की साधारण सभा ने नवम्बर 1999 में 21 फरवरी को ''अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस'' के रूप में मनाने का निश्चय किया है। यूनेस्को का मानना है कि भाषा दृश्य तथा अदृश्य धरोहर को विकसित करने तथा संरक्षण करने का महत्वपूर्ण उपकरण है। मातृभाषा के शिक्षण से न केवल भाषायी विविधता तथा बहुभाषायीं शिक्षा का संवर्द्धन होगा बल्कि वैश्विक स्तर पर भाषायीं व सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति जागरूकता बढ़ेगी तथा विभिन्न संस्कृतियों के बीच समझ, सहनशीलता, एकात्मकता तथा विचार विमर्श भी बढ़ेगा।

हमारे देश की संविधान की धारा ''350 ए'' में प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा में अध्ययन को संवैधानिक

दर्जा दिया गया है। दुनिया के सभी विकसित देश रूस, जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में दे रहे है।

ए.पी. जे. अब्दुल कलाम ने भी कहा है, ''मैं आज वैज्ञानिक बन सका हूँ, क्योंकि मैं मेरी मातृभाषा में पढ़ा हूँ।''

मातृभाषा बालक की बीज भाषा है। बालक का विकास उसके स्वाभाविक परिवेश में अच्छे ढंग से होता है। यदि उसका प्रारम्भिक शिक्षण उसकी मातृभाषा में नहीं हुआ तो बालक की स्थिति वैसी होगी जैसे जो बीज अपनी भूमि पर जन्म लेकर बड़े होते है उनके पौधे की जड़े भी गहरी होती है। उनमें पर्यावरण के दबावों की सहन क्षमता भी अधिक होती है। परन्तु जो पेड़–पौधे अपनी बीज भूमि से उखाड़कर लगाये जाते हैं वे आंधी पानी के दबावों को सहन नहीं कर पाते क्योंकि उनकी जड़े गहरी नहीं हो पाती।

अतः विश्व भर में शिक्षण का माध्यम मातृभाषा को स्वीकार किया जाता है। भारत में सभी शिक्षा आयोगों, समितियों, विशेषज्ञों व विद्वानजनों का मत रहा है कि शरीरधारी मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में मातृभाषा की सर्वाधिक प्रभावी भूमिका रहती है।

समस्या का औचित्य –

माध्यमिक कक्षाओं का शिक्षण मातृभाषा में होना चाहिए। परन्तु इन कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति क्या है ? क्या इन्हें मातृभाषा में शिक्षण करना उचित लगता है ? क्या ये विद्यार्थी मातृभाषा को सम्मान की दृष्टि से देखते है ? क्या विद्यार्थी को मातृभाषा में शिक्षण से कठिनाई उत्पन्न होती है? क्या विद्यार्थी हीन भावना से ग्रसित है कि उसे मातृभाषा आती है तो वह गवार है ? विद्यार्थी को मातृभाषा के प्रति लगाव है या नहीं। मातृभाषा में शिक्षण रूचिकर लगता है क्या ? अगर हाँ तो क्यों ? अगर नहीं तो क्या कारण है ? मातृभाषा शिक्षा का माध्यम हो या नहीं इसके प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति क्या है ? क्या केवल मातृभाषा का ज्ञान होना ही उनकी तरक्की में बाधक है ? क्या अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने को मजबूर करते है ? इस प्रकार इन सभी प्रश्नों के उत्तर जानने तथा छात्रों की मातृभाषा के प्रति अभिवृत्ति को जानने हेतु शोधार्थी द्वारा इस शोध समस्या का चयन किया गया है।

माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत समस्त विद्यार्थियों का शिक्षण मातृभाषा में होना चाहिए। परन्तु क्या आज सभी विद्यालयों में मातृभाषा को प्राथमिकता प्राप्त हो पायी है? वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मातृभाषा की क्या उपयोगिता है ? बालक की प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए या नहीं ? बालक मातृभाषा द्वारा शिक्षण में रूचि ले रहे है या नहीं ? मातृभाषा हमारे संस्कार एवं धर्म, आचरण, मान्यताओं को किस प्रकार विकसित करती है ? मातृभाषा में शिक्षण किस प्रकार होना चाहिए कि यह विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। मातृभाषा में शिक्षण कब तक होना चाहिए तथा इसके बाद कौनसी अन्य भाषा का शिक्षण होना चाहिए ? मातृभाषा में शिक्षण बालकों के मनोभावों के अनुरूप है या नहीं ? मातृभाषा में शिक्षण क्यों होना चाहिए ? सरकारी व गैर सरकारी सभी विद्यालयों के पाठ्यक्रम में मातृभाषा का स्थान होना आवश्यक है या नहीं? क्यों सभी को चाहे वह ग्रामीण

हो या शहरी मातृभाषा में शिक्षण करना चाहिए ?

इस शोध से विद्यार्थी को पाठ्यक्रम में सम्मिलित हिन्दी विषय के उद्देश्यों व हिन्दी की महत्ता समझने में मदद मिलेगी। छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में मार्गदर्शन प्राप्त होगा। हिन्दी विषय के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को देखते हुए इस समस्या का चयन किया गया है ताकि विद्यार्थियों में हिन्दी भाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सके तथा विद्यार्थियों में हिन्दी भाषा के अध्ययन के लिए रूचि जाग्रत की जा सकें।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति रूचि व अभिरूचि का अध्ययन।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति रूचि एवं अभिवृत्ति का अध्ययन।

शोध परिकल्पना –

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति रूचि व अभिवृत्ति में कोई कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

न्यादर्श –

विश्लेषण एवं व्याख्या –

परिकल्पना माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति रूचि व अभिवृत्ति में कोई कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी संख्या 1

माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति रूचि व अभिवृत्ति का मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन में सार्थक अन्तर

समूह	N	मध्यमान (M)	प्रामाणिक विचलन (S.D.)	t मान	सार्थकता स्तर	निष्कर्ष

सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	40	40.87	6.93	0.74	0.05	स्वीकृत
निजी विद्यालय के विद्यार्थी	40	42.55	6.49			

स्वतंत्रता कोटि का मान

$df = N_1 + N_2 - 2 = 40 + 40 - 2 = 78$

$df = 78$ पर सार्थकता स्तर 0.05 पर टी का सार्थक मान $= 1.96$

विश्लेषण एवं व्याख्या –

यह स्पष्ट होता है कि सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों में मातृभाषा के प्रति रूचि का मध्यमान क्रमशः 40.87 व 42.55 प्राप्त हुआ तथा मानक विचलन 6.93 व 6.49 प्राप्त हुआ। सार्थकता स्तर 0.05 पर स्वतंत्रता की कोटि (df) 78 पर अध्ययन किया गया। इनसे प्राप्त टी मूल्य 0.74 है, जो कि 0. 05 सार्थकता स्तर पर सारणीयन मान 1.96 से कम है। शून्य परिकल्पना माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की मातृभाषा के प्रति रूचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है को स्वीकृत किया जाता है।

निष्कर्ष एवं विवेचना –

मातृभाषा के प्रति रूचि एवं अभिवृत्ति का सरकारी एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है अर्थात दोनों प्रकार के विद्यार्थियों में रूचियाँ समान स्तर पर पाई जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कपूर, अरुण (2009), बदलते विद्यालय तेजस्वी बच्चे हिन्दी पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, जे. 40 जोरबाग लेन, नयी दिल्ली 110003
2. पाठक, राजेन्द्र, हिन्दी साहित्य के नए इतिहास लेखन की जरूरत और सम्भावनाएँ, ईपीजी. पाठशाला

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 44-47

मधुकर सिंह के उपन्यासों में दलित विमर्श

भीम सिंह, पीएच.डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला–171005

आज जब पूरे देश में दलित विमर्श और दलित आन्दोलन की धूम है, तो हमें कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार मधुकर सिंह याद आते हैं। मधुकर सिंह ऐसे रचनाकार रहे है, जिन्होंने समाज के हाशिये के लोगों को अपनी रचनाओं का प्रमुख पात्र बनाया और उनकी सामाजिक स्थिति से हमें अवगत करवाया। मधुकर सिंह ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण समाज को रेखांकित करते हुए दलितों की स्थिति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है मधुकर सिंह ने अपने उपन्यासों में दलित, शोषित, पीड़ित वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है। मधुकर सिंह ने अपने उपन्यासों में दलित शोषण के विविध पहलुओं को बड़ी गहराई से व्यक्त किया है। दलितों का जाति आधारित शोषण किया जाता है। अतः निम्नवर्ग अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है। मधुकर सिंह ने वर्ग संघर्ष द्वारा दलितों मे आ रही चेतना की ओर भी संकेत किया है। मधुकर सिंह ने दलित चेतना के विविध आयामों को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने पात्रों के द्वारा जातिविहीन समाज की कल्पना करके, रूढ़ि, परंपराओं को त्यागकर राजनीति में समानता स्थापित करने तथा ग्रामीणों में चेतना जगाकर दलितों की जागृति का वर्णन अपने साहित्य में किया है।

वर्तमान समय में शहरों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। लोग गाँव को छोड़कर शहरों की तरफ जा रहे हैं। लेकिन दलित वर्ग के अधिकतर लोग अभी भी गाँव में रहते है। शहरों में जाति–पाति का भेदभाव इतना नहीं है, जितना कि गाँव में है। इसीलिए ग्रामीण समाज में दलित चेतना का जागृत होना अति आवश्यक है। यह जागृति केवल शिक्षा के माध्यम से आ सकती है। ग्रामीण दलित समाज में सदियों से शिक्षा का अभाव रहा है। 'महात्मा ज्योतिबाफूले' जैसे महान समाज सुधारक ने सबसे पहले दलितों की शिक्षा के लिए प्रयास किया। इसके पश्चात 'डॉ॰ भीमराव अंबेडकर' ने इस बारे में व्यापक कार्य किया इन महान समाज सुधारकों के संघर्षों के परिणाम स्वरूप ग्रामीण दलित समाज के लोगों को शिक्षा प्राप्त हो सकी।

मधुकर सिंह के उपन्यास 'सोनभद्र की राधा' का नायक गोबिन एक दलित युवक है। उसके पिता गाँव के सामंत नगेसर मिसिर के घर हलवाहे का काम करते है, पर वह अपने बेटे गोबिन को पढ़ाना चाहता है ताकि

गोबिन पढ़ लिखकर कोई बड़ा अफसर बन सके। गोबिन पढ़ने में बहुत अच्छा है। उसे कविता लिखने का भी शौक है। वह अपने नाटक तथा कविताओं के द्वारा लोगों में स्वाभिमान की भावना जगाता है। इस स्वाभिमान की भावना को गोबिन द्वारा लिखित 'कविता' में देखा जा सकता है।

''आवो,
जो बाज हमारी चैन छीनकर
आकाश में भाग रहे हैं –
हम उनका पीछा करें
हमारे पास लड़ाई के लिए क्या है।
आवो, सहस्रो, लाखों हाथों को एक में जोड़ दो,
और सीना तानकर जातियों के सामने खड़े हो जाओ
मेरे दोस्तों,
आवो''[1]

इस प्रकार हम देखते है कि गोबिन समाज में व्याप्त जाति–पाति व भेदभाव के खिलाफ लोगों को एकजुट होने के लिए आग्रह करता है। गोबिन अपने समाज के प्रति जागरूक है। वह इस बात को भली–भान्ति जानता है कि दलित समाज के लोगों को एकजुट किए बिना इस जातिवाद के खिलाफ नहीं लड़ा जा सकता है।

मधुकर सिंह के उपन्यासों में दलित समाज का जो वर्णन हुआ है वह बहुत ही स्पष्ट है। उसमें कहीं अनुभूति की सच्चाई झलकती है, तो कहीं परिवर्तन के बीज दिखाई पड़ते है। इसका मूल कारण यह है कि मधुकर सिंह स्वयं दलित परिवार से संबंध रखते थे। संचेतन कहानी आंदोलन के प्रवर्तक महीप सिंह इस संदर्भ में लिखते है की ''दलित साहित्य को सही पहचान दलित वर्ग में जन्मे लेखकों ने ही दी। उन्होंने इस पीड़ा को अपनी हथेली पर रखे हुए अंगारे की तरह महसूस किया।

इस प्रकार के लेखन ने इस वर्ग द्वारा भोगे हुए उपेक्षा, अपमान और व्यथा को तो अभिव्यक्ति दी ही है बल्कि उस समाज व्यवस्था की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जिसमें एक पूरा का पूरा वर्ग इन स्थितियों को झेलने के लिए मजबूर कर दिया गया है।''[2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात दलित समाज में भी बहुत बदलाव दिखाई देता है। औद्योगिकीकरण और शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार का दलित समाज पर भी असर पड़ा और उनमें अपने पारिवारिक और सामाजिक स्तर को सुधारने की चेतना जाग उठी। पहले दलित समाज के लोग अपने गाँव व कस्बों में अपना जीवन व्यतीत करते थे परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वह अपनी आजीविका कमाने के लिए शहर में आकर बसने लगे। शहर में गाँव की तरह बंदिशे न होने के कारण वे हर क्षेत्र में नौकरी करते हैं। मधुकर सिंह के उपन्यास 'सबसे बड़ा छल' का प्रमुख पात्र देवनाथ सिंह भी नौकरी करने के लिए गाँव से कोलकत्ता शहर चला जाता है। इसका वर्णन करते हुए मधुकर सिंह कहते है ''कोलकत्ता में वह हजारों मजदूरों का एकमात्र नेता था, जिससे सामान्य जनता से लेकर

मंत्री तक भी भय खाते थे''[3] इस कथन से स्पष्ट है कि दलित समाज विभिन्न प्रकार के व्यवसाय अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने में सफल साबित हो रहे है। गाँव में जात–पात का भेदभाव होने के साथ–साथ अर्थोपार्जन के साधन न होने के कारण दलित समाज के लोगों को अपनी जीविका चलाने के लिए विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है। इसी कारण लोग गाँव से शहरों की तरफ पलायन कर रहे है। मधुकर सिंह के उपन्यास 'सोनभद्र की राधा' में गोबिन गाँव की इस भेदभाव एवं घुटनपूर्ण जिंदगी से ऊबकर शहर चला आता है। वह अपने दोस्त से कहता है कि ''हम शहर चलकर रिक्शा खीचेंगे, शांति से दो रोटी मिल जाएगी। कोई वहाँ छोटा–बड़ा समझने वाला तो कहीं नहीं मिलेगा।''[4]

आजादी से पहले भारतीय दलित समाज की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों को केवल निम्नस्तर के कार्य करने पड़ते थे। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस वर्ग की स्थिति में भी थोड़ा–बहुत बदलाब आया है। आज दलित वर्ग के लोग अपने पारंपरिक धंधों को छोड़कर शहरों की तरफ निकले है। आधुनिक युग में औद्योगिकीकरण और शिक्षा के बढ़ते महत्त्व के कारण शहरों में रोजगार के नए–नए साधन उपलब्ध हो रहे है। कारखानों में तथा सरकारी नौकरियों में अपनी–अपनी काबिलियत के आध ाार पर रोजगार का लाभ समाज के दलित वर्ग ने बड़ी मात्रा में लिया है। दलितों की इस बदलती हुई आर्थिक स्थिति का चित्रण मधुकर सिंह के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

'सोनभद्र की राधा' उपन्यास का नायक गोबिन अपने भाईयों में एक नयी सोच पैदा करने के लिए नाटक में हिस्सा लेते हुए कहता है कि ''हम लोग अबतक जो कुछ भी करते रहे हैं, उससे जिंदगी का कोई मतलब नहीं। हम लोग जिंदगी के बहुत करीब, बहुत समांतर ऐसे नाटक गाँव–गाँव खेलेंगे, जिसे देखकर लोगों के भीतर से आपसी वैमनस्य पिघल जाए और लोग अधिकार की लड़ाई में एकजुट होकर आगे बढ़े''[5]

इस प्रकार हम देखते है कि आज पूरा दलित समाज आपसी मतभेदों को भूलकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए एकजुट हो रहा है। गोबिन अपने सिरीपुर के गाँववालों को एकजुट होकर खेती करने का प्रोत्साहन देता है। गोबिन का मानना है कि गाँव की जमीन पर सभी गाँव वालों का समान रूप से हक है। गोबिन गाँव के लोगों को एकजुट करते हुए कहता है कि ''भाई रे! आज हमारा नया दिन है। आज से हम एक जाति, एक आदमी है। आज हम भेद की सारी दीवारें तोड़कर नई जमीन के चारों ओर खड़े होकर संकल्प लेते है– हम एक समाज और एक परिवार है''[6]।

गोबिन जैसे पढ़े–लिखे युवा आज अपने समाज के लोगों को जागरूक कर उनमें सामाजिक चेतना विकसित कर रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दलितों को कानून की दृष्टि से बराबर का अधिकार दिया गया है। आजाद भारत में एक अमीर व्यक्ति के मत का मूल्य भी उतना ही है, जितना कि एक निर्धन व्यक्ति के मत का मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विधानसभाओं व लोकसभा में दलित वर्ग के लिए कुछ स्थान आरक्षित किये गये हैं ताकि वे अपने समाज के लोगों की समस्याएं वहाँ पर रख सके। दलित समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने के कारण आज वे राजनीति के दांव–पेंच समझ रहे है। राजनेताओं के लोकलुभावन वादों से

वे अच्छी तरह वाकिफ हैं। इसी कारण वे किसी भी नेता के बहकावे में न आकर तटस्थ रूप से अपना मतदान करते हैं।

सारांश रूप मे कहा जा सकता है कि मधुकर सिंह हिन्दी के दलित साहित्य परम्परा के पहले समर्थ लेखक है। दलित अनुभूति और दलित चेतना को पूरी शक्ति के साथ इन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इनके उपन्यासों में वेदना और विद्रोह की जो अभिव्यक्ति हुई है वह हमें साहित्यिक न लगकर वास्तविक प्रतीत होती है। मधुकर सिंह के लेखन ने आने वाले दलित लेखकों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। भविष्य में जब दलित संघर्ष का इतिहास लिखा जाएगा, तो मधुकर सिंह के उपन्यासों की चर्चा उसमें जरूर की जाएगी, क्योंकि मधुकर सिंह के उपन्यासों के पन्नों–पन्नों पर दलित चेतना की वेदना और विद्रोह की अभिव्यक्ति हुई है। यही दलित चेतना मधुकर सिंह के उपन्यासों की उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 77
2. सुभाष सेलिया, आजकल : अगस्त 2001, पृ० 31
3. मधुकर सिंह, सबसे बड़ा छल, पृ० 10
4. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 27
5. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 93
6. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 20

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 48-54

जनसंचार माध्यमों और पत्रकारिता में हिंदी की प्रयोजनीयता

–डॉ. बिक्रम कुमार साव, असिस्टेंट प्रोफेसर
बैरकपुर राष्ट्रगुरु सुरेंद्रनाथ कॉलेज

भारत जैसे बहुभाषाभाषी राष्ट्र में हिंदी भाषा की उपयोगिता और भूमिका पर तो कोई प्रश्न चिह्न ही नहीं लग सकता। स्वाधीनता संग्राम से लेकर आज के विकासशील भारत के प्रगति के हर क्षेत्र में इस भाषा की अहम भूमिका रही है और आगे भी रहेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। आज का युग वैश्विक स्तर पर संचार–क्रांति का युग है। आज भारत में इस क्रांति को गति देने का काम इस भाषा ने किया है। जिस प्रकार हिंदी के विकास में पत्रकारिता के साथ संचार के अन्य माध्यमों ने अपनी भूमिका अदा की है, उसी प्रकार हिंदी भाषा ने भी इन माध्यमों को प्रभावित किया है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हिंदी की लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है और हिंदी भाषा उच्चारण के स्तर पर अपने पास उन सभी ध्वनि संकेतों के चिह्न रखती है जिससे संप्रेषण के हर एक अभिव्यक्ति को ध्वनित किया जा सके तथा उसे टंकित किया जा सके। इसके कारण हमें अभिव्यक्तियों को संप्रेषित करने में सुविधा होती है। हिंदी एक शक्ति संपन्न भाषा है और साथ ही साथ यह बाजार की भाषा भी है। पत्रकारिता और संचार माध्यमों का संपर्क भी मिशनरी उद्देश्य एवं तकनीकी क्षेत्र के साथ–साथ बाजार से भी है। इसीलिए हिंदी इन माध्यमों के लिए वरदान स्वरूप है।

भारतीय समाज और बाजार हिंदी भाषी बाहुल्य समाज और बाजार है। इसलिए संचार माध्यमों के नवीनतम स्वरूप जो हमारे पास आये हैं उनको अपनी पैठ भारतीय बाजार और समाज में बनाने के लिए हिंदी का सहारा लेना पड़ा। उदाहरण स्वरूप कंप्यूटर को ले लें। अब लाखों लोगों को कंप्यूटर अंग्रेजी भाषा में सिखाई जाय तो कंपनियों को दो तरफा मेहनत करनी पड़ेगी। एक पहले भाषा सिखानी होगी फिर कंप्यूटर का ज्ञान। मगर कंप्यूटर में हिंदी प्रोग्रामिंग करके इसे अधिक से अधिक हिंदी भाषियों को सिखाया जा सकता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी सर्वग्राह्य होने और अपनी लिपि और औचारणिक बनावट के कारण एक महत्वपूर्ण तकनीकि भाषा के रूप में उभरी है।

आंकड़ों में बात करें तो सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 83,70,00,000 थी। इसमें से 33,72,72,114 लोगों की मातृभाषा हिंदी है। जिन लोगों ने उर्दू को अपनी मातृभाषा स्वीकार किया है, उनकी संख्या 4,34,06,932 है। इस तरह, जैसा कि बहुत से विद्वान मानते हैं, यदि उर्दू को हिंदी की ही एक शैली

मान लिया जाय, तो इन लोगों को मिलाकर हिंदी (हिंदू–उर्दू मिश्रित प्रचलित हिंदुस्तानी) को अपनी मातृभाषा मानने वालों की संख्या 38,06,79,046 हो जाती है। इनमें अन्य देशों में रहने वाले भारतीयों तथा पाकिस्तान आदि पड़ोसी देशों के उर्दू भाषियों की गणना नहीं की गई है। जो हिंदी अथवा हिंदुस्तानी को अच्छी तरह समझ लेते हैं और अपनी अभिव्यक्तियों को अभिव्यक्त कर पाते हैं। किसी अन्य भाषा से तुलना करें, विशेषकर अंग्रेजी से तो हम देखेंगे कि पूरी दुनिया में 1991 के समय अंग्रेजी भाषियों की कुल संख्या 33,70,00,000 है।

अब वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात करें तो पाएंगे कि भारत की कुल वर्तमान जनसंख्या 1,38,90,46,200 (एक अरब 38 करोड़) है। इसमें से 43.63 प्रतिशत लोग प्रथम भाषा के रूप में 13.9 प्रतिशत लोग द्वितीय भाषा के रूप में और 2.4 प्रतिशत लोग तृतीय भाषा के रूप में हिंदी बोलते हैं। कुल मिलाकर 57.10 प्रतिशत लोग अर्थात् 69. 2 करोड़ लोग सिर्फ भारत में हिंदी बोलते हैं। उर्दू बोलने वालों की संख्या 6.3 करोड़ है। इस प्रकार हिंदुस्तानी बोलने वालों की संख्या भारत में 75.5 करोड़ है और कामचलाऊ समझने वालों की संख्या जोड़ दी जाय तो यह संख्या भारत में 1 अरब के ऊपर चली जाएगी।

संपूर्ण भारत में हिंदी एक जैसी नहीं बोली जाती है यह हम सभी जानते हैं। अखबारों, पुस्तकों, पत्रिकाओं में छपने वाली हिंदी और दूरसंचार माध्यमों में प्रयुक्त होनेवाली हिंदी आम बोलचाल की हिंदी से अलग है। पर है दोनों ही हिंदी। दरअसल मानक भाषा हिंदी बोलचाल की आम हिंदी से अलग है। मानक हिंदी या टकसाली हिंदी, हिंदी का वह रूप है जो हिंदी की एक बोली खड़ीबोली पर आधारित है। ध्यान दीजिएगा आधारित है। खड़ी बोली हिंदी ही मानक हिंदी है, इस भ्रम में लोग न पडें। इसी भ्रम के कारण हिंदी के अन्य बोलियों से विरोध उत्पन्न हो रहा है। हिंदी की अन्य बोलियाँ सुनने–बोलने में मानक हिंदी से अलग होने के बावजूद ऐतिहासिक–सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से एक ही भाषिक इकाई के साथ जुड़े हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों के हिंदी भाषी लोग अपनी–अपनी बोलियों–उपभाषाओं को अपनी निजता के साथ अपनाते हुए भी, हिंदी भाषा ही मानते हैं। सच पूछा जाए तो यह हिंदी की शक्ति है। उसकी समृद्धि में इन बोलियों का बहुत बड़ा योगदान है। साथ ही उर्दू और हिंदुस्तानी को हिंदी के साथ जोड़ लें तो हिंदी का क्षेत्र और भी व्यापक हो जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी–उर्दू–हिंदुस्तानी का व्यवहार करने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में भारत के बाहर भी हैं जिनमें पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, मॉरीशस, फीजी, गयाना, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, म्यांमार, भूटान, बहरीन, कुबैत, ओमान, कतर, साऊदी अरब गणराज्य, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका आदि हैं। इस हिसाब से आनेवाले समय में हिंदी अंग्रेजी के साथ–साथ विश्व की अन्य भाषाओं को पीछे छोड़ बहुत आगे निकल जाएगी।

हिंदी आनेवाले वर्षों में विश्व भाषा की भूमिका में हम सबको दिखाई देगी वो भी सिर्फ अपनी वैज्ञानिकता और संवेदनात्मकता के कारण। अपनी पुस्तक 'हिंदी पत्रकारिता – संवाद और विमर्श' में कैलाश नाथ पांडेय लिखते हैं –''अपनी विलक्षण रचनात्मकता संलग्नता की अकूत ताकत और औघड अंदाज के कारण हिंदी आज पूरे विश्वं की मुकत रूप से पुरलुफ्त सैर कर रही है।''[1] इस भाषा में कहीं भी चीनी मरेडियन की तरह संख्यात्मक अभियोग्यता या फिर अंग्रेजी की तरह साम्राज्यवादी अभियोग्यता नहीं है। यह लोगों को जोड़ने वाली भाषा है। इसकी भाषिक इकाई संवेदनात्मकता के स्तर पर जाकर जुड़ती है। कैलाश जी लिखते हैं –"दो व्यक्तियों के बीच संवाद स्थाापन में भाषा महत्वपूर्ण 'टूल' या औजार (Implement) का काम करती है। इस दृष्टि से हिंदी बेहद

उपयुक्तं भाषा सिद्ध हुई है। ऐसी रवा–दवाँ जबान कम मिलती है अभिव्यिक्त अंकन में पूर्ण रूप से सक्षम–समर्थ होने के कारण पूरी धरती पर आज हिंदी का लोकतंत्र पहले की तुलना में काफी व्यापक हुआ है। हिंदी की सृजनशीलता का वृत्त सम्प्रति बहुत सारे देशों में अपनी परिधियों का विस्तार कर रहा है। यह बेहद प्रसन्नता का विषय है। यही इसका सरमाया है। आज विश्व के भाषायी खाके में हिंदी का शिष्टप महत्व है।''[2]

हिंदी के इस व्यापक क्षेत्र पर विचार करने के पीछे मेरा उद्देश्य बस इतना है कि हमें यह समझने में सुविधा रहे कि पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, उपग्रह–चैनलों, इंटरनेट और जनसंचार के विविध माध्यमों में हिंदी का इतना व्यापक प्रयोग क्यों हो रहा है। हिंदी धारावाहिक या हिंदी फिल्में इतनी ज्यादा क्यों बन रही हैं। जन संचार माध्यमों में अधिक से अधिक हिंदी के मनोरंजन प्रधान और सूचना–प्रधान कार्यक्रम दिखाने की होड़ क्यों मची हुई है? हिंदीत्तर भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं की फिल्में हिंदी में डब क्यों की जा रही हैं? विश्व की सभी व्यावसायिक कंपनियाँ अपने उत्पादों का विज्ञापन हिंदी में क्यों दे रही हैं? तो ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन सबके पीछे जो मूल कारण है वह है हिंदी बोलने–समझने वालों की वृहद ग्राहक संख्या। यानी हिंदी क्षेत्र उनके लिए अच्छा बाजार है। जब इतना वृहद दर्शक समूह इन कार्यक्रमों को देखेगा, तो निश्चय ही इन दूर संचार माध्मय वालों की अच्छी कमाई होगी। विज्ञापनों के जरिए व्यावसायिक कंपनियाँ आसानी से इतने बड़े समाज में पहुंच रही हैं जिससे उनके उत्पादों की खपत तेजी से होती है और मुनाफे की दर में बढ़ोत्तरी होती है। अतः यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि हिंदी का प्रयोग इन लोगों की जरूरत बन गई है। इसी जरूरत के कारण आज हिंदी ने संचार के सभी माध्यमों में अपनी मजबूत पकड़ बना ली है। चाहे वह पत्रकारिता का क्षेत्र हो, रेडियो हो, दूरदर्शन हो, सिनेमा हो, विज्ञापन हो या ओटीटी का क्षेत्र हो सर्वत्र हिंदी छाई हुई है।

आज हिंदी अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम बन गई है। फलस्वरूप हिंदी चौनलों की संख्या लगातार बढ़ रही है। बाजार की स्पर्धा के कारण ही सही, अंग्रेजी चैनलों का हिंदी में रूपांतरण हो रहा है। इस समय हिंदी में भी एक लाख से ज्यादा ब्लॉग सक्रिय हैं और अब सैकड़ों पत्र–पत्रिकाएँ इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। कैलाश नाथ पांडेय के शब्दों में, ''सच तो यह है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में व्यापार और वाणिज्य की परिधियां देशों की सीमाएं लांघ रही है। अनेक पत्रिकाएं अब इंटरनेट पर आ चुकी हैं। प्रसिद्ध सर्च इंजन गूगल के प्रमुख एरिक श्मिट का मानना है कि अगले पांच से दस वर्ष के भीतर हिंदी टइंटरनेट पर छा जाएगी। दरअसल, हिंदी की इसी व्यापक उपयोगिता को देखते हुए गूगल के अलावा, माइक्रोसाफ्ट, सन, याहू, आईबीएम और ओटेकल जैसी 'विश्व स्तर की कंपनियां भी अपने मुनाफे की अपार संभावनाओं के चलते हिंदी को अपनाने में पहल कर रही है। वेब के साथ ही मोबाइल सम्प्रेक्षण में एस. एम. एस. माध्यम में भी अब हिंदी का प्रयोग बढ रहा है।''[3]

भाषाएँ संस्कृति की वाहक होती हैं। हम अपनी जातीय संस्कृति की अभिव्यक्तियों को जातीय भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। भारत जैसे बहुमिश्रित संस्कृति संपन्न देश में संचार के विविध माध्यमों पर प्रसारित कार्यक्रमों से भारतीय समाज के बदलते सच को भारत की जातीय भाषा हिंदी के बहाने ही उजागर की जा रही हैं। डिजिटल दुनिया में हिंदी की मांग अंग्रेजी की तुलना में पाँच गुना ज्यादा तेज हुई है। देश में जहाँ हिंदी सामग्री की डिजिटल मीडिया में खपत 94 फीसदी की दर से बढ़ी है, वहीं अंग्रेजी सामग्री की खपत केवल 19 फीसदी की दर से बढ़ रही है। आज स्मार्टफोन के रूप में हर हाथ में एक तकनीकी डिवाइस मौजूद है। सभी

ऑपरेटिंग सिस्टमों में हिंदी में संदेश भेजना, हिंदी में सामग्री को पढ़ना, सुनना, या देखना लगभग उतना ही आसान है जितना अंग्रेजी की सामग्री को। हालांकि कंप्यूटरों पर भी हिंदी का व्यापक प्रयोग हो रहा है और इंटरनेट पर भी, लेकिन मोबाइल ने हिंदी के प्रयोग को अचानक जो गति दे दी है उसकी कल्पना अभी पाँच साल पहले तक किसी ने नहीं की थी। इसके पीछे एक मात्र कारण यह है कि भारतीयों में हिंदी के प्रति रुझान और झुकाव बढ़ा है। भारतीय युवाओं के स्मार्टफोन में औसतन 32 एप होते हैं जिनमें 8–9 हिंदी के होते हैं। भातरीय युवा यूट्यूब पर 93 फीसदी हिंदी वीडियो ही देखते हैं।

फलस्वरूप हिंदी अब व्यावहारिक तौर पर इस देश की संपर्क भाषा बन चुकी है। अब तो भारत के साथ संपर्क रखने के लिए हिंदी की अनिवार्यता विदेशी सरकारें भी महसूस कर रही हैं। इसलिए अमेरिका, चीन, यूरोप तथा अन्य प्रमुख देशों में हिंदी अध्ययन की व्यवस्था की जाने लगी है। विदेशों से बड़ी संख्या में छात्र–छात्राएँ भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों, केंद्रीय हिंदी संस्थान और अन्य शिक्षण संस्थाओं में हिंदी पढ़ने के लिए आते हैं। वर्ष 1960 और 1970 के दशकों में दक्षिण के जिन राज्यों में हिंदी के विरुद्ध आंदोलन चले थे, अब उन राज्यों के प्रतिनिधि हिंदी में बोलने को आतुर दिखाई देते हैं। विविध विश्वविद्यालयों में हिंदी विषय को लेकर बी.ए., एम. ए. करने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ती जा रही है क्योंकि हिंदी ने रोजगार के नये क्षेत्रों के द्वार खोल दिए हैं। मैं जिस क्षेत्र विशेष से हूँ वहाँ पर हिंदी विषय को रोजगार से लगभग 500 से अधिक परिवारों ने जोड़ रखा है। यहाँ तक कि हिंदी से विरोध भाव होने के बावजूद अन्य भारतीय भाषाओं के अनेक परिवार के बच्चों ने हिंदी को तृतीय या द्वितीय भाषा के रूप में चुना है। उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में भी हिंदी एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त करती जा रही है। रेडियो, टीवी, पत्र–पत्रिकाओं में भी हिंदी में विज्ञापन देने की होड़ लगी रहती है। हिंदी के इस देशव्यापी स्वीकार्यता और हिंदी में संपर्क–सूत्र साधने की अद्‌भुत क्षमता ने पत्रिकाओं और संचार माध्यमों को बहुत प्रभावित किया है।

हम सभी जानते हैं कि भारत की संपर्क भाषा और राजभाषा के रूप में हिंदी के विकास की प्रक्रिया संविधान बनने के बहुत पहले स्वतंत्रता आंदोलन के विकास के दौरान ही शुरू हो चुकी थी। सच तो यह है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनने की पहल हिंदी भाषी नेताओं ने नहीं बल्कि महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ, राजगोपालाचारी, सुब्राह्मण्यम भारती, सुभाष चंद्र सरीखे गैर–हिंदी भाषी लोगों की ओर से की गई। गांधी जी देशभर में अपने भाषण हिंदी या हिंदुस्तानी में दिया करते थे। नेताजी ने आजाद हिंदी फौज में विभिन्न राज्यों के सैनिकों को जोड़ने का काम हिंदी के माध्यम से ही किया। आजादी से पहले ही दक्षिण भारत में हिंदी प्रचारिणी सभाएं बनाई गईं। फलस्वरूप हजारों–लाखों हिंदी सेवी देशभक्त तैयार हुए। और यही कारण है कि 1900 से 1950 के मध्य जब मीडिया का विकास हो रहा था तो मीडिया के क्षेत्र में भी हिंदी की पैठ मजबूत हो गई।

पत्रकारिता और दूरसंचार माध्यमों में हिंदी भाषा को अपनाने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है हिंदी का गद्यात्मक स्वरूप। खड़ीबोली का गद्य जो आज हिंदी या अहिंदी क्षेत्र में सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान के शिक्षण, राज व्यवस्था संचालन तथा अंतः प्रांतीय विचार–विनिमय का माध्यम है कुल सौ–सवासौ वर्षों का ही जीवन व्यतीत कर सका है। ब्राजभाषा के उन्नत और समृद्ध माध्यम के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी बिना साम्राज्यवादी रुख अपनाए अनेक राजनीतिक और सामाजिक कारणों से भारत के जातीय संस्कृति की विचार–विनिमय की

भाषा बन गई। पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त विद्वान पदमश्री डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र अपनी पुस्तक 'हिंदी पत्रकारिता' में लिखते हैं। 'संसार के भाषा–वैज्ञनिक इतिहास में यह सम्भवतः पहली घटना है कि इतने अल्पकाल में किसी भाषा का गद्य इस गति से विकसित और परिमार्जित हुआ है। और देखते–ही–देखते वह एक बृहत् क्षेत्र में उसके सभी सारस्वत कार्यों के समर्थ माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित हो गया हो।''[4] खड़ीबोली के इसी गद्य रूप को पत्रकारिता का माध्यम बनाया गया। यह गद्य चूँकि आरंभ में मुसलमानों के विचार–विनिमय या सामान्य राजकीय कार्यों के लिए प्रयुक्त होता था, इस कारण जो समर्थ गद्य दिखलाई भी पड़ता था वह फारसी का भारतीय रूप जैसा ही प्रतीत होता था । तत्कालीन हिंदी पत्रकारों का अब यह कर्तव्य हुआ कि वे इस गद्य को भारतीय सांस्कृतिक जीवन का माध्यम बनाएँ। भारतीय जीवन एक ओर प्राचीन ह्रासशील परंपरा से उबर रहा था दूसरी ओर अँग्रेजी आधिपतय के शिकंजे निरंतर कसते जा रहे थे।

एक ओर यूरोपीय संपर्क के कारण यूरोपीय ज्ञान–विज्ञान का प्रवेश हमारे देश में हो रहा था तो दूसरी ओर अंग्रेजी राज व्यवस्था के तौर–तरीके हमारे जीवन को नई दिशा में बदल रहे थे। इन सभी परिस्थितियों की समुचित अभिव्यक्ति के लिए नये सिरे से निर्मित और विकसित खड़ीबोली के गद्य को तत्कालीन पत्रकारिता के भाषा के रूप में चुना गया जिसका सरल, सहज, सुगठित, सुव्यवस्थित और श्रम अर्जित प्रौढ रूप आज की सभी संचार माध्यमों को प्राप्त है। मौजूदा दौर में संचार माध्यमों के कारण हिंदी भाषा विकृत हो रही है। इसका मूल स्वरूप नष्ट हो रहा है। ऐसी चिंता कुछ लोगों के द्वारा जताई जा रही है। किंतु हमें यह याद रखना होगा कि भाषा एक बहती नदी है और जब इसका अधिक इस्तेमाल होगा तो उसके स्वरूप में कुछ–न–कुछ बदलाव अवश्य आएगा। अकसर यह कहा जाने लगा है कि संचार माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली भाषा हिंदी नहीं हिंग्लिश है। यानी, हिंदी में अंग्रेजी के शब्दों का मिलावट। एक ऐसा मिक्सचर जिसमें हिंदी कम अंग्रेजी ज्यादा। हिंदी के इस नये रूप, शैली या अवतार–हिंग्लिश के प्रयोग के कारणों पर बाद में विचार करते हैं। पहले इसकी प्रकृति को देख लें या समझ लें।

संचार माध्यमों टेलीविजन सबसे सशक्त जन माध्यम है। आभिजात्य वर्ग के मनोरंजन का साधन होने के साथ ही यह जनसामान्य का भी शिक्षा, सूचना एवं मनोरंजन का साधन है। मनोरंजन प्रधान कार्यक्रमों में इस नई हिंदी का प्रयोग विशेष रूप से देखा जा रहा है क्योंकि सूचना और शिक्षा प्रधान कार्यक्रमों में प्रायः ऐसे प्रयोगों की गुंजाइश नहीं होती और वहाँ भाषा के मानक रूप को ही अपनाया जाता है। संचार माध्यम के रूप में हिंदी फिल्मों में पहले से ही हिंदी के क्षेत्रीय रूपों बोलियों–उपभाषाओं का प्रयोग होता चला आ रहा है। निर्देशकों का दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट है कि फिल्म आम आदमी के मनोरंजन के लिए बनाई जाती है, इसलिए इसमें सरल, सहज और बोलचाल की भाषा होनी चाहिए ताकि जनसामान्य उसे समझ सके। जैसे––साहिब पहिचाना। अरे साहिब काहे को पंगा करता!, ए मैन! तुमको बोला ना काहे को खाली पीली भेजा खाता आदि। इधर फिल्मी संवादों में और गीतों में स्थानीयता अथवा क्षेत्रीयता के रंग के अलावा उनमें अंग्रेजी मिश्रण भी धीरे–धीरे बढ़ने लगा है। जैसे सी एटी कैट, कैट माने बिल्ली, आर ए टी रैट माने चूहा, ...एम ए डी मैड, मैड माने पागल, बी ओ बॉय, बॉय माने लड़का ...मतलब इसका तुम कहो तो क्या हुआ, वन टू का फोर फोर टू का वन, माई नेम इज लखन, फस्ट टाइम देखा तुम्हें हम खो हो गया, सेकेण्ड टाइम में लव हो गया। इये इलू–इलू क्या है इये इ्लू इलू आदि।

इधर विज्ञापनों में हिंदी का जैसा रूप मिलता है वह अन्यत्र कम ही देखने को मिलता हो। विज्ञापन की इस हिंदी में भी अंग्रेजी की प्रधानता है। यहाँ हिंग्लिश का बहुत ही रोचक उपयोग किया जाता है। यहाँ भाषा का व्याकरण नहीं, 'अर्थ' तथा 'दृश्य' का व्याकरण देखा जाता है। किस तरह हम अपने ग्राहक को टेलीविजन पर दर्शक को और रेडियो पर श्रोताओं को अपनी ओर खींच सकते हैं? यह दृष्टि रहती है। कुछ उदाहरण देखिए दाँतों में दर्द है। नया टूथ पेस्ट ट्राइ किया। दाँतों के साथ एक्सपेरिमेंट? कभी नहीं! ये दिल मांगे मोर, नो रूखापन, नो चिपचिपाहट आदि।

इस प्रकार जनसंचार माध्यमों में हिंदी के जो विभिन्न रूप, शैलियाँ और प्रकार्य प्रयुक्त हो रही हैं वे निम्न प्रकार हैं –

1) मानक हिंदी – सूचना और शिक्षा प्रधान कार्यक्रमों में प्रयुक्त हिंदी

2) विविध बोलियों से युक्त हिंदी ब्रजी हिंदी, बुंदेली हिंदी, भोजपुरी हिंदी, अवधी हिंदी, छत्तीसगढ़ी हिंदी, राजस्थानी हिंदी।

3) प्रादेशिकता और स्थानीयता के रंग में रंगी हिंदी – बिहारी हिंदी, मुम्बइया हिंदी, मद्रासी हिंदी, मलियाली हिंदी, हैदराबादी हिंदी, कलकतिया हिंदी, गुजराती हिंदी, मारवाड़ी हिंदी, हरियाणवी हिंदी, पंजाबी हिंदी, कनपुरिया हिंदी, लखनवी हिंदी आदि।

4) पहाड़ी हिंदी, 5) परसियन हिंदी, 6) एंग्लोइंडियन हिंदी, 7) प्रशासनिक हिंदी, 8)अंग्रेजी मिश्रित हिंदी (हिंग्लिश), 9) बोलचाल की हिंदी, 10) संपर्क सूत्र साधने वाली हिंदी, 11) अंतर्राष्ट्रीय हिंदी।

अब पहला प्रश्न है हिंग्लिश के प्रचलन का। तो इसके मूल कारण में है कान्वेंटी पीढ़ी के लोग। टेलीविजन के निजी चौनलों पर, खाशकर समाचारों का जिम्मा जिन लोगों को सौंपा गया, वे इसी कान्वेंटी पीढ़ी के लोग हैं। संचार माध्यमों में काम करते हुए भी इनका संबंध हिंदी से सीधा कभी नहीं रहा। हिंदी को हिंग्लिश बनाने की मजबूरी इस पीढ़ी के लिए येां भी थी कि इन्हें खुद को अंग्रेजीदां साबित करने के लिए यह भी दिखावा करना होता है कि इन्हें हिंदी दरअसल आती नहीं है, बस किसी तर कामचलाऊ ही बोल पाते हैं। इसलिए हिंदी बोलते हुए अंग्रेजी शब्दों को सायास बीच में डालते हैं और धीरे–धीरे यह उनकी आदत बनती चली जाती है। अन्य संचार माध्यमों पर हिंग्लिश के अवतरण और बहुप्रचलन की जड़ भी यही है।

अब बात आती है कि क्या हिंदी का इससे कुछ भला हो रहा है। तो उत्तर है हाँ। कारण कि हिंदी को जनसंचार माध्यमों से एक व्यापक धरातल मिला है। देश–विदेश में हिंदी फिल्मों तथा गीत–संगीत की लोकप्रियता बढ़ी है। टेलीविजन के अन्य कार्यक्रमों के कारण हिंग्लिश का महत्व बढ़ा है। दर्शक अंग्रेजी के घालमेल वाली हिंदी कुछ–न–कुछ समझ लेते हैं। धीरे–धीरे उनके लिए हिंदी के शब्द परिचित होते जा रहे हैं। अब एक समस्या यह है कि हिंदी को इससे बचना चाहिए या ऐसे प्रयोग चलते रहने चाहिए? यह प्रश्न विवाद को जन्म दे सकता है। यदि यह कहा जाय कि इन प्रयोगों से कोई हर्ज नहीं है तो शुद्धतावादी तत्व इस बात से चिंतित हो जाएंगे। लेकिन यह बात भी सच है कि जो भाषा जितनी उदार होगी और समझ के साथ–साथ बदलती चली जाएंगी वह उतनी ही लोकप्रियता को प्राप्त करेगी। उसकी जीवन क्षमता उतनी ही अधिक हो जाएगी। लैटिन और संस्कृत की गति हमारे सामने है। इन भाषाओं ने अपने व्याकरण के चलते शुद्धतावादी रुख

अपनाया। फलस्वरूप इन भाषाओं का विस्तार सिमटता चला गया और भाषा बस लिखने–पढ़ने तक सीमित होकर रह गई। वहीं अंग्रेजी उदारतापूर्वक अन्य भाषाओं की शब्दावली को अपनाने और वाक्य विन्यास को अंगीकार करने के फलस्वरूप विस्तार को प्राप्त करता गया। परंतु बात यहाँ अंग्रेजी के समानांतर हिंदी के ऐसे ही विकास प्रक्रिया की नहीं है। और न ही हिंग्लिश की वकालत ही करनी चाहिए। वास्तव में यह प्रक्रिया कुछ दूर तक चलेगी जिससे हमें हर्ज नहीं होनी चाहिए। अतिशुद्धतावादी होने से भय उत्पन्न होता है। ऐसे में हिंदी के प्रति बोलने वालों का रुझान घटेगा। क्योंकि हमें यह याद रखना चाहिए कि भाषा का एक महत्वपूर्ण रूप होता है बोलने का। और बोलने में शुद्धता का ध्यान हम प्रायः कम ही रखते हैं। अपनी भाषा के प्रति तो यह लापरवाही और भी सहज है। ऐसे में यदि अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा के सामान्य बोलचाल में रच–बस गये शब्दों को हिंदी पचा लेती है तो इससे इसकी पाचनशीलता में बढ़ोत्तरी ही होगी बस ध्यान इतना ही रहे कि दूसरी भाषा के इतने शब्द न ले लिए जाएं कि अपनी भाषा ही पराई लगने लगे।

बहरहाल, हिंग्लिश का यह प्रयोग बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। दरअसल संचार माध्यमों में इसके प्रयोग के पीछे सामाजिक–आर्थिक कारण है। हिंदी भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह अपने आप ही अपने निखरे हुए रूप में सामने आने लगेगी। सच तो यह है कि अपनी देशभक्ति स्वरूप, विस्तार, वैज्ञानिकता, सांस्कृतिक पहचान, संपर्क साधन की गुणवत्ता, विविध भाषाओं के बीच सेतू स्थापन, सरल–सहज अभिव्यक्ति, मनोरंजकता, अध्ययन–अध्ययापन की सहजता, तकनीकी रूप, अपने बोलियों की भाषिक ईकाई की एकरूपता, भारतीय भाषाओं की लिपियों और उच्चारण तंत्रों के साथ एकरूपता, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्वरूप, प्रशासनिक स्वरूप, उर्दू और हिंदुस्तानी के साथ संबंध, साम्राज्यवाद विरोधी भावना, गद्यात्मकता आदि अनेक विशेषताओं के कारण हिंदी इस समय स्वीकार्यता के राजमार्ग पर सरपट दौड़ रही है और इसकी गति को रोक पाना संभव नहीं है। पत्रकारिता और जन संचार माध्यम इस दौड़ को और गतिशील बना रही है। अतः जिस तरह हिंदी को अपने प्रसार के लिए जनसंचार माध्यमों की जरूरत है उसी तरह जनसंचार माध्यमों को अपने विस्तार के लिए हिंदी की आवश्यकता है।

संदर्भ :–

1. पांडेय, कैलाश नाथ, 'हिंदी पत्रकारिता – संवाद और विमर्श', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पहला संस्करण – 2017, पृष्ठ संख्या :– 221
2. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ–121
3. वही, पृष्ठ संख्या पृष्ठ–222
4. मिश्र, कृष्णबिहारी, 'हिंदी पत्रकारिता', भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण – 2011, पृष्ठ संख्या –460

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 55-56

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

धर्मेंद्र सिंह
सहायक प्रोफेसर,
फैकल्टी ऑफ एजुकेशन
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद।

समाज :-

समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृद्ध समूह को कहते हैं। समाज शास्त्रियों ने समाज को समाज संबंधों का एक ऐसा जाल माना है। जिसमें विभिन्न परिवारों के आपसी संबंधों से समाज का निर्माण होता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य परिवार तथा समाज दोनों से मिल जुल कर रहना पसंद करता है।समाज की मूल कई मानव है। इसलिए एक अच्छे समाज का मूल्यांकन व्यक्ति की श्रेष्ठता से किया जाता है। सदस्य की श्रेष्ठता उसके अंदर के गुणों से उत्पन्न होती है।

शिक्षा :

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। जो व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत निरंतर चलती रहती है। मनुष्य इस गतिशील प्रक्रिया के माध्यम से कुछ न कुछ सीखता रहता है।जिससे व्यक्ति अपने जीवन में विकास की चरम सीमा तक पहुंचने की कोशिश करता है।अतः शिक्षा मानव विकास का वह मूल साधन है।जिसके माध्यम से मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है और उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है ।शिक्षा एक प्रभाव है। जो मनुष्य के बाह्य एवं आंतरिक विकास में प्रेरणा प्रदान करती है उसमें सांस्कृतिक चेतना को विकसित करते हुए आत्मनिर्भरता की योग्यता प्रदान करती है तथा एक सामाजिक मनुष्य का निर्माण करती है।

दार्शनिक सुकरात के अनुसार–" शिक्षा का अर्थ पूर्ण सर्वज्ञ विचारों को विकसित करना है, जो प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में विलुप्त है।"

ड्रेवर के अनुसार–" शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसमें तथा जिसके द्वारा बालक के ज्ञान,चरित्र तथा व्यवहार को ढाला व परिवर्तित किया जाता है।"

समाज के उत्थान में शिक्षा :

समाज का उत्थान शिक्षा के द्वारा ही होता है इसको विभिन्न बिंदुओं के द्वारा समझा जा सकता है–

1 उत्पादन में वृद्धि करना :

वर्तमान जनतंत्रीय भारत का प्रथम उद्देश्य है–उत्पादन में वृद्धि करना ।भारत में जनसंख्या की वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन नहीं बढ़ रहा है, हम देखते हैं कि हमारे देश में खाद्य सामग्री व दवाईयां तथा कलपुर्जे आदि आवश्यक वस्तुओं की अब भी बहुत कमी है। इन सब के लिए हमें दूसरे देशों का मुंह देखना पड़ता है। हमें चाहिए कि हम अपने यहां विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन को गति प्रदान करें इस महान उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें कृषि तथा तकनीकी शिक्षा पर बल देने के साथ–साथ माध्यमिक शिक्षा को भी अधिक व्यवसायिक रूप प्रदान

किया गया है। इस संबंध में हम कह सकते हैं कि हम शिक्षा के द्वारा ही समाज का उत्थान हो सकता है।

2 सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता :

राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए राष्ट्रीय एकता परम आवश्यक है। इस एकता के न होने से सभी नागरिक राष्ट्रहित की परवाह न करते हुए केवल अपने अपने निजी हितों को पूरा करने में ही व्यस्त रहते हैं। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय निर्माण हेतु सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता आवश्यक है जो शिक्षा के द्वारा ही हमें प्राप्त हो सकती है। हमें देखने को मिलता है कि शिक्षा सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास करती है जिससे समाज का उत्थान होता है।

3 जनतंत्र को सुदृढ बनाना :

जनतंत्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा परम आवश्यक है। अतः जनतंत्र को सुदृढ़ बनाना शिक्षा का उद्देश्य है इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। क्योंकि जनतंत्र के सुदृढ़ होने से ही समाज का उत्थान हो सकता है।

4 देश का आधुनिकरण :

देश के आधुनिकरण के लिए शिक्षा तथा समाज दोनों को मिलकर काम करना होगा। प्रगतिशील देशों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान में विकास होने के कारण दिन प्रतिदिन नए – नए अनुसंधान हो रहे हैं। अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप प्राचीन परंपराओं और मान्यताओं का दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण समाज का निर्माण हो रहा है, लेकिन भारतीय समाज में अभी तक पुरानी ही परंपराएं, मान्यताएं तथा दृष्टि प्रचलित हैं। जिन्हें प्राचीन युग में महत्व दिया जाता था। भारत में पुरानी परंपराओं को बदलने के लिए शिक्षा का होना अति आवश्यक है। जिससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं मान्यताओं एवं दृष्टिकोण में समय अनुकूल परिवर्तन करके देश का विकासकिया जा सके, जो कि शिक्षा के बिना संभव नहीं है।

5 सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना :

सामाजिक उत्थान के लिए सामाजिक ,आर्थिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना अति आवश्यक है। जिसके लिए कुशल व्यक्तियों का होना परम आवश्यक है। अतः शिक्षा के द्वारा विभिन्न पाठ्यक्रमों में विज्ञान तथा तकनीकी विषयों को मुख्य स्थान देना होगा । जिससे चारित्रिक विकास एवं मानवीय गुणो का भी विकास संभव है।

6 संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षण :

प्रत्येक समाज के रीति रिवाज, परंपराएं, नैतिकता तथा धर्म आदि सब अलग–अलग होते हैं। इन सब को प्रत्येक समाज में अति प्राचीन काल से लेकर आज तक अर्जित किया है। वस्तु स्थिति यह है, कि प्रत्येक समाज को अपनी अपनी संस्कृति तथा सत्यता पर इतना गर्व होता है, कि वह इसको किसी भी मूल्य पर नष्ट नहीं होने देता है। शिक्षा के द्वारा ही वह प्रत्येक समाज को संस्कृति व सभ्यता को विभिन्न साधनों के द्वारा सुरक्षित रख सकता है तथा नवीनता ला सकता है।

निष्कर्ष :

समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही समाज के विभिन्न पहलुओं का विकास संभव है। जैसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास, जनतंत्र को सुदृढ बनाना, देश का आधुनिकरण ,नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास, संस्कृतिक सभ्यता का संरक्षण इन सभी के लिए शिक्षा की आवश्यकता है जिस से ज्ञात होता है कि समाज के उत्थान में शिक्षा की एक बड़ी भूमिका है।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 57-60

भारतीय शिक्षा और हिन्दी भाषा

मेर धीरा भाई बोघाभाई, PH-D शोधार्थी
हिंन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविधयालय – राजकोट (गुजरात), भारत

भुमिका :–

शिक्षा की व्यवस्था हो चाहे व्यवस्था की शिक्षा दोनों की स्थिति में भाषा का महत्व सर्वविदित है। किसी भी देश की प्रगति के साथ – साथ उसके नागरिकों के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा को सबसे महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है। देश की स्वतंत्रता से लेकर अब तक आधुनिक भारत के निर्माण में भारतीय शिक्षा प्रणाली की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आधुनिक समय की जरूरतों के अनुरूप भारतीय शिक्षा प्रणाली में अपेक्षित बदलाव लाने के लिये केंद्र सरकार द्वारा जुलाई 2020 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' (National Education Policy 2020) को मंजूरी दी गई। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के माध्यम से भारतीय शिक्षा परिदृश्य में बड़े बदलावों का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति

भारत की स्वतंत्रता के बाद वर्ष 1965 में कोठारी आयोग (1964–66) की सिफारिशों के आधार पर पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई। वर्ष 1986 में देश की शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधारों के साथ शिक्षा की पहुँच को मजबूत करने और शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त असमानताओं (विशेष रूप से महिलाओं, दिव्यांगों तथा अनुसूचित जातियों–जनजातियों आदि के संदर्भ में) को दूर करने हेतु दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई। वर्ष 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में संशोधन किया गया, जिसके तहत देश में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों में प्रवेश के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एकल प्रवेश परीक्षा की अवधारण प्रस्तुत की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 संक्षिप्त परिचय :–

NEP 2020 को पूर्व इसरो (ISRO) प्रमुख डॉ. के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में बनी एक समिति की सिफारिशों के आधार पर तैयार किया गया है। NEP 2020 का उद्देश्य शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के साथ शिक्षा में नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देना तथा भारतीय शिक्षा प्रणाली को वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के योग्य बनाना है। इसके तहत वर्तमान में सक्रिय 102 के शैक्षिक मॉडल के स्थान पर शैक्षिक पाठ्यक्रम को 5–3–3–4 प्रणाली (क्रमशः 3–8, 8–11, 11–14 और 14–18 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये) के आधार पर विभाजित किया गया है। NEP 2020 के तहत कक्षा 5 तक की शिक्षा में मातृभाषा–स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को अपनाने और आगे की शिक्षा में मातृभाषा को प्राथमिकता देने की बात कही गई है। बधिर छात्रों के लिये राष्ट्रीय और राज्य स्तर

पर पाठ्यक्रम सामग्री के विकास तथा 'भारतीय सांकेतिक भाषा' (Indian Sign Language : ISL) को पूरे देश में मानकीकृत करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके तहत पाठ्यक्रम के बोझ को कम करते हुए छात्रों में 21वीं सदी के कौशल के विकास, अनुभव आधारित शिक्षण और तार्किक चिंतन को प्रोत्साहित करने पर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही इसके तहत कक्षा 6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा । इसके तहत तकनीकी शिक्षा, भाषाई बाध्यताओं को दूर करने, दिव्यांग छात्रों के लिये शिक्षा को सुगम बनाने आदि के लिये तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देने और छात्रों को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने के लिये 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' (Artificial Intelligence : AI) आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग करने की बात कही गई है। इस नीति के तहत शिक्षण प्रणाली में सुधार हेतु 'शिक्षकों के लिये राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक') का विकास और चार वर्ष के एकीकृत बी.एड. कार्यक्रम की अवधारण प्रस्तुत की गई है। साथ ही इसके तहत देश में आईआईटी (IIT) और आईआईएम (IIM) के समकक्ष वैश्विक मानकों के 'बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय' (Multidisciplinary Education and Research Universities :) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है।

शिक्षा नीति में हिंदी का महत्व

इस नीति के अंतर्गत भी राजभाषा आयोग 1955 की सिफारिशों में से एक भारतीय भाषाओं के ज्ञान और सीखने की सिफारिश को शामिल किया गया है। जबकि इससे पूर्व 1965 में कोठारी आयोग (1964–66) जिसे भारतीय शिक्षा के इतिहास में पहला कदम कहा जाता है, वह शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित करता है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था को व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ाने और आज की जरूरत को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति 2020 लागू की है। जो राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बनी हुई है। नई शिक्षा नीति 2020 में भाषा के संबंध में उत्पन्न उन सभी सवालों को समझा व नई शिक्षा नीति का हिस्सा बनाया गया है, जिस पर अमूमन पूरे देश में प्रत्येक हिंदी दिवस पर चर्चा होती आ रही है. इस नीति के अंतर्गत भी राजभाषा आयोग 1955 की सिफारिशों में से एक भारतीय भाषाओं के ज्ञान और सीखने की सिफारिश को शामिल किया गया है। जबकि इससे पूर्व 1968 में कोठारी आयोग (1964–66) जिसे भारतीय शिक्षा के इतिहास में पहला कदम कहा जाता है, वह शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित करता है।14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का लक्ष्य रखता है। संस्कृत भाषा के शिक्षण को प्रोत्साहित करने व त्रिभाषा सूत्र को लागू करने की सिफारिश करता है। कोठारी आयोग की सबसे बड़ी उपलब्धता त्रिभाषा सूत्र को लाना था। क्योंकि यह समय भाषाई आंदोलन का था, जहाँ राज्य एक ओर भाषाई आधार पर अलग हो रहे थे दूसरी और हिंदी को पूरी तरह राजभाषा बनाए जाने का 15 वर्ष का समय पूर्ण हो रहा था, साथ ही दक्षिण भारत में हिंदी का घोर विरोध हो रहा था. इन विपरीत परिस्थितियों व भाषिक असहमतियों के मध्य कोठारी आयोग त्रिभाषा सूत्र को लाना जो हिंदी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण कदम था। कोठारी आयोग की सिफारिशों के उपरांत 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति आती है. इस नीति में 1992 में संशोधन होता है और कहा जाता है कि 1968

की शिक्षा नीति के अधिकांश सुझाव कार्यक्रम में परिणत नहीं हो सके, क्योंकि क्रियान्वयन की पक्की योजना नहीं बनी, न स्पष्ट दायित्व निर्धारित किए गए। इसी कारण नई चुनौतियों और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नई शिक्षा नीति तैयार की गई है। 1968 की शिक्षा नीति में भाषा को लेकर कोई विशेष निर्देश देखने को नहीं मिलते हैं। इस नीति का मुख्य उद्देश्य शिक्षा को तकनीक, प्रौद्योगिकी, नवाचार, विज्ञान व मूल्यों से जोड़ना था। भाषाओं के संबंध में इतना ही कहा गया कि "1968 की शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास के प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया गया था। उस नीति की मूल सिफारिशों में सुधार की गुंजाइश शायद ही हो और वे जितनी प्रासंगिक पहले थी उतनी ही आज भी है। किंतु देश भर में 1968 की नीति का पालन एक समान नहीं हुआ। अब इस नीति को अधिक सक्रियता और सौद्देश्यता से लागू किया जाएगा"। 1968 की कोठारी आयोग की सिफारिशें हो या 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति दोनों ही भाषा के संदर्भ में अधिक मुखर नहीं होती है। जितनी की नई शिक्षा नीति 2020 होती है।

नई शिक्षा नीति–2020 में स्पष्ट रूप से शिक्षण माध्यम के रूप में भाषा के सवाल को मुख्य रूप से उठाया गया है। जिसके लिए एक उप–अध्याय 'बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति' शीर्षक रखा गया है। भारत सरकार द्वारा शिक्षा माध्यम के रूप में भाषा की शक्ति को पहचानते हुए विभिन्न प्रावधान व सुझाव इस शिक्षा नीति में किए गए हैं। इसमें कहा गया कि "छोटे बच्चे अपनी घर की भाषा– मातृ भाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं और समझ लेते हैं। घर की भाषा आमतौर पर मातृभाषा या स्थानीय समुदायों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। 3 ऐसे में जहाँ तक संभव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा– मातृ भाषा– स्थानीय भाषा– क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद घर– स्थानीय भाषा को जहाँ भी संभव हो भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसकी अनुपालना करेंगे।

1) भाषा के विकास में त्रिभाषा सूत्र को पुनः शामिल किया गया और कहा गया कि इसमें कम से कम दो भारतीय भाषाएं होगी।
2) बच्चे द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शिक्षण के माध्यम के बीच यदि कोई अंतराल मौजूद होता हो तो उसे समाप्त किया जाएगा।
3) संस्कृत, पालि, फारसी, प्राकृत के साथ ही तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और ओड़िया भाषाओं को भी विकल्प के रूप में शामिल किया जाएगा व पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाएगा।
4) विज्ञान सहित सभी विषयों में उच्चतम गुणवत्ता वाली पाठ्य पुस्तकों को मातृ भाषा में उपलब्ध कराया जाएगा।

नई शिक्षा नीति–2020 में मातृभाषाओं को पुनः जीवित करने का प्रयास किया है। यह सच है कि कोई भी राष्ट्र तब तक मजबूत नहीं बनता जब तक उसकी जमीन अर्थात उसका जन मजबूत नहीं होता है। हमारी मातृ भाषाएं इसी बड़े व व्यापक जन समूह का प्रतिनिधित्व करती है। जब यह जन समूह मजबूत होगा तो उसका प्रतिनिधित्व करने वाली हमारी हिंदी भाषा भी स्वतः मजबूत होगी। क्योंकि हिंदी का शब्द भण्डार तो उसकी मातृभाषा, क्षेत्रीय बोलियों व भारतीय भाषाओं के शब्दों के भंडार से निर्मित है, ऐसे में बहुभाषिकता हमारी कमजोरी

नहीं बल्कि हमारी विशेषता है। डॉ. जाकिर हुसैन के शब्दों में कहें तो "हिंदी वह धागा है जो विभिन्न मातृभाषाओं रूपी फूलों को पिरोकर भारत माता के लिए सुंदर हार का सृजन करेगा"। हमारे संविधान की सबसे बड़ी खूबी ही अनेकता में एकता है। पांच उँगलियाँ मिलकर एक मुट्ठी बनाती है। हमारी बहुभाषिकता में एक भाषा के रूप में हिंदी की पहचान उस मुट्ठी के समान हैं जो अलग–अलग उंगलियाँ अर्थात भाषाओं के होने के बावजूद हिंदी के रूप में शक्ति का अहसास कराती है ।

नई शिक्षा नीति–2020, 35 वर्षों बाद व्यापक स्तर पर भाषा के विकास के सवालों को उठाती है जो उससे पूर्व 1968 के कोठारी आयोग व 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मुखर होकर नहीं उठाए गए थे। भारत सरकार द्वारा जारी यह शिक्षा नीति भारत की भावी शिक्षा व्यवस्था और राष्ट्र के उन्नयन के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाली नीति है। यह नीति यदि ईमानदारी पूर्वक क्रियान्वयन में नहीं लाई जाती है तो यह अपने पूर्व की नीतियों के समान केवल महज दस्तावेज बनकर रह जाएगी। जैसा कि इतिहास के आइने में वर्धा शिक्षा योजना के साथ हुआ था जिसमें मातृभाषाओं के प्रयोग सहित कई ऐसे बिंदुओं को उठाया गया था जो सही से क्रियान्वित नहीं होने के कारण सिर्फ सुझाव व दस्तावेज ही बनकर रह गए. ऐसे में आवश्यक है कि कि नई शिक्षा नीति को प्रभावी तरीके से लागू किया जाए। इससे न केवल हमारी भाषाएँ समृद्ध होगी बल्कि हमारी युवा पीढ़ी भी भाषाई बंधनों से आजाद होकर अपनी मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा व हिंदी के माध्यम से ज्ञान के नए रास्तों को तलाश सकेगी व राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सकेगी।

सारांश :–

भारत में अंग्रेजी नहीं बोल पाने पर हिन्दी भाषियों के मन में हीन भावना पैदा की गई। इस कारण यह स्थिति बन गई है कि हम अंग्रेजी बोलने वाले व्यक्तियों को विद्वान समझते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हिन्दी के लिए विशेष प्रावधान नहीं है, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं पर जोर दिया गया है। हमें यह समझ लेना चाहिए कि भारतीय भाषाओं के विकास से ही हिन्दी का विकास एवं विस्तार होगा। भारतीय भाषाओं में समन्वय की आवश्यकता है। हिन्दी भाषियों को कोई एक दूसरी भारतीय भाषा सीखने का प्रयास करना चाहिए। अंग्रेजी की अपेक्षा हमें भारतीय भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में लेना चाहिए।

संदर्भ :–

* द्रष्टि धर्म विजन अंक 14 अक्टूबर 2020
* राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ मे प्रस्तुत गुजरात समाचार, संदेश समाचार के गुजराती लेखो का सारांश ।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 61-63

हिन्दी भाषा का सांस्कृतिक चेतना में योगदान

दीप्ति प्रधान, व्याख्याता संस्कृत, हिन्दी
लक्ष्य पाइंट इंस्टीट्यूट कोटा राजस्थान

भारतीय संविधान में खड़ी बोली हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया जिसके अनुसार यह व्यवहाररूप में अपनी पूर्णता को प्राप्त हुई। आरम्भिक काल में इसका कार्य मात्र अध्ययन–अध्यापन तक ही सीमित था लेकिन राजभाषा का दर्जा प्राप्त होने के उपरान्त इसका संबंध साहित्य के साथ गहरा होता गया। अपने शास्त्रीय स्वरूप और व्याकरणिक विषयों की समस्याओं को सुलझाने की सक्षमता ने इसके क्षेत्र को व्यापकता प्रदान की। साहित्य के साथ सम्बद्ध होने के उपरान्त इसने साहित्य को नवअनुभूति प्रदान की। साहित्य का कार्य रसास्वादन करवाना, रसान्वेषण और रसनिष्पत्ति माना जाता है। हिन्दी के विशद् स्वरूप ने साहित्य की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में महती भूमिका निभाई। राजभाषा के रूप में इसका कार्य चार क्षेत्रों तक ही सीमित था–शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका।

राजभाषा का सामान्य अर्थ राजकाज की भाषा से अभिप्रेत था अर्थात् जिस भाषा के द्वारा राजकीय कार्य पूरे किए जाएं। राजभाषा के द्विअर्थों में एक राज्य की भाषा और दूसरी राज्य की भाषा माना जाता है। भारतीय संघीय व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य प्रशासनिक कार्य और प्रादेशिक राज्य के शासन का संचालन होता है इसलिए हिन्दी की दोहरी भूमिका है। प्रथम केन्द्रीय, संघ की राजभाषा और दूसरी राज्यों की राजभाषा। हिन्दी के अस्तित्व का उदय स्वाधीनता संघर्ष के समय हुआ। क्रान्तिकारियों और समाज सुधारकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाकर लेखन कार्य आरंभ किया। संस्कृत से अलग रूप में इसका रूप अपभ्रंश के नाम से जाना गया। इसका विकास सार्वजनिक भाषा के रूप में हुआ और यह गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल तक विस्तार पाती गई। मध्य में हैदराबाद को केन्द्र निर्मित कर इसने दक्खिनी हिन्दी को भी फलीभूत किया। यह राष्ट्रव्यापी चेतना के रूप में प्रस्फुटित होकर संतो, फकीरों आदि के माध्यम से जनचेतना में सहायक बनी। इसकी सम्पन्नता में यद्यपि लोकभाषाओं का भी योगदान रहा है फिर भी हिन्दी की सहज सुलभ शब्दावली ने इसे लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचाया।

वैदिक भाषा ने अन्य देशों और भाषाओं को प्रभावित किया क्योंकि वैदिक संस्कृत अत्यधिक सम्पन्न और साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण थी। इसमें शताधिक शब्दों की उपस्थिति तथा व्याकरणिक नियमों का प्रभाव इसके साहित्यिक अवदान को स्पष्ट करता है। वैदिक भाषा श्लिष्ट थी कालान्तर में इसमें भाषिक बदलाव के कारण अपभ्रंश स्वरूप विकसित हुआ और यह वियोगात्मक भाषा हिन्दी के रूप में प्रचलित हुई। इसके प्रचलित होने के

मुख्य कारण थे –सरलीकरण तथा लोक स्वरूप। लोक शब्द से लौकिक संस्कृत का प्रादुर्भाव हुआ। या यूं कहा जाए कि पालि, प्राकृत और अपभ्रंश ने अपना स्वरूप निर्मित किया। यह तीनों ही भाषिक रूप लोक की ही देन हैं। कालानुक्रम में लोक या जनसाधारण की भागीदारी के कारण भाषा का रूप परिवर्तित होता गया। यह लोकानुरूप में गढ़ती गई। लौकिक संस्कृत के रूप में भी इसने व्याकरण सम्मता और साहित्यिक समृद्धि को निरन्तर गतिमान रखा। परवर्ती तीनों रूपों पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में साहित्यिक विधाओं में रचना की गई। इन रचनाओं में अपभ्रंश इस दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न भाषा का स्थान रखती है। इस भाषा में प्राचीन, मध्यकालीन भारतीय आर्य सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, चिंतन, आध्यात्मक और भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का समावेश इसे अद्वितीय की श्रेणी में रखता है।

प्रो. राजमणि शर्मा (हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप) के अनुसार ''प्राचीन और मध्यकालीन भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है जिसे न दो छांदस, न पाणिनी का संस्कार मिला न ही गौतम बुद्ध जैसे महान तपस्वी का वरदहस्त। फिर भी यह जनसाधारण की अपराजेय शक्ति से संवलित होकर संस्कृत के पश्चात् सबरने लंबे काल तक साहित्य की भाषा ही नहीं बनी अपितु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जन्मदात्री भी बनी। यह इसकी लोकतांत्रिकता का परिचायक है। तभी तो आचार्य पतंजलि ने सबसे पहले यह अनुभव किया था कि इस भाषा के विकास को रोक पाना कठिन है।'' साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो अपभ्रंश में साहित्यिक तृप्ति के सभी साधन मौजूद थे। यह सर्वाधिक सम्पन्न और विस्तृत क्षेत्र की भाषा थी जो कि छठी शताब्दी तक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी। साहित्यिक रचनाओं का यह क्रम सोलहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहा।

अपभ्रंश को अभीरों की बोली कहा जाता था तो कहीं इसे देशी वचन से संज्ञापित किया गया। अभीसे का उल्लेख हमें महाभारत में एक दुर्धर्ष जाति के रूप में प्राप्त होता है। यह पश्चिमोत्तर भारत के जनमानस में बस चुकी थी। बाद में इसने मध्यप्रदेश में अपना क्षेत्र विस्तृत किया। उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर में यहां अपभ्रंश के बहुसंख्यकों का निवास है। यहां वाराणसी के समीप अहरौरा में अभीरों की राजधानी हुआ करती थी। कतिपय विद्वानों पादलिप्ताचार्य ने इसे देसिवचण तथा विद्यापति ने अवहट्ट कहा है।

पतंजलि के महाभाष्य में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग शब्दों के भेद के रूप में प्रयुक्त किया गया है– ''एकैकस्य हिशब्दस्य बहवोडयभ्रंशा'' यहां पर एकैकस्य का शब्दार्थ पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध शब्दों से है तथा बहवोडयभ्रंशा को बोलियों और विभाषाओं में रूपांतर से लिया गया है जो –गावी, गोणी, गोता, गोपातलिका आदि है। यह शब्द सिद्ध शब्दों के ध्वन्यात्मक रूपांतरण अर्थात् भाषा विकास को दर्शाते हैं। इसी प्रकार के अन्य प्रयोग श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों की अर्धमगधी में भी प्राप्त होते हैं। हेमचन्द्र ने इन शब्दों को महाराष्ट्री भाषा से लिया माना है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि अपभ्रंश का विकास पालि और प्राकृत से होता हुआ पूर्णता को प्राप्त हुआ। भरत के नाट्यशास्त्र में भी अपभ्रंश के उदाहरण प्राप्त होते हैं। उन्होंने इसे आमीरोक्ति से संज्ञापित किया है। छठी शताब्दी के चण्ड द्वारा अपने ग्रन्थ 'प्राकृत लक्षणम्' में शब्द का अर्थ भाषा के अर्थ में ही किया है। इसी प्रकार

वसुदेव हिंडी ने भी अपभ्रंश के प्राचीन रूपों का प्रयोग किया गया है। आचार्य भामह ने ''संस्कृत प्राकृत चायमभ्रंश इति त्रिधा''(काव्यालंकर 1–26) इसमें अपभ्रंश को संस्कृत तथा प्राकृत से सर्वथा पृथक अपनी साख स्थापित की। दण्डी ने भी आमीरादिगिरः काव्येश्वपभ्रंशाः इति स्मृता शब्दों के द्वारा अपभ्रंश की काव्यात्मकता की अभिव्यक्ति की। उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला में संस्कृत और अपभ्रंश को साहित्यिक रूप में मान्यता प्रदान की। राजशेखर द्वारा इसका उल्लेख किया गया। आचार्य हेमचन्द्र ने 12वीं शती में अपभ्रंश का व्याकरण लिखा। कालान्तर में अपभ्रंश का विस्तार भारत में पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक साहित्यिक रूप में हुआ। इसमें लोकजीवन को प्रबंधात्मक काव्य के रूप में लिखित किया गया। इसमें न सिर्फ नीतिपरक और धर्म, जीवन दर्शन रचनाओं का लेखन हुआ तो वीर और श्रृंगार रस को भी अछूता न रखा। आचार्य द्विवेदी के अनुसार इसके दो भेद अत्यधिक प्रचलित हुए– पूर्व और पश्चिम लेकिन उनके भेद का आधार काव्य की वस्तु और प्रकृति रहा। उन्होंने अपभ्रंश में अनेक विकसित रूप पाए– पश्चिमी अपभ्रंश में राजस्तुति के लिए श्रृंगारी काव्य, नीति विषयक, फुटकल और लोकप्रिय कथानकों की रचनाएं की गईं तो पूर्वी अपभ्रंश में निर्गुण संतों द्वारा शास्त्र निरपेक्ष रूप में विचारधारा विद्यमान रही। उनमें झाड़–फटकार और अक्खड़पन की झलक भी मिलती है तो सहजशून्य की साधना भी प्राप्य है। इनमें योग भक्ति का भाव भी विद्यमान है और भक्ति मूलक रचनाओं की महक भी है।

भाषिक चेतना में बदलाव की लहर मध्यकाल के अंत से आरंभ हुई और विभिन्न क्षेत्रों की बोलियों में इसका भिन्न स्वरूप परिलक्षित हुआ। इस काल में संदेश रासक, उक्ति व्यक्ति, वर्णरत्नाकर, ढोला मारू रा दूहा आदि रचनाओं से इनके विकास और भिन्नता का ज्ञान होता है। वर्तमान हिन्दी का निर्धारण संस्कृत, प्राकृत, मगधी, अर्द्धमगधी, शौरसेनी, अपभ्रंश और अन्य भारतीय भाषाओं के सम्मिश्रण से हुआ। यही नहीं अवधि, ब्रज, मैथिली, बुंदेलखण्डी, राजस्थान, निमाड़ी आदि ने इनको जोड़ने में अद्‌भुत भूमिका का निवर्हन किया। इनके मिलन से निर्मित भाषा को बोली कहा गया। डी. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे बोली न मानकर भाषा की संज्ञा प्रदान की। प्रचलित होने पर यह विपुल साहित्य निर्मित किए जाने का माध्यम बनी। हिन्दी ने राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त किया और राष्ट्रीय जागरण की अग्रदूत बनी। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा सर्वप्रथम इसे राष्ट्रभाषा नाम से संज्ञापित किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हिन्दी ने राष्ट्रभाषा के पद को प्राप्त किया और वर्तमान में सर्वाधिक साहित्य रचना के रूप में प्रसिद्धी प्राप्त की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :- 1. वर्मा धीरेन्द्र– हिन्दी भाषा का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद
2. बाहरी डॉ. हरदेव– हिन्दी उद्‌गमः विकास और रूप, किताब महल इलाहाबाद
3. रस्तोगी डॉ. प्रेमप्रकाश– हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास, प्र.सं. 1966
4. सिंह डॉ. अनुज प्रताप– भाषा विज्ञान, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली 2007
5. जलज जयकुमार– ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली 2001
6. कुमार डॉ. कृष्ण– भाषा विज्ञानः नए भाषायी संदर्भ, बुक एनक्लेव, जयपुर, प्र.सं. 2003

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 64-67

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

डॉ0 फरहत मंसूरी, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र,
शासकीय महाविधालय बिछुआ जिला छिंदवाड़ा म.प्र.

प्रस्तावना – शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों गलत परम्पराओं के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते है और धीरे–धीरे समाज में परिवर्तन होता जाता है। शिक्षा समाज के प्रति आम आदमी को जागरूक बनाते हुये उसमें प्रगति का आधार बनाती है। शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान, एवं कला – कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है । समाज के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है क्योंकि यही एकमात्र साधन है जिसके माध्यम से वे विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कारकों, स्वस्थ जीवन, देश को गरीबी, असमानता से मुक्त करने और बेहतर कल के लिए महिलाओं की परवरिश के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

मुख्य शब्द :– शिक्षा, समाज, प्रगति, देश, गरीबी ।

प्रस्तावना– समाज में एक साथ रहने वाले, एक साथ काम करने वाले, आपसी लाभ के लिए मानदंडों,संस्कृति, मूल्यों, विश्वासों के सेट का पालन करने वाले व्यक्ति शामिल हैं। क्योंकि यहां व्यक्ति एक दूसरे के साथ रहते हैं, इसलिए उनका शिक्षित होना बहुत जरूरी है ताकि वे सद्भाव और शांति के मार्गों पर चल सकें। शिक्षा मनुष्य को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती है। शिक्षा शैली समाज में सभी मानवीय व्यवहारों का आधार है। शिक्षा एक ऐसा इंजन है जो अन्य बाधाओं जैसे भावनात्मक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश में व्याप्त हमारे ज्ञान की संभावना को व्यापक बनाता है। किसी भी समाज का व्यवहार उसके साक्षरता स्तर पर निर्भर करता है। शिक्षा से वंचित समाज अनैतिक व्यवहार में पड़ जाता है, उनमें सही और गलत का विश्लेषण करने की क्षमता का अभाव होता है।

शोध के उद्देश्य –

1. शिक्षा का तात्पर्य
2. समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका
3. समाज का शिक्षा पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त करना

शिक्षा अज्ञानता से ज्ञान की ओर कदम कदम बढ़ाने का एक मार्ग हैं। शिक्षा मनुष्य को सोचने समझने

और अपना विकास करने में सहायता करती है। शिक्षा समाज में सदैव चलने वाली उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। एक समाज के लिए शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वे न केवल सही निर्णयों के साथ अपने जीवन को सुरक्षित करते हैं बल्कि बेहतर जीवन के लिए सरकार या उच्च अधिकारियों द्वारा बनाए गए मानदंडों, नीतियों, विनियमों, विश्वासों के साथ तार्किक, व्यावहारिक और सौहार्दपूर्ण व्यवहार भी करते हैं। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्षा' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्षा' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया।

जेम्स– ''शिक्षा कार्य सम्बंधी अर्जित आदतों का संगठन है, जो व्यक्ति को उसके भौतिक और सामाजिक वातावरण में उचित स्थान देती है।''

पेस्टालॉजी–''शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील विकास है।''

जब पूरा समाज शिक्षित होता है, तो वे अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से स्वतंत्र होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी परिस्थितियों के अनुसार रोजगार के अवसर मिलते हैं। इतना ही नहीं यदि पूरा समाज शिक्षित होगा, तो युवा पीढ़ी अपने आप सुरक्षित हाथों में होगी, उनमें कम उम्र में ही अपने सदस्यों के साथ–साथ राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी की भावना विकसित होगी क्योंकि वे भी बड़ों के नक्शेकदम पर चलेंगे। समाज के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है क्योंकि यही एकमात्र साधन है जिसके माध्यम से वे विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कारकों पर ज्ञान प्राप्त करेंगे, स्वस्थ जीवन के बारे में, देश को गरीबी, असमानता से कैसे मुक्त करें और बेहतर कल के लिए महिलाओं का पालन–पोषण करें। समाज शिक्षित होगा तो वे पुराने रीति–रिवाजों और मिथकों का पालन नहीं करेंगे, वे बाल विवाह, दहेज प्राप्त करना और सती प्रथा आदि जैसी कुछ अनैतिक प्रथाओं को रोकेंगे, इसके बजाय वे बच्चों, महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए काम करेंगे।

शिक्षा के माध्यम से ही कोई समाज अपने देश के लिए एक असाधारण सरकार स्थापित कर सकता है।

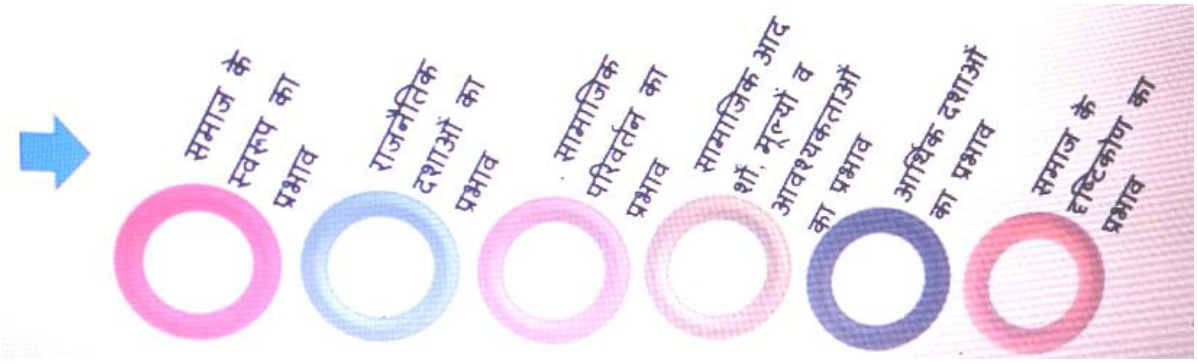

*समाज के स्वरूप का प्रभाव– समाज का स्वरूप जैसा होगा वह शिक्षा को वैसे ही व्यवस्थित करता है। भारत लोकतांत्रिक देश है तो शिक्षा की प्रकृति उद्देश्यों उसके संगठन एवं वातावरण में लोकतांत्रिक आदर्श प्रतीत होते हैं। तानाशाही समाज की शिक्षा में अनुशासन व आज्ञाकारिता, पर बल दिया जाता है। समाजवादी देशों की शिक्षा में समाजवादी तत्व एवं स्वरूप दिखायी देता है। अतः समाज के स्वरूप का शिक्षा की प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है।

*राजनैतिक दशाओं का प्रभाव – किसी भी समाज की राजनैतिक दशा का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि राजनीति को मजबूत आधार शिक्षा प्रदान करती है। वैदिक युग में राजतंत्र था तो शिक्षा वर्ग विशेष के लिये थी परन्तु प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में सभी आयु वर्ग, लिंग, जाति एवं धर्म के लोगों को समान शिक्षा का अधिकार दिया गया है। अंग्रेज जब भारत आये तो उन्होंने अपने शासन को मजबूत आधार देने के लिए शिक्षा व्यवस्था को अपने अनुसार ढालने का प्रयास किया और इसके लिये निष्पन्दन का सिद्धान्त का अनुसरण कर आवश्यकतानुसार शिक्षा देने का प्रयास किया कम्पनी के संचालकों का विश्वास था– कि ''प्रगति उस समय हो सकती है, जब उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जाये जिसके पास अवकाश है।''

*सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव– भारत में आदिकाल से धार्मिक शिक्षा दी जाती थी उसके पश्चात समय के साथ आधुनिक युग आया और देश ने राजतंत्र से प्रजातंत्र में प्रवेश किया और शिक्षा में लोकतंत्रीय आदर्श एवं मूल्य समावेशित हुये सामाजिक असमानता, कुरीतियों एवं आर्थिक असमानता को दूर कर वर्ग विशेष के लिये शिक्षा व्यवस्था से सबके लिये शिक्षा को मुख्य लक्ष्य माना गया और सभी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त कराया गया। समाज की प्रस्थिति एवं स्वरूप जैसे तैसे बदलता जाता है वैसे वैसे शिक्षा का रूप भी बदलता जाता है।

*सामाजिक आदर्शों, मूल्यों व आवश्यकताओं का प्रभाव – भारत में शिक्षा के स्वरूप पर डा0 राधाकृष्णन ने लिखा कि– ''शिक्षा को व्यक्ति और समाज दोनों का उत्थान करना चाहिये। तब हमारी शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों, लक्ष्यों, शिक्षण विधियों पाठ्यक्रम एवं शिक्षार्थी, शिक्षक के गुणों की संकल्पना पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।'' इस प्रकार भारतीय समाज की आवश्यकता है, गरीबी, बेरोजगारी, को दूर करना असमानता की भावना दूर करना, और लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेश किया जाये तब इन तथ्यों को शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न पक्षों उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में स्पष्ट समावेशित किया गया। शिक्षा पर सामाजिक आदर्शों का प्रभाव पड़ा है।

*आर्थिक दशाओं का प्रभाव – जिस समाज की आर्थिक दशा अच्छी होती है वहां की शिक्षा व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ता है। अमेरिका जैसे देश विकसित है तो वहां पर शिक्षा का प्रचार–प्रसार जल्दी हुआ और भारत जैसे देश में हमें शिक्षा की सुविधा देने में वर्षों लग रहे हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न समाज अच्छे विद्यालय खोलने में सक्षम रहते है, इसके फलस्वरूप व्यावसायिक , प्रौद्योगिक, वैज्ञानिक पक्षों के विकास हेतु अधिक संसाधनों का उपलब्ध रहना आवश्यक है। आर्थिक रूप से विपन्न देशों व समाजों की शिक्षा में भी यह विपन्नता स्पष्ट दिखायी देती है।

*समाज के दृष्टिकोण का प्रभाव – शिक्षा व्यवस्था में समाज के दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ता है, जैसे यदि समाज रूढ़िवादी दृष्टिकोण का है तो शैक्षिक प्रशासन एवं अनुशासन व पाठ्यक्रम में इसका स्पष्ट छाप दिखायी देती है। समाज के उदार दृष्टिकोण का प्रभाव वहॉ की शिक्षा व्यवस्था में देखी जा सकती है। जैसे वैदिक युगीन समाज का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था तब उस समय शिक्षा व्यवस्था धार्मिक थी। इसी प्रकार से जनतांत्रिक –दृष्टिकोण एवं उदार शिक्षा का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था में स्पष्ट दिखायी देता है। एच0ओड का कथन है– ''समाज

और शिक्षा का एक दूसरे से पारस्परिक कारण और परिणाम का सम्बंध है। किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करता है,

निष्कर्ष – शिक्षित समाज एक ऐसे राष्ट्र के निर्माण में मदद करेगा जो अपने बुनियादी ढांचे से समृद्ध हो, प्रौद्योगिकी के साथ उन्नत हो, विज्ञान और दवाओं में आगे हो, शिक्षित ग्रामीण छात्र, सेना और अन्य बलों के साथ मजबूत हो। यदि समाज शिक्षित होगा तो वह अपने वनस्पतियों और जीवों की रक्षा और रक्षा करना जानता होगा, अपने विरासत स्थलों की रक्षा करना जानता है, पिछड़े क्षेत्रों और समाज के लिए काम करना जानता है, यह जानेगा कि पर्यटन को कैसे बढ़ावा देना है वे जितने ज्यादा पढ़े–लिखे होंगे, देश के लिए सही सरकार चुनने की कीमत उतनी ही ज्यादा समझ पाएंगे। शिक्षित समाज उन प्रथाओं को समाप्त कर सकता है जो लोगों को लाभ नहीं दे रही हैं और परिवर्तन की मांग कर सकती ।

शिक्षा न केवल दिमाग का निर्माण और विकास करती है, बल्कि उन्हें अपनी और दूसरों की बेहतरी के लिए सही रास्ता चुनने की शक्ति भी देती है। मर्यादा और प्रसन्नता बनाए रखने के लिए समाज का शिक्षित होना आवश्यक है । क्योंकि यह सभी अंतरालों को पाट देगा और प्रत्येक व्यक्ति को अन्य मनुष्यों के साथ सौहार्दपूर्ण, सुंदर जीवन के लिए तैयार करेगा।

सन्दर्भ –

1. अंसारी, सईद, "शिक्षा और समाज", इ. पुस्तकालय डाट काम
2. पांडेय, रामशकल, "समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा", श्री विनोद पुस्तक मंदिर
3. शर्मा, ब्रम्हदेव,"शिक्षा समाज और व्यवस्था", म.प्र. हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
4. https-//www-hindivibhag-com
5. https-//sstmaster-com/meaning-and-definition-of-education-hindi/

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 68-71

समाज उत्थान में हिंदी साहित्य की भूमिका

गरिमा आर जोशी
पीएचडी रिसर्च स्कॉलर
गुरु गोविन्द यूनिवर्सिटी गोधरा, गुजरात, भारत

"इतिहास अतीत का जो करता अर्पण हैं ।
लिपिबद्ध वही साहित्य समाज का दर्पण है ।''

भूमिका –

जिस प्रकार से सूर्य की किरणें संसार में अंधकार को दूर कर प्रकाश फैलाती हैं, उसी प्रकार साहित्य समाज में नवनिर्माण की चेतना का संचार करता है। साहित्य युग का दर्पण होता हैं, वही युग को नया जन्म प्रदान करने वाला भी माना गया हैं। साहित्य रचनाकार की वह जादुई कलम है जिसमें रचनाकार अपने समय का समाज अथवा युग का जीवंत वर्णन पाठको के समक्ष रखता हैं। यदि समाज शरीर हैं तो, साहित्य उसकी आत्मा। साहित्यकार समाज की संपूर्ण आकांशाएँ, चेतनाएँ, विचार धाराओं को साहित्य में प्रतिबिम्बित करता हैं। साहित्य अपने युग और समाज की परिस्थितियों उनके मूल्यों प्रेरणाओं एवं प्रयोजन के आधार पर बदलते रहते हैं। इसी कारण से साहित्य समाज का दर्पण भी कहा जाता हैं। किसी भी राष्ट्र या देश को जानना हो तो उसके साहित्य को देखना चाहिए । साहित्यकार एवं उसकी सर्जना पर समाज के विचारों, भावनाओं, परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है । रचनाकार समाज के क्रियाकलापों से संतुष्टता का अनुभव कर अपने विचारों, संवेदनाओं, कल्पनाओं पर आश्रित नही रहता अपितु अपनी लेखनी में सत्यता का साक्षात्कार करता हैं। समाज की यह सत्यता साहित्यकार के लिए मार्गदर्शक बनती है। इस पर प्रेमचंद्र ने कहा हैं– साहित्य समाज के आगे चलने वाला मशाल हैं।

साहित्य केवल हिन्दी साहित्य का नही हैं बल्कि हम साहित्य के सार्वभौमिक स्वरूप को ग्रहण करते हुये साहित्य और समाज के बीच के संबंधों को जानेगें। मानव समाज सतत परिवर्तनशील स्वभाव का होता हैं, एवं अपने विकास हेतु अपनी विचार धाराओं में ऐसा परिवर्तन लाता है कि समाज की भाषा बदलने लगती है। नई कथाएँ एवं प्राचीन कथाओं में नया मोड़ देता हुआ समाज अपने आप को नई कथाओं के समक्ष खड़ा पाता हैं। साहित्य की यह अनिवार्य शर्त हैं कि वह सरल एवं सहज रूप में हो। साहित्य का प्रभुत्व भारत में ही नही अपितु फ्रांस सेलेकर रूस तक फैला हुआ है। साहित्य के अंतर्गत कबीर, तुलसी , प्रेमचंद्र जैसे साहित्यकारों के द्वारा

सामाजिक चेतना के द्वीप प्रज्जवलित हुये। वाल्मीकि, कालिदास, निराला, मुक्तिबोध आदि पर समाज गर्व करता हैं, क्योंकि इनका साहित्य समाज को जोड़ता है। साहित्य श्रेष्ठ समाज के निर्माण की रचना करता हुआ सत्य को उजागर करता है। साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। समाज के लिए प्रेरणा रूप है और लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है। साहित्य समाज में जीवन मूल्यों को भी शिक्षा प्रदान करता है।

'समाज पर साहित्य का प्रभुत्व

समाज में चल रही गतिविधियों, घटनाओं के अनुरूप साहित्य बदलता हैं तो, वही दूसरी और साहित्य समाज को बदलने का प्रयत्न करता हुआ मनुष्य को गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं। समाज में चल रही गतिविधियों, अंधविश्वासों, आंडबरो, कुरीतियों, खराबमानसिकता को सुधारता हुआ समाज में नई चेतना भरता है। इसलिए साहित्य को समाज का प्रतिबिंब कहा जाता हैं।

समाज उत्थान में साहित्य की भूमिका से पूर्व साहित्य का स्वरूप, समाज के प्रति साहित्य का उद्देश्य क्या है ? हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभावः साहित्यम । यह संस्कृत भाषा का एक प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है, जिसका अर्थ यह है कि साहित्य का मूल तत्व सबका हित साधन हैं। साहित्यकार समाज की आंतरिक एवं बाह्य स्थिति से भली–भाँति परिचित होता है। सामाजिक वर्ग के सुख– दुखः की कथा अपनी लेखनी से पाठको के समक्ष लाता है। साहित्य का उद्देश्य केवल समाज में सुधारवादी एवं लोक – कल्याण की भावना उजागर करना होता है। जिस साहित्य के अंतर्गत 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाए' की यर्थाथता होती है, वही साहित्य समाज के लिए प्रेरणा रूप सिद्ध होता हैं। लेखक समाज के पीड़ित वर्ग के इतना निकट होता है कि उसकी पीड़ा को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। मुंशी प्रेमचंद्र के कथन को यहाँ उदधृत करना सही होगा'' – जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व हैं।''(1)

साहित्य समाज को विकासशील एवं उन्नति प्रदान करता है। समाज उन्नति की इस विकास यात्रा में भारतेन्दु, अज्ञेय, नागार्जुन एंव साहित्य के यथार्थ साहित्यकार प्रेमचंद्र का योगदान बहुत ही सराहनीय है।

प्रेमचंद्र ने अपने रचनाकाल में किसान मजदूर की पीड़ा व संवेदना का यथार्थ चित्रण करते हुए बताया हैं कि – अविकसित एंव शोषित वर्ग किस तरह इस स्थिति से जूझ रहा है।

प्रेमचंद्र ग्राम्य–जीवन, चेतना, नगर बोध एंव युग–चेतना के सर्जक माने जाते हैं। समाज उत्थान के लिए समाज के निम्न मध्यमवर्गी जीवन, मानसिकता, विश्वासों की उलझन, रीति–रिवाजों पर प्रेमचंद्र ने अपनी लेखनी से समाज पर साहित्य के माध्यम से सूर्य की भाँति प्रकाश डाला । उनके उपन्यास में समाज की वर्तमान स्थिति को उन्होंने हूबहू साहित्य के द्वारा पाठको तक पहुँचाने का प्रयास किया।

उन्नीसवीं एवं बीसवी शताब्दी को समाज निमार्ण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी में समाज सुधार के विषयों पर लिखा गया। मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प, राष्ट्रीय हित की भावना साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। यह माना जाता है कि किसी भी देश की संस्कृति के इतिहास को पढ़ने के लिए उसके साहित्य को पढ़ना पर्याप्त हैं। विद्वानों ने साहित्य को देश की आत्मा माना है। उनका मानना है कि– ''अँधकार है वहाँ

जहाँ आदित्य नही हैं मुर्दा हैं वह देश जहाँ साहित्य नहीं हैं।''

साहित्य की परिभाषा–

साहित्य को किसी भी परिभाषा में नही बांधा जा सकता । परंतु कुछ विद्वानों ने साहित्य की परिभाषा इस प्रकार से दी हैं –आचार्य कुंतक के अनुसार – ''साहित्य वह हैं जिसमें शब्द और अर्थ की परस्पर स्पर्धामय मनोहारिणी शलाघनीय स्थिति हो।'' (2)

'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ बिट्रेनिका' जो अंग्रेजी का एक बहुत बड़ा प्रामाणिक कोष है, उसमें बताया गया हैं कि – ''साहित्य एक व्यापक शब्द है जो यर्थाथ परिभाषा के अभाव में सर्वोतम विचार की उत्तम लिपिबद्ध अभिव्यक्ति के लिए व्यवहार में आता है।'' (3)

मुंशी प्रेमचंद्र के मतानुसार – ''साहित्य जीवन की आलोचना है चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानी के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए ।'' (4)

साहित्य केवल पुस्तकों मे छपने वाली कहानी, या उपन्यास या काव्य नही हैं, बल्कि समाज में मनुष्य को मानवता के साथ जोड़ने का सार्थक मार्ग हैं।''साहित्यिक भाषा के अंतर्गत समाज में जो साहित्य रचा गया है – जिसकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सुंदर हो ,और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। जिसमें जीवन की सच्चाईयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।''(5)

यदि देखा जाय तो कला और समाज में अनिवार्य संबंध है। कोई कला समाज के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकती । कला का इतिहास प्रायः उतना ही प्राचीन है जितना की मनुष्य का अस्तित्व – अर्थात् समाज का । गिंडिग्स के मतानुसार – '' समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबंधों का योग है जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर संबंध है।'' (6)

साहित्य समाज–व्यवस्था के विविध पक्षों पारिवारिक संबंधो, वर्ग संघर्ष और संभवतः पृथ्थकरण की प्रवतियाँव आबादी की संघटना का प्रत्यक्ष प्रतिबिंध होता है। 'उपन्यास' हिन्दी साहित्य के अंतर्गत एक ऐसी विध ाा हैं जिसमें – ''उपन्यास राजमार्ग पर बढ़ता हुआ एक आईना हैं जो कभी नीले खुले आसमान को और कभी पगार की कीचड़ को दर्शाता चलता है।'' (7)

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका में प्रेमचंद्र, निराला, मुक्तिबोध और उन जैसे तमाम रचनाकारों की मौत, जो एक बेहतर दुनिया के निर्माण के लिए आजीवन संघर्षरत रहे। फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में 'परती परिकथा' उपन्यास में चारों और फैली तमाम – तमाम परती जमीन को तोड़कर जिसमें उन्होंनें गुलाबों ... की खेती करने का सपना देखा था। तो दूसरी और 'मैचा आँचल' का डाक्टर प्रशान्त गाँव में मलेरिया नामक बीमारी की जड़ खोजने जाता हैं परंतु वहाँ उसे असली बीमारी मलेरिया नही बल्कि। गरीबी और जेहालत– इस रोग के दो कीटाणु। उसकी समझ में आ जाता हैं कि समाज में क्रांति ही इस रोग का एकमात्र उपचार है। हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से नारकीय यातना के बोझ से दबे सिसकते भारतीय गाँव की असलियत सेपूरे देश और समाज को परिचित कराया, उनकी भुक्ति के प्रति जन–जन को जागृत करना, उनका इस रूप में नया संस्कार करना कि वे एक भरी–पूरी जिंदगी के इच्छुक, गेहूँ और गुलाब की समान रूप से

आवश्यता महसूस करने वाले आदमी के रहने योग्य बन सके। ''सामाजिक बदलाव में भाग लेने वाली शक्तियॉ मूलतः समाज के आर्थिक – भौतिक जीवन से संबंधित होती है, और वही समाज के ऊपरी विचारात्मक ढांचे से सम्बद्ध धर्म, दर्शन कानून, राजनीति और साहित्य आदि को अनुकूलित तथा नियत करती हैं।'' (8)

प्रत्येक युग में सामाजिक परिवर्तन में साहित्यकार का सबसे बड़ा शस्त्र यह सार्थक शब्द– सम्पदा है, और साहित्य उनका साक्षी है कि उन्होंने जिम्मेदारी के साथ उनका सही अर्थों में उपयोग किया हैं। अर्थात् साहित्य के अंतर्गत खरा साहित्य वही हैं जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता की भावना हों, सौंदर्य का सार हो सृजनकर्ता की आत्मा हो, सत्य का प्रकाश हो – जो हमारे भीतर गति और उत्सुकता को जन्म दे, सोने ना देय क्योंकि अब और ज्यादा सोना समाज के लिए मृत्यु का लक्षण हैं।

संदर्भ :–

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल (2013) हिंदी साहित्य का इतिहास, इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन प्र. सं 54

(2) साहित्यिक निबंध, डॉ. लक्ष्मीनारायण चातक, डॉ. राजकुमार पाण्डेय, प्रकाशकाधीनऋसर्वाधिकार प्रकाशक, कॉलेज बुक डिपो, 83, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर –2 पृ. सं. 2

(3) साहित्यिक निबंध, डॉ. लक्ष्मीनारायण चातक, डॉ. राजकुमार पाण्डेय, प्रकाशकाधीन–सर्वाधिकार प्रकाशक, कॉलेज बुक डिपो, 83, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर– 2 प्र.सं. 2

(4) साहित्यिक निबंध, डॉ. लक्ष्मीनारायण चातक, डॉ. राजकुमार पाण्डेय प्रकाशकाधीन – सर्वाधिकार प्रकाशक, ' कॉलेज बुक डिपो, 83, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर –२ पृ.सं. 3

(5) कुछ विचार, प्रेमचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, पृ.सं 6

(6) डॉ. धर्मवीर महाजन, समकालीन समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृ. सं 358

(7) साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र. सं. 13

(8) साहित्य और सामाजिक संदर्भ, शिवकुमार मिश्र संस्करणः प्रथम 1977, प्रकाशक कला प्रकाशन प्र. सं 85

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 72-73

भारतीय परिवेश में हिन्दी साहित्य व समाज का संबंध

गिरीश कुमार गौतम
सहायक आचार्य
जवाहरलाल नेहरू शिक्षा शास्त्री महाविद्यालय
सकतपुरा, कोटा (राज0)

साहित्य व समाज में अविछिन्न संबंध रहा है। फिर चाहे वह साहित्य किसी भी भाषा का हो। साहित्य में समाज की छवि स्पष्ट नजर आती है। अतः कहा भी गया है कि – ''साहित्य समाज का दर्पण है।''(द्विवेदी जी)

समाज में व्याप्त अनेक आंकाक्षाऐं, कुण्ठाऐं, मूल्य व विसंगतियां साहित्यकारों की भाव संवेदनाओं को उभारकर उन्हे रचना के लिए उत्प्रेरित करती है। अतः हम यहां यह भी कहेगें कि साहित्य समाज का दर्पण ही नही वरन् वह समाज में वांछित परिवर्तन और पुनर्जागरण का शंखनाद भी करता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और वह समाज में रहकर ही समस्त क्रियाओं को संपादित करता हैं। आजका हमारा छात्र वर्ग कल के समाज का भावी कर्णधार है, समाज से यही अपेक्षा की जाती हैं कि वह ऐसी युवा शक्ति सामर्थ्य का निर्माण करे जिससे वह देश व समाज के नवनिर्माण को सही दिशा प्रदान कर सके।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार केवल पुस्तकीय ज्ञान से समाज का विकास नही हो सकता। हमें समझना होगा कि समाज के स्वस्थ निर्माण में वही साहित्य सहायक होगा जिससे समाज के लोगो का चरित्र निर्माण हो, और ऐसी स्थिति में सभी साहित्यो मे हिन्दी साहित्य को हम प्रथम स्थान पर देख सकते है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत समाज में आये विभिन्न उतार–चढ़ाव, विसंगतियों, मूल्यों इत्यादि को इसमें स्थान दिया गया है।

यहा यह कहना भी अतिश्योक्तिपूर्ण नही होगा कि – **''समाज व साहित्य अन्योन्याश्रित है।''**

भारतीय समाज प्राचीनकाल का हो या वर्तमानकाल का इसका वास्तविक स्वरूप हमें हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। साहित्य निर्माण के कार्य से पूर्व समाज का निर्माण होता है, और ये दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते है।

यहां प्रश्न भारतीय समाज की उन्नति या देश की उन्नति अथवा विश्व की उन्नति का हो सभी में हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। साहित्य को विद्धानों ने ज्ञान राशि का संचितकोष भी कहा है।

भारतीय परिवेश की सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, परम्पराऐं आदि का निर्देशक हिन्दी साहित्य ही है।

हम स्वीकार करते है कि सभी भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा है। अतः सर्वप्रथम उल्लेख हमें संस्कृत साहित्य का ही प्राप्त होता है। लेकिन संस्कृत साहित्य को पढ़ना थोडा क्लिष्ट पाया गया, इसलिए हिन्दी साहित्य के अनेक विचारको, लेखकों ने प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक के भारतीय परिवेश का वर्णन हिन्दी भाषा में बढ़े ही सुन्दर व व्यावहारिक रूप में किया है। वेदो, पुराणों, प्राचीन हिन्दी/संस्कृत नाटकों– काव्यो को देखकर/पढकर ही हम उस काल विशेष के समाज का ज्ञान प्राप्त कर सकते है। तत्कालीन समाज का सुख–दुख, रहन–सहन, आचार–विचार सभी कुछ हिन्दी साहित्य में प्रतिबिम्बित होता हैं।

साहित्य का प्रभाव समाज पर विलम्ब से पडता है। रूसों, गांधी, मार्क्स आदि मनीषियों के विचारो पर आधारित साहित्य आज समाज को द्रुत गति से बदल रहा है। स्वतंत्रता, समानता, आत्मनिर्णय जैसी विचारधारा समाज को साहित्य में ही प्रदान की है।

हिन्दी साहित्य मानव को प्रकाश देता है, और उसके शारीरिक व मानसिक तंतुओं को विकसित भी करता है। हिन्दी साहित्य समाज में अंहकार रूपी अज्ञान को मिटाने वाला प्रकाश स्तम्भ है। हिन्दी साहित्य में वह शक्ति है, जो समाज को प्रतिक्षण प्रभावित करती रहती है।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 74-82

हिन्दी कविता में प्रेम की अभिव्यक्ति

हेमपुष्पा नायक
शोधार्थी (हिन्दी)
शासकीय नवीन महाविद्यालय , बिर्रा
जिला– जांजगीर चाम्पा (छ.ग.)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के संपूर्ण इतिहास को चार काल में विभक्त किया है – आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल

प्रेम का वर्णन इन समस्त कालों के साहित्य में किया गया है। वीरगाथा काल (आदिकाल) में कवियों ने आश्रयदाताओं के प्रेम का वर्णन तो किया है, पर अपने हृदय की चिन्ता करते वे नहीं दिखाई देते। भक्तिकाल में जीवन केवल पूजा का फूल बनकर रह गया। रीतियुग में भी अपने हृदय की बात कम ही कही गयी है, कही भी गई है, तो राधा – कृष्ण के प्रेम की ओर से, जिसका कहना न कहना बराबर है। व्यक्तिगत प्रेम की चर्चा भारतेन्दु और द्विवेदी युग में भी नही के बराबर हुई। लेकिन छायावाद युग के प्रारंभ होते ही व्यक्तिपरक रचनाओं की भरमार हो गयी। प्रसाद के ''आंसू'' और पंत की 'ग्रंथि' प्रेम की पीड़ा की बड़ी तीखी पुकारे हैं। अपनी प्रिया को संबोधित 'निराला' की स्पुट रचनाएँ भी कम मार्मिक नहीं। ऐसी ही करूण मधुर कृतियाँ 'बच्चन' की 'निशा–निमंत्रण' 'संतरंगिनी' और 'मिलन–यामिनी' है। इसके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, नवीन, नरेन्द्र शर्मा, तारा पांडेय, अंचल, चन्द्रमुखी ओझा, 'सुधा' और नीरज आदि की रचनाओं में प्रेम की अक्षय निधि रक्षित है। प्रयोगवाद के व्यापक प्रचार के बीच भी लौकिक प्रेम की पुकार कभी मंद नही पड़ी। पत्र–पत्रिकाओं में प्रेम–संबंधी ऐसी मार्मिक रचनाएँ पढ़ने को मिल जाती हैं कि कभी तो हृदय–कमल की पंखुड़ियाँ एकदम खिल उठती है और कभी मन सहसा उदासी में डूब जाता है।

आधुनिक युग एक प्रकार से 'वादों का युग है। बीसवी शताब्दी में जिन साहित्यिक वादों का प्रचार हुआ, उनमें छायावाद, रहस्यवाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद मुख्य है।

भारतेन्दु ने समाज और साहित्य के लिए बहुत कुछ किया है। हरिश्चन्द्र का जीवन एक से प्रेम का जीवन था। उनके शब्द–शब्द से प्रेम टपकता है। अनेक प्रकार से प्रेम की व्याख्या उन्होंने की और उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया। रसिकता और पीड़ा का विचित्र संयोग भारतेन्दु के प्रेम सम्बन्धी कविन्त–सवैयों में पाया जाता है। रीतिकाल के मस्त प्रेमी–कवियों की सी सरसता और कोमलता उनमें पायी जाती है।

प्रेम में बहुत कुछ पाकर भी हरिश्चंद्र का हृदय पूर्ण रूप से कभी संतुष्ट नही हुआ, इसी से संयोग की अपेक्षा वियोग–सम्बन्धी उनकी रचनाएँ अधिक प्रभावशाली हुई है–

(1)

जानि सुजान मैं प्रीति करि सहिकै जग की बहु भाँति हंसाई।
व्यों 'हरिचंदजू' जो–जो कहो सो करयो चुप है करि कोटि उपाई।
सोऊ नही निबही उनसों उन तोरत बार कहू न लगाई।
साँची भई कहनावति वा अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई।।

(2)

दिल मेरा ले गया दगा करके,
बेवफा हो गया वफा करके।
हिज्र की शव घटा ही दी हमने,
दास्तां जुल्फ की बढ़ा करके।
दोस्तों कौन मेरी तुरबत पर,
रो रहा है 'रसा' 'रसा' करके।

स्वभाव से जगन्नाथ दास रत्नाकर जी बड़े सरल, रसिक और हँसमुख थे। उनकी कृति 'उद्धव–शतक' प्रेम की गंभीरता का उज्जवल प्रतीक है। उद्धव–शतक गोपी–उद्धव संवाद पर आधारित प्रबंध काव्य है। गोपियाँ प्रेम के लिए प्रेम करती है। प्रेम के इस गौरव के सामने योग की शक्तिक्षीण और उसके आलोक के सामने ज्ञान की छाया फीकी प्रतीत होती है।

उद्धव–शतक में भी सूर के 'भ्रमर–गीत' के समान ज्ञान के ऊपर प्रेम की विजय का प्रयत्न पाया जाता है। इसमें उद्धव ज्ञान के पक्ष में है, गोपियाँ प्रेम के पक्ष में। गोपियों के अनुसार ज्ञान का मार्ग कठिन है वह युवतियों के स्वभाव के अनुकूल नही और उसमें व्यक्तित्व का विनाश हो जाता है। उनके तर्क भावना का आधार लेकर चलते हैं, अतः सरल होने पर भी, एक दृष्टि से अकाट्य है

वे तो बस बसन रँगावै, मन रंगत ये,
भसम रमावैं वे, ये आपु ही भसम हैं।
साँस–साँस माहिं बहु बासर बितावन वे,
इनके प्रत्येक साँस जात ज्यों जनम है।
हवैकै जगमुक्ति सों विरक्त मुक्ति चाहत वे
जानत ये भुक्ति–मुक्ति दोऊ विष सम है।
करिकै विचार उधों–सूधौ मन माहिं लखौ।

जोगीसो वियोग–भोग–भोगी कहाँ कम हैं ?

उद्धव पर सबसे पहला प्रभाव ब्रज के वातावरण का पड़ता है। गोपियों के सम्पर्क में आकर तो उन्हें ऐसा लगता है जैसे वे प्रेम की प्रतिभाओं के सामने ही बैठे हों। यों गोपियों के व्यंग्य बड़े तीखे है, पर सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, वे उनके हृदय की निश्छलता से प्रेम के आवेग और उसकी अधीरता वे चित्रण में कवि ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी है :–

दीन दसा देखि ब्रज–बालनि की ऊधव कौ,
गरि गौर गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै ''रत्नाकर' न आए मुख बैन, नैन,
नीर भरि लाए, भए सकुचि सिहाने से।
सूखे से, स्रम से सकबके से, सके से थके,
भूले से, भ्रम से, भभरे से, भकुवाने से।
हौले से, हले से, हूले,–हूले से द्विये में हाय।
हरे से, हरे से, रहे हेरत हिराने से।

माखन लाल चतुर्वेदी की कविताओं में भी हमें प्रेम–वर्णन के प्रसंग मिलते हैं। इसके प्रेम–वर्णन में स्त्री–पुरूष दोनों के हृदय का स्पंदन मिलता है। नारी के मन को रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए उसकी भावनाओं के विकास का चित्रण यौवन का उन्माद और प्रणय के माधुर्य के सहारे किया गया है। मिलन के चित्रों में आनंद और उल्लास की सहज अभिव्यक्ति पायी जाती है। अन्य सभी कवियों के समान चतुर्वेदी जी भी प्रेम की सार्थकता, उसकी सफलता में मानते हैं। भेंट का एक चित्र–

तुम मिले तो प्रणय पर छटा छा गई।
चुम्बनों, साँवली–सी घटा छा गई।
एक युग, एक दिन, एक पल, एक क्षण
पर गगन से उतर चंचला आ गई!
प्राण का दान दे, दान में प्राण ले,
अर्चना की अधर चाँदनी छा गई!
तुम मिले प्राण में रागिनी छा गई!

रामनरेश त्रिपाठी के कृतियों में भी स्थान–स्थान पर प्रेम के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। इनके प्रमुख चार काव्य–ग्रंथ हैः– मिलन, पथिक, मानसी, स्वप्न । प्रेम, पवित्र, लोकोपकारी और उदान्त है । इसके

संबंध में कवि का कहना है:–

गंध–विहीन फूल है जैसे
चंद्रे–चंद्रिका हीन,
यों ही फीका है मनुल्य का,
जीवन प्रेम विहीन।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है,
प्रेम अशंक अशोक
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है,
प्रेम हृदय आलोक।

गोपालशरण सिंह द्विवेदी युग के प्रतिष्ठित कवियों में से है। इनके काव्य में भी प्रेम की गंभीरता और कोमलता के तत्व पाए जाते है। भावनाओं की सुन्दरता इस बात में निहित है कि वे सभी संयम से शासित हैं। अपनी प्रेमिका के अनुपम सौंदर्य पर ये मन से मुग्ध है और उसकी निकटना के लिए अत्यधिक लालायित। इनके काव्य में प्रतीक्षा, मिलन और विरह की अभिव्यक्ति अकृत्रिम भाव से हुई है। सभी प्रेमियों के समान अपने प्रेम–पात्र से कुछ न कुछ शिकायत इन्हें भी है–

मेरे लोल लोचन को उसने लुभा है लिया,
चुपचाप मेरे चित्त–वित्त को चुराया है
उसने किया है मुझे वश में सभी प्रकार,
निज अधिकार उर–देश भेज जमाना है।
निज गुण–जाल में फँसा है लिया मेरा मन,
रहता सदैव वह प्राणों में समाया है।
किन्तु मुझे आज तक वह है न जान पाया,
मेरे प्रेम को तो पहचान भी न पाया है।

प्रेम की अनुभूति का विकास अत्यंत स्वाभाविक रूप से सुमित्रानंदन पंत जी ने काव्य में हुआ है। इनका काव्य–संग्रह 'ग्रंथि' एक प्रेमपरक खंड–काव्य है। कथा में दो ही पात्र है– कवि और बालिका। 'ग्रंथि' अत्यन्त निर्दयता से तोड़े गए कोमलतम हृदय का करूण चित्कार है। कवि की प्रेमिका का हाथ जब किसी और के हाथ में दे दिया जाता है तो उसका हृदय हा–हा कर उठता है :–

''शैवालिनी! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन को,
चँद्रिके! चूमों तरंगो के अधर,

उडुगणों! गाओ, पवन–वीणा बजा।

पंत जी की कृति 'पल्लव' में भी प्रेम–संबंधी रचनाएँ है। 'गुंजन' में '' भावी पत्नि के प्रति'' रचना की गणना भी प्रेम की रचनाओं में होगी। इस संग्रह में प्रेम–संबंधी दो रचनाएँ अत्यंत मार्मिक है। उसमें एक है– संयोग–संबंधी, दूसरी वियोग–संबंधी, एक का शीर्षक है, ''गृह काज'' और दूसरी का ''प्रतीक्षा''। 'युगांत' में प्रणय–जीवन से संबंधित केवल एक रचना है परन्तु वह अकेली रचना ही अत्यन्त रसपूर्ण है। 'स्वर्ण धूलि' में प्रणय– जीवन से संबंधित कुछ अत्यन्त कोमल भाव–गीत है।'' एक उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टव्य है–

बाँध दिये क्यों प्राण
प्राणों से!
तुमने चिर अनजान
प्राणों से!
गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा,
प्राणों की न रूकेगी
बढ़ती विरह व्यथा,
विवश, फूटते गान,
प्राणों से!

भगवतीचरण, वर्मा की काव्य–कृति 'प्रेम संगीत' में भी प्रेम–संबंधी बीस–रचनाएँ है। उनकी कविता 'तुम मृगनयनी' में भी प्रेम का चित्रण हुआ है।

तुम मृगनयनी, तुम पिक बयनी
तुम छवि की परिणीता–सी,
अपनी बेसुध मादकता में
भूली–सी, भयभीता सी।
तुम उल्लास भरी आई हो
तुम आई उच्छ्वास भरी,
तुम क्या जानों मेरे डर में
कितने युग की प्यास भरी।
तुम क्रीड़ा की उत्सुकता भी
तुम रति की तन्मयता–सी,
मेरे जीवन में तुम आओं,

तुम जीवन की ममता–सी।'

महादेवी वर्मा की गणना छायावाद युग के महानतम कवियों–प्रसाद पंत, निराला के साथ होती है। इनके काव्य ग्रंथ हैं– नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा। महादेवी माधुर्य भाव की उपासिका है। ब्रह्मा को उन्होनें प्रियतम के रूप में देखा है। अपने प्रेमपात्र के लिए उनका सामान्य संबोधन तो 'प्रिय' दी है, पर और भी बहुत नामों से वे उन्हें पुकारती हैं। महादेवी के ह्रदय का प्रेम निर्गुण ब्रह्मा के प्रति है। महादेवी के गीत उज्जवल प्रेम के गीत हैं। यह प्रेम एक–पक्षीय अधिक है। इधर से जिस आवेग, जिस वेदना का प्रदर्शन हुआ है, उस ओर से वैसा नही। विरह में आंतरिक पीड़ा और उस पीड़ा के बाध्य लक्षणों के बहुत मार्मिक और स्पष्ट वर्णन इनकी कृतियों में मिलते है–

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करूणा, कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार–तार
अनुराग भरा उन्माद–राग,
आँसू लेते वे पद–पखार। – नीहार

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।

मुझे न जाना अलि, उसने
जाना इस आँखों का पानी,
मैने देखा उसे नहीं
पदध्वनि हैं केवल पहचानी
मेरे मानस में उसी स्मृति
भी तो विस्मृति बन आती,
उसके नीरव मंदिर में
काया भी छाया हो जाती
क्यों यह निर्मन खेल सजनि, उसने मुझसे खेला सा है ?' – नीरजा

रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित 'उर्वशी' पाँच अंको में समाप्त एक काव्य रूपक है। इसका केन्द्रीय भाव है– प्रेम। प्रेम की ऐसी पूर्ण और रसमयी विवृत्ति शायद ही अन्यत्र पायी जाय। पहली बात यह कि यह समर्थ प्राणियों का प्रेम है। पुरूरवा एक प्रतापशाली सम्राट है उर्वशी स्वर्ग की महिमा मयी अप्सरा है जिसका सौंदर्य कभी

क्षीण नही होता। प्रणय–व्यापार प्रकृति के रम्यतम वातावरण में चलता है। यह प्रेम केवल शरीर तक सीमित न रहकर मन और आत्मा के शिखरों को स्पर्श करता है।

प्रेम के संबंध में उर्वशी की अनुभूति दृष्टव्य है–

उर्वशी

तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन में,
मन से, किन्तु, विषण्ण दूर तुम कहाँ चले जाते हो?
बरसाकर पीयूष प्रेम का, आँखो से आँखों में,
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो?
कभी–कभी लगता है तुमसे जो कुछ भी मैं कहती हूँ,
आशय उसका नही, शब्द केवल मेरे सुनते हो।
क्षण में प्रेम अगाध, सिंधु हो जैसे आलोडन में,
और पुनः वह शांति, नही जब पत्ते भी हिलते हैं।
अभी दृष्टि युग–युग के परिचय से उत्फुल्ल, हरी सी,
और अभी यह भाव, गोद में पड़ी हुई मैं जैसे
युवती नारी नही, प्रार्थना की कोई कविता हूँ।

पुरूरवा

दाह मात्र ही नहीं, प्रेम होता है अमृत–शिखा भी,
नारी जब देखती पुरूष को इच्छा भरे नयन से,
नहीं जगाती है केवल उद्वेलन, अनल रूधिर में,
मन में किसी कांत कवि को भी जन्म दिया करती है,
देह प्रेम की जन्म–भूमि है, पर उसके विचरण की,
सारी लीला–भूमि नहीं सीमित है रूधिर–त्वचा तक,
यह सीमा प्रसरित है मन के गहन गुह्य लोको में,
जहाँ रूप की लिपि अरूप की छवि आँका करती है,
और पुरूष प्रत्यक्ष विभासित नारी–मुख मंडल में
किसी दिव्य अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है।'

उत्तर छायावाद–काल के कवियों में नरेन्द्र शर्मा की ख्याति 'प्रवासी के गीत' से प्रारंभ होती है, जिसका मुख्य विषय है– लौकिक प्रेम। एक युवक अपनी प्रेमिका से बिछुड़कर परदेश चला जाता है और उसके विरह में जो गीत उसके हृदय से उमड़ पड़े है, उन्होनें 'प्रवासी के गीत का रूप धारण कर लिया है। प्रेम को कवि इतना

महत्वपूर्ण समझता है कि वह उसके जीवन का एकमात्र आधार बन गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेगे?
आज से दो प्रेम–योगी अब वियोगी की रहेंगे।
आज से हम तुम गिनेगें एक ही नभ के सितारे,
दूर होगें पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे
सिंधु तट पर भी न जो दो मिल सकेगें?
आज के बिछडे न जाने कब मिलेगें?'
''साँझ होते ही न जाने छा गई कैसे उदासी?
क्या किसी की याद आई, ओ विरह–व्याकुल प्रवासी।'

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में भी प्रेम की अनुभूतियों के विविध प्रसंग, विविध क्षण एवं विविध स्वर में है। उनकी प्रेम की अनुभूति ऐसी है जो अन्तरमन को ही नही संवेदित करती है बल्कि प्रकृति के विविध क्षेत्रों में भी उसके होने का एहसास होता है।

प्रेम में अद्‌भूत शक्ति है, प्रेम की जिस शक्ति के सहारे मध्यकालीन भक्त कवि ईश्वर का साक्षात्कार करने की अपराजेय क्षमता का अनुभव करते हैं उसी तरह की शक्ति का अनुभव बिना किसी पौराणिक मिथक का आरोपण करते हुए सर्वेश्वर करते है।

आदि से अन्त तक प्रेम लौकिक एवं दैहिक है फिर भी उसकी अभिव्यक्ति कितनी उदार है–

अहं से मेरी बड़ी हो तुम
क्योंकि मेरी शक्तियों की
हर पराजय जीत की
अंतिम कड़ी हो तुम
जहाँ रूककर
फिर नई मैं टेक गढ़ता हूँ।
चूंकि पैरों के तले मेरे न हो फिर भी
हर ना संघर्ष के विष–श्रृंग चढ़ता हूँ।
क्योंकि अंतर में
अतल गहरे–
आस्था के टूटते असहाय रथ के चक्र थामें
नित खड़ी हो तुम।'

कुछ कवियों की कविताओं में अभिव्यक्त प्रेम का वर्णन यहाँ किया गया है। हिन्दी साहित्यकारों की एक विशाल श्रृंखला है, जिनके साहित्य में प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यन्त सरस रूप से हुयी है। प्रेम अनन्त एवं

अनादि है। यह एक अहसास है। यह महसूस की जा सकती है। यह अहसास हमको ईवश्वरीय वरदान के रूप में प्राप्त हुआ है। विश्व प्रसिद्ध विश्व के सात अजूबों में शुमार 'ताजमहल' प्रेम की ही निशानी है। साहित्य के इतिहास के पन्नों में अनेक ऐसे अनमोल रत्न है, जिन्होनें प्रेम का पाठ पढ़ाया है।

अंततः यही कहा जा सकता है कि बिना प्रेम कि सच्चा साहित्य नहीं रच सकते। साहित्य के मूल में प्रेम अवश्य ही है। न केवल भारतीय लेखकों ने अपितु पाश्चात्य लेखको ने भी अपने साहित्य में प्रेम का वर्णन किया है और उन्होनें भारतीय साहित्यकारों को भी प्रभावित किया है।

हिन्दी साहित्य की न केवल कविताओं में अपितु गद्य–पद्य की समस्त विधाओं में प्रेम की अभिव्यक्ति हुयी है। प्रेम के दोनों ही पक्ष–संयोग एवं वियोग का वर्णन साहित्य में होता रहा है। साहित्य में अभिव्यक्त प्रेम में दर्द की टीस है तो कही उद्दीप्त उल्लास। नये–नये उपमानों एवं प्रतीकों का प्रयोग प्रेम की अभिव्यक्ति में होती रही है। प्रेम अपने वेदना एवं आवेग के साथ साहित्य–जगत में प्रदर्शित हुयी है। अंततः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं प्रेम का वर्णन भारतीय साहित्य एवं पाश्चात्य साहित्य में होता रहा है और आगे भी होता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आधुनिक कवि, विश्वम्भर 'मानव' रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद नयी दिल्ली पटना।
2. महादेवी वर्मा – निहार, नीरजा।
3. साहित्य कविता कोष– इंटरनेट।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 83-85

भारतीय संविधान और हिंदी भाषा

डॉ.जे.के.संत, सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र)
शासकीय अग्रणी तुलसी महाविद्यालय अनूपपुर, जिला–अनूपपुर (म.प्र.) पिन को.–484224

प्रस्तावना :–

''लेखनी से तू सदा इतिहास का निर्माण करती है विश्वरूपी चित्र पर तुलिका से रंग भरती है।''

भारतीय संविधान की प्रस्तावना अत्यंत संक्षिप्त, आकर्षक एवं शब्द चयन की दृष्टि से प्रभावशाली है। डॉ. सुभाष काश्यप के अनुसार – 'प्रस्तावना का एक–एक शब्द चित्र है, चित्र जो बोलता है, एक कहानी कहता है– तपस्या, त्याग और बलिदान की कहानी।'

'भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष गुरुदयालसिंह ढिल्लन ने लिखा है,

'भारत की जनता ने जो संविधान स्वाधीन जनता के रूप में अपने आप को अर्पित किया वह एक आदित्य दस्तावेज हैं। हम जिन मान्यताओं को युगों से संजोते रहे और विशेषकर, जो विश्वास, निष्ठा और आकांक्षाएं हमने अपने राष्ट्रीय स्वतंत्रता काल में हृदयंगम की वे इस संविधान में पूरी तरह परिलक्षित होते हैं, ऐसा उदाहरण शायद अन्य बहुत कम संविधानों में मिलेगा। वास्तव में भारत का संविधान राज्य के रूप में नवोदित इस प्राचीन राष्ट्र के लिए एक आस्था पत्र और उसके भविष्य का खाका है।'

के. संथानम के अनुसार,

'संविधान में केवल सरकार के ढांचे की ही व्यवस्था नहीं होती है अपितु उसमें संविधान– निर्माताओं की विचार धाराओं का भी समावेश रहता है। भारतीय संविधान के बारे में यह विशेष रूप से सच है।'

आधुनिक हिंदी के निर्माता 'भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र' ने कहा है–

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति की मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हित के शूल।।'

इस संबंध में राष्ट्रपिता 'महात्मा गांधी' ने देशवासियों को उद्‌बोधन करते हुए ठीक ही कहा था –जैसे अंग्रेज अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में बोलते हैं और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिंदी को भारत माता की एक भाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। जिसके परिणामस्वरुप ही संविधान का विकास निश्चित है।

भाषा, संस्कृति और संस्कारों की संवाहक होती है। हिंदी भाषा मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने और भविष्यत जीवन–संघर्ष में शुचितापूर्ण साधन का उपयोग करते हुए सफल होने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा सहज ग्राह्म और संप्रेष्य तो होती ही है, साथ ही देश और समाज में ज्ञान का प्रकाश भी अपनी भाषा में सरलता व आसानी से व्याप्त होता है। संविधान की प्रगति में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। चूँकि मातृभाषा मनुष्य के संस्कार, संचेतना और विकास का आधार होती है, इसलिए उसके माध्यम से शिक्षा अर्जन सबसे सहज और प्रमाणिक होता है।

भारत की भाषाएं विश्व में सबसे समृद्ध, वैज्ञानिक और सबसे सुंदर भाषाओं में से हैं, जिनमें प्राचीन और आधुनिक साहित्य के विशाल भंडार हैं। भारतीय भाषा में लिखा गया साहित्य भारत के राष्ट्रीय पहचान और धरोहर है। भाषा संस्कृति और कला से अटूट रूप से जुड़ी हुई परिवार की भाषा अपनेपन का एहसास कराती है। और संविधान निर्माण में सर्वथा सहायक होती है। भावनाओं की अभिव्यक्ति भी कहती है संस्कृति के संरक्षण संवर्धन और प्रसार के लिए हमें अपने देश के संविधान की, अपने देश की, अपने समाज की भाषाओं का संरक्षण व संवर्धन करना चाहिए। यह तभी संभव होगा, जब उन्हें नियमित रूप से तथा शिक्षण अधिगम के लिए उपयोग किया जाएगा ।

हिंदी का सर्वांगीण विकास मूलतः देश और आमजन का विकास है।

विश्व में भारत ऐसा देश है, जहां मौसम, खान–पान, वेशभूषा और भाषा में इतनी विविधता है, यह विविधताएं हमारी ताकत है और भाषा यह एकता और एकात्मता का सशक्त माध्यम होती है। भारतीय भाषाओं में जो साम्यता है, वह दूसरे देश की भाषाओं के साथ देखने को नहीं मिलती है। इनके मध्य अनेक प्रकार की सनिंकटता है। इन भाषाओं के स्वरूप में एक अंतर्निहित वैज्ञानिकता भी है, संभव है इन भाषाओं का देववाणी संस्कृत से गहराई से संबंध होने के कारण भी ऐसा हो यह वस्तुतः उच्चारण व व्याकरण दोनों की दृष्टि से एक पूर्ण और वैज्ञानिक भाषा है। एक भाषा है हममें तहजीब का विकास करती हैं, इसी कारण सभी देशों की अपनी एक मूल भाषा होती है, जिसका सम्मान करना देशवासियों का कर्तव्य है। माना की भाषा भावनाओं को व्यक्त करने का एक साधन मात्र है, लेकिन इस साधन में वह बल है जो दुनिया को बदल सकता है, विभिन्नताओं के बीच एक भाषा ही है, जो एकता का आधार बनती है, और हम सभी को इस एकता के साधन का सम्मान करना चाहिए।

सर आइबर जैनिंगस ने लिखा है कि 'भारतीय संविधान अत्यधिक लम्बा, विस्तृत एवं दुष्परिवर्तनशील है।'

संविधान निश्चित रूप से लंबा विस्तृत तो है परंतु दुष्परिवर्तनशीलता सिद्ध नहीं हैं। हमारे संविधान के अनेक अनुपम विशेषताओं के उपरांत भी आलोचकों ने इसकी अनेक कवियों पर प्रकाश डाला है। कतिपय आलोचक हमारे संविधान को 'अभारतीय' मानते हैं तो कुछ इसे 'विविध संविधानों की खिचड़ी' कहकर पुकारते हैं। आलोचकों ने यहां तक कहा है कि यह संविधान भारतीय परिवेश में अनुपयुक्त है और इसका पुनः निरीक्षण होना चाहिए।

संविधान –सभा में एक सदस्य ने कहा था कि,

'यह संविधान लोगों को अधिक विवादी बनाकर न्यायालयों की ओर आकर्षित करेगा..... यह संविधान तो सत्य ही वकीलों का स्वर्ग है.... यह तो परस्पर विवाद के नए मार्ग खोलकर हमारे योग्य वकीलों को पर्याप्त कार्य प्रदान प्रदान करेगा।'

यह सत्य है कि यह संविधान दूबोर्ध, अस्पष्ट एवं जटिल भाषा से युक्त है। संविधान के विभिन्न उप बंधुओं

को विस्तृत एवं असंदिग्ध भाषा में लिपिबद्ध किया गया है इसमें प्रयुक्त भाषा न्यायालय की भाषा है, संविधानिक भाषा है। लगभग प्रत्येक अनुच्छेद के साथ, अपवाद, अर्हताएं तथा व्याख्याएं प्रस्तुत की गई है। भारत के सामान्य नागरिक के लिए संविधान समझना कठिन है। इस संविधान को विधि विशेषज्ञ ही समझ सकते हैं।

परंतु प्रो. पायली का मत है कि

'यह आवश्यक नहीं है कि संविधान की जटिलता परस्पर विवादों का कारण ही बने। किसी वैधानिक प्रलेख की जटिलता और विस्तार का लोगों के परस्पर विवादों से कोई संबंध नहीं है।' अमेरिकी संविधान संक्षिप्त एवं सरल है किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि इस कारण अमेरिका में मुकदमेबाजी कम हुई। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सामने आने वाले विवादों में सबसे अधिक संख्या मौलिक अधिकारों से संबंध मामलों की है। अतः यदि संविधान के किस भाग को वकीलों का स्वर्ग कहा जाता है तो वह मौलिक अधिकार संबंधी भाग ही है । आलोचकों का कहना है कि भारत में संविधान द्वारा अधिकांश शक्तियां केंद्रीय सरकार को सौंप दी गई है और राज्यों की स्थिति नगर पालिकाओं के समतुल्य हो गई है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति, एकीकृत न्याय व्यवस्था, इकहरी नागरिकता, अखिल भारतीय नागरिक सेवाएं तथा राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियां हमारे संविधान के प्रमुख लक्षण हैं। हमारे संविधान निर्माता भारतीय इतिहास के इस तथ्य से परिचित थे कि भारत में जब–जब केंद्रीय सत्ता दुर्बल हो गई तब तब भारत की एकता भंग हो गई और उसे पराधीन होना पड़ा। वे भारत में इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे, अतः उन्होंने केंद्रीय सत्ता को अधिक शक्तिशाली बनाया। इस प्रकार भारत में संघीय प्रणाली का विकास देश की राजनीतिक स्थिति के अनुसार हुआ

निष्कर्ष :– अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान में भाषाओं का योगदान तो रहा ही है, बल्कि साथ ही साथ जीवन में भाषा का सबसे अधिक महत्व होता है। एक भाषा की हममें तहजीब का विकास करती है, इसी कारण सभी देशों की अपनी एक मूल भाषा होती है, जिसका सम्मान करना देशवासियों का कर्तव्य है।

संदर्भ ग्रंथ :-

(1) डॉ. बी. एल. फड़िया, इं..प्रथम वर्ष राजनीति विज्ञान, भारतीय संविधान
(2) डॉ. उमेश कुमार सिंह, भारतीय राज व्यवस्था, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
(3) हिंदी भाषा एवं नैतिक मूल्य इं..तृतीय वर्ष
(4) इंटरनेट माध्यम
(5) प्रतियोगिता दर्पण
(6) दैनिक भास्कर
(7) स्वयं विवेक पर आधारित।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 86-89

हिन्दी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

डॉ. शबाना मनियार, हिन्दी विभाग
सर्वोदय गर्लस कॉलेज शिवमोग्ग कर्नाटक

हिन्दी के विकास में हिन्दी–पत्रकारिता की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में जब हिन्दी–गद्य–लेखन अपने आरंभिक दौर से आगे बढ़ रहा था, हिन्दी–पत्र–पत्रिकाओं के बलबूते पर ही हिन्दी भाषा की संभाव्यता सामने आई। तभी हिन्दी कि शब्द संपदा में वृद्धी हुई। उस काल की हिन्दी–पत्रकारिता की मुख्य चिंता तीन दिशाओं में दिखाई देती है। एक, भाषा की सामर्थ्य को अधिक–से–अधिक बढ़ाने की चिंता, दूसरी, ब्रिटिश हुकुमत की नीतियों का प्रत्यक्षया परोक्ष आलोचना की नीति और तीसरी समाज में फैली कुरीतियों और रूढ़ियों को लोगों के सम्मुख रख कर उनसे निजात पाने की चिंता और साथ में सामाजिक सुधार लाने का प्रयत्न इस काल की पत्र–पत्रिकाओं में दिखाई देता है।

वास्तविकता यह है कि साहित्य और समाज दोनों में नई चेतना लाने वाली हिन्दी की ये साप्ताहिक और मासिक पत्र–पत्रिकाएं थी। देश के उत्तर के दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक के सभी नेताओं में आपसी संपर्क आरंभ में अंग्रेजी के माध्यम से हुआ था। पर सभी शीर्ष नेताओं में तेजी से यह विचार घर कर रहा था कि देश के लिए संपर्क–भाषा का काम अंग्रेजी से इतर किसी देशी भाषा लिया जाना चाहिए। अंग्रेजों ने सन् 1911 से पहले अपनी राजधानी कलकत्ता बना रखी थी। परिणामतः राजनीतिक गति विधियों का केंद्र आरंभ में कलकत्ता रहा। भारतीय प्रेस की शुरुआत भी कलकत्ता से ही हुई। शुरु में विलियम बोल्टसने सन 1766 में एक समाचार–पत्र को प्रकाशित किया। इसके बाद जे.के.हिक्की ने सन् 1780 में, बंगाल गंजट नाम के समाचार –पत्र को प्रकाशित किया। उसके बाद अनेक साप्ताहिक, जैसे कलकत्ता कैरियर, ओरिएंट्लस्टार, एशिया टिकमिरर, बंबई गजट, मद्रास से मद्रास गजट इत्यादि पत्र प्रकाशित होते रहे। बंगला में निकलने वाला पहला साप्ताहिक पत्र बंगाल गजट था, जिसका प्रकाशन सन् 1816 में आरंभ हुआ। इसके बाद समाचार दर्पण (1818), संवाद कौमुदी (1821) आदि अनेक पत्र बंगला में निकले। राजा राममोहन राय, जो प्रगतिशील समाचार – पत्र के अगुआ माने जाते है, उनका अंग्रेजी–पत्र ब्राह्मिकल मैगजीन निकलना आरंभ हुआ। बंबई से गुजराती पत्र जामेजमशेद (1831) आदि पत्र निकले। ईश्वरचंद्र विद्या सागर के संपादन में सोमप्रकाश (1858) का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसी

दौरान अनेक अंग्रेजी–समाचार–पत्रों का प्रकाशन भी आरंभ हुआ। टाइम्स आफ इंडिया (1861) स्टेट्समैन (1875) इलाहाबाद से पायनियर (1865) इत्यादि अनेक पत्र निकले।

हिन्दी में निकलने वाले पत्रों में पहला नाम पत्रों में पहला नाम उदंतमार्तंड कालिया जा सकता है। इसका प्रकाशन 30 मई, 1826 से आरंभ हुआ। पहले अंक के प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया। यह उदंतमार्तंड अब पहले–पहल हिंदुस्तानियों के हित जो आज तक किसी ने नहीं चलाया। नाना देश के सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देख कर आप पढ़ाओ समझलें ये। राजा राम मोहन राय, के बंगदूत में भी बंगला के अलावा हिन्दी में भी सामग्री रहती थी। कलकत्ता से और भी कई पत्र निकले। उन में हिन्दी बंगवासी भारत मित्र (17मई, 1878) सार सुधा निधी (13 जनवरी,1879) उचित वक्ता (7 अगस्त, 1880) मत वाला (26 अगस्त, 1923) इत्यादि प्रमुख थे। मत वाला के मुख पृष्ठ पर अकबर इलाहाबादी का यह मशहूर शेर हुआ करता था ।

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो। जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो। इनमें भारत मित्र का अपना विशिष्ट स्थान था। भारत मित्र को आरंभ करने वाले छोटू लाल मिश्र तथा दुर्गाप्रसाद मिश्र थे, पर बाद में सन् 1890 से लेकर सन् 1907 तक इसके संपादक बालमुकुंद गुप्त (1854–1918) थे। भारत मित्र के पहले अंक के संपादकीय वक्तव्य में कहा गया है। जहां तक जिस देश में जिस भाषा में और जिस सम ाज में समाचार पत्र का चलन नहीं है तब तक उसकी उन्नती की आशा भी दुराशा मात्र है, कारणये वोचीज है कि जिसे घर में कोठडी के भीतर बैठक`सारी दुनिया को हथेली पर देखलो अर्थात भूमंडल में जहां जो कुछ विशेष बात होती है वो इसी के द्वारा प्रकाश होती है।

उचित वक्ता (1880) में कलकत्ता से प्रकाशन आरंभ हुआ। उचित वक्ता ने देशी भाषाओं में समाचार–पत्रों के चल न के पीछे अंग्रेजी–समाचार–पत्रो का अनुकरण माना है । इसी अनुकरण (अंग्रेजों के अनेक विषयों में अनुकरण) के प्रभाव से हिंदुस्तानियों में अब थोड़े दिनों से समाचार–पत्रों का चलन हो गया है और अब करके यहां के लोगों को समाचार–पत्रों को पढ़ने का भी कुछ–कुछ शौक हुआ दिखता है। इसी से आज के दिन भारत में जितने पत्र प्रकाश होते है, क्या बंगला, क्या हिन्दी, क्या पारसी, क्या गुजराती, क्या मराठी–सभी पत्रों में प्रभाव शाली अंग्रेजी पत्रों ही का प्रतिबिंब प्रतिफलित हो रहा है, उन्ही के प्रकाश में इन पत्रों के दर्शन होते है।

सभी भारतीय भाषाओं के लिए समान लिपि अपनाई जाए इस उद्देश्य से कलकत्ता से एक पत्र देवनागर नाम से प्रकाशित किया गया। कलकत्ता में एक लिपि–विस्तार–परिषद की स्थापना की गई थी। इसके आदि संचालन जस्टिस सारदाचरण मित्र थे मित्र ने एक वक्तव्य में कहा–इस समय हम लोग अन्य प्रदेश के साहित्य में निपट अनभिग्न है, इस समय कितने ही विद्वान बंगाली लोग तुलसी दास के भी प्रबंधन हीं पढ़ सकते। यह क्या सामान्य दुःख की बात है। सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी–लिपि को अपनाया जाए इसके लिए देवनागर पत्र ने अथक प्रयास किया।

पत्रकारिता रूपी भवन की पहली ईंट शुक्लजी ने रखी। इसलिए पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका ऐतिहासिक महत्व स्वंय में व सिद्ध हो जाता है। भारत में प्रकाशित होने वाला पहला हिन्दी भाषा का अखबार उदंतमार्तंड 30

मई 1826 को शुरु हुआ। इसके जन्मदाता शुक्ला जी है। इस दिन को "हिन्दी पत्रकारिता दिवस "के रूप में मनाया जाता है। क्योंकि इसने हिन्दी भाषा में पत्रकारिता की शुरुवात को चिन्हित किया था।

अहिन्दी भाषी क्षेत्र के होते हुए भी पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का हिन्दी प्रेम स्मरणीय है। वे हिन्दी समाचार दृ पत्रों के जन्मदाता और संपादक भी थे। शारदीय नवरात्र में जन्म होने के कारण दुर्गा प्रसाद नाम धारण किया। उदन्तमार्तंड और सामदण्डमार्तण्ड के बंद होने के बाद कलकत्ते से हिन्दी का कोई पत्र नहीं निकलता था, यह कमी दुर्गा प्रसाद जी को बराबर खटक रही थी। उचित अवसर पाकर पं. छोटुलाल मिश्र और दुर्गा प्रसाद जी के संपादकत्व में भारत मिश्र का प्रकाशन शुरू हुआ। पर कुछ मतभेद के कारण एक वर्ष बाद मिश्र 'भारत मित्र से अलग हो गए वे भारत मित्र के अलावा ...सारसुधानिधी, उचित वक्ता, मारवाडी बन्धु, जम्बू प्रकाश आदि पत्रिकाओं का संपादक किया।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र उन महान पुरूषों में है जो अपनी असाधारण विशेषताओं की अमिट छाप छोड़ जाते हैं। 18 वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने अपनी साहित्यिक विलक्षण प्रतिभा एवं सूझ–बूझ में साहित्य के क्षेत्र में इतना कार्य किया जितना अन्य किसी साहित्यकार ने नहीं किया। भारतेंदु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। भारतेन्दु जी ने 15 अगस्त 1867 को काशी से कवि वचन सुधा मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर हिन्दी पत्रकारिता के कुछ नये युग का आरम्भ किया।

हिन्दी पत्रकारिता की प्रारंभिक अवस्था को सुदृढ करने में बाबु बालमुकुन्द गुप्त का विशिष्ट स्थान है। श्री गुप्त जी उर्दू की दुनिया से हिन्दी में पधारे थे। रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें अपने समय का सबसे अनुभवी और कुशल सम्पादक माना था। उनका व्यंग्य उनके विरोधियों को झकझोर देता था। "शिव शम्भू के चिट्ठे" में लार्ड कर्जन पर जो उन्होंने खुला और निर्भिक प्रहार किया था, वह नैतिक बल और भाषाई क्षमता का अपूर्व उदाहरण है अपने समय में उनका हिन्दी पत्रकारिता के आकाश पर अखंड साम्राज्य था। गुप्त जी सन् 1886 में हिन्दोस्तान के सम्पादकीय विभाग में आए। यहीं से उनकी हिन्दी सेवा आरम्भ होती है। यहीं पर उन्होंने प्रताप नारायण मिश्र से हिन्दी में कविता करनी सीखी। सन् 1862 में गुप्त जी अमृत लाल चक्रवर्ती के सम्पादकत्व में प्रकाशित "हिन्दी बंगवासी में अनेक विषयों पर गद्य और पद्य लिखकर हिन्दी विकास में अपना सक्रिय योगदान किया।

पं. बालकृष्ण भट्ट जी ने अपनी मनोभावनाओं को जनता तक पहुंचाने तथा समाज में नई जागृति पूजन के लिए 1 सितम्बर 1877 को अपनी मासिक हिन्दी पत्रिका "हिन्दी प्रदीप" को विक्टोरिया प्रेस प्र्याग से प्रकाशित किया। इस पत्रिका के माध्यम से जनसाधरण में चेतना लाने का वातावरण तैयार किया। 1880 के बाद के समय में जो समाचार प्रकाशित हुए है उनमें से कुछ महत्वपूर्ण उचित वक्ता, सजन कृर्ति, सुधाकर, क्षत्रिय पत्रिका, आनंद कदंबिनी, वैष्णव, ब्रह्मण और हिन्दुस्तान आदि इस काल में अनगिनत पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन में पत्रकारिता काल में परिपक्वता आती गई समाचार पत्रो के प्रकाशन की दृष्टि से इसे सबसे समृद्ध युग माना जाता है। इस युग में 200 से भी अधिक समाचार पत्रों का आरम्भ हुआ।

राजनीतिक चेतना के स्वरूप 1921 से हिन्दी पत्रकारिता ने करवट ली ? गांधी के आगमन हिन्दी को

विश्व विद्यालय में स्थान मिला। राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठा और स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति आदि के कारण इस युग कि हिन्दी पत्रकारिता ने अपने विशिष्ट और महत्व को और अधिक स्थापित किया। 1921 में माधुरी नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ और 1923 में चांद का प्रकाशन हुआ। फांसी अंक, स्वाधीनता अंक, और नव जागरण अंक इत्यादि इतिहास के अंक बन गए। बाद में महादेवी वर्मा भी इसकी संपादक बनी और उस दौरान महिलाओं पर आधारित महत्वपूर्ण अंक प्रकाशित हुए। इस युग की पत्रिकाओं का भी हिन्दी पत्रकारिता में महत्वपूर्ण स्थान है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी के विकास एवं प्रचार प्रसार में पत्र –पत्रिकाओं का योगदान अजरा–अमर है। पत्रकारिता के माध्यम से जहां समाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक चेतना लाने का प्रयास किया साथ ही साथ हिन्दी भाषा को हर क्षेत्र में विकास करने का प्रयास किया।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) हिन्दी पत्रकारिता–––ले – डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र
2) बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ ––––––ले– डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र
3) भारतीय पत्रकारिता –कल आज और कल––––––––––––ले–डॉ. सुरेश गौतम
4) हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम ....ले–वेद प्रताप वैदिक

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 90-93

मध्यकालीन काव्यों में संस्कृति का अंतः संबंध

डॉ. जाविद साब मनियार
हिन्दी विभाग, कुवेम्पु विश्व विद्यालय शंकर घट्टा
शिव मोग्गा, कर्नाटक

प्रस्तावना :-

संस्कृति समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान निभाती है। किसी भी समाज का आधार वहां की संस्कृति होती है। संस्कृति जीवन–यापन का एक ढंग है। वास्तव में किसी भी समाज का प्रारुप उसकी संस्कृति कोमलता, प्रेम, दया का प्रसार करती है। वह समाज में भी उसी प्रकार की भावुकता और संवेदना अधिक पाई जाती है। संस्कृति समाज के आचारों विचारों में झलकती है।

मनुष्य संस्कृति का सहारा लेता है क्योंकि संस्कृति मनुष्य को जोड़ती है, तोड़ती नहीं क्योंकि वह दूसरो के लिए जीने की प्रेरणा में से रुप लेती है। संस्कृति में समाज कल्याण और अध्यात्मिक जीवन की प्रगति की भावना भी सन्निहित रहती है। संस्कृति व्यक्ति और समाज को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। भौतिक जीवन देशकाल से प्रभावित होता है परन्तु संस्कृति देशकाल से अनुप्राणित होते हुए भी इससे निरपेक्ष रहती है और सतत् उच्च मानवीय मूल्यों की प्रसारिका का दायित्व निभाती है। समाज विशेष की संस्कृति को सामाजिक आचार–विचार गीत–संगीत, कला साहित्य, रीति रिवाज व्रत–पर्वोत्सव नीति–धर्म, अध्यात्म कला आदि के माध्यम से सहज ही जाना जा सकता है।

संस्कृति का यह पाठ मनुष्य को आज–कल से नहीं बल्कि यह सदियों से हर–एक भाषा साहित्य से मिल रहा है। बल्कि हिन्दी साहित्य का आरम्भ जब से हुआ है तब से विविध प्रकार से विविध माध्यम से मानव को संस्कृति कि पहचान हिन्दी साहित्य के भक्ति आंदोलन के कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, के पदावली में देख सकते है।

संत कबीर का युग ऐसे शासको का युग था जो विधर्मी थे। वे शासक सदा ही धर्म के प्रति दुशमनि का रवैया अपनाते थे। वे भारतीय संस्कृति को अपने अनुसार परिवर्तित करना चाहते थे। भारत भूमी जिसने न जाने कितने धर्मों व सांस्कृतियों को अपने में समेट लिया था, उसी भारत की पवित्र भूमि को ये शासक रक्त की प्यास

व कट्टरता से अपवित्र कर रहे थे, इन विधर्मियों के घात– प्रतिघात सहने के लिए हिन्दु धर्म के पंडितों ने उसे उतना ही कट्टर, बाह्याडंबर व कर्मकांडो से परिपूर्ण कर दिया था। ऐसे समय समाजिक स्थिति जो जर्जर थी ही साथ–साथ राजनैतिक व आर्थिक स्थिति भी उतनी ही धराशाही प्रतीत होती थी। उस समय हिन्दु–मुस्लमानों में संघर्ष चलता ही रहता था। चाहे आक्रमणों के पीछे कितना ही छट्टा कारण क्यों न हो। आंतरिक फूट के कारण देश की एकता उतनी ही कमजोर हो रही थी। उस समय कबीर दास ने समाज की आंतरिक व बाह्य प्रवृत्तियों पर एक साथ चोट की व भावना प्रधान होने की जो प्रेरणा दी उसे समाज कभी नही भूल सकता। ऐसा माना जाता है कि कबीर निरक्षर थे फिर भी उन में स्वानुभूत ¥ÆÉlÉo प्रेम का अक्षय भंडार था उनकी वाणी में सांस्कृतिक परंपरा का मधुर पुट था। वे अपने साखी के गुरू देव कौ अंग में यह प्रस्तुत किया है कि इस संसार में सदगुरु के समान कोई अन्य व्यक्ति नहीं है जो भक्त का आत्मीय हो। गुरू सबसे बड़ा हित चिंतक है गुरू अपनी अदभुत अध्यात्मिक शक्ति से शिष्य को मनुष्य से देवता बना देते है जैसे....."सतगुरू स्वान को सगा, सोधी संईनदाति। हरि जी स्वान को हितु, हरि जन संईन जातीं जायसी का पद्मावत उनके अपने सांस्कृतिक परिवेश अवध की संस्कृति दृष्टि उनकी प्रेम– भावना से अनुप्राणित है। उन्होंने प्रेम की एक सार्वकालिक और सार्वभौम सत्ता की कल्पना की है जो मानव–निर्मित कोटियों के निषेध पर आधारित है। अपने संस्कृतिक परिवेश संस्कृतिक गतिविधियों लोक तत्वों और प्रकृतिकाऐ सा सुन्दर संयोग किया है कि अवध की संस्कृति विश्व संस्कृति का विकल्प बन कर प्रस्तुत होती है। यह महत्वपूर्ण है कि जायसी मुस्लमान होकर एक हिन्दु गृहस्थ की कथा आत्मीयता व सहानुभूति पूर्वक कह रहे थे जायसी की सांस्कृतिक दृष्टि का यह वैशिष्ट्य अवध की संस्कृति के रूप में विकसित करने का प्रयास है।

जायसी अपने शब्द तथा भावों का चयन गांव–गिरांव के छप्परों झोपड़ियों, उत्सवों त्योहारों सामान्य स्त्री –पुरुषों के वार्तालापों से करते है। जो अपने चारों तरफ बिखरे है। तभी तो जायसी के निम्नलिखित पक्तियां देख सकते है .....

"तपै लागि जब जेठ असाढ़ि।
मोहि पिऊ बिन धाजा निभई गांठि।
तन तिनऊ खाझू रौखरी
मई बरखा दुंख आगरि जरीं
बंध नाहि और कंध न कोई
बात न आवै कहौ का गोई।
सांठिन हिजग बात को पूछा।

बिन जिऊ फिरै मूंज तन घूंघां"

यह बरसात के एक रुपक के माध्यम से सामान्य गहिणी के बारे में चिंता को एक साथ बांध दिया गया है। नागमती का वियोग वर्णन जायसी की आत्मियता तथा गहरी समप्त का सूचक है। नागमती के बिरह वर्नन में जायसी ने दो युक्तियों का सहारा लिया है। नागमती तथा पक्षियों का संवाद तथा बारह मासा में अवध की संस्कृति विभिन्न महीनों की विशेषताएं उत्सव त्योहार आदि का सजीव और प्रामाणिक वर्णन मिलता है, जैसे...

"बरसै मघा झकोरि–झकोरि

मोर दोऊ नैन चुबै जस ओरिं''

इसी काल के गोस्वामी तुलसी दास ने भी भाषा और संस्कृत को लेकर अपने पदावलि मे दर्शाए है। उनकी सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि भी उसी समन्वय की विराट चेतना की अभिव्यक्ति है। समाजिक स्तर पर वे जाति–पाति के विरोधि है.....

"जांति–पांति पूछै नहीं कोई हरि को भजे सौ हरि को होई।"

कविता वली में वे कहते कै .....

"धूत कहों अवधूत कहौ रजपू तक हौ जुलाहा कहौ कोई

काहू की बेटि से बेटान व्याह बका हूँ,

की जाती बिगार न सोई।"

तुलसी का अवतार वाद "परित्राणाय साधुना मवि नाशा यम दुष्कृताम " से अनुप्राणित है .....

"जब–जब होई धरम कै हानी।

बाढ़हि असुर अधम अभिमानी"

के द्वारा उन्होंने मध्य यूगी न संस्कृति के अत्याचारी सत्ता की क्रूरता की ओर संकेत किया है। प्रेम मार्गी तथा एक कृष्ण भक्ति शाखा को छोड़कर भक्तिकाल के काव्यों में नारी सर्वथा उपेक्षित रही। कबीर तथा तुलसी की सांस्कृति दृष्ट की आलोचना उनके नारी विषयक विचारों के कारण होती है।

"ढोल गंवार शुद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी"

लेकिन साथ ही तुलसी ने नारी की वेदना को भी अभिव्यक्ति दी ...

"कत विधि सृजी नारि जग माहि

पराधीन सपने हुंसुख नाहि"

इस प्रकार तुलसी के काव्य में नारी विषयक मुद्दे पर एक फांक दिखाती है जिसका कारण उस युग की सांस्कृतिक दशा थी। देव वाणी के ऊपर भाषा को प्राथमिकता देना तुलसी की लोक संग्रही वृत्ति का सूचक है।

लोक भाषा का ऐसा प्रांजल और साधिकार प्रयोग किसी ने नहीं किया। तुलसी दास जी ने भारत की हजारों वर्षो की सांस्कृतिक परम्परा को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया जो उनका वैशिष्ट्य भी है।

निष्कर्ष :

संत काव्य धारा के सर्वाधिक प्रतिभा शाली एवं भक्ति कालीन निर्गुण और सगुण भक्ती के प्रवर्तक कबीर, जायसी तुलसी और सुर जैसे महान संतों ने अपने दोहो पदावली भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परंपरा को लेकर उपदेश दिए हैं जैसे गुरु महीमा, शरीर की नशवरता, परमात्मा की सर्व व्यापकता भक्ति भावना एवं नीतिपूरक लोक मंगल की भावना को जगाने कि बात बताए है। वे ऐसे भक्त कवि हैं जिन के रचना कर्म का एक प्रमुख पक्ष है। सामाजिक विषमता का उन्मूलन और सच्ची संस्कृति की पहचान जीवन के उच्चतर एवं उदात्त मूल्यों से जोड़ने प्रक्रिया एवं शाश्वत आत्मिक शांति मुक्ति और सार्वभौमिक एकता के अहसास के कारण श्रेय भी है ।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) कबीर ग्रंथावली : ले : रामकिशोर शर्मा
2) कबीर मीमांसा : ले : डॉ. रामचन्द्र तिवारी
3) गोस्वामी तुलसीदास : ले : रामचन्द्र शुक्ला
4) पद्मावत संदर्भ कोश : ले : ललित शुक्ला

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 94-97

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का सम्बंध

डॉ. ज्योति पटेल
सहायक प्राध्याजपक (हिन्दी), शासकीय स्नात्कोत्तर महाविधालय टीकमगढ़

शोध सार :-

साहित्य और जनसमूह के हृदय का सैलाब है जो समाज के प्रतिबंब को हमारे सामने प्रस्तुत कर अपनी संस्कृति से रू–ब–रू कराता है। साहित्यिक कृति को एक सामाजिक उपादान कहा गया है, जो साहित्य के जातिय स्वरूप और समकालीन राजनीति को साक्षात प्रकट करता है। 'दर्पण बिम्बउ' वाला दृष्टि कोण साहित्य को दस्तावेज के रूप में देखता है। इसके अनुसार सामाजिक संरचना के विभिन्न पक्षों, सम्बंधों प्रवृत्तियों अर्थात् समाज की पूरी बनावट का सहित्यै में सीधा प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य सदैव संस्कृति के केन्द्र में रहा है लेकिन धीरे–धीरे यह संस्कृति होता गया। यहॉ तक की समाज के लगभग हर पहलू को संस्कृति से जोड़ा जाने लगा है। राजनीति भी संस्कृति के सहारे चल रही है। सांस्कृति विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य। है नैतिक बनावट और कोमल भाव दशाओं की पहचान करते हुए सामूहिक अर्थों का विवेचन क्योंकि ऐसी आत्मगणत और अंतरंग भावनायें दुनिया पर शासन करती है।

साहित्य पर शिक्षा का प्रभाव :-

साहित्य अगर मुक्ति देता है, तो शिक्षा व्यवस्था नियंत्रण की ओर प्रेरित है, साहित्य, अगर चयन देता है, तो शिक्षा व्यवस्था लगातार एक दबाव बनाने की चेष्टा करती है और साहित्य प्रर्वतन का माध्यम है।

कोई भी संस्कृति अपने मूलरूप को कभी नहीं छोड़ती। शिक्षा द्वारा एक और बच्चे अपनी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते है और दूसरी और देश–विदेश की अन्य संस्कृतियों का ज्ञान प्राप्त करते है। साथ ही शिक्षा द्वारा उसमें विवेक शक्ति का विकास होता है और उनका दृष्टि कोण विकसित होता है।

संस्कृति का शिक्षा पर प्रभाव :-

आज किसी भी समाज की शिक्षा उसके धर्म दर्शन उसके स्वरूप उसके शासना तन्त्र उसकी अर्थ व्यवस्था व मनोवैज्ञानिक खोजों और वैज्ञानिक आविश्कारों पर निर्भर करती है। इन्हें न ही दूसरे शब्दों में शिक्षा के दार्शनिक समाज शास्त्रीय राजनैतिक, आर्थिक मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधार कहते है। समाज शास्त्रीय आधारों में सबसे अधिक प्रभावशाली तत्वज समाज विशेष की संस्कृति होता है।

संस्कृति और शिक्षा के उद्देश्य :-

संस्कृति एक बहुत व्यापक सम–प्रत्याय है, यह सम्पूर्ण जीवन शैली का घोतक है। इसमें रहन–सहन एवं खान–पान की प्रतिमान, आचार–विचार रीति–रिवाज, संगीत–नृत्य, भाषा – साहित्यक, धर्म–दर्शन और मूल्य सब कुछ समाहित होते है और अपने आने वाले पीढ़ी को इन सब में प्रशिक्षित कर देना चाहता हैं और तदनकल शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करता है। हम देख रहे है कि धर्म प्रधान संस्कृतियों के समाजों में व्यावसायिक विकास का प्रभाव स्पष्ट है कि किसी समाज की संस्कृति उस समाज की शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करती है।

शिक्षा का धर्म एवं संस्कृति पर प्रभाव :–

संस्कृति एक अंग धर्म एवं विश्वास भी है। भारत धर्म प्रधान था और इसकी शिक्षा व्यक्ति को धर्म परायण बनती रही है। आज भारत धर्म निरपेक्ष देश बना हुआ है। जिससे जीवन में धर्म विश्वास को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। धर्म के सिद्धांतों के लिए आज श्रद्धा नहीं होती है और इसे अन्ध विश्वास की संज्ञा दी जाती है। सहीं रूप में अन्ध विश्वास शिक्षा के कारण समाप्त हो गया। लेकिन तर्क युक्त विश्वास तो होना ही चाहिए। लेकिन ठेठ यथार्थवाद, भौतिकवाद एवं अस्तित्ववाद ने विश्वास एवं धर्म को भी समाप्त कर दिया है। यह शिक्षा का ही संस्कृति पर प्रभाव कहा जाता है।

शिक्षा और संस्कृति एक दूसरे के लिए पूरक के रूप में है। शिक्षा जिस प्रकार संस्कृति के संरक्षण एवं प्रोत्साहन में अपना योगदान देती है, इसी भॉति संस्कृति भी शिक्षा के स्वंरूप के निर्धारण में अपना योग प्रदान करती है।

शिक्षा द्वारा व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया निर्धारित होती है इसका अभिप्रायः प्रचलित व्यवस्थाओं के अनुरूप लगाया समाज की आवश्यकतायें आकांक्षाये शिक्षा

साहित्य संगीत कला विहीन।
साक्षात् पशु पुच्छस तिषाणहीन।।

अर्थात् जिस किसी मनुष्य को जीवन में अगर साहित्य कला संगीत आदि किसी में भी रूचि नहीं है। वह मनुष्य पशु के बिना पूँछ के समान है।

शिक्षा और संस्कृति का विकास :–

यद्यपि प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति को उसी रूप में सुरक्षित रखना चाहता है। जिस रूप में वह उसे प्राप्त करता है। परन्तु। परिवर्तन तो प्रकृति का शाश्वत नियम है। संस्कृति में भी परिवर्तन और विकास की गति बहुत मंद होती है और इसी में अपेक्षाकृत कम मन्दव। परन्तु कोई भी संस्कृति अपने मूल रूप को कभी नहीं छोड़ती। शिक्षा द्वारा एक और बच्चे अपनी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते है। साथ ही शिक्षा द्वारा उनमें विवेक शक्ति से वे आगे चलकर अपनी संस्कृति के मूल तत्वों में से चुनाव करते है एवं अपने अनुभव एवं विवेक के आधार पर उनमें से कुछ में परिवर्तन करते है और इस प्रकार अपनी संस्कृति का विकास करते है। इतना ही नहीं अपितु वे संसार की अन्य संस्कृतियों के भी तत्वों को ग्रहण करते है।

संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियॉ, व्यवहार

प्रतिमानों, रीति–रिवाजों, कला–कौशल, संगीत–नृत्य, भाषा–साहित्य, धर्म–दर्शन, आदर्श विश्वास और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वत भाविक है। आप देखे कि जिस समाज की संस्कृति आत्मप्रधान होती है, उस समाज में शिक्षा स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की प्राप्ति की ओर अधिक झुकी हुई होती है और जिस समाज की संस्कृति भौतिकवादी होती है उसकी शिक्षा प्रतियोगिता पर आधारित होती है और शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति का श्रम भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर नियोजित होता है। दूसरी ओर कोई समाज शिक्षा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखता, उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित करता है और उसमें परिवर्तन एवं विकास करता है। इस प्रकार संस्कृति और शिक्षा में गहरा सम्बंध होता है।

संस्कृति और शिक्षा के उद्देश्य :–

संस्कृति एक बहुत सम्प्रगत्यीय है, यह किसी समाज की सम्पूर्ण जीवन शैली का घोतक है। इसमें समाज विशेष की रहन–सहन एवं खान–पान की विधियॉ, व्यवहार प्रतिमान, आचार–विचार, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्या, भाषा–साहित्य, धर्म–दर्शन, आदर्श विश्वास और मूल्यक सब कुछ समाहित होते है। प्रत्येक समाज अपने आने वाली पीढ़ी को इन सब में प्रशिक्षित कर देना चाहता है और तदनुकूल शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करता है। हम देख रहे है कि धर्मप्रधान संस्कृतियों के समाजों की शिक्षा में चारित्रिक एवं नैतिक विकास पर अधिक बल दिया गया है।

संस्कृति और शिक्षक :–

संस्कृति शिक्षक के स्वरूप को भी निश्चित करती, उसके महत्व को भी प्रभावित करती है। धर्मप्रधान संस्कृतियों में शिक्षक को समाज के पथ प्रदर्शक के रूप में आदर दिया जाता है।

किसी समाज की संस्कृति का प्रभाव उसकी शिक्षा पर पड़ता है तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि किसी समाज की शिक्षा का प्रभाव उसकी संस्कृति पर पड़ता है। संस्कृति किसी भी मानव जाति के इतिहास विशुद्ध सार है। यह उन नीतियों और परम्पराओं से मिलकर बनती है जिसमें उस जाति के दीर्घ समय के अनुभवों का परिणाम निहित होता है। अतः किसी जाति का अपनी संस्कृति से संबंध समाप्त होना विनाशकारी होता है। इस स्थिति में शिक्षा ही एक मात्र उपाय है जो संस्कृति को निरंतरता प्रदान करता है तथा संस्कृति का वर्तमान स्वरूप का अस्तित्वश बनाये रखकर उसे विकास की ओर अग्रसर करता है।

व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में सीखता है और उसे आगामी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। इस कार्य में शिक्षा, संस्कृति को अपूर्व सहायता करती है। यह सत्य है कि व्यक्ति अज्ञात रूप से संस्कृति की अनैक बाते सीखता है।

शिक्षा के द्वारा तकनीकी विकास हुआ है। इससे जीवन के सुख आराम में वृद्धि हुई है फल स्वरूप लोगों का दृष्टि कोण भी बदला है । शीघ्रता और तीव्रता आज जीवन की शैली की प्रमुख विशेषतायें बन गई है। संस्कृति एक अंग धर्म एवं विश्वास है। भारत धर्म प्रधान देश था और उसकी शिक्षा व्यक्ति को धर्म परायण बनाती

रही है। संस्कृति एवं शिक्षा में कितना भी सम्बंध पाया जाता है। संस्कृति एवं शिक्षा दोनों को गहराई से प्रभावित करते है। प्राचीनकाल से आज तक शिक्षा के कारण संस्कृति में परिवर्तन एवं परिवर्दन हुआ और संस्कृति के अनुरूप ही शिक्षा का अर्थ उद्देश्य पाठ्यक्रम निश्चित हुये है। शिक्षा समाज के जीवन को नये मानदण्डों के अनुसार अनुशासित करती है, शिक्षित व्यक्ति अपने ज्ञान कौशल मूल्य एवं आदर्श के आधार पर संस्कृति के निर्माण सुधार एवं विकास में सहायता देता है।

उपसंहार :-

वर्तमान में किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उसके स्वरूप एवं धर्म दर्शन, राजतन्त्र एवं अर्थतन्त्र और मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं वैज्ञानिक आविष्कारों पर निर्भर करती है और समाज का स्वरूप और धर्म एवं दर्शन उसकी संस्कृति के अंग होते है। तब कहना न होना कि किसी समाज की शिक्षा अनेक कार्यों के साथ–साथ समाज विशेष की संस्कृति को सुरक्षित रखती है, उसके एक पीढ़ी में दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करती है और उसमें विकास करती है। आज अंतर्राष्ट्रीयता का युग है, आज सभी प्रगतिशील समाज अपने बच्चों में सांस्कृतिक सहिष्णुसता का विकास करने की ओर प्रयत्नशील है और यह कार्य वे शिक्षा द्वारा ही कर रहे है। एक वाक्यो में हम कह सकते है कि किसी समाज की संस्कृति और शिक्षा किसी न किसी रूप और मात्रा में एक दूसरे को प्रभावित करते है और एक ऐसा चक्र जो सदैव से चलता आ रहा है और सदैव चलता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ :-

(1) साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका – मैनेजर पाण्डेय

(2) इतिहास और आलोचना – नामवर सिंह

(3) साहित्य और सामाजिक परिवर्तन – रमेशचन्द्र शाह

(4) साहित्य का समाज शास्त्रीय चिंतन – निर्मला जैन

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 98-102

समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका

डा. कल्पना जैन, प्राचार्या
शिक्षा विभाग, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी मुरादाबाद

प्रस्तावना :-

किसी भी राष्ट्र के सम्पूर्ण उत्थान के लिए शिक्षा ही वह आधारशिला है जिस पर एक आदर्श समाज की इमारत खड़ी की जा सकती है क्योंकि पढ़ा–लिखा समाज ही आदर्श समाज की और अग्रसर होता है। शिक्षा ही समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करती है। आदर्श समाज का तात्पर्य यह है जहाँ विभिन्न जातियाँ तो हों परन्तु जातीय आधार पर कोई वर्ग भेद न हो, अनेक संस्कृतियाँ तो हो परन्तु उनमें आपसी द्वेश न हो, कोई धर्म के नाम पर संघर्ष न करे, अपना आर्थिक विकास तो करे लेकिन किसी का शोषण न करे। शिक्षा इन सारे कार्यों को आसान बना देती है।

समाज का अर्थ :-

सामान्यतः व्यक्तियों के समूह को समाज कहा जाता है, लेकिन समाज का यह अर्थ सही नहीं है, व्यक्तियों के निरुद्देश्य समूह को हम समाज नहीं कह सकते। वस्तुतः व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्यवस्था को समाज कहा जाता है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक–दूसरे के प्रति सचेत होते हैं, जागरूक होते हैं और एक–दूसरे के प्रति कुछ व्यवहार करते हैं तो हम कहते हैं कि उनके बीच सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो गये हैं। ये पारस्परिक सम्बन्ध मधुर भी हो सकते हैं और कटु भी हो सकते है। सहयोगात्मक भी हो सकते हैं और संघर्षात्मक भी हो सकते हैं। इन दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच विचारों की सम्यता भी हो सकती है और भिन्नता भी हो सकती है। प्रत्येक समाज के अपने नियम, परम्परायें, संस्कृति, आदर्श, मूल्य और प्रतिमान होते हैं जो उस समाज के सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित करते हैं।

मैकाइवर और पेज – ''समाज रीतियों तथा कार्य प्रणालियों की अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और विभागों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सतत् परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।''

^^Society is a system of usages and procedures of authority and mutual and of many ykfi;j— ''समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं की जटिल व्यवस्था से है।''

शिक्षा का अर्थ :-

शिक्षा का अर्थ – व्यक्ति की बुद्धि को विकसित करना, उसे परिस्कृत करना, उसे तीक्षण बनाना, उन्नति की ओर ले जाना, उसे सौभाग्य युक्त बनाना और उसके जीवन को तपस्वी बनाना। उस समय शिक्षा के द्वारा विद्या और बुद्धि में, ज्ञान और कर्म में तथा अध्यात्म और भातिकता में समन्वय स्थापित किया जाता था। शिक्षा के द्वारा तप और दीक्षा (अनुशासन और समर्पण) पर बल दिया जाता था और यह माना जाता था कि अनुशासन और समर्पण की भावना से रहित शिक्षा निरर्थक है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन को पूर्णतया अनुशासित बनाने और उसमें अपने को लक्ष्य के प्रति सर्वथा समर्पित करने की भावना का विकास करती थी, क्योंकि यह माना जाता था कि जहाँ ये दो गुण– अनुशासन और समर्पण – होंगे, वहाँ वैयक्तिक, सामाजिक आर राष्ट्रीय विकास सुनिश्चित है।

प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करना था। अज्ञानी को ज्ञान ज्योति देना, अज्ञान और अन्धकार को दूर करना, उसे प्रबुद्ध बनाना और ज्ञान प्राप्ति के लिए उसे सचेष्ट तथा सक्रिय बनाना था। ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करने के साथ–साथ प्राचीन शिक्षा के उद्देश्य थे–चरित्र का निर्माण करना, चिन्तन शक्ति का विकास करना, परमार्थ की भावना पैदा करना, लोकाहितकारी तथा विश्व बन्धुत्व की भावना को जागृत करना। चरित्र निर्माण के उद्देश्य पर बल देते हुए कहा गया कि जब तक चारित्रिक शुद्धि और परिष्कार नहीं होगा, नैतिक गुणों का विकास नहीं होगा, मानवीय मूल्यों की प्राप्ति नहीं होगी, तब तक विद्या फलीभूत नहीं होगी। चिंतन शक्ति के विकास के सन्दर्भ में कहा गया कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में विचार शक्ति, मनन शक्ति, तर्क शक्ति, कल्पना शक्ति और कर्त्तव्य तथा सत्य का निर्धारण करने वाली विवेक शक्ति को जागृत करना और उसको बढ़ावा देना है।

शिक्षा की परिभाषा :-

शिक्षा क्या है ? शिक्षा का क्या अर्थ है ? शिक्षा का स्वरूप क्या है ? शिक्षा की परिभाषा क्या है ? इन प्रश्नों पर प्राचीनकाल से ही विचार किया जाता रहा है। शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षा शास्त्री, समाजसेवी, राजनीतिज्ञ और समाज के विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों के व्यक्तियों ने समय–समय पर शिक्षा को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। सभी ने अपने–अपने दृष्टिकोण से शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं और उसको परिभाषित करने का प्रयास किया है।

अरस्तू – ''शिक्षा मानवीय शक्ति का विशेष रूप मानसिक शक्ति का विकास करती है, जिस मानव परम सत्य, शिव और सुन्दर का चिन्तन करने के योग्य बन सके।"

एडीसन – "जब शिक्षा मानव के मस्तिष्क को प्रभावित करती है, तब वह उसके प्रत्येक अदृश्य गुण और पूर्णता को बाहर लाकर प्रकट कर देती है।"

पेस्टालॉजी – "शिक्षा मानव की आन्तरिक शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील विकास है।''

विवेकानन्द के अनुसार– ''शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता का प्रदर्शन विकास है।''

शिक्षा का महत्त्व :–

शिक्षा मानव जीवन का आधार है। मानव का विकास और उन्नयन शिक्षा पर ही निर्भर है। मानव जीवन के विकास की वह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास में योगदान दे है। इसके कार्य बहुमुखी हैं –

1. वैयक्तिक विकास
2. सांस्कृतिक विरासत का सम्प्रेषण
3. कौशलों का अर्जन
4. सामाजिक संसक्ति
5. राष्ट्रीय विकास

शिक्षा और समाज –

शिक्षा से आशय आजीवन चलने वाली शिक्षा अपने शाब्दिक अर्थ में विकास की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव तथा समाज का कल्याण होता है। शिक्षा बालक के अन्दर निहित समस्त शक्तियों गुणों को सामाजिक वातावरण में विकसित करने की कला है।

शिक्षा और समाज का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा समाज होता है, वैसी ही उसकी शिक्षा होती है, और जैसी किसी समाज की शिक्षा होती है, वैसा ही वह समाज बन जाता है। समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समाज में शिक्षा की व्यवस्था की जाती है और जैसे–जैसे समाज के स्वरूप में परिवर्तन होता है और उसकी आवश्यकतायें बदलती है, वैसे–वैसे उस समाज की शिक्षा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है, इतिहास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है। प्राचीन और मध्यकालीन समाज में धर्म को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त था, अतः इस काल में शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था। शिक्षा के द्वारा बालकों का आध्यात्मिक, धार्मिक और नैतिक विकास करने पर बल दिया जाता था। आधुनिक समाज में धर्म की अपेक्षा विज्ञान और तकनीकी पर अधिक बल दिया जाता है। अतः शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में चिन्तन मनन, तर्क, विवेक, निर्णय आदि मानसिक शक्तियों के विकसित करने की बात की जाती है। आधुनिक समाज में शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार से निर्धारित किया जाता है जिससे समाज के सदस्य अधिकाधिक धनोपार्जन कर सकें और भौतिक क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त कर सके। लोकतांत्रिक समाज में व्यक्ति की गरिमा को महत्त्व दिया जाता है, अतः शिक्षा का स्वरूप लोकतात्रिक मूल्यों स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्य, उत्तरदायित्व, सामाजिक न्याय आदि पर आधारित होता है। प्रत्येक को उसकी योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों और अभिरुचियों के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है।

समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका

जिस प्रकार समाज का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। उसी प्रकार समाज के उत्थान में शिक्षा की अहं भूमिका होती है, जिसके प्रभाव को निम्न दशाओं के आधार पर समझा जा सकता है–

1. **सामाजिक भावना की जागृति**

व्यक्ति का समाज से गहरा सम्बन्ध है। इसका कारण यह है कि वह समाज में रहते हुए अपनी भी उन्नति कर सकता है तथा दूसरे व्यक्तियों की भलाई भी। बिना समाज के उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। उन्नति की दृष्टि से व्यक्ति में सामाजिक भावना का विकास होना परम आवश्यक है। सामाजिक वातावरण में रहते हुए बालक नाना प्रकार की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हैं तथा जिनकी सहायता से उनमें सामाजिक भावना सहज ही में जागृत होती है। सामाजिक भावना के जागृत हो जाने पर बालक अपने भावी जीवन में समाज–हित के कार्यों को करते हुए समाज की भलाई को ही अपनी भलाई समझने लगते हैं।

2. **समाज का राजनीतिक विकास**

शिक्षा समाज के राजनीतिक विकास में महत्वपूर्ण योग देती है। संसार की विभिन्न राजनीतिक विचार धाराओं का ज्ञान व्यक्ति को केवल शिक्षा के ही द्वारा हो सकता है। शिक्षा की ही सहायता से व्यक्ति अपने देश की राजनीतिक विचार धारा को दूसरे देशों की राजनीतिक विचार धाराओं से तुलना करके उसकी सार्थकता का ज्ञान प्राप्त करता है। इससे राजनीतिक जागरूकता प्रसारित होती है तथा व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का ज्ञान होता है। जो व्यक्ति शिक्षित होते हैं यही अपने देश की राजनीतिक विचारधारा की रक्षा एवं उसका विकास कर सकते है।

3. **समाज का आर्थिक विकास**

शिक्षा समाज का आर्थिक विकास करती है। शिक्षा अपने व्यावसायिक उद्देश्य को लेकर अग्रसर होती है। वह बालकों को विभिन्न व्यवसायों तथा उद्योगों में दक्षता प्रदान करती है। परिणामस्वरूप बालक अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन करते हुए समाज का आर्थिक विकास करते हैं। यदि शिक्षा इस कार्य को पूरा न करे तो देश का आर्थिक विकास असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

4. **सामाजिक नियन्त्रण**

शिक्षा समाज की कुप्रथाओं तथा अन्ध–विश्वासों जैसे दोषों को स्पष्ट करके इनके विरोध में जनमत तैयार करके इन्हें समाप्त भी करती है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक नियन्त्रण के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। यदि शिक्षा सामाजिक नियन्त्रण न करे तो समाज में सुधार लाना बहुत कठिन है।

5. **सामाजिक परिवर्तन**

आधुनिक विज्ञान तथा प्रविधियों के क्षेत्र में विभिन्न अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप आश्चर्यजनक परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षा इन अनुसंधानों का ज्ञान कराती है तथा इनके द्वारा होने वाले लाभों पर प्रकाश डालती हुई जन साधारण को इनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है। इन्हीं प्रयोगों में जन–साधारण के विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा लक्ष्यों में परिवर्तन हो जाता है।

6. **बालक का सामाजीकरण**

शिक्षा बालक का सामाजीकरण भी करती है। हम देखते हैं कि जब बालक शिक्षा प्राप्त करने के लिए

स्कूल जाता है तो वहाँ पर दूसरे बालकों के सम्पर्क में आता है। इस सम्पर्क से उसे उन बालकों के विचारों, आदर्शों तथा संस्कृति का ज्ञान हो जाता है। तथा वह शनैः शनैः इस संस्कृति को अपना लेता है। ध्यान देने की बात है कि समाज की संस्कृति को अपना लेना ही सामाजीकरण है। स्पष्ट है कि बालक के समाजीकरण में शिक्षा महत्वपूर्ण योग देती है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि शिक्षा और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार का समाज वहाँ की शिक्षा भी वैसी ही होगी। इस प्रकार जैसी शिक्षा होती है वैसा ही समाज होता है। समाज अपनी विचारधाराओं, आकांक्षाओं, आदर्शों तथा आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता है और शिक्षा समाज का नव निर्माण करती है। अतः समाज के उत्थान में शिक्षा की अहं भूमिका है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1) Gupta N-L- Human Values in Education, Concept Publishing, New Delhi.

2) Higher Education for Human Development, Association of Indian Universities, New Delhi.

3) शर्मा, योगेन्द्र कुमार, मधुलिका शर्मा (2009), शिक्षा के दार्शनिक आधार–आधार, कनिष्कि पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 103-109

हिन्दी साहित्य में वैश्विक चेतना

कुलदीप शर्मा, शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

सार : हिन्दी साहित्य के वैश्विक स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय चेतना निरंतर बढ़ रही है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का महत्त्व उसकी वैज्ञानिकता के कारण बढ़ रहा है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी को दुनिया ने स्वीकार कर लिया है। हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य विश्व में अपनी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और दृढ़ करती है। यदि अब भारत से बाहर विश्व परिदृश्य में नजर दौड़ाएं तो आज हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य विश्व स्तर पर विकसित हो रहा है।

महत्त्वपूर्ण शब्द – वैश्विक, हिन्दी साहित्य, अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, विश्वविद्यालय

भूमिका :– हिन्दी इक्कीसवीं सदी में बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। हिन्दी भारतीय संस्कृति की भाषा है। यह हमारे धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म को वैश्विक स्तर पर आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यही कारण है कि आज पूरा विश्व हिन्दी में कार्य करने का तत्पर है। हम सबके लिए उत्साह की बात है हिन्दी साहित्य पर वैश्विक सम्मेलनों में हिन्दी प्रेमियों का अपार जनसमूह एकत्र होता है। हिन्दी साहित्य में वैश्विक चेतना से अभिप्राय हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य के प्रति विश्व में जागृति, लगाव एवं प्रेम। हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य का प्रभाव भारत एवं अन्य देशों में दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है। हिन्दी साहित्य के प्रभाव के कारण पूरे विश्व में हिन्दी के प्रति लोगों की चेतना बढ़ी है।

चेतना की परिभाशा :–

हिन्दी साहित्य में वैश्विक चेतना जानने से पहले हम चेतना शब्द को परिभाषित करेंगे। चेतना शब्द बुद्धि, ज्ञान, मनोवृति, स्मृति, सुधि, संज्ञा, होश आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में चेतना शब्द का अर्थ 'Consciousness' है। जो मस्तिष्क की जाग्रत अवस्था किसी वस्तु के विषय में ज्ञान, जानकारी अथवा विचार को घोषित करता है।

1. सर विलियम हैमिल्टन ने चेतना की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''चेतना को हम परिभाषित नहीं कर सकते। हम केवल यह अनुभव कर सकते हैं कि चेतना क्या है लेकिन हम चेतना को जो समझते हैं जैसा अनुभव करते हैं बिना किसी उलझन को दूसरों को नहीं बता सकते।''( )

2. **हिन्दी विश्व कोश के अनुसार –**

''चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्त्व है, जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्य की जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्त्व कह सकते हैं। चेतना स्वयं को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने और उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।''( )

3. **हिन्दी साहित्य कोश के प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा ने चेतना के विषय में लिखा है –**

''कि चेतना मानस की प्रमुख विशेषता है अर्थात् वस्तु–विषयों व्यवहारों का ज्ञान।''( )

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। चेतना से प्रेरित होकर मानव देखता, सुनता, समझता और अनेक विषयों पर चिंतन करता है।

हिन्दी की व्यापकता :– वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 838583988 थी और 1652 भाषाओं को बोलने वाले देश में हिन्दी को अपनी भाषा स्वीकार करने वालों की संख्या 337272114 थी। उर्दू को भी हिन्दी की एक शैली माना जाता है। भारत और पाकिस्तान के अलावा हिन्दी और उर्दू बोलने वालों की संख्या नेपाल, बांग्लादेश, मॉरीशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, त्रिनीडाड, भूटान, म्यांमार, कुवैत, बहरीन, ओमान, कतार, सउदी अरब, श्रीलंका, दक्षिण अमेरिका आदि देशों में भी है। इधर अमेरिका और रूस के कुछ देशों में हिन्दी बोलने वालों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। यह बात भी किसी सी छुपी नहीं है कि नासा और सिलिकान वैली में भी हिन्दी भाषा–भाषियों की संख्या निरंतर बढ़ी रही है। डॉ० विनोद भावे हिन्दी के बारे में लिखते हैं ''हिन्दी को गंगा नहीं समुद्र बनना होगा।''( ) डॉ० जवाहरलाल नेहरू हिन्दी के बारे में लिखते हैं कि ''हिन्दी एक जानदार भाषा है, वह जितनी बढ़ेगी, देश का उतना ही नाम होगा।''( )

भूमण्डलीकरण के इस बाजारवादी दौर में हिन्दी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। अपने उत्पादों के विज्ञापन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हिन्दी को बड़े पैमाने पर उपयोग कर रही हैं। यह बाजार की सबसे शक्तिशाली भाषा के रूप में सामने आ रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में चार भाषाओं अंग्रेजी, स्पेनिश, चीनी और हिन्दी का भविष्य की वैश्विक बाजार में उज्ज्वल है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का झुकाव हिन्दी की ओर बढ़ रहा है। वे अपने उत्पादों के विज्ञापन हिन्दी में देते हैं। अमेरिका, कोरिया, जापान और रूस ही नहीं, अन्य देश भी हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हिन्दी के वैश्विक होने का दूसरा आधार इसकी अंतः शक्ति और साहित्यिक कार्य है। भारत की सभ्यता, संस्कृति, धर्म और दर्शन के रूप में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा ने सदैव विश्व को आकर्षित किया है। विश्व के व्यापारिक जरूरतों और अपनी आंतरिक शक्ति के बल पर हिन्दी विश्व भाषा के रूप में अपनी पहचान बनाएगी। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के विकास मार्ग से होकर गुजरी हिन्दी को जहाँ विरासत में इन भाषाओं का समृद्ध भण्डार मिला वहीं इसने अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात् किया। खड़ी बोली हिन्दी का विकास ब्रजभाषा, अवधी, मगही, बघेली, बुदेलखड़ी आदि बोलियों के संयोग से हुआ। इसके अलावा बंग्ला, असमिया, गुजराती, मराठी, उडिया आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की आदि भाषा संस्कृत है। इसलिए हिन्दी इनसे भी अंतः संबंधित भाषा है। हिन्दी

भाषा के समृद्ध सम्पन्न भण्डार के मूल हिन्दी का लचीलापन प्रमुख कारण है। जिसकी वजह से हिन्दी भाषा के शब्द संख्या की दृष्टि से संसार की सबसे समृद्ध भाषा मानी जाती है। हिन्दी ने विश्व को उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएँ दी हैं। इसी के चलते हिन्दी साहित्य को विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य के रूप में देखा जा सकता है। विश्व के अनेक देशों में भारतीय मूल के हिन्दी प्रेमी साहित्यकार भी हिन्दी में साहित्य सृजन कर हिन्दी साहित्य भण्डार को समृद्ध कर रहे हैं। हिन्दी को वैश्विक पटल पर स्थापित करने में हिन्दी साहित्य, साहित्यकारों एवं गिरमिटिया बनकर यूरोपीय उपनिवेशों में बसे भारतीयों की भी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वहीं उनके हिन्दी प्रेमी अप्रवासी साहित्यकारों ने हिन्दी में साहित्य सृजन कर हिन्दी के विकास में अपना अतुलनीय योगदान दिया है। हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में भारतवासियों एवं अप्रवासी भारतीयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय साहित्य वैश्विक चेतना से सम्पन्न साहित्य भी है। आजादी से पहले जहाँ अनेक राजतंत्रों और संस्कृतियों के सम्पर्क से हिन्दी में अन्य राष्ट्रों की संस्कृति से समरसता बनाने की प्रवृति रही है, वहीं आजादी के बाद अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक पटल पर स्वर प्राप्त करने वाली संवेदनाएं हिन्दी साहित्य जगत में मुखरित हुई है। पर्यावरण, आंतकवाद, स्त्री विमर्श, निशस्त्रीकरण, मानवाधिकार, दलित उपाश्रित साहित्य जैसे आधुनिक चेतना विषय विमर्शों पर आधारित रहें, जो मूल वैश्विक चेतना है।

साहित्य में इस प्रकार की चेतना का समावेश भी किसी भाषा को विश्व भाषा बनाने में निमित सिद्ध होता है। हिन्दी के बारे में पुरूषोत्तम दास टण्डन कहते हैं कि ''भाषा और संस्कृति से खिलवाड़ करने वाले राजनीतिज्ञ आते हैं, चले जाते हैं, ये राजनीतिज्ञ आज हैं और कल नहीं रहेंगे, किन्तु भारतीय संस्कृति की प्रतीक हिन्दी सदा अमर रहेगी।''( ) हिन्दी साहित्य की वैश्विकता का पूरे विश्व ने देखा और समझा। आज हिन्दी साहित्य भारत के साथ–साथ पूरे विश्व में बड़ी तन्मयता पढ़ा जा रहा है। हिन्दी साहित्य को पढ़ने के लिए विदेशों में भी हिन्दी सीखने लग गए हैं। आज हिन्दी बारह से अधिक देशों में बहुसंख्यक समाज की मुख्य भाषा है। आज सात समुद्र पार तक एक चौथाई दुनिया में उसका परचम लहरा रहा है। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, द० अफ्रीका, नेपाल, मारीशस, न्यूजीलैंड, सिंगापुर, यमन, युगांडा आदि देशों में 2 करोड़ जनसंख्या है जिनमें हिन्दी बोली जाती है। फिजी, गुआना, सूरीनाम, टोबोगो, ट्रिनिडाड तथा अरब अमीरात इन छह देशों में हिन्दी को अल्पसंख्यक भाषा के रूप में सवैधानिक दर्जा प्राप्त है। भारत के बाहर जिन देशों में हिन्दी बोलने, लिखने तथा अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से प्रयोग होगता है, उन्हें हम इन वर्गों में बांट सकते हैं :–

1. जहाँ भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं :– पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका और मालद्वीप आदि।
2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों जैसे :– इंडोनेशिया, मलेशिया, थाइलैंड, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि।
3. जहाँ विश्व को हिन्दी की आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाया जात है :– अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाड़ा और यूरोप के देश।

स्कैंडिनेवियाई देशों में हिन्दी :– स्केडिनेवियाई देशों में स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड और नार्वे नामक देश आते हैं। धीरे–धीरे इन देशों में भी हिन्दी साहित्य का अनुवाद हो रहा है। फिनलैंड के डा० लिक्क नैन ने गोदान का फिनिश भाषा में अनुवाद किया तथा फिनिश हिन्दी शब्द–कोश तैयार किया। डेनमार्क में भी कुछ अप्रवासी भारतीय भी रचनारत हैं। इनमें अर्चना पैन्युली का नाम महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने हिन्दी में कहानी, उपन्यास, कविता लिखी है। नार्वे के साहित्यकारों का भी हिन्दी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनमें से प्रमुख है :– पूर्णिमा चावला, हरचरण चावला, मीना ग्रोवर, सुरेन्द्र चन्द्र, शिखा चन्द्र। सुरेश चन्द्र का कहानी संग्रह 'अद्‌र्धरात्रि का सूर्य' नार्वे के उन्मुक्त समाज और उपभोक्ता संस्कृति को नंगा करती है। रूस में भी हिन्दी क्षेत्र में थोड़ी–थोड़ी प्रगति हो रही है। प्रो० येवोनी चेलिशेव द्वारा हिन्दी और भारतीय हिन्दी साहित्य पर किया गया कार्य उच्च स्तरीय है। इससे पहले उनकी पुस्तक 'सुमित्रानंदन पंत और आधुनिक हिन्दी कविता (1970 ई०)' में आई थी। उन्होंने एक पुस्तक और 'भारतीय साहित्य की समस्याएँ' लिखी। भारतीय साहित्य का इतना प्रभाव है कि रामचरितमानस और सूरसागर को रूसी भाषा में अनुवाद किया। पोलैंड के वारसा, पोजनैन, क्रेकोव के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। बारसा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० दानुता स्ताशिक की पुस्तक 'हिन्दी भाषा की पाठ्य पुस्तक' हिन्दी सीखने के काम आती है। नीदरलैंड एवं इटली में श्री हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी का प्रभाव देखने में आता है। हंगरी के बुडापोस्ट विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाई जाती है। डॉ० मारिया को हिन्दी के प्रचार–प्रसार पर गर्व होता है और लिखते हैं कि ''हिन्दी तो समुद्र है, इसकी शब्दावली असीमित है और यह एक सम्पूर्ण भाषा है।''( ) फ्रांस के गार्सा दी तासी ने हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लिखा। बुल्मारिया, बेल्जियम, पूर्वी जर्मनी में हिन्दी का थोड़ा–थोड़ा कार्य प्रारंभ हो चुका है।

रोमानिया में प्राचीन काल से ही बहुत सारे विद्‌वान भारतीय संस्कृति से प्रभावित थे। एमिनेस्कु की रचनाओं में भारतीय चिंतन एवं रहस्य साफ झलकता है। चेकोस्वालिया के प्रमुख विद्‌वान वित्सेत्स लेसनी ने हरि औध की पुस्तक 'ठेठ हिन्दी के ठाठ' का चेक भाषा देव बाला नाम से अनुवाद किया। डॉ० डागमर अंसारी ने हिन्दी साहित्य की कई रचनाओं का अनुवाद चेक भाषा में किया। उन्होंने चेक की कुछ मनोरंजक लोक कथाओं का हिन्दी अनुवाद 'सात काले कौवे' नाम से किया। उन्होंने हिन्दी की प्रशंसा में 1975 ई० में नागपुर सम्मेलन ने कहा – ''हिन्दी में पीढ़ियों का द्वंद्व नहीं दिखता, बल्कि युग का यथार्थ बोध है, जोकि उसकी गतिशीलता का द्योतक है।( ) ब्रिटेन में पद्य साहित्य में हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि उस समय तैयार हो गई थी, जब ग्रिपसेन, पिन्काट, जान शेक्सपीयर, जान गिलक्रिस्ट जैसे विद्‌वानों ने अंग्रेजों के लिए हिन्दी के व्याकरण तैयार किए। जॉन चेम्बर लेन, जान पर्सन, डॉ० स्पर्टस्नेल आदि कुछ विद्‌वानों ने हिन्दी में भी कविता लिखी। प्रस्तुत है रूपर्ट की कविता :– दोहे अनगिनत रचि गए, तब गुण गण के गान

तुम मुझको जो दो गिनो, गणित का नाहिं ज्ञान
ऋषि मुनि तपस्वी यों करें, शून्य को मन में ध्यान
शून्य ही यह जगह है, बिनु सुनि बंशी तान।।( )

गजल भी ब्रिटेन में बहुत अच्छे तरीके से लिखी गई – प्राण शर्मा की सुराही, गौतम सचदेव की बूंद–बूंद आकाश लिखी गई। ब्रिटेन में हिन्दी रूपी गद्य साहित्य में दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, उषा राजे एवं तेजेन्द्र शर्मा ने महत्त्वपूर्ण रचनाएं लिखी। हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य प्रेम को विदेशों में जगाए रखा। तेजेन्द्र शर्मा कहानियों के द्वारा प्रसिद्ध हुए तेजेन्द्र शर्मा के कहानी संग्रह काला सागर, देह की कीमत, यह क्या हो गया आदि उस की परिस्थितियों के हिसाब से कहानी संग्रह लिखे। अचल शर्मा का बेघर, फिरोज मुखर्जी का पुराना घर, नए वासी, दिव्या, माथुर का फिर कभी सही, शैलजा अग्रवाल का घर का ठूंठ प्रमुख है। 'ब्रिटेन में हिन्दी' उषा राजे सक्सेना का संबंध संग्रह है। इस प्रकार ब्रिटेन में हिन्दी परम्परा बहुत समृद्ध हो रही है।

हिन्दी साहित्य का विषाल वैश्विक अनुवाद :

आज हिन्दी के रचना संसार की धमक, हिन्दी की भाषागत सीमा का उल्लंघन कर दुनिया के अनेक भाषाओं के साहित्य में पहुँच चुकी है। अज्ञेय, अमरकांत, काशीनाथ सिंह, कैलाश वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा उग्र; प्रेमचंद, बेढ़व बनारसी, शमशेर बहादुर, सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रानंद पंत, दिनकर, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, जैनेन्द्र कुमार जैसे अनेक साहित्यकारों के हिन्दी साहित्य का अनुवाद जापानी, रूसी, पोलिश, चीनी, जर्मन आदि भाषाओं में हो चुका है। हिन्दी साहित्य विदेशों में प्रचुर मात्रा में पढ़ा जाने लगा है। कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई की रचनाओं का रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है। अनुवाद की परम्परा के विस्तार से विश्व साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला और हिन्दी विश्व भाषा की सम्भावना साकार हुई है। आज विश्व के स्तर पर यह अनुभव किया जा रहा है कि दुनिया के अधिकांश देशों में परस्पर संचार के अभूतपूर्ण विस्तार से अधिकांश देशों की भाषाओं की आधुनिक साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ एक सी हैं। फ्रांस की श्रीमति चसैउचली ने रामचरितमानस ढोला मारू रा दूहा तथा कबीर की रचनाओं का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया।

हिन्दी कैसे बने विश्व भाषा :

अगर विश्व भाषा का ताज हिन्दी के सिर पर न रखा जाए तो किसके सिर पर रखा जा सकता है ? हिन्दी की पगड़ी में ऐसे रत्न जुड़े हुए हैं जो दुनिया के किसी अन्य भाषा के पास नहीं है। हिन्दी के बारे में मैथिली शरण गुप्त जी लिखते हैं :– ''हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।''( ) हिन्दी की लिपि देवनागरी है। यह दुनिया के सबसे पुरानी लिपियों में से एक है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, नेपाली, उर्दू आदि भाषाओं के लिए इस लिपि का सुगमतापूर्वक उपयोग हो रहा है। यह लिपि प्राचीन ही नहीं, सरल और वैज्ञानिक है। जिस भाषा के पास शब्दों का अतुलनीय विश्व–कोष है और अद्वितीय विश्व लिपि है, उसे विश्व भाषा का दर्जा अग्रीम श्रेणी में पहला चाहिए। विश्व भाषा बनने के लिए विश्व स्तरीय साहित्य का सृजन भी आवश्यक है। इस मामले में भारतीय हिन्दी साहित्य विश्व साहित्य श्रेणियों में अग्रणी है। लेकिन हमारी गुलाम मानसिकता के कारण हमारा साहित्य अग्रणीय नहीं हो पा रहा है। हिन्दी भाषा देश में भी हम हिन्दी साहित्य को तबोजो न देकर अंग्रेजी भाषा और

अंग्रेजी साहित्य की ओर बढ़ रहे हैं। भारत जिस दिन स्वभाषा के काम शुरू करेगा, विश्व में उसका महत्त्व पहचाना जाएगा और वह पहचान उसे विश्व शक्ति बनवाने में सहायक होगी। भारत का महाशक्ति बनना और हिन्दी का विश्व भाषा बनना एक दूसरे के पर्याय है।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के विश्व–व्यापी प्रसार की बात तो हम करते हैं किंतु इस दिशा में ठोस प्रयास नहीं करते। हम कागजी योजनाएं बनाते हैं, किंतु उसे कार्यन्वित नहीं करते, कार्यान्वयन होता है, तो उन्हें पूर्ण नहीं करते या कर नहीं पाते। हिन्दी दिवस पर भाषण होते हैं, सभाएं होती है, जो उत्सव का रूप ले लेती है किन्तु कार्य गोष्ठी का रूप नहीं ले पाते। यह तभी संभव है जब हम अपनी मानसिकता बदलेंगे। आवश्यकता है हिन्दी के वैश्विक विकास के लिए एक ठोस भूमिका तैयार करने और उसे प्रगति रूप देने की। कुल मिलाकर हिन्दी को वैश्विक स्तर पर सम्मान के साथ स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि उसने शिक्षण, प्रशिक्षण से लेकर ज्ञान संवदा को मजबूत किया जाए और पूरे आत्म–सम्मान के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग करने की पहल जरूरी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी हिन्दी पर बोलते हुए कहते हैं कि ''हिन्दी भारत वर्ष के हृदय देश में स्थित करोड़ों नर–नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खुराक देने वाली भाषा है।''( )

अब भारत से बाहर विश्व परिदृश्य पर नजर दौड़ाएं तो, आज हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय स्तर स्तर पर विकसित हो रही है। विश्व स्तर पर भाषा के शैक्षणिक स्वरूप से संबंध एक विदेशी भाषा के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल होने के साथ–साथ विश्व के विश्वविद्यालयों, संगठनों एवं अन्य शैक्षणिक समुदायों में हिन्दी का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है। विदेशों में इण्डिया स्टडी सेंटरों के माध्यम से विदेशियों को हिन्दी भाषा से परिचित कराकर भारत से जोड़ने का प्रयास चल रहा है। इस समय कुल 40 से अधिक देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पाठ्यक्रम के तहत भाषा के अलावा हिन्दी में भारतीय संस्कृति, इतिहास, समाज आदि के विषय में पढ़ाया जा रहा है। अमेरिका के मेन विश्वविद्यालय में 1815 ई० से हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था चल रही है । इसकी अलावा हिन्दी अध्यापन के कुल 114 केन्द्र है। इसी तरह रूस में भी सात से अधिक हिन्दी शोध संस्थान हैं। हिन्दी भाषा के साहित्य में भी विश्व स्तर पर बड़ी तेजी से विकास हो रहा है। उसमें चिंतनपरक साहित्य के रूप में हिन्दी कविताओं, लघु कहानियों, आधुनिक उपन्यासों एवं लेखों की संख्या विश्व स्तर पर बढ़ी है। हिन्दी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं के अनुवाद के माध्यम से किया जा रहा है। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ओर जहां हिन्दी विदेशों में अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों और साहित्यिक परिवेश में वर्चस्व स्थापित कर चुकी है तो दूसरी अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी साख बनाए रखने के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हिन्दी अपनाने के प्रति प्रतिबद्ध हो गई हैं। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद हिन्दी के बारे में लिखते हैं :– ''हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य को सर्वांग सुंदर बनाना हमारा कर्त्तव्य है।''( )

भारत की बढ़ती हुई शक्ति के साथ हिन्दी का वर्चस्व एवं संख्या बल भी वैश्विक धरातल पर निरंतर बढ़ रहा है। माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के हिन्दी व्याख्यानों ने हिन्दी के प्रति रूझान एवं रूचि पैदा की।

विदेशों में हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य जोरों से पढ़ा जाने लगा। माननीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में दिए गए व्याख्यानों ने नई पीढ़ी में हिन्दी के प्रति एक चेतना एवं ललक पैदा की। वर्तमान सरकार का ज्यादातर मंत्रिमंडल हिन्दी भाषा में व्याख्यान दे रहा है। माननीय गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह जी तो हिन्दी भाषी हैं, हिन्दी के वर्चस्व के लिए अग्रणी भी हैं। गृह मंत्रालय राज–भाषा के प्रचार–प्रसार और प्रभाव की दिशा में निरंतर क्रियाशील है। निःसंदेह हिन्दी कल विश्व की महत्त्वपूर्ण संपर्क भाषा के रूप में स्थापित होगी तथा आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की भाषा भी बनेगी।

निष्कर्ष :-

हिन्दी भाषा और साहित्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहद मजबूती के साथ आगे बढ़ रहा है। हिन्दी साहित्य वैश्विक स्तर पर लोगों को जाग्रत कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी साहित्य अपनी छाप छोड़ रहा है। विश्व के पटल पर भारतीय संस्कृति की छाप छोड़ने में हिन्दी साहित्य एवं भाषा का योगदान अद्‌वितीय है। यदि यह कहे कि भारत को पूरे विश्व के साथ जोड़ने में हिन्दी भाषा एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य कर रही है यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ० रत्नाकर पांडे, हिन्दी साहित्य की सामाजिक चेतना, पृष्ठ संख्या 160
2. राजभाषा भारती, अंक 155, अप्रैल–जून 2018, हिन्दी विश्व भाषा की ओर, डॉ० योगेन्द्र प्रताप, पृष्ठ संख्या 20, 21
3. राजभाषा भारती, अंक 155, अप्रैल–जून 2018, हिन्दी कैसे बने विश्व भाषा, डॉ० वेद प्रताप वैदिक, पृष्ठ संख्या 27, 29
4. राजभाषा भारती, अंक 155, अप्रैल–जून 2018, हिन्दी का विश्व भाषाई वर्चस्व और अंतः–बाह्य विश्लेषण, डॉ० शुभ्रता मिश्रा, पृष्ठ संख्या 72, 73
5. राजभाषा भारती, अंक 155, अप्रैल–जून 2018, विश्व भाषा की ओर बढ़ते कदम, डॉ० राकेश शर्मा निशीथ, पृष्ठ संख्या 95
6. विश्व हिन्दी पत्रिका 2019, प्रधान सम्पादक प्रो0 विनोद कुमार मिश्र
7. जनसत्ता अखबार, 28 अक्तूबर 2018

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 110-114

अन्य भाषाओं और हिंदी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन

लवली, शोध छात्रा, हिन्दी–विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

तुलनात्मक अध्ययन अंग्रेजी के 'Comparative Study' का अनुदित रूप है। तुलना शब्द ''तुल'' धातु से बना है जिसका अर्थ है मापना, जोखना। किन्ही दो वस्तुओं, वर्गों, समूहों, शाखाओं की समानता असमानता के आधार पर परस्पर तुलना करना तुलनात्मक अध्ययन कहलाता है। तुलनात्मक अध्ययन को बैजनाथ सिंहल पारिभाषित करते हुए कहते हैं ''इसमें एक ही भाषा अथवा दो या अधिक भिन्न भाषाओं के समान कवियों, कृतियों अथवा प्रवृत्तियों का सम और विषम तत्वों की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।''[1]

तुलनात्मक अध्ययन : पृष्ठभूमि :–

तुलनात्मक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अंग्रेजी कवि मैथ्यू आर्नल्ड ने सन् 1848 में अपने पत्र 'Comparative Literature' में किया। प्रारंभ में इसके शाब्दिक अर्थ संबंधी विवाद रहा क्योंकि साहित्य कलाकार की सृजनशील अभिव्यक्ति है, फिर वह तुलनात्मक कैसे हो सकती है ? इस समस्या को रेने वेलेक ने हल किया उनका कहना था कि तुलनात्मक शब्द में तुलना का अर्थ वस्तुओं में साम्य वैषम्य का पता लगाना है। इस तरह तुलनात्मक शब्द का प्रचलन अंग्रेजी भाषा में 1598 ई.से हो रहा है। 1886 ई. में एच. एम. पॉसनेट ने 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' शीर्षक किताब के माध्यम से इसे स्थायित्व प्रदान कर दिया। इसलिए अंग्रेजी भाषा में तो 'तुलनात्मक अध्ययन' का प्रयोग बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही रहा है। सन् 1753 ई. में जब राबर्ड लाउथ ने अपने 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑफ पोयट्री' में जब हिन्दू कविता के साथ यूनानी कविता की तुलना की थी तो उससे भारतीयों को बहुत प्रेरणा मिली। भारत में उस समय संस्कृत भाषा प्रचलन में थी। उस समय भारत में संस्कृत, अरबी, फारसी जानने वाले लोग बहु संख्या में थे फिर भी तुलनात्मक अध्ययन जैसी कोई परम्परा भारत में प्रचलित नहीं थी।

18वीं शताब्दी में भारतीय भाषाओं, साहित्य, धर्म, दर्शन का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास किसी ने नहीं किया। बल्कि इसका आरंभ अंग्रेजी साहित्य में हो चुका था। 19वीं शताब्दी में हिंदी में भी इस तुलनात्मक दृष्टि को स्वीकार कर लिया गया था किंतु फिर भी हिंदी भाषा के ही रचनाकारों, कृतियों, प्रवृत्तियों पर ही एकभाषीय तुलनात्मक अध्ययन किए जा रहे थे। हिंदी भाषा के किसी अन्य भारतीय भाषा के साथ या किसी अन्य भाषाई साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययनों की ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया गया था।

सन् 1907 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'विश्व साहित्य' शब्द का उल्लेख करके साहित्य के अध्ययन में तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि को महत्त्व दिया। प्रो॰ दिलीप सिंह के अनुसार "भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जिन 22 भाषाओं और बोलियों का उल्लेख है, उनका साहित्य अत्यंत समृद्ध है और यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इन सभी भाषाओं में साहित्यिक धाराएँ लगभग समानांतर रूप से प्रवाहित मिलती हैं, इसके साथ ही इन सभी भाषाओं का राष्ट्रीय चेतना और उसमें आने वाले परिर्वतनों के साथ एक–सा प्रभाविता रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की सभी भाषाएँ और उनका साहित्य भी एकता के सूत्र में बंधा हुआ प्रतीत होता है। इसलिए भारत की इन भिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य को भारतीय साहित्य कहा गया है।"[2] क्योंकि ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के लिए लक्ष्य और स्त्रोत भाषा का ज्ञान होना अनिवार्य था इसलिए सन् 1956 में जादवपुर में तुलनात्मक विभाग की स्थापना हुई। यह भौगोलिक विस्तार में श्रेष्ठ सिद्ध हुआ। शोधार्थी एक से अधिक भाषाओं संस्कृतियों का ज्ञान प्राप्त कर अच्छा अनुभव ग्रहण करने लगे। मिश्रबंधुओं के 'नवरत्न' में हमें तुलनात्मक अध्ययन के आरंभिक बीज मिलते हैं। उसके पश्चात् यह अध्ययन हिंदी भाषा में गति पकड़ गया।

हिंदी भाषा और भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन

तुलनात्मक अध्ययन के शोध क्षेत्र में आगमन के प्रारंभिक दौर में हिंदी भाषा के साहित्य का पश्चिमी भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रचलन में था, या फिर हिंदी भाषा में ही दो या अधिक रचनाकारों, रचनाओं, प्रवृत्तियों, कालों आदि को आधार बनाकर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता था। किंतु जैसे–जैसे साहित्य के क्षेत्र में तुलना की पकड़ या जड़ मज़बूत होती गई वैसे–वैसे इसका क्षेत्र विस्तृत और व्यापक होता चला गया। क्योंकि भारत बहुभाषी देश है इसकी राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बनाए रखने में तुलनात्मक शोध ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

भारत में लगभग 1652 मातृभाषाएँ प्रचलित हैं और कितनी ही साहित्यिक भाषाएँ प्रचलन में हैं। इन भाषाओं की संरचना स्वरूप में भिन्नता होते हुए भी इनकी उत्पत्ति एक जैसी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुई है। इसलिए इसमें जातीय एकता ने इन्हें एक दूसरे से जोड़े रखा है। वर्तमान दौर में तुलनात्मक अध्ययन यह कर्त्तव्य बाखूबी निभा रहा है।

हिंदी भाषा और साहित्य के साथ अन्य भारतीय भाषाओं जैसे पंजाबी, तमिल, तेलगु, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है। आज विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तुलनात्मक अध्ययन निरंतर करवाए जा रहे हैं। जैसे हिंदी के कवि निराला की ही बात करें तो उनका बंगाली कवि रवीन्द्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन, प्रेमचंद का शरतचंद्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

हिंदी भाषा का अन्य भारतीय भाषाओं के साथ किया जाने वाला तुलनात्मक अध्ययन लोगों को भारतीय साहित्य के और करीब ले आया है। ''तुलनात्मक साहित्य के गहरे अध्ययन में पूरे भारत को एक फलक पर लाकर

सभी भाषाओं के विकास का क्रमबद्ध अध्ययन करना चाहिए। ऐसा जब किया जायेगा तब बाहरी देशों के साहित्यकार हमारे भारतीय साहित्य की हस्ती से अधिक प्रभावित होंगे। यह तुलनात्मक साहित्य की सबसे बड़ी देन होगी।''[3]

भारत का सम्पूर्ण साहित एक जैसी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित है। भारत का संपूर्ण साहित्य भारत की पराधीन परिस्थितियाँ, विभाजन समस्या, दलित चेतना, आदिवासी चेतना, वर्ग भेद, कानून समस्या, प्रशासन, नारी की सामाजिक स्थिति, आदि जैसे कॉमन मुद्दों से प्रभावित हैं। इसलिए इनके तुलनात्मक अध्ययन की संभावनाएँ भी अधिक हैं।

भारतीय भाषाओं और हिंदी भाषा के परस्पर तुलनात्मक अध्ययन में संभावनाएँ इसलिए भी ज्यादा बनी रहती हैं क्योंकि भारतीय भाषाओं में लोक कथाएँ, मिथक, मान्यताएँ आदि समानरूप से विद्यमान हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार भारत की भाषाई विभिन्नता, संस्कृति, भाषा, धर्म, दर्शन, ही इसे तुलनात्मक अध्ययन की विराट पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। उनका कहना है कि ''किसी भी भाषा के साहित्य का निर्माण अन्य भाषाओं के साहित्य से नितांत अलगाव की अवस्था में नहीं होता। लोग यूरोपियन साहित्य की बात करते हैं, भारतीय साहित्य की बात भी करते हैं। लोग भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की बात नहीं करते। शायद उन्हें ऐसे आंदोलनों की जरूरत नहीं पड़ी।.... यूरोपियन साहित्य यूरोप का राष्ट्रीय साहित्य नहीं है भारतीय साहित्य भारत का राष्ट्रीय साहित्य है।''[4]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से शोधार्थियों में ज्ञान का दायरा विस्तृत हुआ है। शोधार्थी को अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ–साथ अन्य भाषाओं और साहित्य को भी करीब से देखने, समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। ऐसे शोध कार्यों से निकलने वाले परिणाम विलक्षण होते हैं। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार भारतीय भाषाओं और हिंदी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन अब व्यावहारिक आलोचना की नई शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।

पश्चिमी भाषाएँ और हिंदी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन

क्योंकि तुलनात्मक अध्ययन पश्चिमी साहित्य की देन है इसलिए हिंदी भाषा के प्रारंभिक तुलनात्मक शोध पश्चिमी भाषाओं के साथ ही किए जाते थे। जैसे छायावादी कवियों की तुलना अंग्रेजी के शैली, कीटस से ही की जाती थी। महाकाव्य की अवधारणा पर किए जाने वाले शोध कार्यों में महाभारत, रामायण की अपेक्षा होमर के महाकाव्य इलियड से की जाती थी।

जब हिंदी भाषा की पश्चिमी भाषाओं के साहित्यों के साथ तुलना करते हैं तो हम कला, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, समाज, विज्ञान को भी सहज सीख लेते हैं। वैश्विक धरातल पर तुलना करने से न केवल हमारे ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हुआ है बल्कि हिंदी भाषा अपनी राष्ट्रीयता की परिधि को पार करके विश्व की लोकप्रिय भाषाओं के साथ आकर खड़ी हो गई है।

प्रवृत्ति विशेष के आधार पर या काल की कसौटी पर जो रचनाकार, रचना या युग, विशिष्टता प्राप्त हो

वही तुलना का विषय बनता है। जैसे डान, कोहाटे, डिवाइन कॉमेडी, पैराडाइज़ लॉस्ट, शंकुतला, कुमार संभव आदि तुलनीय और प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। जिन रचनाओं की कृतियों को निर्विवाद बहुमत से श्रेष्ठ स्वीकार कर लिया जाता है वही तुलनीय होती हैं। जैसे फौकनर (Faulkner), कामू, (Camus), प्रेमचन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

प्रत्येक भाषा के साहित्य में दो श्रेणी में रचनाकार या रचनाएँ होती हैं। प्रथम श्रेणी में वे रचनाकार या रचनाएँ शामिल होती हैं जिनकी प्रस्तुत साहित्य परिधि और पाठकों में प्रसिद्धि होती है। दूसरी श्रेणी में वह रचनाकार या रचनाएँ आती हैं जो किसी न किसी कारणवश प्रकाश में नहीं आ पाती। तुलनात्मक साहित्य से ऐसे रचनाकारों को प्रकाश में आने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है और जो प्रथम श्रेणी के रचनाकार हैं जिन्हें पहले से ही लोकप्रियता प्राप्त हो उनको विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

हिंदी भाषा साहित्य का पश्चिमी भाषाओं के साहित्य से परस्पर तुलनात्मक अध्ययन पर इंद्रनाथ चौधरी कहते हैं ''तुलनात्मक साहित्य के लिए प्राचीन या आधुनिक अथवा सांस्कृतिक का कोई मतलब ही नहीं। जो भी तुलनीय है वही तुलनीय साहित्य का विषय है। साथ ही केवल क्लासिकी साहित्य या साहित्यकार ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर देश काल का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले मगर द्वितीय श्रेणी के लेखकों को भी तुलनात्मक साहित्य का विषय बनाया जाता है। जिससे साहित्यिक प्रभाव के सूत्र या प्रवृत्तियां प्रकाश में आ सकें। इसके साथ ही ऐसे भी प्रथम श्रेणी के लेखकों को, जिन्हे विश्व के स्तर पर अभी प्रसिद्धि नहीं मिली है, तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत स्थान दिया गया है। जैसे डन (Donne) निराला, पिंटर, विजय तेन्दुलकर, अज्ञेय आदि।''[5]

पश्चिमी भाषाओं से तुलना होने के परिणामस्वरूप हिंदी भाषा को व्यापक फलक प्राप्त हुआ है। इससे न केवल हिंदी भाषा की बल्कि समस्त भारतीय साहित्य की समद्धता में वृद्धि हुई है। इस पद्धति के माध्यम से विदेशी साहित्यकारों और पाठकों ने हिंदी भाषी साहित्य को काफी गंभीरता से लिया है। इससे भारत में ही नहीं विदेशों में भी हिंदी के पाठकों की संख्या में बढ़ावा हुआ है। हिंदी भाषी शोधार्थीयों को हिंदी के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं को भी पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है।

पश्चिमी भाषाओं से तुलनात्मक अध्ययन से वैश्विक स्तर पर हिंदी को अलग पहचान मिल पाई है। अब भारी मात्रा में अनुवाद कार्य किए जा रहे हैं। हिंदी पुस्तकों का भारी मात्रा में पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद कार्य संपन्न किया जा रहा है। इंद्रनाथ चौधरी कहते हैं''एकक राष्ट्र की परिधि को पार कर दूसरे राष्ट्रों में प्रसारित विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्यों की सहायता से भी यह अध्ययन संभव है अथवा विभिन्न राष्ट्रों अथवा प्रातों में रहने वाले मगर एक ही भाषा में लिखने वाले रचनाकारों की कृतियों की सहायता से भी तुलनात्मक साहित्य का प्रसार संभव है।''[6]

निष्कर्ष : हम कह सकते है कि हिंदी भाषा का अन्य भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन से हिंदी की लोकप्रियता को बढ़ावा मिला है। अब हिंदी साहित्य न केवल भारत बल्कि विदेशों में भी पढ़ा और लिखा जा रहा है। वर्तमान समय में तुलनात्मक अध्ययन एक लोकप्रिय पद्धति के रूप में सामने आया है। इससे विषय की

व्यापकता, गंभीरता और रोचकता बनी रहती है। तुलनात्मक अध्ययन से विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, धर्मों, दर्शनों को जानने का अवसर मिला है। यह अध्ययन एकता, अखण्डता और सहिष्णुता का परिचायक है। ऐसे अध्ययन में शोधार्थी को तटस्थ और सतर्क होकर तुलना करने की आवश्यकता होती है, ताकि वह दोनों भाषाओं, साहित्यों और खासकर अपने शोध विषय के साथ न्याय कर सके। भावी समय में ऐसे अनेकों तुलनात्मक शोध की संभावनाएँ हैं।

तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्व विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों को करीब लाना है। विश्व स्तर पर मानव जाति को "वसुधैव कुटुंबकम्" का संदेश देना ही इसका उद्देश्य है। यह मानव जाति के कल्याण का द्योतक है। इसी संबंध में मोहनदास लिखते हैं– "सभी साहित्यिक विद्वत्ता स्थूल तथ्यों पर नहीं, अपितु मूल्यों तथा गुणों पर आधारित रहती है। तुलना से प्राप्त निष्कर्ष के माध्यम से मानव मूल्यों का उद्घाटन तथा अज्ञात ज्ञान–राशि का प्रकाशन होता है यही तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।"[7]

तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य मूल्यों की स्थापना, नयी ज्ञान राशि को प्रकाश में लाना, साहित्यिक और भाषिक एकता की स्थापना करना है। भविष्य में इस शोध पद्धति से काफी उम्मीदें हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बैजनाथ सिंहल, शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्य विधि, दिल्ली : प्रगति प्रिंटर्स, 1980, पृ. 18
2. प्रो॰ दिलीप सिंह एवं ऋषभ देव शर्मा, शोध प्रविधि, चेन्नई : दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, पृ. 35
3. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, तुलनात्मक साहित्य, नई दिल्ली : विद्या विहार, 2004, पृ. 22
4. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, नई दिल्ली :वाणी प्रकाशन, 1986, पृ. 6–7
5. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1983, पृ. 20–21
6. वही, पृ. 5
7. मोहनदास, तुलनात्मक अनुसंधान–अर्थ, तत्व व समस्याएँ, एस. गुलाम रसूल, तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्याएँ, लखनऊः हिन्दी साहित्य भंडार, 1980, पृ.113

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 115-117

भारतीय संविधान और हिंदी भाषा

डॉ० मधु वर्मा, सहायक आचार्य, हिंदी
चौ. बल्लू राम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय
श्रीगंगानगर राजस्थान

हिंदी भारत की राजभाषा और राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित है। देश के राजकीय काम काज जिस भाषा में किए जाते हैं उसे राजभाषा कहते हैं। राजभाषा किसी भी देश की पहचान होती है, गौरव होती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के भाग 1 में हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया है। संविधान में राजभाषा के संबंध में विस्तृत प्रावधान हैं। संविधान सभा ने 14 सितंबर, 1949 के दिन मुंशी आयंगर फार्मूले के आधार पर देव नागरी लिपि में लिखित हिंदी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया और उससे संबंधित अन्य धाराएं भी स्वीकार कीं। भारतीय संविधान के भाग 5 भाग, 6 एवं भाग 17 में राजभाषा के संबंध में उपबंध हैं। भाग 17 में 4 अध्याय हैं :–

पहला अध्याय संघ की राजभाषा के संबंध में है (अनुच्छेद 343–344)

दूसरा अध्याय प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में है (अनुच्छेद 345–347)

तीसरे अध्याय में उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की भाषा के संबंध में प्रावधान हैं (अनुच्छेद 348–349)

चौथे अध्याय में विशेष निर्देश दिए गए हैं। (अनुच्छेद 350–351)

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 120 में संसद की भाषा और अनुच्छेद 210 में विधान मंडलों की भाषा के संबंध में विवरण दिया गया है।

भारतीय संविधान में राजभाषा शब्द को व्याख्यायित नहीं किया गया। संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को स्थान दिया गया है। आरंभ में 14 भाषाओं को स्थान दिया गया था। जिनमें हिंदी, गुजराती, बंगला, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, असमिया, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगू, उर्दू हैं। सन् 1967 में 21 वें संविधान संशोधन द्वारा सिंधी को सम्मिलित किया गया, सन् 1992 में 71वें संविधान संशोधन द्वारा कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली को सम्मिलित किया गया। 2004 में 92वें संविधान संशोधन द्वारा बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली को भी आठवीं अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया। राजभाषा से संबंधित प्रमुख अनुच्छेद इस प्रकार हैं –

अनुच्छेद 120 संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में है। अनुच्छेद 210 विधानमंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में अनुच्छेद 343 और 344 में संघ की राजभाषा के संबंध में प्रावधान दिए गए हैं।

अनुच्छेद 343 के भाग 1 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।

अनुच्छेद 344–राजभाषा के लिए संसद का आयोग और समिति का गठन इस अनुच्छेद के अनुसार संविधान लागू होने के 5 वर्ष की समाप्ति पर तत्पश्चात 10 वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति आदेश द्वारा भाषा आयोग का गठन करेगा जिसका एक अध्यक्ष और अन्य सदस्य होंगे जो आठवीं अनुसूची में वर्णित भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे इसे अनुच्छेद के अनुसार एक राजभाषा समिति के गठन का उपबंध दिया गया जिसकी कुल सदस्य संख्या 30 होगी लोकसभा से 20 और राज्यसभा से 10 सदस्य होंगे समिति आयोग की सिफारिशों पर राष्ट्रपति को अपनी राय देगी।

अनुच्छेद 345– राज्य की राजभाषा के संबंध में प्रावधान हैं।

अनुच्छेद 346–राज्यों और राज्य व संघ के बीच संचार हेतु राजभाषा के संबंध में हैं।

अनुच्छेद 347 के अनुसार यदि किसी राज्य की संख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को उस राज्य में दूसरी भाषा के रूप में मान्यता दी जाए और इस हेतु मांग की जाए तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा की ऐसी भाषा को भी उस राज्य में ऐसे प्रयोजन के लिए शासकीय मान्यता दी जाए अनुच्छेद 348 – 349 में उच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय की भाषा के संबंध में प्रावधान है ।

अनुच्छेद 350 – प्रत्येक व्यक्ति किसी शिकायत को दूर करने के लिए संज्ञा राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में दिए जाने की पर्याप्त सुविधा सुनिश्चित की जाएगी।

अनुच्छेद 351 के अनुसार संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए और उसका विकास करें।

राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 344 (1) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए 7 जून, 1955 को श्री बाल गंगाधर खेर की अध्यक्षता में हिंदी के विकास एवं प्रयोग के संबंध में सिफारिशें करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया यह खेर आयोग के नाम से जाना जाता है इस आयोग ने 31 जुलाई, 1956 को अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जिसमें हिंदी के संबंध में सिफारिशें की गई थी। तत्पश्चात, राजभाषा आयोग की सिफारिशों की जांच करके उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 344 के खंड 4 के अनुसार सितंबर, 1957 में 30 सदस्यों की संसदीय राजभाषा समिति गठित की गई जिसमें 20 सदस्य लोकसभा से तथा 10 सदस्य राज्यसभा से थे। जिसकी पहली बैठक 16 नवंबर, 1957 को हुई तत्कालीन गृह मंत्री श्री गोविंद वल्लभ पंत की अध्यक्षता में समिति ने 26 बैठकों में व्यापक विचार विमर्श के पश्चात 8 फरवरी, 1959 को राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

पंत समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 344 (6) के अंतर्गत

प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्र सरकार के कार्यालयों के कामकाज में हिंदी को प्रतिस्थापित करने के लिए प्रारंभिक उपायों के संबंध में 27 अप्रैल, 1960 को एक आदेश जारी किया इस आदेश में शब्दावली निर्माण, केंद्रीय अधिनियम और नियम आदि के हिंदी अनुवाद तथा केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिंदी में प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की गई थी।

राजभाषा अधिनियम 1963 (1967 में संशोधित)

भारतीय संविधान में भाषाई परिवर्तन के लिए नियत 26 जनवरी 1965 का दिन समीप आने लगा तो आ हिंदी क्षेत्रों में अशांति और आशंका पैदा हुई। 10 मई, 1963 को राजभाषा अधिनियम 1963 लाया गया जो बाद में 1967 में संशोधित रूप में सामने आया इसमें कुल 9 धाराएं थीं जिसमें स्पष्ट किया गया कि 26 जनवरी, 1965 के बाद भी हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जाती रहेगी जिनके लिए वह इससे पहले प्रयोग में लाई जाती रही है।

राजभाषा नियम 1976 (यथा संशोधित 1987, 2007 और 2011)

राजभाषा हिंदी संबंधी राष्ट्रपति के आदेशों, संसद की सिफारिशों और राजभाषा अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने का दायित्व भारत सरकार के गृह मंत्रालय को सौंपा गया जिसके अधीन एक राजभाषा अनुभाग की स्थापना हुई बाद में यह अनुभाग स्वतंत्र राजभाषा विभाग हो गया। राजभाषा अधिनियम की धारा 8 में दिए गए अधिकार के अधीन उक्त विभाग ने 12 नियम 1(976) निर्धारित किए इन नियमों मैं एक नियम के अंतर्गत देशभर के केंद्रीय सरकार के कार्यालयों को 3 वर्गों में बांटा गया–क वर्ग के क्षेत्र, ख वर्ग के क्षेत्र, ग वर्ग के क्षेत्र. राजभाषा नियम 1976 में 1987, 2007 और 2011 में संशोधन हुआ।

(च) क क्षेत्र से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है ।

(छ) ख क्षेत्र से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़ दमन और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है।

(ज) ग क्षेत्र से खंड च और छ में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्र से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है। इस प्रकार राजभाषा हिंदी और उसके प्रयोग के संबंध में संविधान में व्यापक प्रावधान किए गए हैं समय–समय पर राष्ट्रपति द्वारा भाषा के संबंध में आदेश जारी कर एवं राजभाषा नियमों के माध्यम से हिंदी के विकास हेतु निरंतर प्रयास हो रहे हैं।

स्रोत :– http:/rajbhasha-gov-in

संदर्भ ग्रंथ :–

हिंदी भाषा – डॉ. हरदेव बाहरी

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 118-123

हिंदी साहित्य एवं दलित विमर्श का सामयिक अध्ययन

मनीष कुमार महरा, शोधार्थी (हिंदी)
पंडित एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश :-

मनुष्य के अनुभवों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम साहित्य है। जीवन और साहित्य एक दूसरे के पूरक है, ना जीवन को साहित्य से पृथक किया जा सकता है और ना साहित्य को जीवन से। व्यक्तिगत जीवन का गहरा संबंध साहित्य के साथ होता है। सामान्य रूप से साहित्य जीवन की आलोचना होती है। समकालीन हिंदी साहित्य में दलित विमर्श अपनी वैचारिकी, प्रतिबद्धता एवं विद्रोही स्वरूप के साथ ही साहित्य में उभर कर आया है। साहित्य में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि जिस समाज और कौम का अपना साहित्य है, उस समाज और कौम का अपना निजी सम्मान है, तथा उसकी अलग भी है। भारतीय समाज में ब्राह्मण वर्ग का वेद 'रामायण', 'महाभारत', 'गीता', जैसे अपना खुद का साहित्य उपलब्ध है, जिससे उनका अपना सम्मान भी है। जब तक दलितों के पास उनका अपना साहित्य नहीं था, तब तक उनका सम्मान भी नहीं था। दलितों की कोई पहचान ना थी। और वे समाज के हाशिए पर रख दिए गए। किंतु जब बहुजन समाज में क्रांतिसूर्य डॉ. भीमराव अंबेडकर व ज्योति राव फूले का साहित्य मिला तो यह दलित समाज जाग उठा। अपनी अस्मिता और हक के लिए संघर्ष करने को तैयार हुआ। दलितों में यह जागृति एक–दो दिनों में नहीं आई, बल्कि इसमें सदियां गुजर गई एवं कई पीढ़ियों का अंत हो गया।

मुख्य शब्दः- प्रतिबद्धता, विद्रोही, अंधविश्वास, अस्मिता, बहुजन, साहित्य, संघर्ष, चमत्कार, नैराश्य।

प्रस्तावना :-

हिंदी साहित्य :- जब हिंदी साहित्य की चर्चा की जाती है, तो यह कहा जाता है कि साहित्य का आकाश बहुत बृहद है। समय की वेग के समान साहित्य एवं साहित्य की धाराएं अखंडित रूप से निरंतर प्रवाहित होती रहती हैं। तथा उसकी मूलोच्छेदन करना भी संभव नहीं होता। लेकिन अध्ययन की तरफ दृष्टिपात करने पर आदि काल में 'संस्कृत साहित्य' पर्याप्त मात्रा में मिलता है उस साहित्य में चमत्कार प्रदर्शन को अधिक बढ़ावा दिया गया है। श्रीहर्ष का 'नैषधचरित' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रहा है। इसी युग में आचार्य महिम भट्ट, हेमचंद्र, कुंतक, जयदेव एवं

आचार्य विश्वनाथ जैसे आचार्यों ने साहित्य में रचनाएं तो किए, किंतु आदि काल के साहित्य को अधिक प्रभावित करने में असफल रहे हैं। इस युग में धार्मिक विषयों पर जैनमुनियों, ब्रजयानी, सहजयानी, सिद्ध तथा नाथ पंक्तियों ने रचनाएं की थी। राजाओं के आश्रय में रहकर लेखन करने वाले भाट और चारण कवियों ने वीर रस एवं श्रृंगार रस से युक्त रचनाएं की थी। कुछ कवियों ने अन्य विषयों पर भी रचनाएं किए थे।''इस युग के साहित्य का संबंध जनजीवन से नहीं रहा कभी अधिकतर राज दरबारों में रहकर केवल 'स्वामिनः सुखाय' रचना किए हैं, जिनका जनता के दुख दर्द से कोई संबंध नहीं था।''[1] भक्ति कालीन साहित्य प्रायः पद्य में प्राप्त होता है। कुछ वार्ताओं तथा टीकाओं में गद्य का प्रयोग मिलता है, इस काल में सूर, तुलसी, कबीर, जायसी जैसे रचनाकारों ने साहित्य रचना में भक्ति भावना को स्थान दिया है। तथापि राजाओं के आश्रित कवियों ने श्रंगार, रीति, नीति एवं राज्य प्रशस्तिपरक रचनाएं किए हैं। भक्ति कालीन साहित्य का विभाजन सगुण एवं निर्गुण दो भागों में किया गया सगुण भक्ति के कवियों ने राम और कृष्ण की भक्ति की है इन्होंने ज्ञान की अवहेलना तो नहीं की पर, भक्ति को भी अधिक महत्व दिया। विष्णु के अवतार राम और कृष्ण की लीलाओं का ही मनोहारी चित्रण किया है। इस धारा में जिन साहित्यों को आधार बनाया गया उनमें मुख्यतः 'भगवत गीता', 'विष्णु और भागवत पुराण', 'नारभक्ति सूत्र', 'पंचरात्र संहितायें' और 'शांडिल्य भक्ति सूत्र' आदि।

निर्गुण भक्ति शाखा के कवियों ने हिंदू मुसलमानों में धार्मिक सांस्कृतिक के एकता को एक करने का प्रयास किए हैं, किंतु इन कवियों ने यह प्रयास दो अलग–अलग पद्धतियों से किए हैं । ''सूफियों ने 'प्रेम' का आश्रय लेकर हिंदू घरानों की प्रेम कथाओं को आधार बनाया एवं संतो ने 'ज्ञान' का आश्रय लेकर खंडनात्मकता का सुर अलापा है।''[2]

हिंदी साहित्य के रीति काल में तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। रीतिकाल का साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। ''औरंगजेब के रुक्ष स्वभाव के चलते कवियों का संबंध मुगल दरबार से कुछ दिनों तक कटा रहा है फिर भी कुछ राजा कवियों को आश्रय देते रहे हैं। गुण तथा परिणामों के नजरिए से रीतिकाल का साहित्य आश्रयदाताओं की अभिरुचि, प्रशंसा एवं अलंकार प्रधान शैली के बोझ तले दबा रहा है।''[3] साहित्य में कला और चमत्कार की प्रधानता प्रति लक्षित होती है रीतिकालीन साहित्य की मूल प्रकृति को 'भागीरथ मिश्र' ने इस प्रकार स्पष्ट किए हैं'– ''ऐसा लगता है कि रीतिकाल के रचयिता 'यौवन एवं बसंत' के कवि हैं, जीवन का फूलता हुआ सुघर रूप ही उन्हें प्रिय है। पतझड़, संघर्ष और विनाश संभवतः स्वतः जीवन में इतनी घोर रूप में विद्यमान था कि कवि काव्य में भी उसको उतार कर नैराश्य और निकृति की भावना को जगाना नहीं चाहता। वह तो फूलते–फलते जीवन का भ्रमर है। उसने जीवन का ही एक स्वरूप लिया, एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है, और एकांगिता है। परंतु जिस पक्ष को इसने लिया है उसके चित्रण में कोई कसर उठा नहीं रखी। उसके समक्ष वैभव और विलास के चित्रण में उसने कलम तोड़

दी है।''[4]

आधुनिक शब्द से संसारिक दृष्टिकोण ध्वनित होती है आधुनिक युग में धर्म, साहित्य, दर्शन तथा चित्र आदि के लिए नए दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। इस युग में राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, एवं स्वामी विवेकानंद जैसे महापुरुषों के आंदोलनों से पुनर्जागरण समाज में आया वह इतिहास बन गया। इसका सीधा प्रभाव समाज में पड़ा मध्यकालीन साहित्य अपने नवीन वातावरण में मिलते ही प्राचीन प्रवृत्तियों से अलग हो गए। परिणाम था इस समय को आधुनिक काल का 'पुनर्जागरण काल' कहना उचित होगा। भारतेंदु युग साहित्य का 'नवजागरण काल' से मुखरित है। इस काल का साहित्य संक्रांति का साहित्य है। जिसमें जीवन संघर्ष के पक्षों को शामिल किया गया है संक्रांति में अव्यवस्था होती है। श्रंगार– सज्जा के लिए कोई अवसर नहीं मिलता जिससे सजावट में कमी आ जाती है इन कमियों के मध्य भी इस युग में प्राणों की स्फूर्ति और जीवन का वेग दिखाई देता है। प्रथम एवं दूसरे महायुद्ध के बीच प्रवाहित कविता की समृद्ध, सौंदर्यशाली, कलात्मक धारा 'छायावाद' है। अर्थ विस्तार की दृष्टि से मानवतावाद, अध्यात्मवाद, दुखवाद, व्यक्तिवाद, रहस्यवाद इसके भीतर सभी आते हैं। आचार्य नंददुलारे वाजपेई ने 'छायावाद' के विषय में लिखते हैं– ''मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में अध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार से 'छायावाद' की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।''[5] इसलिए जब हिंदी साहित्य के युगों एवं उसके धाराओं में कौन सा युग व धारा सबसे समीप होती है, एवं उसकी प्रकृति अधिक साहित्यिक हो उनसे जो भी भाव बोध चिंतन की दृष्टि से वही हिंदी साहित्य की विशेष उपलब्धि है।

दलित विमर्श :– जब भारतीय साहित्य पर चर्चा होती है तो यह दिखाई पड़ता है कि साहित्य का स्वरूप हमेशा बदलता रहता है। किंतु संपूर्ण भारतीय साहित्य में उच्च वर्ग का पोषण करने वाली धारणाओं विचार धाराओं से भरा पड़ा है। भारतीय साहित्य में नए सिरे से एक सबसे नवीन साहित्य 'दलित साहित्य' के रूप में उभर कर आया है। हिंदी साहित्य में यह साहित्य जीवंत, नवीन व सशक्त है। इस साहित्य का सीधा जुड़ाव मानवता के प्रथम पथ प्रदर्शक महात्मा बुद्ध के विचारधारा से निर्मित है। जो आगे चलकर कबीर, अंबेडकर तथा फूले तक पहुंचने में सफल होती है। जो हिंदी दलित साहित्य हिंदी लेखक मुंशी प्रेमचंद के कथन को सही अर्थों में चरितार्थ कर रही है–''साहित्य उसी रखना को कहेंगे, जिसमें कई सच्चाई प्रकट की गई हो। और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने वाले गुण हो।''[6] इस नये दलित साहित्य में नकार एवं विद्रोह के स्वर स्पष्ट रूप से झलकता है। साहित्य में नकार उन परंपराओं एवं मान्यताओं का है जिसने जीवन को सिर्फ दुखदाई ही नहीं पनकी पशुवत बनाने पर अधिक जोर दिया है। इस साहित्य में इतनी तेज प्रबल सकती है जो सभी मान्यताओं का खंडन करते हुए प्रगति कर रही है। कर्मकांड, पुनर्जन्म, अंधविश्वास जैसी ढकोसलों की बात किस साहित्य में नहीं है जो हमेशा नए समाज को बनाने में हर पल अग्रसर है क्योंकि प्राचीन काल से लेकर अब तक लिखे गए संपूर्ण साहित्य में जिन मुद्दों को नकार दिया गया था। वही मुद्दे आज दलित विमर्श के प्रेरणा स्त्रोत बन गया

है। वैसे तो दलित साहित्य का बीजारोपण 600 वर्ष पूर्व ही दलित संतो ने कर दिया था दलित संतो में संत रविदास को दलित साहित्य का 'आदि कवि' कहा गया है, जिन्होंने पराधीनता के खिलाफ खुलकर शंखनाद कर दिया।

''पराधीन का दीन क्या, पराधीन वे दीन।
रविदास दास पराधीन का, कोई ना करें यकीन।।
पराधीनता पाप है, जान लेह मेरे मीत।
रविदास दास पराधीन से, कोई ना करें प्रीत।।
रविदास ब्राह्मण मत पूजिए, जउ होवे गुनहीन।
पूजहीं चरन चंडाल के, जउ होवे गुनहीन।।
जात–पात में जात है, ज्यों केलन में पात।
रविदास न मानुष जड़ सके, जौं लो जातु न जात।।''[7]

आधुनिक भारत के इतिहास में राहुल सांकृत्यायन, निराला, प्रेमचंद के अतिरिक्त कुछ एक साहित्यकारों को छोड़कर किसी भी साहित्यकार व इतिहासपुरूष ने अपनी कलम के माध्यम से बदलाव की चाह को दर्शाया हो। ऐसी स्थिति में आधुनिक भारत का इतिहास के इस बहाव या धारा के विपरीत किसी ने करने की कोशिश की है, तो वह 'दलित साहित्य' है। मूल रूप से दलित विमर्श पर लेखन कार्य का शुरुआत विश्व युद्ध साहित्यकारों के द्वारा नहीं किया गया। भारतीय समाज में विद्यमान जाति व्यवस्था छुआछूत के खिलाफ लड़ने वाले लोगों ने अपने–अपने अनुभवों, एहसासों, प्रतिक्रियाओं तथा विद्रोह को दर्शाने के लिए एक माध्यम के रूप में प्रारंभ हुआ। जहां विद्रोह और क्रांति के इस दौर में खूब उतार–चढ़ाव आया जहां साहित्य विलुप्त होने की कगार पर पहुंच चुका था किंतु महात्मा फूले तथा डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे विरोधियों की विचारधाराओं से यह दलित उत्पीड़न के पुनरुत्थान के रूप में उदय हुआ। दलित समाज को उनका सम्मान प्राप्त करने के लिए संघर्ष हेतु जगाते हुए 'उदय प्रकाश' लिखते हैं–

''ओ तृषित शोषित, दलित
अब जाग जाओ
भूल जाओ प्रणय गीतों को
शिक्षित होकर संगठित बनो
फिर न्याय हेतु संघर्ष करो।''[8]

हिंदी साहित्य में जहां गैर दलित समाज खुशहाल जीवन, सुख सुविधाओं का अनुभव करता है, तो दलित समाज बदहाली में जीवन यापन करता है दलितों की घरों का चित्रण कुछ इस प्रकार करते हैं–

''जमी हुई चांदनी के झिलमिलाते ताजमहल के नीचे,

बागड़ियों के झोपड़ों के छप्पर उभर आते हैं,

जिनके सिर के आरी सरीखे मानो आंखों की कोरों को चीर जाते हैं–

और छप्पर के छत पर बैठी एक भैंस पागुर कर रही है।''[9]

दलितों का इस तरह का घर एवं रहन सहन निराला जी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं जिस पर वह लिखते हैं–

''कच्चे घर ऊबड़– खाबड़, गंदे

गलियारे बंद पड़े, कुल धन्दे।''[10]

आजादी के पश्चात 'दलित विमर्श' नई ऊंचाइयों की सीढ़ियों को चढ़ता ही जा रहा है, जो केवल मराठी एवं हिंदी भाषा तक ही सीमित नहीं रहा। बल्कि देश के तमाम क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों में इसका फैलाव हो चुका है। इस विषय में जयप्रकाश कर्दम जी लिखते हैं– ''आज संसार में वैश्वीकरण का दौर चल रहा है, तो यह भी अनिवार्य हो कि दलित संवेदना और चेतना का भी वैश्वीकरण हो।''[11]

वर्षों पहले डरबन (दक्षिण अफ्रीका) में नस्लभेद विषय पर हुए विश्व सम्मेलन से दलित विमर्श के क्षेत्र में सक्रियता दिखाई पड़ती है। 'वर्ल्ड सोशल फोरम' के अंतर्गत 'एशिया सोशल फोरम' और 'इंडिया सोशल फोरम' की तरह प्रत्येक देश में गठित सामाजिक संगठनों की सक्रियता से यह उम्मीद बढ़ चुकी है' कि दलित समस्याओं का वैश्वीकरण भी धीरे धीरे जरूर होगा। हिंदी साहित्य और दलित साहित्य के बीच दलितों का यह संघर्ष तब तक ही चलेगा जब तक कि उन्हें मनुष्य की गरिमा पूर्ण जीवन जीने का अधिकार, समाज के सवर्ण जातियों एवं उनकी संकुचित मानसिकता का अंत नहीं हो जाता। जब तक साहित्य में ऊंच–नीच का भेदभाव समाज में विद्यमान रहेगा तब तक दलितों का संघर्ष भी चलता रहेगा। साहित्य व समाज के बीच जिस दिन मानव– मानव के बीच का भेदभाव समाप्त हो जाएगा दलित संघर्ष भी थम जाएगा।

''जब तक मनुज–मनुज का यह, सुख भोग नहीं सम होगा।

शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।।''[12]

निष्कर्ष :–

हिंदी साहित्य के विविध विधाओं में दलित विमर्श पर लेखन कार्य हुआ है। दलित साहित्य लेखन के पूर्व हिंदी साहित्य में सवर्ण समाज, दलितों की अशिक्षा व अंधविश्वास के कारण भारतीय समाज बहुत अहित किया है। जिसे दलितों ने अपनी नियति मानते हुए स्वीकार करते रहे किंतु आज का 'दलित विमर्श' हिंदी साहित्य मैं अपना अलग ही स्थायित्व रखती है। 'दलित विमर्श' केवल शब्दों का चमत्कार ना कर साहित्य में स्थापित समाज की पीड़ा को व्यक्त करता है। जो उनकी स्वानुभूति के अंगारों पर चल कर आगे बढ़ती है। हिंदी साहित्य

में सवर्ण साहित्यकारों ने 'दलित विमर्श' पर कभी लेखनी नहीं चलाई, ना ही कोई प्रयास किया। किंतु आज का 'दलित समाज' जाग चुका है, एवं अपना साहित्य लिखने में स्वयं सक्षम हो चुका है।

संदर्भ ग्रंथ :- 1. सूरजपाल चौहान के साहित्य में 'दलित विमर्श', शोध प्रबंध, नवीन चौहान, पृ. 215

2. वही. पृ. 215

3. हिंदी साहित्य का इतिहास– श्रीनिवास शर्मा, पृ. 561

4. हिंदी भाषा और साहित्य –किरण बाला, पृ. 163

5. वही. पृ. 197

6. हिंदी दलित आंदोलन के विविध पक्ष– डॉ.शत्रुघन कुमार, पृ. 79

7. 'इक्कीसवीं सदी का दलित आंदोलन', 'दलित साहित्य की सीमाएं और हिंदी'– डॉ. हरी निवास पांडे, पृ.4

8. अब जाग जाओ – उदय प्रकाश, पृ. 159

9. 'इतिहास की हवा', 'इंद्र धनुष रौंदे हुए से' सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, पृ.31

10. खजोहरा, 'नए पत्ते' सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पृ. 18

11. सूरजपाल चौहान के साहित्य में 'दलित विमर्श', शोध प्रबंध, नवीन चौहान, पृ. 221

12. 'कुरुक्षेत्र'–रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 17

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 124-126

हिन्दी भाषा और रोजगार

मंजू रानी
शोध छात्रा हिन्दी साहित्य
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

डॉ. शिवचरण शर्मा
शोध निदेशक

देशभर में 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है। सन् 1949 में इसी दिन हिन्दी को भारतीय संविधान को राज भाषा का दर्जा मिला था। इस कारण हम हर साल आज के दिन हिन्दी को कुछ ज्यादा ही याद करते है। चूंकि हिन्दी दिल की भाषा है, संवेदना की भाषा है, जीने की भाषा है, संस्कृति की भाषा है, समाज को जोडने की भाषा है, मातृ भाषा है। इसलिए इसी भाषा के लिए एक दिन कैसे हो सकता है। जिस तरह घर में मॉ के बिना घर, परिवार और उस घर के बच्चे अधूरे है। उसी तरह हिन्दी भाषा के बिना भारत और भारतीयता अधूरी है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए हमे हिन्दी भाषा में जीना होगा।

आज के समय में इसी भाषा के मॉ बोली के जीवित रहने के लिए मात्र साहित्य की नही उसे व्यवसाय, विज्ञान को रोजगार की भाषा बनाने की जरूरत है। जो भाषा सामान्य मनुष्य को रोजगार नही दे पाती वह धीरे धीरे संकुचित दायरे में सिमटती चली जाती है। अंग्रेजी के अंतर्राष्ट्रीय भाषा होने को सबसे बड़ा कारण व्यवसाय है। शौकीय रूप से किसी भाषा को सिखने वाले बहुत ही कम लोग होते है। अधिकतर तर्क लोग किसी न किसी व्यवसायिक कारण से किसी अन्य भाषा को सीखते हैं।

हिन्दी भाषा का महत्व :-

भाषा के रूप में हिन्दी भारत की पहचान है और यह देश की एकता का सूत्र है।

1. यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की संवाहक, संप्रेषक व परिचायक भी है।
2. बहुत सरल, सहज और सुगम होने के साथ हिन्दी विश्व की संभवतः सबसे विज्ञानिक भाषा है।
3. इसे दुनियाभर में, समझे, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में मौजूद है।
4. वर्तमान में दुनिया में मेड्रीन और अंग्रेजी के बाद यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा भोली जाने वाली भाषा है जो प्राचीन सभ्यात और आधुनिक प्रगति के बीच एक सेतु है।
5. आज हिन्दी भाषा वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना रही है। इस की हर जगह पर सराहना हो रही है।
6. हिन्दी भारत के सभी राज्यों मे बोली जाती है, परन्तु बिहार, उतरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उतराखण्ड, राजस्थान

आदि राज्यों में मुख्य रूप से बोली जाती है।

7. संविधान की आठवी अनुसूची में शामिल अन्य इक्सीस भाषाओं के साथ हिन्दी का एक विशेष स्थान है।

8. विश्व की प्राचीन और स्मृद्ध भाषा है, हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी दुनियाभर में हमें सम्मान दिला रही है।

हिन्दी भाषा और विभिन्न क्षैत्रों में महत्व :-

1. अध्ययन :– हिन्दी भाष का अध्ययन में रोजगार पूर्णरूप से महत्वपूर्ण है जिन्हे हम कुछ बिन्दुओं से जान सकते है। जैसे सरकारी, अर्ध्दसरकारी, गैरसरकारी व निजी संस्थानों में हिन्दी भाषा के अवसर प्रदान है।

2. विद्यालयों में प्राइमरी शिक्षक के लिए नर्सरी टीचर ट्रेनिंग एवं मॉटेसरी ट्रेनिंग करके रोजगार प्राप्त कर सकते है एवं विद्यालय में अध्ययन के लिए अनिवार्य रूप से बी.एड करके शिक्षक के तौर पर सरकारी और निजी दोनों सेक्टरों मे रोजगार करत सकते है।

3. भारत सहित विश्व के कई देशों में हिन्दी का अध्यापन किया जाता है। जिसके लिए उन संस्थानों को पर्याप्त मात्रा में योग्य अध्यापकों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त प्रवासी भारतीय व अन्य विदेशी लोग भारतीय साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास को जानने समझने के लिए स्वंय तथा इनके बच्चों को हिन्दी भाषा की शिक्षा दिलवाने चाहते है।

अनुवाद :- अनुवाद का क्षेत्र रोजगार प्राप्त करने में सबसे उपयोगी है। मिडिया के क्षेत्र में हिन्दी अनुवादको को रोजगार के कई अवसर प्राप्त हो सकते है क्योकि प्रिन्ट व इलेक्ट्रोनिक मिडिया व विभिन्न समाचार स्त्रोतो में अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के समाचार प्राप्त होते है। उन समाचारों को एक अच्छा अनुवादक ही हिन्दी भाषा में ही अनुवादित कर सकता है। केन्द्र सरकार के कई विभागों में राज्य सरकार, अर्ध्दसरकारी विभागो में हिन्दी भाषा में काम काज करना अनिवार्य है। इसलिए इन विभागों में बहुत प्रकार के पद सर्जित किये गये है। जैसे हिन्दी अधिकारी, हिन्दी अनुपादक, हिन्दी सहायक या राजभाषा सहायक आशुलिपिक प्रबंधक इत्यादि इसके अतिरिक्त केन्द्रीय अपराध, प्रयोगशाला, भारतीय जीवन बीमा निगम, बी.आर. डी. ओ. सरकारी, गैरसरकारी बैंक, भारतीय विमानपतन प्राधिकरण, अर्ध्दसैनिक बल में हिन्दी अधिकारियों के व अनुवादको के पद भरे जाते है।

संचार :- संचार के माध्यमों में इलेक्ट्रोनिक व प्रिन्ट मिडिया के हिन्दी भाषा के रोजगार के तमाम रोजगार प्राप्त होते है। दुरदर्शन का क्षेत्रिय व अन्य क्षेत्रिय चैनल डी.डी. भारती, डी. डी. न्यूज, लोकसभा, टी.वी, व राज्य भाषा टीवी, हिन्दी भाषा में समाचार प्रसारण व वृतचित्र, धारावाहिक, कृषिदर्शन, ज्ञानदर्शन, स्वास्थ्य, समाज कल्याण व साहित्य से सबंधित कई प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत करते है। इसके अतिरिक्त कई निजी टीवी चैनल में भी हिन्दी समाचारों के प्रसारण के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में कई प्रकार के कार्यक्रमों का प्रसारण करते है। दृध्य माध्यमों के बढ़ते प्रभाव से रेडियों का अस्तित्व समाप्त नही हुआ है। बल्कि रेडियो ने भी इस प्रतिस्पर्धा के दौर में नये आयम स्थापित किये है। हिन्दी भाषा में इंटरनेट अपना कब्जा जमा रहा है। गुगल और विक्कीपिडीया जैसी बड़ी वैबसाइट से हिन्दी को हर व्यक्ति तक पहुचाने का प्रयास हो रहा है।

बाजार :- बाजारवाद के चलते हर अनुपादक अपनी अनुपाद को अधिक से अधिक उपभोक्ताओ तक पहुचाने के

लिए विज्ञापन का सहारा लेता हैं। विज्ञानपनों के प्रसारण के लिए संचार माध्यमको का सहारा लेता है तथा बाजार में अनुरूप ही वह उस उत्पाद के लिए व्यापन की भाषा को चुनता है। कई भारतीय वह विदेशी कम्पनियां उत्पादों की बिक्री के लिए विज्ञापन तैयार करवाते है। इस के लिए हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान बाजार पर अच्छी पकड व लोगों की रूचि का ध्यान रखना आवश्यक है। हिन्दी विज्ञापन का क्षेत्र रोजगार की संभावना प्रस्तुत करता है।

पर्यटन :– पर्यटन के माध्यम से भी हिन्दी भाषा में रोजगार की अपार संभावना है। भारत में प्रतिवर्ष हजारों लाखों पर्यटक आते है। उन्हे हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं का ज्ञान नही होता है। यहां तक कई लोग अंग्रेजी भाषा को भी अच्छी तरह से नही समझ सकते है। ऐसी स्थिति में भारतीय पर्यटक स्थल, तीर्थ स्थल, स्मारकों इत्यादि की जानकारी के लिए दूवी भाषा की दे सकता है। अतः यहां एक व्यक्ति हिन्दी भाषा के आधार पर जीवन व्यापन कर सकता है। भारत में कई प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी विषय को अनिवार्य या विकल्प के रूप में रखा जाता है। हिन्दी भाषा के शिक्षण के लिए भारत के कई राज्यों में हिन्दी विषयों को 10 वीं व 12वीं कक्षा तक अनिवार्य रूप से बनाया जाता है। अनेक महाविद्यायों में व विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा में बी.ए. एम.फिल. के स्तर पर पढ़ाया जाता है। इसके अलावा भाषाशास्त्र में एम.ए. अनुवाद में डिप्पलोमा व संचार, जनसंचार में डिपलोमा, हिन्दी में सर्जनात्मक में प्रयोजन मूल्यांकन हिन्दी में डिपलोमा में इत्यादि कार्स संचालित किये जाते है। जिनकी योग्यता से व्यक्ति अपने सुनहरे भविष्य की तलाश कर सकता है।

विभिन्न क्षेत्रों में प्रभाव :– हिन्दी भाषा भारत के अलावा नेपाल, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, मेरोसिस, अमेरिका, यमन, युगांडा, जर्मनी, न्यूजलै.डा, सिंगापुर आदि में बहुत बोली जाती है।

1. आस्ट्रेलिया, यूके, कनाडा और यू.ए.ई, ने भी हिन्दी बोलने वाले द्विभाषी या त्रिभाषी बोलने वालो की बहुत है।
2. विदेश मंत्रालय द्वारा विश्व हिन्दी समेलन और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाने का कार्य किया जा रहा है।
3. वर्तमान में ऑनलाईन हिन्दी शिक्षण कई निजी पाठ्क्रम स्वरोजगार की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयासों के रूप में देखे जा रहे है।

यह जानकार हैरानी होगी कि 2016 में देश में जनसम्पर्क कम्पनियों का कारोबार 1120 करोड़ का हो रहा था और सन 2020 तक बढ़कर 2100 सौ करोड़ रूपयें होने का अनुमान है। जाहिर है हिन्दी वालों के लिए यह एक सुनहरा क्षेत्र है इसलिए इसमें कोई संशय नही की हिन्दी के दम पर हम दुनिया में परचम लहरा सकते है।

संदर्भ :– जनसता आलोक रजनपांडेय

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 127-130

हिंदी पत्रकारिता

डॉ. माया पारस, पद सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
शासकीय महाविद्यालय राजनगर जिला अनूपपुर (मध्य प्रदेश)

प्रस्तावना :-

पत्रकारिता शब्द अंग्रेजी के जर्नलिज्म (Journalism) का हिंदी अनुवाद है। जर्नलिज्म लैटिन भाषा के जर्नल से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ दैनिक होता है। इसे एक प्रकार से एक डायरी माना जाता है। पत्रकारिता के प्रारंभिक दिनों में अर्थात 17वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में सरकारी कार्यों एवं गतिविधियों के प्रति दिन के विवरण लिख कर रखे जाते थे, जिसे जर्नल कहा जाता था। इसमें किसी एक कार्यालय की कार्यों का लेखा–जोखा होता था उसे उसी कार्यालय के गिने–चुने लोग पर पाते थे। उन बिना जर्नल सूचना पटल का विस्तृत रूप था। समय के साथ–साथ इसका और अधिक विस्तार होता गया। और आज यह अपने अब तक के सबसे अधिक विस्तृत स्वरूप में है। हिंदी के एक शब्द पत्रकारी से भी पत्रकारिता शब्द का विकास माना जाता है।

साहित्य समालोचना द्विवेदी युग की पत्रकारिता की देन है। भाषा, लिपि, वर्तनी और अभिव्यंजना शैली के एक–एक पहलू का लेखा इस युग के पत्रकारों ने लंबी बहस की जिससे खड़ी बोली का रूप उत्तरोत्तर निखरता गया। भाषा निर्माण और शब्द विकास की इस प्रक्रिया की जिम्मेदारी वास्तव में पत्र–पत्रिकाओं की देन है।

आज हिंदी पत्रकारिता भाषा की दृष्टि से जन सामान्य की अधिक निकट है, राष्ट्रीय ज्ञान–विज्ञान का जन संचार करने के लिए अभिव्यक्ति शैली का विकास एक सतत प्रक्रिया है। आज पत्रकारिता का रूप भी बदल गया है, इसकी निगाहें अंतरिक्ष में इसकी जुबान पर एक ऐसी नई शब्दावली हैं जिसका कुछ करने से पहले वजूद ही नहीं था, आज की पत्रकारिता अपने सार्वभौमिक के उस दौर में हैं जहां उसे कोई खतरा नजर नहीं आता। पत्रकारिता सन्–1826–1867 के बीच हिंदी पत्रकारिता की भाषा अधिकतर सूचना पटल और समकालीन परिवेश के अनुसार व्यावहारिक स्तर में रहे। भारतेंदु ने हिंदी गद्य को व्यवस्थित और परिनिष्ठित रूप प्रदान करने के लिए हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भाषा शैली को सर्वथा नूतन और स्तरीय आयाम प्रदान की। जिसका श्रेय महावीर प्रसाद द्वेदी को जाता है। उनकी भाषा नीति ने समकालीन हिंदी पत्र जगत में एक अनूठी सक्रियता का संचार किया। 1820–1847 के मध्य हिंदी पत्रों की भाषा में मंज गई। तत्सम बहुलता का स्थान तद्भव और बोलचाल की सहज शब्दावली ने ले लिया।

कुछ विद्वानों ने पत्रकारिता के संबंध में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

लेसी स्टेफस के अनुसार :– हाल–हाल में घटी घटनाएं जिन घटनाओं और बातों की जानकारी नहीं है उसके बारे में बतलाना पत्रकारिता है।

कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार :– पत्रकारिता वह व्यवस्थित ज्ञान है जिसमें पत्रकारों के लिए कर्तव्य और उद्देश्यों का विवेचन किया जाता है जो अपने युग और अपने संबंध में लिखा जाता है वही पत्रकारिता है।

हरबर्ट बरूकर के अनुसार :– पत्रकारिता वह माध्यम या साधन है जिसके माध्यम से हमें अपने मस्तिष्क में उस दुनिया के बारे में समस्त सूचनाएं संकलित कराते हैं जिसे हम स्वतः कभी नहीं जान सकते हैं।

विकास के क्रम में पत्रकारिता आज इतनी लंबी दूरी तय कर चुकी है कि उसे किसी एक परिभाषा में समेटना आसान नहीं है। इस क्षेत्र के विद्वानों द्वारा बताई गई भिन्न–भिन्न परिभाषा दृष्टिपात करें तो पत्रकारिता के स्वरूप को समझा जा सकता है, इन पत्रों में से कुछ मासिक थे, कुछ सप्ताहिक, दैनिक पत्र केवल एक था ''समाचार सुधावर्षण'' जो द्विभाषीय (बांगला हिंदी) था और कोलकाता से प्रकाशित होता था।

हिंदी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिंदी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना, युगबोध और अपने महत् दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। 19वीं शताब्दी में हिंदी गद्य–निर्माण की चेष्टा और हिंदी–प्रचार आंदोलन अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में भयंकर कठिनाइयों का सामना करते हुए भी कितना तेज और पुष्ट था। इसका साक्ष्य 'भारतमित्र' (सन् 1878 ईस्वी) में 'सार सुधानिधि' (सन 1879 ईस्वी) के जीर्ण पृष्ठों पर मुखर हैं। भारत में प्रकाशित होने वाला पहला हिंदी भाषा का अखबार, उदंत मार्तंड (द राइजिंग सन्), 30 मई 1826 को शुरू हुआ। इस दिन को ''हिंदी पत्रकारिता दिवस'' के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि इसने हिंदी भाषा में पत्रकारिता की शुरुआत को चिन्हित किया था।

हिंदी प्रदेश के प्रारंभिक पत्रों में ''बनारस अखबार'' 1845 काफी प्रभावशील था। और उसी की भाषानीति के विरोध में 1850 में 'तारामोहन मैत्र' ने काशी से ''साप्ताहिक सुधाकर'' और 1855 में 'राजालक्ष्मण सिंह' आगरा से 'प्रजा हितैषी' का प्रकाशन आरंभ किया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1867 से पहले भाषा शैली के संबंध में हिंदी पत्रकार किसी निश्चित शैली का अनुसरण नहीं कर सके थे। परंतु सच तो यह है कि ''हरिश्चंद्र मैग्नीज'' के प्रकाशन 1873 तक वे भी भाषा शैली और विचारों के क्षेत्र में मार्ग ही खोजते दिखाई देते हैं।'

उदंत मार्तंड' को हिंदी का पहला अखबार घोषित करने का श्रेयमॉडर्न के संपादक 'बृजेंद्र मोहन बंदोपाध्याय' को जाता है 1931 के पहले तक 'बनारस अखबार' जो गोविंद रघुनाथ के संपादक में 1840 में हुआ था, को हिंदी का पहला अखबार माना जाता था। हिंदी पत्रकारिता के उद्‌गम एवं विकास को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है जैसे :–

(1) पूर्व भारतेंदु युग (1826 से 1866)

(2) भारतेंदु युग (1866 से 1885)

(3) उत्तर भारतेंदु युग (1888 से 1902)

(4) द्विवेदी युग (1903 से 1920)

(5) वर्तमान युग (1921 से अब तक)।

देश–विदेश में घटने वाली घटनाओं को संकलित करके उन्हें समाचार के रूप में संपादित करने की विधा पत्रकारिता कहलाता है ।

पत्रकारिता का संबंध मुख्य रूप से उन समाचारों से भी है जिसमें किसी विचार, टिप्पणी, संपादकीय, लेख, फोटो, कार्टून आदि कुछ छापना भी पत्रकारिता के ही अंतर्गत आता है। सार्वजनिक महत्व के भ्रष्टाचार जैसे अनियमितता को उजागर करना किसी महत्वपूर्ण खोज परख में पत्रकारिता का सहारा लिया जाता है, इसके अंतर्गत किसी भी बात को छूपाई जाने वाली सूचनाओं की गहरी जांच पड़ताल किया जाता है, उसके बारे में जितना हो सकता है प्रमाण एकत्र किए जाते हैं तथा उन्हीं को प्रकाशित किया जाता है। इसे हम टेलीविजन में 'स्टिंग ऑपरेशन' के रूप में मान सकते हैं। अमेरिका का वाटरगेट कांड इसी खोजी पत्रिका का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

किसी विशेष क्षेत्र की गहरी जानकारी देते हुए उसका विश्लेषण करना विशेषीकृत पत्रकारिता के अंतर्गत आता है। सरकार के कामकाज पर निगाह रखने और उसकी गड़बड़ियों का पर्दाफाश करना वॉचडॉग पत्रकारिता कहलाती है। प्रायः सभी पत्र तथा पत्रकार स्थापित व्यवस्था और मालिकों के अनुकूल चलते हैं। परंतु जब मीडिया स्थापित व्यवस्था के विकल्प के रूप में अपनी सोच को व्यक्त करता है तो उसे वैकल्पिक पत्रिका कहते हैं। इन्हें पूंजी पतियों का, सरकारों का, तथा विज्ञापनों का समर्थन प्राप्त नहीं हो पाता।

निष्कर्ष : – समाचार के लिए आवश्यक है कि वह अपने पाठकों के जीवन से निकटता से संबंध हो। कोई पत्र उसके पाठकों के स्थान, प्रांत, गली, मोहल्ले, संस्थान, परिवार, जाति, धर्म या व्यवसाय के जितने करीब होगा उतना ही उसका महत्व बढ़ता जाएगा।

भारतीय सिनेमा विश्व का सिरमौर है। विश्व में सबसे अधिक फिल्में भारत में बनाई जाती है। आज भारत के समाचार पत्रों का अपना एक विशिष्ट पाठक वर्ग होता है। उस समाचार पत्र में उसी पाठक वर्ग की रुचि के समाचार छापे जाते हैं, समाचार पत्र पढ़ने वालों में मध्यम वर्ग के लोग अधिक होते हैं इसलिए अधिकांश समाचार उन्हीं से संबंधित होते हैं।

हमारे देश की व्यवस्था में जब भी संकट का दौर आया है ऐसे समय में प्रेस और मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज देश के सामने कई चुनौतियां हैं ऐसी स्थिति में प्रेस की सजगता जरूरी है। विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यवस्था से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के साथ प्रेस भी तैयार रहें। पत्रकारों को बताने की आवश्यकता नहीं, वे सभी चीजों की जानकारी रखते हैं, वह देश हित व देश के नवनिर्माण में अपनी भूमिका सुनिश्चित करते हैं। हमारे देश का मीडिया आज भी जो काम कर रहा है वह अन्य क्षेत्रों से बेहतर है, लेकिन मीडिया का रुझान हाल के वर्षों में जिस तरह से बदला है उस पर विचार करना होगा। हमें स्वीकार करना चाहिए कि भारत जैसे विकासशील देश में मीडिया का दायित्व लोगों को खबर पहुंचाना ही नहीं होता है बल्कि उन्हें

विश्लेषणात्मक विवेचनात्मक चेतना से समृद्ध करना भी होता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

(1) धीरेंद्र सिंह, हिंदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय प्रकाशन, बनारस सन् 2001

(2) गोल्डन हिंदी, सोम्यचंद्र

(3) अभिव्यक्ति और माध्यम, एनसीईआरटी पुस्तक

(4) वेबसाइट माध्यम

(5) स्वयं विवेक पर आधारित

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 131-138

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका

डॉ. अल्पना शर्मा
सहायक आचार्य(शिक्षा)
शोध निदेशक, शिक्षा संकाय
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान(मानित)
विश्वविद्यालय, गा.वि.म., सरदारशहर।

मीना शर्मा
पी. एच. डी. शोधार्थी
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
(मानित) विश्वविद्यालय
गा.वि. म., सरदारशहर (चुरू)
मो. – 7297017193

सारांश :–

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका पर अध्ययन करने से पूर्व हमें समाज क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नों पर विचार करना चाहिए। इनके संबंध में यह कहा जा सकता है कि समाज व्यक्तियों का वह समूह है जिस स्थान पर मानव एक साथ उठ–बैठकर अपने सुख–दुःख को बांटता है, वही स्थान जहां व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित अनुभव करता है, जहां रहकर उसके अस्तित्व को पहचान मिलती है, उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। जन्म के साथ प्रारंभ होने वाला उसका समाज के साथ संबंध मृत्युपर्यन्त ही समाप्त होता है। समाज के भिन्न–भिन्न रूप हमारे समक्ष उपस्थित होते है। साहित्य में किसी समाज की परंपराओं, रीति–रिवाजों, संघर्षों, नियमों को लिखित रूप में देखा जा सकता है। एक सजग साहित्यकार समाज में घटित परंपराओं, विचारों को अनुभूत कर शब्दों के माध्यम से वर्णित करता है। इस रूप में साहित्य समाज का प्रतिबिंब ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् उसके भविष्य की दिशा एवं दशा की ओर भी संकेत करता है। साहित्य और अमाज का अटूट संबंध है। जिस प्रकार साहित्य समाज की उपेक्षा कर कालजयी नहीं बन सकता, उसी प्रकार समाज को सही दिशा प्रदान करने में तत्कालीन साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि साहित्य की संवेदना समाज की संवेदना होती है। किसी भी समाज की उन्नति–अवनति, परम्पराएं, गुण–दोष साहित्य में ही मुखारित होते है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं और उस समाज की सभ्यता एवं संस्कृति को साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा साकार करता है। इस प्रकार प्रत्येक युग में साहित्य ने समाज को प्रभावित किया है और इसी दृष्टि में हिन्दी साहित्य की भी अहम भूमिका है।

कूँजी शब्द :–

हिन्दी साहित्य, सामाजिक उत्थान, रीति–रिवाज, परम्पराएं, प्रतिबिंब, संवेदना, सभ्यता–संस्कृति,

नैतिकता इत्यादि।

प्रस्तावना :–

किसी का सत्य था,
मैंने संदर्भ में जोड़ दिया।
कोई मधुकोष काट लाया था,
मैंने निचोड़ लिया।
यो मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ
काव्यदृतत्त्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ ?
चाहता हूँ आप मुझे
एक–एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।

–सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

साहित्य का आविर्भाव भी इसी समाज से होता है जिसे रचनाकार अपने भावों के साथ मिलाकर उसे एक आकार देता है। यही रचना समाज के नवनिर्माण में पथप्रदर्शक की भूमिका निभाती है। अज्ञेय मानते है कि साहित्यकार होने के नाते अपने समाज के साथ उनका विशेष प्रकार का संबंध है– समाज से उनका आशय चाहे हिन्दी भाषी समाज रहा हो जो कि उनका पहला पाठक होगा, चाहे भारतीय समाज जिसके काफी समय से संचित अनुभव को वे वाणी दे रहे होंगे, चाहे मानव समाज हो जो कि शब्द मात्र में अभिव्यक्त होने वाले मूल्यों की अंतिम कसौटी ही नहीं बल्कि उनका स्त्रोत भी है।

साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहां एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केन्द्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा–बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ–साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

साहित्य में मूलतः तीन विशेषताएं होती है जो इसके महत्त्व को रेखांकित करती है। उदाहरणस्वरूप साहित्य अतीत से प्रेरणा लेकर, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालांकि जहां दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान

देता है। साहित्यकार से जिनवृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएं कौन–सी है, और जहां इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परीक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है और उसके समाज दर्शन का लक्ष्य क्या है ? हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभावः साहित्यम्। यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र–वाक्य है जिसका अर्थ होता है– साहित्य का तत्त्व सबका हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाजदर्शन शूल–कन्टोंजैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती है। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशीला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी–कभी लेखक समाज शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का सामाजीकरण किया था जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा, "जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।"

प्रेमचंद का किसान–मजदूर चित्रण उस पीड़ा व संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी अविकसित एवंशोषित वर्ग गुजर रहा है। साहित्य में समाज की विविधता, जीवन–दृष्टि और लोककलाओं का संरक्षण होता है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामाजिक संस्कारों का परिष्कार होता है। रचनाएं समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती है। यही दृष्टिकोण साहित्य को मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध करते है।

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा

संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती है कि –

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ–साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिए कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की। आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है।

वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित है। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही है। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी स्थिति नियंत्रण में है।

आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका –

साहित्य नव निर्माण एवं पुनर्निर्माण दोनों करता है। नियामक और निर्णायक दोनों भूमिकाएं निभाता है। इसमें मनोभावों का प्राधान्य होने से इसका वास्तविक स्वरूप वैश्विक हो जाता है। यह सही है, साहित्य आदेशात्मक या दंडात्मक भूमिका तो नहीं निर्वाहित करता, परंतु इसकी प्रभावात्मक क्षमता प्रच्छन्न एवं परोक्ष रूप से सर्वाधिक प्रबल होती है। मानव मन को साहित्य इस तरह प्रभावित करता है कि वह तत्काल उस अनुरूप जीवन ढालने को कटिबद्ध हो जाता है। साहित्य की प्रवृत्ति वास्तव में उस शमी वृक्ष की भांति होती है, जो बाहर से शीतल परंतु भीतर आग्नेय क्रांति का बड़वानल छिपाए होती है। इसकी प्रेरणा क्षणिक या सीमित ना होकर सार्वभौमिक और सर्वकालिक होती है।

साहित्य में ही समाज निर्माण की शक्ति होती है। कोई भी विचार शब्दों में बंधकर ही स्थाई होता है तथा पीढ़ियों तक पहुंचता है। भावी पीढ़ी विगत की श्रेष्ठताओं के प्रकाश में अपना मार्ग बनाती है। यह निरन्तरता ही उसे परंपरा का आकार देती है। श्रेष्ठता संस्कृति का अधिष्ठान बनती है। संस्कृति, साहित्य के अभाव में स्मृति

के जंगल में खो जाती है, कभी कभी विनिष्ट भी हो जाती है। जिस देश का साहित्य नष्ट हो जात है, उसकी संस्कृति स्वतः नष्ट हो जाती है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ–साथ नष्ट होती रही है किन्तु भारत की संस्कृति आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर–अमर बनी हुई है। उसकी उदारता एवं समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है लेकिन अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। समाज निर्माण की पृष्ठभूमि में समान आचार विचार, समान भाषा साहित्य तथा समान आध्यात्मिक सोच कार्यरत रहते है। समाज ऐसे ही व्यक्तियों का सामुदायिक स्वरूप है। प्रारंभ में इनका एक साथ रहना आवश्यक होता है। कालांतर जब जीवन पद्धति रूढ़ हो जाती है, तब इनका पृथक पृथक निवास भी इनकी सामाजिक एकता को विभाजित नहीं कर पाता। आज तो विज्ञान ने पूरे भू मंडल को एक विश्व ग्राम में बदल दिया है।

प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवंत रही है, जिसमे जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। वस्तुतः शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति की कसौटी है, जिस पर भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से खरी उतरती है। भारत अनेक धर्मों, संप्रदायों, मतों और पृथक आस्थाओं और विश्वास का देश है, तथापि इसका सांस्कृतिक समुच्चय और अनेकता में एकता का स्वरूप संसार के अन्य देशों के लिए आश्चर्य का विषय रहा है। संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती है। सामाजिक गुण जैसे – धर्म, प्रथा, परंपरा, रीति–रिवाज, कानून, साहित्य, भाषा आदि से मिलकर संस्कृति बनती है। यह सिखा हुआ व्यवहार है, जो अनेक पीढ़ियों तक हस्तांतरित होता रहता है। भारतीय संस्कृति एक गतिशील दर्शन है इसलिए उसमें देश, धर्म और काल भी लक्षित होते है लेकिन संस्कृति वह सीमा भी निर्धारित करती है जिसमें हमें परिवर्तन और अस्वीकार की दृष्टि मिलती है। कहा जाता है कि जिस संस्कृति में लोकतंत्र एवं स्थायित्व के आधार व्यापक हो, उस संस्कृति में ग्रहनशीलता की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाती है और ठीक इसी प्रकार की है – हमारी भारतीय संस्कृति।

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। एक ओर साहित्य का हित और अहित भाव समाज के लिए कल्याणकारी होता है, वहीं समाज का पारंपरिक आचरण साहित्य को गरिमा प्रदान करता है। साहित्य को तात्कालिक सामाजिक संक्रमण प्रभावित तो करते है परंतु सर्जक जो समय और शास्त्र दोनों का ज्ञाता और दृष्टा होता है, वह हंस के नीर क्षीर विवेक की भांति सांस्कृतिक एवं असांस्कृतिक में से सांस्कृतिक को चुनता है और शब्द के बल पर समाज को देता है। साहित्य की विषय वस्तु समाज है, जैसा समाज और उसका वातावरण होगा वैसा ही प्रभाव साहित्य पर पड़ेगा। साहित्यकार भी उसी समाज में रहते हुए समाज के सुख–दुख, रीति–रिवाजों की कल्पनाशीलता को यथार्थ की मान्यता की कसौटी पर कसता है। साहित्य का समाज पर क्रांतिकारी प्रभाव पड़ता है। साहित्यकार समाज का प्रतिनिधित्व करता है और समाज को उच्च विचारों के साथ दिशा प्रदान करता है। समाज जब किसी बुराई की चपेट में आता है, साहित्यकार उसे दूर करने का अथक प्रयास करता है। साहित्यकारों ने सदैव ही समाज को सही राह दिखने का कार्य किया है। साहित्य और समाज दोनों

अलग–अलग होकर भी एक दूसरे से जुड़े है, वैदिक साहित्य के बाद सृजित साहित्य इसका प्रमाण है। वाल्मीकि ने दशरथ पुत्र श्रीराम का मर्यादा पुरुषोत्तम चरित्र चुनकर जिस महकाव्य रामायण को छंद बद्ध किया, वह आज भी समाज निर्माण की भूमिका निर्वाहित कर रहा है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत एवं श्रीमद्भागवत के माध्यम से जिस योगेश्वर चरित्र की सृष्टि की, उसने इन ग्रंथों को भारतीय संस्कृति का प्रतीक ग्रंथ बना दिया। महात्मा बुद्ध ने तो अपने ज्ञान से बौद्ध साहित्य का निर्माण किया, वह कालांतर में राजधर्म बनकर पूरे एशिया का धर्म बन गया। जातकों ने जिस ज्ञान की प्रस्तुति दी, उसने सम्यक आचरण, सम्यक चरित्र तथा सम्यक ज्ञानवान समाज की निर्मिति का एक नया इतिहास रचा। बौद्ध समाज जब ज्ञान–पथ से भटका तो आदि शंकराचार्य उसी पुराने वैदिक साहित्य को लेकर, भारत के आसेतु हिमाचल पद यात्री बन गए।

भारतीय संस्कृति की भव्यता, अखंडता और दीर्घ जीवन का कारण जीवन में भावना, साहित्य और दर्शन को यथोचित स्थान प्रदान करना है। भारतीय साहित्य शास्त्र में रस को ब्रह्मास्वाद सहोदर इसलिए कहा गया है कि जिस प्रकार से आध्यात्मिक साधना में सत्वोदेक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार से साहित्य में भी रस निष्पत्ति सत्वोदेक के बिना संभव नहीं है। गीता के गुणत्रय विभाग योग नामक चौदहवें अध्याय में मानव जीवन में गुण विकास के विषय पर डाला गया है। स्वतंत्रता आंदोलन के युग में भारत की तामसिक चेतना, सुप्त चेतना एवं निष्क्रिय चेतना को जगा उसे रजोगुण और सत्व गुण से सम्पन्न कर भावना संस्कार के इसी मार्ग को अपनाया गया था। भावना के संस्कार से ही मनुष्य हैवान से इंसान बनता है।

अज्ञेय लिखते है कि "चिंतन साहित्य, साहित्यकार को न केवल सीधे–सीधे सामाजिक परिवर्तन से जोड़ता है बल्कि इसे अपना अधिकार समझता है कि वह साहित्यकार को बताए कि कौनसा सामाजिक परिवर्तन सही और वांछनीय है और इसके लिए वह योजना बनाकर साहित्यकार को देना चाहता है– जिस योजना का साहित्यकार की अपनी दृष्टि या अपने विवेक से आत्यान्तिक संबंध हो वह आवश्यक नहीं मानता। जिन संस्कृतियों में लीला–भाव नहीं रहता वे उस सीमा तक बंध्य और स्थितिशील हो जाती है, भले ही गंभीरता उसमें बनी रहे। बल्कि उनकी यह गंभीरता भी परंपरा के आग्रह का रूप ले लेती है और जिन साहित्यों मे लीला–भाव रहता है, वे भी स्थितिशील हो जाते है और उनकी गंभीरता भी रीति और परंपरा के आग्रह का रूप ले लेती है तथा प्रयोग से कतराती है।

साहित्य किसी घटना, वस्तु या भावलोक या विचारलोक को उसकी संपूर्णता और समग्रता में देखने की दृष्टि प्रदान करता है। साहित्य यथार्थ और कल्पना की सीमा–रेखा पर साहसपूर्वक बढ़ता है और उसी संधि–भूमि पर उसकी सृजनात्मकता क्रियाशील होती है। साहित्य अस्तित्व का बोध करता है, साहित्य स्थितिबोध जगाता है, जड़ों की पहचान कराता है, उनके द्वारा अपनी मिट्टी से रस खींचने की प्रेरणा देता है, प्रक्रिया सिखाता है, दक्षता बढ़ाता है। साहित्य बदलाव की पहचान कराता है, बदलाव की संभावनाएं उजागर करता है, बदलने की प्रेरणा देता है। जिस साहित्य को मात्र मनोरंजन के लिए पढ़ा जाता है उसमें भी भावोदेक की शक्ति होती है, भले ही निम्न स्तर की हो। साहित्य समाज में व्याप्त बुराइयों का बहिष्कार कर मानवता और नैतिकता और उच्च

सिद्धांतों की बात करता है। यह सार्थक परिष्कृत चिंतन भारतीय समाज में आधुनिक साहित्य की उपज ही कही जा सकती है जिसने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों का उन्मूलन किया, साथ ही समाज की उन्नति का आधार भी बना जिसका साक्षात प्रभाव भारतीय समाज और साहित्य पर दृष्टिगोचर होता है।

साहित्य में पहले प्रायः देखा जाता था कि अभिव्यक्ति के माध्यम हेतु संस्कृत को छोड़ प्राकृत भाषा को चुना जाता था जिसे सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। सिद्ध साहित्य में प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों और सामाजिक असमानता पर शूद्रों के साथ हो रहे अन्याय और प्रातड़ना का तीव्र विरोध किया तथा सभी क्षेत्रों में समान अधिकार की बात की, सामाजिक परिवर्तन को तीव्र करने का भार उठाया, भारतीय समाज में आ रहे परिवर्तन के कारणों को साहित्य ही दिशा दे रहा था और परिवर्तन स्वर का शंखनाद कर रहा था, साथ ही आने वाली पीढ़ियों में संस्कार और नैतिक मूल्यों के उत्थान में भी अहम भूमिका निभा रहा था।

निष्कर्ष –

इस प्रकार साहित्य और समाज का गहरा संबंध है और दोनों एक दूसरे के पूरक है। समाज शरीर है तो साहित्य आत्मा। साहित्य मानव मस्तिष्क से उत्पन्न होता है और मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य न तो समाज से अलग हो सकता है और न साहित्य से। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साहित्य एवं संस्कृति का संरक्षण करना समय की आवश्यकता बन गई है, क्योंकि युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति से विमुख होने लगी है और उनका रुझान पाश्चात्य सभ्यता की ओर बढ़ रहा है, जोकि चिंता का विषय है। अच्छे साहित्य के सृजन से समाज में सकारात्मक सोच उत्पन्न होती है, जिससे स्वच्छ समाज के निर्माण की कल्पना की जा सकती है। वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित है। साहित्यकारों में राष्ट्रीय स्तर पर हितावय एवं भयावह में अंतर करने की क्षमता ही नहीं, दृष्टि की स्पष्टता भी जागी है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. चक्रवाक् पत्रिका (त्रैमासिकी) अक्टूबर 2015 – मार्च 2016
2. साहित्य और राष्ट्रबोध – डॉ. कैलाश त्रिपाठी
3. साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया – अज्ञेय

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 138-140

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भारतीय सिनेमा का योगदान

मौहम्मद रहबर, शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

भारतीय सिनेमा के इतिहास में फ्रांसीसी ल्यूमियर बन्धुओ का भी सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। जब भारतीयों ने चलचित्रों की कल्पना भी नहीं की थी तब इन ल्यूमियर बन्धुओ ने ''7 जुलाई 1896 ई0 को प्रथम बार मुंबई के वाटसन होटल में अपने छायाचित्रों का प्रदर्शन किया था'' यह घटना भारतीयों के लिए किसी आश्चर्य या चमत्कार से कम नहीं थी। क्योंकि उन्होंने प्रथम बार चित्रों को चलते-फिरते एवं गति करते देखा था। ये गतिशील दृश्य कुछ इस प्रकार थे-"रेलगाड़ी का चलना, समुद्र में स्नान करना, दीवार का ढहना, बच्चो का नाश्ता करना, फैक्ट्री से मजदूरों का बाहर निकलना आदि'' इसके लम्बे समय बाद भारतीय सिनेमा ने अपने पैरो पर चलना-फिरना शुरू किया। भारतीय सिनेमा के पितामह कहे जाने वाले दादा साहेब फाल्के ने अपने कठिन परिश्रम के बल पर भारतीय सिनेमा की शुरूआत की न केवल शुरुआत की बल्कि भारत की प्रथम मूक फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' बना डाली ! ''यह फिल्म 3 मई 1913 ई0 को मुंबई मे ओलंपिया सिनेमा में प्रदर्शित हुई। इसके साथ ही भारत में मूक फिल्मों का चलन शुरू हुआ।'' इसके बाद उत्तरोत्तर भारतीय सिनेमा प्रगति करता रहा। 14 मार्च 1931

भारत के इतिहास की वह तारीख थी जब भारतीय सिनेमा जगत ने बोलना शुरू किया और 'आलम आरा' जैसी बोलती फिल्म भारतीय सिनेमा जगत की रौनक बनी। ''आर्देशिर एवं ई. ईरानी द्वारा निर्देशित यह फिल्म 14 मार्च 1931 ई० को मुंबई के मैजेस्टिक सिनेमा हॉल में प्रदर्शित हुई जिसे देखने के लिए दर्शक टूट पड़े।'' इस प्रकार भारतीय सिनेमा तब से लेकर आज तक प्रगति के शिखर पर हैं। भारतीय सिनेमा जगत में हिन्दी का खासा बोल-बाला है। भारतीय सिनेमा में आज भी सबसे अधिक हिन्दी फिल्मो का निर्माण हो रहा है! देश विदेश में भी भारतीय सिनेमा ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में एक महत्वपूर्ण योगदान है! आज हिन्दी फिल्म का दर्शक अन्य भाषाओं के मुकाबले भारत में ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर भी सबसे ज्यादा है। भारतीय सिनेमा में हिन्दी फिल्मों के माध्यम से गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रो के लोगों को भी हिन्दी समझने एवं सीखने में काफी मदद मिली और एक बड़ा हिन्दी का पाठक वर्ग पैदा हुआ ! ''भारत का हिन्दीतर भाषी जनसमुदाय हिन्दी को नही समझता पस्तु सिनेमा की हिन्दी को अवश्य समझता है। केवल समझता ही नही है बल्कि बहुत हद तक उसके साथ उसमें अभिव्यक्त जीवन के साथ समरस भी होता है''

यह बात सत्य है कि हिन्दी फिल्मो के माध्यम से गैर हिंदी भाषी लोग भी हिन्दी की और झूके है ! कहा जाता है कि जिस प्रकार 'चन्द्रकान्ता' को पढ़ने के लिए अनेक गैर हिन्दी भाषी लोगो ने हिंदी सीखी थी। ठीक उसी प्रकार हिंदी फिल्मों को देखकर गैर हिंदी भाषी विदेशी लोगो ने हिन्दी सीखी जिसका सफल प्रमाण यह है कि ''केन्द्रिय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ने के लिए आने वाले 67 देशों के विदेशी छात्रो ने इसकी पुष्टि की है कि हिन्दी फिल्मों को देखकर तथा हिन्दी फिल्मी गानों को सुनकर उन्हें हिन्दी सीखने मे मदद मिली है।'' इस प्रकार भारतीय सिनेमा के माध्यम से विश्वभर के गैर हिन्दी भाषी लोगो का एक बहुत बड़ा वर्ग हिन्दी बोलने एवं समझने लगा ! क्योंकि जन संचार के माध्यमों में सिनेमा भी एक बहुत बड़ा माध्यम है। हिन्दी फिल्मो का फलक काफी विस्तृत है जो और किसी भाषा की फिल्मों का नही है ! ''प्रतिवर्ष सौ से अधिक हिन्दी फिल्में बनती है जो हिन्दी की लोकप्रियता को दर्शाती है।''

वहीं भारतीय सिनेमा ने हिन्दी साहित्य की अनेक कहानी और उपन्यासो की कथा को आधार बनाकर अनेक फिल्में बनाई साथ ही हिन्दी का प्रचार–प्रसार भी किया, और गैर हिन्दी पाठक का ध्यान फिल्मों के माध्यम से हिन्दी साहित्य की और भी आकर्षित किया। ''साहित्य की एक प्रमुख विद्या के रूप में सिनेमा और साहित्य के संबंधों को उत्तरोतर विकसित एवं पोषित किया है। कहानी जैसी विद्या को एक विशेष समय, घटना या विविध छोटे–छोटे प्रसंगों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना अपने आप मे एक दुरूह कार्य हो जाता है। कहानी में निर्देशक विभिन्न प्रसंगों को लेते हुए समय को बांधता है, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं, उरकंठाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आज हिन्दी कहानियों पर आधारित अनेक फिल्में है राष्ट्रीय ही नही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सहारा व पुरस्कृत किया गया है'' जहाँ तक हिन्दी के विकास एवं प्रसार में भारतीय सिनेमा के योगदान की बात है तो वही भारतीय सिनेमा ने हिन्दी साहित्य की कृतियों को लेकर अनेक फिल्मे बनाई और हिन्दी साहित्य के प्रचार–प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी साहित्य की जिन कृतियों को लेकर फिल्मे बनी है उनमें सबसे अधिक कहानी और उपन्यास है। ''दुनियाभर में साहित्य पर कई उल्लेखनीय फिल्मे बनी है। भारतीय साहित्य भी कम समृद्ध नही रहा है। फिर चाहे कहानी, उपन्यास, नाटक या फिर कोई साहित्यिक विद्या हो।'' हिन्दी उपन्यायो एवं कहानियों के ऊप वैसे तो बहुत सी फिल्मे बनी है लेकिनी हम यहाँ मौटे तौर पर कुछ ही कहानियों एवं उपन्यासो पर बनी फिल्मों का ही वर्णन करेंगे जो इस प्रकार है।

भारतीय सिनेमा की प्रथम मूक फिल्म भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के नाटक 'हरिश्चंद्र'पर ही दादा साहेब फाल्के ने बनाई थी! कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर सत्य जीत रे ने 'द चेस प्लेयर्स' नाम से फिल्म बनाई। कृष्ण चौपड़ा ने 'हीरा मोती' नाम से जो फिल्म बनाई थी वह प्रेमचन्द की 'दो बैलो की कथा' पर आधारित थी। गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' पर इसी नाम से मौनी भट्टाचार्य ने 1960 ई0 में फिल्म बनाई ! रेणू की कहानी 'तीसरी कसम ऊर्फ मारे गए गुलालाम' पर बासु भट्टाचार्य ने 'तीसरी कसम' नाम से फिल्म बनाई। मन्नू भण्डारी की कहानी 'यही सच है', को आधार बनाकर बासु चटर्जी ने 'रजनी गंधा' फिल्म का निर्माण किया तो वहीं हिन्दी उपन्यासो को लेकरअनेक फिल्मे बनी जिनमे केशव प्रसाद मित्र के

उपन्यास ''कोहबर की शर्त' के पहले भाग को आधार बनाकर 'नदिया के पार' नाम से फिल्म बनी! राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' को आधार बनाकर इसी नाम से बासु चटर्जी ने 1969 में फिल्म बनाई ! काशीनाथ जी के उपन्यास 'काशी का अस्सी' की कथा को लेकर चन्द्रप्रकाश द्विवेदी ने 'मोहल्ला अस्सी' फिल्म 2018 में बनाई। 'गबन' को लेकर इसी नाम से ऋषिकेश मुखर्जी ने, 'सूरज का सांतवा घोड़ा' को लेकर इसी नाम से ने और कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' पर 'बनदाम बस्ती' नाम से प्रेम कपूर ने फिल्म बनाई। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय सिनेमा ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई चाहे फिल्मो में हिन्दी गानो का प्रयोग हो या साहित्यिक रचनाओ को आधार बनाकर बनी फिल्मे हो!

सन्दर्भ :-

1. भारतीय सिनेमा का सफरनामा, सम्पादक पुनीत बिसारिया, राजनारायण शुक्ल, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, पृ० सं०– 141
2. वही, पृ० सं०– 142
3. आजकल, जुलाई 2006 अंक, पृ० सं०–38
4. भारतीय सिनेमा का सफरनामा, पृ० सं०– 145
5. वही, पृ० सं०– 121
6. इण्डियन जर्नल ऑफ एम्लाईड रिसर्च, अंक–4, नवम्बर 2014 प्र० सं० – 01
7. भारतीय सिनेमा का सफरनामा, पृ० सं०–130
8. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, 1998, प्र० सं०–84
9. हिन्दी साहित्य का फिल्मो से जुड़ा नही गहरा नाता, श्री शचंद्र भिश्र, जन सत्ता, 9 जून 2017, पृ० सं०– 7

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 141-148

भारतीय हिन्दी सिनेमा – दलित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के मूल्यांकन की प्रासंगिकता

डॉ. नम्रता जैन
सहा० प्राध्यापक, शिक्षा विभाग
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

प्रस्तावना :–

सिनेमा जिसका जिक्र होते ही हमारी आँखों के सामने फिल्मी दुनिया की तस्वीर उभर जाती है, जिसमें गीत–संगीत, अभिनेता, अभिनेत्रियों तथा उनके ग्लैमर और चकाचौंध कर देने वाली दुनिया होती है, सिनेमा की इस रंग–बिरंगी दुनिया ने सभी को मन्त्र मुग्ध किया है। जिसकी पहुँच देश–विदेशों में देखी जा सकती है। आज सिनेमा की ग्लोबल पहुँच भी है और उसका अपना बाजार भी है। जहाँ हर किसी की रूचि को ध्यान में रखकर फिल्मों का निर्माण किया जा रहा है। सिनेमा की महत्ता विश्व की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व सामाजिक विविधता को प्रदर्शित करने में रही है। सिनेमा के इतिहास की बात करें तो, 1895 में सिनेमेटोग्राफी की शुरूआत फ्रॉस में हुई लेकिन फ्रॉस से निकलते ही सिनेमा की औद्योगिकी अलग–अलग सिने–भाषा में ढलने लगी। सिने तकनीक का जन्मदाता व निर्यातक फ्रांस को ही माना जाता है परन्तु जिस धरती पर सिनेमा का निर्माण हुआ वह उन्हीं की भाषा, संस्कृति और परम्परा में ढल गयी। विश्व स्तर पर विभिन्न देशों में अलग–अलग भाषाओं व उनकी संस्कृतियों में फिल्मों का निर्माण किया जा रहा है। इनमें भारतीय सिनेमा फिल्म निर्माण में अग्रणी रहा है। जिसने विश्व में अपनी अलग पहचान बनायी है। अमेरिका के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। जहाँ सर्वाधिक फिल्मों का निर्माण किया जाता है तथा तीसरे स्थान पर फ्राँस है।

दादा साहब फाल्के द्वारा 3 मई सन् 1913 में बनाई गई मूक फिल्म राजा हरिश्चन्द्र को भारत की पहली फिल्म का दर्जा मिला 3,700 फुट लम्बी और चार रीलों वाली इस फिल्म को बम्बई के कोरोनेशन थियेटर में प्रदर्शित किया गया। यहीं से भारतीय सिनेमा की यात्रा की शुरूआत मानी जाती है। फाल्के की रूचि सिनेमा के रचनात्मक पक्ष में थी। दादा फाल्के के इसी योगदान में भारतीय सिनेमा को विश्व पटल पर सर्वोच्च स्थान दिया। भारत एक बहुभाषी देश है, इसलिए भारत में तेलगु, बांग्ला, मराठी, उड़ीया, पंजाबी, भोजपुरी आदि क्षेत्रीय भाषाओं में फिल्मों का निर्माण होता है, परन्तु राष्ट्रीय भाषा हिन्दी होने और सर्वाधिक हिन्दी बोले जाने के कारण सबसे

अधिक हिन्दी भाषा में फिल्मों का निर्माण किया जाता है, तथा अन्य भाषा की फिल्मों का रूपान्तरण भी हिन्दी में कर उसका प्रदर्शन किया जाता है। जो इस बात को दर्शाती है कि हिन्दी सिनेमा अन्य भाषा की सिनेमा से सर्वोच्च स्थान रखता है। जिसने सिनेमा को नयी ऊंचाईयों पर खड़ा कर दिया। हिन्दी फिल्मों में दिखाये जाने वाले अभिनय व डायलॉग ने देश ही नहीं विदेशों में भी लोगों के दिलों पर राज किया है।

भारतीय सिनेमा में दलित स्त्रियों के चित्रण की प्रासंगिकता

भारतीय सिनेमा जिसने सामाजिक समस्याओं के स्वरूप को अपने फिल्मों के माध्यम से प्रस्तुत करता रहा है। जिसमें हिन्दी सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिसने समय–समय पर समाज में फैली जातिगत व्यवस्थाओं पर कटाक्ष करने का प्रयास अपने फिल्मों द्वारा किया है। हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्थाएं विभिन्न जाति धर्मो के आधार पर विभाजित है, जिनमें विभिन्न सामाजिक समस्याएं विद्यमान है, जिसमें जातिगत आधार पर भेदभाव की समस्याएं प्रमुखता से दिखायी पड़ती है जिसमें दलित समाज के प्रति भेदभाव व हिंसा की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। इन दलित समाजों मे सबसे दयनीय स्थिति दलित महिलाओं की है, जिन्हें सामाजिक शोषण के साथ–साथ पारिवारिक दश भी झेलना पड़ता है। दलित महिलाओं के साथ छेड़छाड़, बलात्कार सवर्ण जाति द्वारा नग्न कर गाँव में घूमाना, उनके साथ जाति सूचक शब्दों का प्रयोग आदि जनमाध्यमों व सोशल मीडिया द्वारा देखने व सुनने को मिलती है।

दलित महिलाओं को देवदासी, वैश्यावृत्ति जैसे धंधे में उतरने पर मजबूर कर उनका शारीरिक शोषण किया जाना, हमारे समाज में सवर्ण की विकृत मानसिकता को दर्शाता है। उच्च वर्ग की सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी दलित महिलाएं स्वयं पर हुए अत्याचारों के खिलाफ यदि आवाज उठाती है, तो उनके साथ हिंसक व्यवहार किया जाता है जिससे वे बागी या अपराधी बनने पर मजबूर हो जाती है। इन्हीं सामाजिक समस्याओं के आधार पर दलित स्त्री चित्रण हमारे समाज के लिए कितना और किस तरह से प्रासंगिक है? इसका मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। सिनेमा समाज का दर्पण है, अतः समाज में घट रही घटनाओं का ज्यों का त्यों चित्रण ही सिनेमा का प्रथम दायित्व है। इसी आधार पर समाज में घट रही दलित महिलाओं के साथ घटनाएं इन फिल्मों का निर्माण करने के लिए हिन्दी सिनेमा प्रेरित दिखाई पड़ रही है।

प्रारम्भिक दलित महिला फिल्म

हिन्दी सिनेमा में प्रथम दलित स्त्री चित्रण प्रधान फिल्म 'अछूत कन्या थी। जिसमें दलित स्त्री कस्तूरी के त्याग और बलिदान को बड़े सहज रूप से प्रस्तुत किया गया है। दलित कस्तूरी का ब्राह्मण प्रताप से प्रेम किस तरह से सवर्ण समाज में सामाजिक मर्यादा का प्रश्न खड़ा कर देता है। फिल्म 'अछूत कन्या उस दौर में दलित स्त्री विमर्श के लिए बौद्धिक चिंतन के रूप में चर्चित हुई जो कहीं न कहीं इस तरह के फिल्मों के प्रोत्साहन को बढ़ावा देती है, तथा दलित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के मूल्यांकन के लिए एक मंच तैयार करती है। उस दौर में जहाँ समाज में छुआछूत, भेदभाव जैसी व्यवस्थाएं अपने चरम पर थी. वहीं हिन्दी सिनेमा ने भी अपनी लोकप्रियता बढ़ानी शुरू की थी। जिसने फिल्म अछूत कन्या के माध्यम से समाज पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला, साथ

ही उस में फैली छुआछूत जैसी व्यवस्थाओं के खिलाफ एक आवाज बुलन्द की। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रथम फिल्म 'अछूत कन्या' दलित स्त्री चित्रण का सामाजिक सन्दर्भ के रूप में सकारात्मक प्रयास रहा है। इसी क्रम में दूसरी दलित स्त्री चित्रण फिल्म 'सुजाता' थी, जिसे छोटी जाति में जन्में होने के कारण लालन–पालन कर रहे सवर्ण दम्पत्ति द्वारा बचपन से ही तिरस्कृत किया जाता है। दलित सुजाता को जहाँ लालन–पालन में भेदभाव किया जाता हैं वहीं सवर्ण अधीर से प्रेम अछूत सुजाता के मन में अन्तःद्वन्द्व की स्थिति पैदा करती है। सुजाता का पालन कर रहे परिवार में स्वयं महिला द्वारा भेदभाव किया जाना माँ के उस स्वरूप पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। जिसके लिए सन्तान में कभी भेदभाव नहीं होता। उसके लिए न कोई छोटा होता है न बड़ा हिन्दी सिनेमा ने समय–समय पर दलित स्त्री चित्रण द्वारा दलित महिलाओं के अधिकारों व आत्मनिर्भरता की पक्षधर रही है तथा सिनेमा ने दलित स्त्रियों के उसी स्वरूप को पर्दे पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जैसा कि उनके साथ सामाजिक व्यवस्था के नाम पर किया जाता है।

सामाजिक सन्दर्भ में दलित महिला फिल्में

हिन्दी सिनेमा में सामाजिक सन्दर्भों में दलित महिला किरदारों को कितना और किस रूप में प्रस्तुत किया गया हैं? इसका भी मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। उपरोक्त फिल्मों के सन्दर्भ में बात करें तो दलित महिला फिल जहाँ एक तरफ दलित महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक विवशता को दर्शाती है, तो वही दूसरी ओर यह दलित महिला सशक्तिकरण को भी प्रस्तुत करती है जो दलित महिलाओं के लिए प्रेरणा श्रोत के रूप में दिखायी पड़ती है। इन फिल्मों में कुछ ऐसे क्षेत्र विशेष का चित्रण दलित महिलाओं की सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। जिनमें राजस्थानी परिवेश पर बनी फिल्में थी। इसी सन्दर्भ में बनी आदिवासी फिल्मे दलित महिलाओं की उस दयनीय स्थिति को दिखाती है।

जहाँ उन्हें दो वक्त की रोटी के लिए जमीदार व पूजीपतियों पर आश्रित होना पड़ता है, जिसके कारण उन्हें अपनी इज्जत का सो करना पड़ता है तो कुछ के साथ जबरदस्ती बलात्कार किया जाता है, जिससे वे बागी बन स्वयं के इन्साफ के लिए बन्दूक उठाना पड़ता है दलित महिलाओं द्वारा नक्सली हिंसा में भागीदारी सरकार व प्रशासन के लिए एक चुनौती भी बनती जा रही है। जिसके कारणों का पता इन हिन्दी फिल्मों से लगाया जा सकता है। आज भी दलित आदिवासी महिलायें समाज की मुख्य धारा के कटी हुई है। इनके पास जरूरी सुविध ाओं का आभाव है ऊपर से उच्च वर्ग द्वारा इनके साथ शारीरिक शोषण इनके जले पर नमक छिड़कने जैसा ही है। हिन्दी फिल्मों में निर्माता निर्देशक द्वारा दलित महिलाओं की जिसके बारे में विचार करना स्वाभाविक हो जाता है। जैसे हिन्दी फिल्मों में दलित महिला किरदारों द्वारा बोले गये डायलॉग की बात करें तो उनके द्वारा बोले गये मजबूत या फिर कहे सशक्त डायलॉग इक्का–दुक्का फिल्मों को छोड़ दे तो आभाव दिखायी पड़ता है। इन दलित महिला किरदारों को मौन रूप में ही अपने पर हुए अत्याचारों को सहन करते हुए दिखाया गया है। जो कहीं न कहीं दलित महिला किरदारों के साथ पक्षपात करता दिखायी पड़ता है।

इन फिल्मों में दलित महिला किरदारों द्वारा सशक्त डायलॉग का आभाव सामाजिक सन्दर्भ में दलित

महिलाओं की आवाज को दबाने के रूप में दिखायी पड़ता है। इन हिन्दी फिल्मों में दलित अभिनेत्रियों के साथ बलात्कार व अंग प्रदर्शन जैसे दृश्य का चित्रण करना क्या उचित है? अन्य फिल्मों की तरह दलित अभिनेत्री फिल्मों में भी आपत्तिजनक दृश्यों को एक आवरण देकर प्रस्तुतिकरण करना क्या सही नहीं है ? इस तरह के दृश्य कहीं बाजार में फिल्मों को बेचने का माध्यम तो नहीं बन रहे। दलित महिला किरदार के साथ बलात्कार जैसे सीन दिखाकर उन्हें बाजार में सफलता की गारंटी तो नहीं बनाया जा रहा है। क्या दलित महिला प्रधान फिल्मों का निर्माण कर उनकी समस्याओं के प्रति लोगों में जनमत तैयार किया जा रहा है या नहीं ? समाज के हाशिये पर ही दलित महिलाएं स्वयं के अधिकारों के प्रति कहीं न कहीं सरकारी योजनाओं पर आश्रित दिखती है परन्तु क्या सरकार उनकी समस्याओं का निवारण कर रही है कुछ निर्माता–निर्देशकों द्वारा दलित महिलाओं की समस्याओं को सरकार तक पहुँचाने की एक पहल के रूप में भी देखा जा सकता है। जिन पर आज भी उच्च वर्ग आर्थिक स्थिति का फायदा उठाकर उनका शोषण करता है।

इसी सन्दर्भ में एन०एफ०डी०सी० द्वारा दलित स्त्री फिल्मों का निर्माण एक सराहनीय प्रयास रहा है। हिन्दी सिनेमा में दलित स्त्री फिल्में सामाजिक उपेक्षा की शिकार दलित महिलाओं को उनका हक दिलाने का एक प्रयास है जिन पर सदियों से उच्च वर्ग द्वारा शोषण किया जाता रहा है। सामाजिक समानता की बात करें तो आज भी सिर्फ 37 प्रतिशत दलित महिलायें पढ़ना–लिखना जानती है और जो शिक्षित भी है तो उनके साथ सामाजिक समानता बनाने में भेदभाव किया जाता है तथा कार्यस्थलों पर शिक्षित दलित महिलाओं के साथ छेड़छाड अश्लील शब्दों का प्रयोग तक किया जाता है। दलित महिलाओं की अशिक्षा उनके समाज की निर्धनता का प्रमुख कारण है दलित स्त्री चित्रण द्वारा दलित हिन्दी सिनेमा ने दलित समाज विशेषकर दलित महिलाओं की उच्च वर्ग की सामाजिक व्यवस्था में जकडी वेदनाओं को विभिन्न दशकों में फिल्मों के माध्यम से लोगों के बीच रखने का प्रयास करती रही है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दलित महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों के सन्दर्भ में दलित महिला फिल्मों का मूल्यांकन और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। दलित महिलाओं के साथ बलात्कार, मारपीट व नग्न कर घूमाने इतना ही नहीं इन अत्याचारों का विरोध करने पर जान से मार देने जैसे अपराध हमें जनसंचार माध्यमों द्वारा दिन–प्रतिदिन देखने व सुनने को मिल रही है, जो सरकारी तंत्र की दलित महिलाओं के प्रति उदासीनता को दिखाती हैं तो वहीं उच्च वर्ग इन मुद्दों पर मौन दलित महिलाओं पर बनी ये फिल्में सामाजिक सन्दर्भ में सवर्ण समाज के लिए घूमने वाले प्रश्न के रूप में भी विद्यमान है। क्या दलित महिलाओं के साथ इस तरह की हिंसा मानवता का सूचक है ? सरकार दलित महिलाओं के साथ हो रही इन घटनाओं को रोकने के लिए कठोर कदम क्यों नहीं उठाती ? दलित महिलायें अन्य वर्ग विशेष की महिलाओं की तरह मान–सम्मान की अधिकारी क्यों नहीं? उनके प्रति उच्च वर्ग द्वारा सौतेला व्यवहार क्यों किया जाता है ? उच्च वर्ग दलित महिलाओं की देह पर हर वक्त गिद्ध की निगाह क्यों रखता है उनको सहयोग के बजाय उनका शारीरिक शोषण ही क्यों करता है ? हिन्दी सिनेमा में बनी ये दलित स्त्री चित्रण फिल्म जिन्होंने सरकार व प्रशासन की नाकामियों को भी उजागर करने का

प्रयास किया कि किस तरह से दलित महिलाओं पर अत्याचार करके भी उच्च वर्ग अपनी सत्ता के बल पर स्वयं को अपराध से मुक्त करा लेते है तथा उनके खिलाफ रिपोर्ट तक दर्ज नहीं की जाती है। ये दलित महिलायें अपनी आर्थिक व सामाजिक विवशता के कारण सवर्णों द्वारा बनायी गयी व्यवस्था में दम तोड़ती दिखायी देती है।

हिन्दी सिनेमा में इक्का–दुक्का फिल्मों को छोड़ दे तो दलित महिलाओं का चित्रण शोषित सहमी वासना की भूख मिटाने के रूप में या उच्च वर्ग के समर्पण व बलिदान के रूप में या फिर उनके द्वारा कृपा पाने की आश लगाये हुए ही दिखती हैं दलित महिलाओं की इस स्थिति का चित्रण हमारे गाज में उनकी दैनिय स्थिति को बयां करती है। जिसके विकास के लिए चल रही सरकारी योजनाएं तो बहुत परन्तु उनकी स्थिति में कोई विशेष सुधार देखने को नहीं मिलता। आज भी वे कहीं न कहीं उच्च वर्ग की दया पर अपना जीवन–यापन कर रही है।

दलित स्त्री फिल्मों की प्रासंगिकता के सन्दर्भ में भोजपुरी फिल्मों का मूल्यांकन भी इसी सन्दर्भ में अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि भोजपुरी फिल्में हमारे भारतीय ग्रामीण परिवेशका प्रतिनिधित्व करती है। इन ग्रामीण परिवेश की अपनी अलग सामाजिक व्यवस्थाएंव रीति–रिवाज है। ग्रामीण इलाकों की इस सामाजिक व्यवस्थाओं में विभिन्न जाति की अपनी व्यवस्थाएं व आपसी सामंजस्य है। इन ग्रामीण समाज में दलित समाज की बात करें तो वे आज भी सामाजिक उपेक्षा की शिकार दलित महिलायें आज भी दयनीय स्थिति में जीने पर मजबूर है जिसका मुख्य कारण इनका भूमिहीन होना है। जिस पर जमींदार व उच्च वर्ग अपना आधिपत्य जमाएं हुए हैं। जिसके कारण उनके यहाँ मेहनत मजदूरी करने वाली दलित महिलाओं साथ शारीरिक शोषण व भेदभाव की नीति अपनायी जाती है। इन्हीं सन्दर्भों में दलित महिला भोजपुरी फिल्मों का निर्माण आवश्यक हो जाता है। जिनमें बिदेसिया दंगल परबतिया बनल पंडिताईन' जैसी प्रमुख भोजपुरी फिल्में रही। इन फिल्मों ने भोजपुरी भाषा में दलित स्त्री द्वारा सवर्ण व्यवस्था पर कटाक्ष प्रहार किया है।

इन फिल्म द्वारा ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में फैली छुआछूत को समाप्त करने का एक प्रयास रहा है। भोजपुरी फिल्में जिन्हें ग्रामीण परिवेश का आइना कहा जाता है। ग्रामीण सामाजिक संरचना को उसके असली स्वरूप में प्रस्तुत करना भोजपुरी सिनेमा का दायित्व बन जाता है इसी सामाजिक व्यवस्था में जातिगत व्यवस्था ये भी अपना वर्धरव बनाये हुए है। जिसमें विभिन्न जातिया मौजूद है। इनमें सबसे दनिय स्थिति में दलित समाज व उस समाज की सूजागर दलित महिलाओं की है। जिसमें

अधिकाश संख्या अशिक्षित होने के कारण दलित महिला अपने अधिकारों के प्रति अनजान दिखती है। जिसका फायदा जमीदार बापू जी पति वर्ग उठाता है दलित महिलाओं की इन्हीं समस्याओं को भोजपुरी फिल्मों में दिखाने का प्रयास किया गया है इन फिल्मों में दलित महिला का उच्च वर्ग में प्रेम उसके परिवार के साथ–साथ समस्त दलित समाज को दोषी बना देता है, तो दलित स्त्री को ही प्रेम का दोषी माना जाता है न की उच्च वर्ग को दलित भोजपुरी फिल्मों में दलित महिला के त्याग व बलिदान के योग्य क्या उच्च वर्ग समाज है ? इन प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है। इन दलित महिला पर बनी भोजपुरी फिल्में ग्रामीण आँचलों में दलित महिलाओं की वास्तविक

स्थिति का चित्रण करती है। प्रस्तुत भोजपुरी फिल्मों के आधार पर कहा जा सकता है कि इन फिल्मों द्वारा दलित महिलाओं के अधिकारों व सवर्ण समाज के प्रति सहयोग की भावना जगाने का प्रयास किया गया है। भोजपुरी फिल्मों में चित्रित दलित महिलाओं का उसी स्वरूप में चित्रण दिखता है। जिस स्वरूप में दलित ग्रामीण महिलायें दिखती है। इन दलित भोजपुरी फिल्मों में दलित महिलाओं के सशक्त अभिनय ग्रामीण सामाजिक सन्दर्भ में दलित महिलाओं के लिए महिला सशक्तिकरण का प्रतिनिधित्व भी करता दिखायी पड़ता है।

आरम्भिक दौर की भोजपुरी फिल्में जिन्होंने दलित समस्या व उनको संवेदना को अपने फिल्मों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया। इन फिल्मों में दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति जैसी थी उसका उसी रूप में चित्रण भोजपुरी सिनेमा द्वारा किया गया है। उस दौर की बनी भोजपुरी फिल्म दलित महिला के सामाजिक अधिकारी सम्मान के लिए बनती थी साथ ही उन फिल्मों ने ग्रामीण इलाकों में फैली कथा को समाप्त करने का प्रयास भी किया। इसी सन्दर्भ में बनी आधुनिक फिल्मों की बात करे तो इनमें दलित महिला केन्द्रित फिल्मों का प्रायः अभाव दिखता है। इन फिल्मों ने ग्रामीण सामाजिक समस्याओं को अपनी फिल्मों में दिखाना लगभग बन्द ही कर दिया है। आज की भोजपुरी फिल्में ग्लैमर व चकाचौंच की दुनिया के अनुसार फिल्मों का निर्माण कर रही है, उनका ग्रामीण परिवेश में सामाजिक समस्याओं से जूझ रही दलित महिलाओं से कुछ भी लेना देना नहीं है। इस चकाचौंध की दुनिया में आज की भोजपुरी फिल्में ग्रामीण परिवेश की वास्तविक स्वरूप को चित्रित करने में नाकाम ही दिखायी पड़ती है।

इन फिल्में में ग्रामीण परिवेश के नाम पर अश्लीलता ही परोसी जा रही है। इन आधुनिक फिल्मों में दलित महिला किरदारों के नाम पर इक्का–दुक्का दृश्य महज औपचारिकता के रूप में ही चित्रित किये जाते है जिनका उनकी समस्याओं से बुछ भी लेना–देना नहीं होता। ग्रामीण आंचलों में दलित महिलाओं के प्रति हंसा अधिकांश देखने सुनने को मिलती है। आज जरूरत है दलित महिला फिल्मों के प्रति निर्माता निर्देशकों को अपनी सक्रियता दिखाने की जो समाज में फैल रही जातिगत भेदभाव को समाप्त कर सकें जिसमें हिंदी व क्षेत्रीय सिनेमा की बड़ी भूमिका होनी चाहिए जिससे समाज में दलित महिलाओं की स्थिति को सुधारा जा सके और यह काम दलित महिला फिल्मों द्वारा ही संभव है।

हिन्दी सिनेमा द्वारा दलित महिला चित्रण में कुछ ऐसे भी तथ्य है। जिनको हुबहू यथार्थ रूप में दर्शाया गया है जैसे उनके साथ छेड़छाड़, सामाजिक भेदभाव हत्या आदि परन्तु कुछ ऐसी चीजें जिनको समाज में मान्यता प्राप्त जैसे विवाह, सामाजिक प्रतिष्ठान आदि का फिल्मों में नाट्य रूपान्तरण द्वारा चित्रण समाज में समरसता व भेदभाव को समाप्त करने के रूप में एक पहल के रूप में चित्रित किया गया है, जैसा फिल्म प्रेमग्रन्थ तथा दंगल फिल्मों में दिखाया गया है।

अस्सी से नब्बे के दशक के बाद फिल्मों में दलित महिला का चित्रण

सामाजिक सन्दर्भों में नब्बे के दशक के बाद हिन्दी सिनेमा में दलित महिला चित्रण के प्रासंगिकता की बात करे तो यह ऐसा दौर था जब हिन्दी सिनेमा पर बाजार पूर्ण रूप से हावी हो चुका था। इस दौर में बनी

फिल्म सामाजिक समस्याओं पर तो बनी थी। परन्तु उनमें दलित महिला चित्रण की ने संख्या लगभग कम थी। इसी कमी को कुछ फिल्मकारों ने दूर करने का प्रयास किया तथा दलित महिला चित्रण को केन्द्र में रखकर फिल्मों का निर्माण किया दलित महिला पर बनी नब्बे के दशक के बाद बनी फिल्मों में 'रुदाली. 'त्रियाचरित्र', 'तपर्ण', 'बैंडिट क्वीन', 'प्रेमग्रन्थ 'बवंडर', 'लाल सुलाम 'आक्रोश', शूद्र थी। जिन्होंने दलित स्त्री चित्रण को विभिन्न सामाजिक सन्दर्भों के अनुसार चित्रित किया। कुछ फिल्मों में नारी चित्रण को असहाय अवला के रूप में चित्रित किया तो वहीं कुछ फिल्में नारी सशक्तिकरण में चित्रित हुई। इन फिल्मों में दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर चित्रण किया गया। इनमें से कुछ फिल्मों ने फिल्म के क्षेत्र में दिये जाने वाले पुरस्कार जीते तो कुछ फिल्में बॉक्स ऑफिस पर सुपरहिट हुई।

दलित स्त्री चित्रण पर बनी इन फिल्मों में सवर्ण व अन्य वर्ग विशेष द्वारा प्रताड़ित दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सामाजिक सन्दर्भ में दलित समाज विशेषकर दलित महिलाओं की स्थिति की बात करें तो एक रिपोर्ट के अनुसार 1999 से 2002 तक दलित हिंसा के हर साल 5024 मामले दर्ज किये गये। इनमें 46 हत्या तथा 138 बलात्कार के मामले दर्ज किये गये अब भी राजस्थान दलित हिंसा के मामले में देश में प्रथम स्थान रखता है। जो कहीं न कहीं इस बात की और इशारा करता है कि विभिन्न कालखण्ड में दलित हिंसा उसमें भी महिला हिंसा अपने चरम पर थी। इसी सामाजिक परिस्थिति को ध्यान में रखकर कुछ फिल्मकारों ने रुदाली, तर्पण तथा वंडर जैसी फिल्मों का निर्माण किया। जो दलित महिलाओं की वास्तविक स्थिति को करती है तथा दलित महिलाओं के साथ हो रहे राजस्थानी के सन्दर्भ में को प्रस्तुत किया। इसी तरह होर किलिंग आदिवासी सामाजिक सन्दर्भ में भी फिल्मों का निर्माण किया गया। ये फिल्म द्वारा दलित महिलाओं के साथ किये जा रहे सामाजिक व आर्थिक शोषण का चित्रण करती दिखायी देती है। इन फिल्मों के दलित महिलाओं के साथ अपशब्द का प्रयोग व अश्लील दृश्य सामाजिक रूप से हो रही दलित महिलाओं के वास्तविक स्वरूप को चित्रित करती नजर आ रही है। फिल्म 'त्रियाचरित्र जैसी इक्का–दुक्का फिल्में स्वयं के समाज द्वारा दलित महिलाओं पर हो रहे शारीरिक शोषण को बयां करती दिखती है, जो यह दिखाती है कि दलित महिलाएं समाज के हर वर्ग में शोषित है।

हिन्दी सिनेमा हमेशा से सामाजिक बुराईयों को फिल्मों के माध्यम से चित्रित करता रहा है। इसी सन्दर्भ में हमारे सामाजिक व्यवस्था में दबे कुचले व दयनीय स्थिति जीने पर मजबूर दलित महिलाओं के जीवन से सम्बन्धीत फिल्मों का निर्माण आवश्यक हो जाता है। कहीं न कहीं ये फिल्में दलित महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक स्तर को उपर उठाने में सहायक रही है तथा इन फिल्मों ने नारी सशक्तिकरण को भी बल दिया है। इन फिल्मों के द्वारा समाज में दलित महिलाओं के प्रति सम्मान व सहयोग की भावना का विकास हुआ है। आज दलित महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है तथा अपनी व अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधार में सहायक हो रही है। इन दलित महिला फिल्मो ने काफी हद तक दलित महिला हिंसा पर अंकुश लगाने में सहायक हुई है। अतः यह कहना गलत नहीं है कि इन दलित महिला फिल्मों ने दलित महिलाओं की

सामाजिक, आर्थिक स्थिति को सुधार में सकारात्मक पहल के रूप में साबित हुई है।

उपसंहार

स्त्री चित्रण के सन्दर्भ में दलित महिला प्रधान फिल्मों ने सामाजिक व्यवस्था में अन्य वर्ग विशेष की महिलाओं विशेषकर जो दैनिय स्थिति में जीवन यापन करने पर मजबूर है, उनके लिए इन दलित महिला फिल्मों ने सकारात्मक सोच पैदा की है। जिससे वे अपनी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधारकर अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठा सके। इन दलित स्त्री फिल्मों ने नारी अबला को सबला के रूप में चित्रित किया है तथा दलित महिला प्रधान फिल्मों ने नारी को भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सम्मान सहित जीने को प्रेरित किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हिंदी सिनेमा का इतिहास मनमोहन चड्ढा सचिन प्रकाशन नई दिल्ली
2. सिनेमा कल आज और कल विनोद भारद्वाज वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
3. समय और सिनेमा विनोद भारद्वाज नई दिल्ली प्रवीण प्रकाशन
4. लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ जब्बिमल पारक अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली
5. भारतीय फिल्मों की कहानी बच्चन श्रीवास्तव राजपाल एंड संस दिल्ली
6. भारतीय चलचित्र का इतिहास सीमा जोहरी राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली
7. हिंदी फिल्मों का एक ऐतिहासिक अध्ययन सिनेमा और इतिहास चंद्रभूषण अंकुर राहुल पब्लिकेशन नई दिल्ली
8. भारतीय सिनेमा का सफरनामा जय सिंह सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार
9. सिनेमा और संस्कृति राही मासूम रजा वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
10. नए दौर का नया सिनेमा प्रियदर्शन वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली
11. फिल्म पत्रकारिता विनोद तिवारी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 149-154

भारतीय संविधान और हिन्दी भाषा

नीलम कुमारी, शोधार्थी,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल–बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शोध सार :–

भारत मे अनेक समृद्ध भाषाएँ हैं। इन भाषाओं में हिन्दी एकता की कड़ी है। हमारे संतों, समाज, सुधारकों और राष्ट्रनायकों ने अपने विचारों के प्रचारो के लिए हिन्दी भाषा को ही माध्यम बनाया। इसका मुख्य कारण हिन्दी भाषा कशमीर से कन्याकुमारी और राजस्थान के सुदूर पश्चिम अंचल से असम की सीमावर्ती भू–भाग तक समान रूप से समझी और बोली जाती है। हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो समस्त भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य सम्पन्न करती रही है। परन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दी भाषा को अपने ही राष्ट्र में अपना स्थान प्राप्त करने के लिए कई वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा है और आज तक भी संघर्ष ही कर रही है।

हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि आज हिन्दी भाषा का अस्तित्व खतरे में है। आज हम सबको मिलकर भारत देश की आन–बान, शान और पहचान हिन्दी भाषा की अस्मिता बचाने के लिए कठोर कदम उठाने ही होंगें।

प्रस्तावना :–

प्रत्येक राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय भाषा की महत्ता सर्वविदित है। पूरी दुनिया मैं कोई भी ऐसा स्वतंत्र राष्ट्र नहीं है जिसने अपनी भाषा को छोड़कर किसी अन्य भाषा को बोलचाल या राजकाज की भाषा बनाया हो। लेकिन हमारे लिए दुर्भाग्य पूर्ण बात है कि हमारे संविधान में हिंदी का वर्णन राष्ट्रभाषा के रूप में कहीं नहीं है। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता केवल स्वतंत्रता आंदोलन में देश के नेताओं ने देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए ही दी थी, क्योंकि हिंदी ही ऐसी भाषा थी जो जो भारत में सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली भाषा थी। स्वतंत्रता आंदोलन को देशव्यापी बनाने के लिए आवश्यकता इस बात की थी कि कोई ऐसी भाषा चुनी जाए, जिसके माध्यम से स्वाधीन भारत का उद्घोष सारे देश में फैल सके। आंदोलन के हालात को देखते हुए भारतीय नेताओं ने अनुभव किया कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो संपूर्ण देश को एकता के सूत्र में पिरो सकती है।

गुजरात से महात्मा गाँधी, महाराष्ट्र से लोकमान्य तिलक, बंगाल के रविंद्रनाथ ठाकुर, पंजाब के लाला लाजपत राय, दक्षिण के राजगोपालाचार्य आदि नेताओं ने एक स्वर में हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया। स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी भाषा शंखनाद की भाषा बनी। भारत के स्वर्ण स्वाधीन होने पर जब संविधान में देश की एक प्रधान भाषा होने की बात उठी तो राष्ट्रभाषा की यह संकल्पना जो स्वतंत्रता के पूर्व थी, नहीं रही।

राष्ट्रभाषा के पद पर हिंदी को आसीन न रहने दिया गया। राष्ट्र की प्रमुख भाषाओं की गणना अष्टम अनुसूची में की गई और अन्य चौदह भाषाओं के साथ हिंदी को भी स्थान दिया गया।

सर्वप्रथम 1949 ई. में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने भारतीय संविधान सभा में राष्ट्रभाषा और राजभाषा शब्द का प्रयोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा के अंतर को स्पष्ट करने के लिए किया था। भारतीय संविधान के भाग 17 के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिंदी तथा लिपि देवनागरी मानी गई। भारतीय संविधान में कहीं भी राजभाषा शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है किंतु संविधान में जहां भी राजभाषा शब्द का उल्लेख संघ की राजभाषा या राज्यों की राजभाषाओं के संदर्भ में हुआ है। संविधान के अनुच्छेद 351 में हिंदी के व्यापक प्रचार के संबंध में जो व्यापक निर्देश दिए गए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि हिंदी के राष्ट्रीय स्वरूप की बात संविधान निर्माताओं के मन में थी और इसलिए यह निर्देश दिया गया है कि संघ का कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रचार बढ़ाएं, उसका विकास करें ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

संघ संविधान समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की थी कि संघ की संसद की भाषा हिंदुस्तानी और अंग्रेजी होगी और सदस्यों को अपनी मातृभाषा का प्रयोग करने की छूट होगी छूट होगी। काफी लंबी बहस के पश्चात् और संशोधनों रूपांतरणों के बाद अंततः 14 सितंबर 1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा है कि स्वतंत्रत भारत के लोगों के प्रतिनिधियों का कर्तव्य होगा कि वे इस संबंध में निर्णय करें कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उत्तरोत्तर किस प्रकार प्रयोग में लाया जाए और अंग्रेजी को किस प्रकार त्यागा जाए।

अनुच्छेद 345 राज्यों की राजभाषाओं के संबंध में है। अनुच्छेद 346 में संघ और राज्यों या परस्पर राज्यों के बीच पत्र व्यवहार की भाषा का निर्देश है। किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध अनुच्छेद 347 में किया गया है तथा उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि की भाषा के संबंध में प्रावधान 348 में किया गया है। अनुच्छेद 349 संविधान में भाषा संबंधित विधियों को विनियमित करने के संबंध में है। हिंदी भाषा के विकास के लिए विशेष निर्देश अनुच्छेद 351 में दिया गया है। संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 राष्ट्रीय भाषाओं को मान्यता दी गई है और अनुच्छेद 120 में संसद की भाषा तथा अनुच्छेद 210 में विधानसभा की भाषाओं के बारे में उल्लेख है।

भारतीय संविधान के राज भाषाओं संबंधित प्रमुख प्रावधानों को 4 वर्गो में बांटा जा सकता है :–

1 संसद में प्रयुक्त होने वाली भाषा।

2 विधान मंडलों में प्रयुक्त होने वाली भाषा।

3 संघ की राजभाषा।

4 उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में तथा अधिनियमों और विधायकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा।

1 संसद में प्रयुक्त होने वाली भाषा :–

भारतीय संविधान के भाग 5, अनुच्छेद 120 (1) में कहा गया है 'संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा। परंतु यदि राज्य भाषा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति अंग्रेजी या हिंदी में अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की आज्ञा दे सकेगा। अनुच्छेद 120 (2) के अनुसार जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध ना करें, तब तक संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की काल अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अप्रभावी होगा। इस अनुच्छेद के अनुसार 26 जनवरी 1965 से संसद का कार्य केवल हिंदी में होगा।

2 विधान मंडलों में प्रयुक्त होने वाली भाषाः–

भारतीय संविधान के भाग 6 के अनुच्छेद 210 (1) के अनुसार राज्यों की विधानमंडलों का कार्य हिंदी, अंग्रेजी या राज्यों की राजभाषा में किया जाएगा। अनुच्छेद 210(2) के अनुसार यह नियम संविधान के आरंभिक 15 वर्षों तक प्रभावी रहेगा। परंतु हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, और त्रिपुरा राज्य के विधान मंडलों के संबंध में यह इस प्रकार प्रभावी होगा कि मानो 15 वर्ष की जगह 25 वर्ष हो।

3 संघ की राजभाषा :–

भारतीय संविधान के भाग 17 अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप होगा। अनुच्छेद 343 (2) खंड 1 में संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष तक संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, परंतु राष्ट्रपति इस अवधि के दौरान आदेश द्वारा संघ की शासकीय प्रयोजनों में अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ हिंदी भाषा, के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा। अनुच्छेद 343 (3) के अनुसार पन्द्रह वर्ष के पश्चात संसद विधि द्वारा अंकों के देवनागरी रूप का और अंग्रेजी का ऐसा प्रयोजनों के लिए प्रयोग का उपबंध कर सकेगें जैसे की विधि में वर्णित हो।

4 उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय अधिनियम और विधेयकों आदि में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा :–

भारतीय संविधान के 17 भाग के अनुच्छेद 348 के खंड 1 के अनुसार उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में सब कार्य अंग्रेजी भाषा में होगा। परंतु किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति के पूर्व सहमति से हिंदी भाषा या उक्त राज्य की राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालयों में की गई कार्यवाहियों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा।

राजभाषा के लिए आयोग और संसद की समिति :–

1.राजभाषा आयोग :–

संविधान के अनुच्छेद 344 में किए गए प्रावधान के अनुसार 1955 में बीजी खेर की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग का गठन किया गया जिसमें अष्टम अनुसूची मैं उल्लिखित भाषा के विद्वानों को प्रतिनिधित्व दिया गया और सुनिश्चित किया गया कि संघ के कामकाज में हिंदी का प्रयोग कैसे बढ़ाया जाए और अंग्रेजी का प्रयोग कम किया जाए। आयोग को अपनी सिफारिशें देते समय यह ध्यान रखना था कि अहिंदी भाषी क्षेत्रों के लोगों के उचित अधिकार एवं हित सुरक्षित रहें। आयोग ने भारतीय भाषाओं की स्थिति, भारतीय भाषाओं की समस्या और समाधान, संघ की भाषा और लोकसेवा परीक्षाएँ, हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं के प्रचार एवं विकास, राष्ट्रीय भाषा संबंधी कार्यक्रम के कार्यान्वयन की जांच करके अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को 1956 में दी।

2. राजभाषा समिति :–

1957 में संविधान के अनुच्छेद 344 के अनुसार 30 सदस्यों की संसदीय समिति का गठन किया किया गया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि :–

1. संविधान में किए गए प्रावधान के अनुसार 1965 तक अंग्रेजी मुख्य राजभाषा और हिंदी सहायक भाषा रहनी चाहिए। 1965 में हिंदी संघ की राजभाषा होगी और अंग्रेजी सहायक राजभाषा के रूप में चलती रहनी चाहिए।
2. संविधान के अनुच्छेद 343 के खंड 3 के अनुसार इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए कि 1965 की उपरांत भी अंग्रेजी का प्रयोग संसद विधि द्वारा तब तक होता रहना चाहिए जब तक आवश्यक है।
3. अनुच्छेद 351 का उपबंध कि हिंदी का विकास ऐसे किए जाए कि वह भारत का सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।
4. राजभाषा के बारे में संविधान में समन्वित की गई योजना के बाहर जाए बिना स्थिति के अनुसार परिवर्तन करने की गुंजाइश है।

3.राजभाषा अधिनियम :–

1963 संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संविधान के आरंभ से 15 वर्षों तक अंग्रेजी का प्रयोग राजकाज में होगा तत्पश्चात हिंदी को लागू कर दिया जाएगा। लेकिन अहिंदी भाषी लोगों के षड्यंत्रों के कारण राजभाषा अधिनियम के माध्यम से अंग्रेजी के प्रयोग को अंनतकाल तक मान्यता दे दी गई। राजभाषा अधिनियम 1963 –1967 में संशोधन किया गया जिसमें संशोधित राजभाषा अधिनियम में कुल 9 धाराएं हैं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण धारा 3 है। इसमें अंग्रेजी के साथ–साथ संसद की कार्यवाहियों के लिए हिंदी भी प्रयोग में लाई जाती रहेगी। इसमें केंद्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों आदि के बीच पत्रादि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में भी प्रावधान है। इसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि अधिनियम में निर्दिष्ट दस्तावेजों के लिए हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं के प्रयोग संबंधित उपबंध तब तक रहेगें, जब तक उन राज्यों के विधानमंडलों द्वारा संकल्प पारित न हो जाए जिन्होंने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया था।

4.राजभाषा संकल्प 1968 :–

दिसंबर 1967 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया संकल्प राजभाषा संकल्प के नाम से जाना

जाता है यह संकल्प जनवरी 1968 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया गया। इस संकल्प के अनुसार हिंदी भाषा के प्रसार और विकास की गति तेज करने के लिए संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी का प्रयोग के लिए सरकार द्वारा प्रतिवर्ष गहन और व व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाए। यह संकल्प सुनिश्चित करता है कि संघ लोक सेवाओं के विषय में विभिन्न भागों के लोगों के हितों की पूर्ण रक्षा की जाए। विशेष सेवाओं के लिए अथवा पदों को छोड़कर पद के संतोषजनक कर्तव्यों के निष्पादन के लिए अंग्रेजी या हिंदी के उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए एवं अखिल भारतीय एवं उच्चतर केंद्रीय सेवाओं संबंधित परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप से रखने की अनुमति होगी।

5.राजभाषा नियम 1976 :–

राजभाषा नीति कार्यान्वयन के लिए अब तक जो उपाय किये गये हैं उनमें राजभाषा अधिनियम की धारा 8 के अधीन बनाए गए नियम 1976 सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इन नियमों में राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की दृष्टि से विभिन्न राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को 3 भागों में बांट दिया गया है।

'क' क्षेत्र में हिन्दीभाषी क्षेत्र बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, झारखंड और संघ राज्य दिल्ली और अंडमान निकोबार द्वीप समूह शामिल है।

'ख' क्षेत्र में गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र तथा संघ शासित क्षेत्र चंडीगढ़ शामिल है।

'ग' क्षेत्र में 'क' और 'ख' क्षेत्र को छोड़कर बचे हुए राज्य आते हैं।

इस अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि हिंदी में प्राप्त पत्र आदि के उत्तर केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से हिंदी में ही दिए जाएंगे। इन नियमों में केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए हिंदी में प्रवीणता और हिंदी के कार्यसाधक ज्ञान की परिभाषा दी गई है। इन नियमों के नियम 12 के अनुसार केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रधान का यह उत्तरदायित्व है कि वह राजभाषा अधिनियमों का पूर्णतः और समुचित अनुपालन करवाएँ।

उपसंहार :–

राजभाषा के समुचित कार्यान्वयन के लिए संविधान से लेकर राजभाषा अधिनियम नियमों एवं विभिन्न समितियों के बावजूद राजभाषा के रूप में हिंदी का विकास और प्रयोग अपेक्षित स्तर पर नहीं हो पाया है। जर्मनी, जापान, चीन और फ्रांस जैसे कितने ही छोटे–छोटे देश आज अपनी भाषा के बलबूतों पर विश्व में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाये हुए है। न्यायालयों में हिंदी का विरोध इसलिए होता रहा है कि कानून अत्यंत तकनीकी विषय है और इस दृष्टि से हिंदी के विकास में कई वर्ष लगेंगे। हिंदी के लिए कितनी विडंबना की बात है कि जिसके लिए न्याय किया जा रहा है, उसी को नहीं पता कि कहा क्या जा रहा है, और उस भाषा को कितने प्रतिशत लोग जानते हैं। न्यायालय के न्यायिक आदेशों को हिंदी में रूपांतरण करके ही भारत के आम नागरिक तक पहुंचाए जाते हैं। फिर भी न्यायालयों की भाषा तो अंग्रेजी ही रहेगी। वाह रे! मेरे देश के कानूनविदों और न्यायपालिका जो अपनी मातृभाषा तक के साथ न्याय नहीं कर सकते। कोई भी देश किसी विदेशी भाषा को

अपनाकर भाषा के बूते पर कभी उन्नति के शिखर तक नहीं जा सकता। आज आवश्यकता है कि हमें अपनी मानसिकता को बदलना होगा। समस्त भारतीयों की मानसिकता का अध्ययन करके हिंदी भाषा को शिक्षा और रोजगार की भाषा बनाने से ही हिंदी भाषा को राजभाषा और 'राष्ट्रभाषा' बनाने की मान्यता स्वीकार्य हो सकती है। इसके विपरीत आज हिंदी को अनिवार्य विषय से हटाकर ऐच्छिक विषय किया जा रहा है, जो कि हमारे लिए गहन चिंतन का विषय है। हमें इस नियम को लागू होने से रोकना होगा। यह हमारी मातृभाषा के साथ अन्याय है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. भाषा साहित्य और संस्कृति, विमलेश कांति वर्मा व मालती, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या 102
2. वही, पृष्ठ संख्या 103, 104
3. विश्व बाजार में हिंदी, महिपाल सिंह व देवेंद्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 86
4. वही, पृष्ठ संख्या 87, 88, 89, 90
5. हिंदी मन का दर्द, श्री नारायण चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 99

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 155-159

हिन्दी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन एवं विवेचन

नेहा प्रधान
व्याख्याता इतिहास डिपार्टमेंट ऑफ आर्ट्स एण्ड ह्यूमिनिटीज
कैरियर पाइंट यूनिवर्सिटी, कोटा राज. 324001

भाषा मनुष्य की प्रकृति तथा उसका यथार्थ दर्पण है। सृष्टि के आरंभ में मानवीय विचारों तथा भावों के आदान–प्रदान हेतु विभिन्न तरीकों– संकेतों, भंगिमाओं, चित्रों आदि को माध्यम बनाया गया। इनमें कोई विशेष क्रमबद्धता दृष्टिगोचर नहीं होती है। प्रागैतिहासिक कालीन लिपियों द्वारा इनके चित्रित अक्षरों का बोध अवश्य होता है। सृष्टि के विकास के साथ–साथ भाषा हेतु निश्चित व्यवस्था का आयोजन किया जाने लगा। भाषा ने मानव को परस्पर आदान–प्रदान का माध्यम प्रदान किया तो दूसरी तरफ मानवीय चिंतन और मनन को नए आयाम भी प्रदान किए। मानव भाषा की कुछ विशेषताएं उसे मानवेत्तर भाषा से पृथकता प्रदान करते हैं। भाषा एक याद्च्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जो कि समुदाय विशेष के द्वारा प्रयुक्त की जाती रही।

भाषा का विकास विभिन्न सोपानों से यात्रा करते हुए हुआ। मनुष्य द्वारा प्रयुक्त भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि के उच्चारण से शब्दों और प्रत्यय के योग से अनेक पदों और वाक्यों की रचना हुई और उन वाक्यों से अभिव्यक्ति स्पष्ट हुई। इस प्रकार भाषा के विकास में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ का योगदान समाहित हुआ। भाषा को अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु लिपि का उद्भव हुआ। भारत में विभिन्न प्रकार की लिपियों सिंधु, खरोष्ठी, ब्राह्मी, आदि के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। भाषा को सुरक्षित रखने में लिपि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शैलचित्रों में प्राप्त विभिन्न लिपियों के माध्यम से तत्कालीन समाज की व्यवस्था का बोध सहजता से लगाया जा सकता है। ब्राह्म लिपि से ही देवनागरी लिपि का विकास माना जाता है। वैदिक काल में वेदों, उपनिषदों, आरण्यकों और ब्राह्मण आदि में इस लिपि के माध्यम से भोजपत्रों पर इतिहास लेखन किया गया होगा किन्तु इनके कालकवलित हो जाने से कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। पिपरावा और बड़ली के बौद्धकालीन साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि रूद्रदमन और खारवेल के लेख इसी लिपि में लिखे गए थे। गुप्तकाल तक आते–आते ब्राह्मी लिपि के दो भेद हो गए जो क्रमशः उत्तरी और दक्षिणी शैली के नाम से जाने गए। इस काल में गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, अर्धनागरी और नन्दिनागरी आदि लिपियों का भी विकास हुआ।

आरंभ में भाषा की स्थिति कबिलाई रही किन्तु बाद में सामुदायिक भावना के विकास के साथ गांव, नगर, प्रांत और देशों के निर्माण के साथ भाषा के कार्य और उपयोग की सीमा में वृद्धि होती गई। महाद्वीपों के धरातल

पर विश्व मानव समुदाय को बांटा गया। इसमें उस देश की जलवायु और भौगोलिक स्थिति का भी योगदान रहा। मूलभाषा से विकसित होकर अधिसंख्य भाषाएं विकसित हुईं। इनमें दूरी के अनुसार पर्याप्त वैविध्य और असमानताएं मौजूद थीं फिर भी इनका तुलनात्मक अध्ययन करने से इनके सम्बद्धता के सूत्रों का ज्ञान होता है। भाषा परिवार की संकल्पना का आधार इन एकाधिक भाषाओं के एक मूल के विकास से है। इन भाषाओं को भाषावंश वृक्ष की शाखाओं–प्रशाखाओं के रूप में परिभाषित किया जाता है जैसे– संस्कृत, जर्मन, लातिन, फारसी, अंग्रेजी, फ्रेंच, हिन्दी आदि के मध्य हजारों मीलों की दूरी होते हुए भी उनमें एक साम्य प्राप्त होता है जैसे संस्कृत में पितृ, मातृ, भातृ को लातिन में पातेर, मातेर कहते हैं। इन भाषा परिवारों को चार खण्डों में बांटा जा सकता है–

क. यूरेशिया (यूरोप एवं एशिया)– 1. भारोपीय परिवार 2. द्रविड़ परिवार 3. बुरूशस्की परिवार 4. यूराल परिवार 5. काकेशी परिवार 6. चीनी परिवार 7. जापानी–कोरियाई परिवार 8. हाइपर बोरी अत्युतरी परिवार 9. बास्क परिवार 10. सामी–हामी परिवार।

ख. अफ्रीका खण्ड– 1. सूडानी परिवार 2. ब्रॉटू परिवार 3. होतेन्तोत–बुशमेनी परिवार।

ग. प्रशान्त महासागरीय खण्ड– 1. मलय पालेनिशियन परिवार 2. पापुई परिवार 3. आस्ट्रेलियाई परिवार 4. दक्षिण–पूर्व एशियाई परिवार।

घ. अमेरिका खण्ड– 1. अमेरिका भाषा परिवार।

भारोपीय परिवार सर्वाधिक प्राचीन परिवार है जिसमें साहित्य की सर्वाधिक रचना हुई। इस परिवार का उत्कृष्ट और वैविध्यपूर्ण साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस परिवार में संस्कृत, जर्मन, अरबी, फ्रांसीसी और रूसी आदि भाषाओं का वैज्ञानिक साहित्य भी उपलब्ध है। भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार इनके नामकरण के संबंध में भी विवाह हुआ। जर्मन भाषाविदों ने इसे इण्डो–जर्मन नाम दिया तो कतिपय विद्वानों ने इसे आर्य नाम दिया। वर्तमान में इसे भारत–हित्ती नाम अधिक सार्थक माना गया लेकिन इसका भारोपीय नाम अधिक प्रचलित रहा। इस परिवार की लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं होने से यह तथ्य मान्य हुआ कि यह भाषाएं किसी अन्य रूप से विकसित हुई होंगी जिस प्रकार पूर्व विद्यमान बोली से विभिन्न रूपों द्वारा नवीन भाषा का जन्म होता है और यह पूर्व साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण कर लेती है जिस प्रकार संस्कृत से लौकिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रंश का विकास हुआ। इसके साक्ष्य यह हैं कि इनमें एकाधिक बोलियों की विशेषताएं समाहित हैं।

देवनागरी लिपि का विकास

संस्कृत को भारतीय भाषाओं की जननी माना जाता है। वेदों की रचना वैदिक संस्कृत में की गई। कई विद्वानों की मान्यतानुसार हिन्दी भाषा का विकास संस्कृत व्याकरण से हुआ ज्ञात होता है। अन्य भारतीय भाषाओं का जन्म पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से हुआ। 1000 ईस्वीं सन और उसके बाद हिन्दी, बंगला, असमिया, उड़िया, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, मराठी तथा पहाड़ी भाषाओं का विकास हुआ। यह भाषाएं देवनागरी लिपि में लिखी जाती

हैं। देवनागरी का मूल नाम नागरी था जो कि मध्यदेश की लिपि थी। कालान्तर में देववाणी संस्कृत के कारण इसे देवनागरी कहा जाने लगा। इस लिपि का वर्णन ललित विस्तार नामक ग्रन्थ में भी प्राप्त होता है जिसमें 64 लिपियों का वर्णन है। इसमें नागलिपि का उल्लेख है जो कि नागरी लिपि ही मानी जाती है। अन्य विद्वानों से इसे गुजराती नागर ब्राह्मणों के कारण नागरी लिपि कहा है। इसका संबंध पाटलीपुत्र से भी जोड़ा जाता है। मान्यता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय को देव संबोधन दिया जाने के कारण इसे पाटलिपुत्र अर्थात् देवनगर की देवनागरी नाम प्रदान किया गया।

देवनागरी लिपि का स्वरूप–

यह एक अक्षरात्मक लिपि है जिसमें 14 स्वर और 33 व्यंजन हैं।

स्वर– अ ,आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ , औ, अं, अः ।

व्यंजन– क, ख, ग, घ, ङ च, छ, ज, झ, ञ ट, ठ , ड, ढ, ण

त, थ, द, ध, न प, फ, ब, भ, म य, र, ल, व श, ष, स, ह

इनके अलावा उत्क्षिप्त ड, ढ के नीचे बिन्दु लगाकर ड़, ढ़ लिखे जाते हैं।

संयुक्त व्यंजन– वर्णमाला में क्ष, त्र , ज्ञ को संयुक्त व्यंजन माना जाता है।

मात्राएं– व्यंजनों तथा स्वरों के योग हेतु मात्राओं का उपयोग किया जाता है।

क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को ,कौ, कं कः।

देवनागरी की वैज्ञानिकता और अन्य भाषाओं से तुलनात्मक अध्ययन – देवनागरी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। इसमें विश्व की अन्य लिपियों की तुलना में कई गुण उपस्थित हैं। जैसे इसमें प्रथम स्तर पर स्वर आते हैं और फिर व्यंजन। स्वरों में भी पहले समान स्वर और फिर संयुक्त स्वरों का एक आंतरिक क्रम निश्चित है। समान स्वरों में भी पहले हस्व और फिर दीर्घ स्वर आते हैं।

व्यंजनों में पहले स्पर्श और फिर अंतस्थ तथा उष्म। इसके प्रत्येक वर्ग में अघोष, अल्पप्राण, अघोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण, घोष महाप्राण और नासिक्य व्यंजन क्रमबद्ध होते हैं। देवनागरी में वैज्ञानिक नियमों के अनुसार एक व्यवस्थित रूप में क्रम विद्यमान है जो कि अन्य किसी भाषा की वर्णमाला में प्राप्य नहीं है।

इसमें व्यंजनों को उच्चारण के स्थान के अनुरूप निश्चित किया गया है। क वर्ग– कंठ ध्वनियां, च वर्ग–तालव्य, ट वर्ग– मूर्धन्य, त वर्ग–दन्त्य, प वर्ग–ओष्ठ्य। इनमें भी प्रत्येक वर्ग की अंतिम ध्वनि नासिक्य ध्वनि है जैसे– ङ , ण, न, म ।

हर वर्ग का दूसरा तथा चौथा वर्ण महाप्राण और पहला, तीसरा और पांचवा वर्ण अल्पप्राण है। हर वर्ग में प्रथम दो वर्ण अघोष तथा शेष तीन वर्ण घोष ध्वनियां हैं।

अल्पप्राण– क, ग, ङ, च, अ, ज, ञ, ट, इ, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र ब, ड।

महाप्राण– ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, न्ह, फ, म्ह, ल्ह, ढ।

अघोष– क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, स, श।

घोष– ग घ, ड, ज, झ। ड, ढ, ण, द, ध, ण, ब, भ, म, य, र, ल, व, ह, ड, ढ।

नागरी लिपि के अलावा रोमन लिपि में इस प्रकार की एकरूपता और क्रमबद्धता नहीं है। इसमें । स्वर है तो ठ व्यंजन, ब और क व्यंजनों के बाद फिर से म स्वर आता है। इसी प्रकार उर्दू के अलिफ , बे, पे में भी यही अवैज्ञानिकता विद्यमान है। रोमन लिपि मे ै का उच्चारण स है लेकिन नाम एस है। उर्दू में भी अलिफ, बे, पे, डाल आदि में यही भिन्नता प्राप्त है। देवनागरी में जहां एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिन्ह प्रयुक्त किया जाता है जैसे क के लिए क और ख के लिए ख ही है। जबकि रोमन में एक ध्वनि के लिए कई लिपि चिन्हों का प्रयोग होता है जैसे क के लिए ज्ञ (king), C-Calcutta और फ (Queen) लिए तीन वर्ण प्रयुक्त हैं। Chemistry, Choose आदि शब्दों में ध्वनि तो क की ही है लेकिन बी दो वर्णों का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह अरबी लिपि में स के लिए सीन, स्वाद, सोय आदि लिपि चिन्हों का उपयोग किया जाता है। देवनागरी में अक्षरों में क्लिष्टता नहीं है उनमें अक्षरों का स्वरूप एक ही है जबकि रोमन में बड़ी और छोटी का उपयोग किया जाता है।

देवनागरी ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन– परम्परागत प्रतिलेखन द्वारा उच्चारित भाषा को यथावत् लिपिबद्ध किया जाना संभव नहीं होता है इसलिए ऐसे प्रतिलेखन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जिसमें शब्दों को उसी रूप में उच्चारण किया जाए जैसा उनको लिखा जाता है, इसे ही ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन कहा जाता है। इसके द्वारा वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है लेकिन अंग्रेजी में इस प्रकार की व्यावहारिक मुश्किलें आती हैं जिनके कारण इस भाषा में ललिता को लोलिता आदि को सही प्रकार से नहीं लिखा जा सकता है। ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के कारण ही हिन्दी भाषा की लोकप्रियता और वैज्ञानिकता है। परम्परागत प्रतिलेखन में मात्र स्वनिमों को ही लिखा जा सकता है जबकि सहस्वनिमों के लिए ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन सहायक होता है। भाषाविदों द्वारा ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के दो उपयोग हैं– व्यावहारिक और शास्त्रीय। इनके आधार पर भाषाविदों ने इन्हें दो रूपों स्थूल प्रतिलेखन तथा सूक्ष्म प्रतिलेखन में विभाजित किया है। स्थूल प्रतिलेखन का उपयोग व्यावहारिक जीवन में किया जाता है। देवनागरी लिपि के सामान्य रूप को स्थूल प्रतिलेखन कहा जाता है इसी कारण इसमें अंग्रेजी, अरबी तथा फारसी के शब्दों के उच्चारण के निकटतम रूप को लिखने की वैज्ञानिक सामर्थ्य विद्यमान है।

देवनागरी लिपि के द्वारा किसी भी भाषा की ध्वनि को लिखा जा सकता है। स्थूल प्रतिलेखन के सम्बन्ध में इसकी विश्वस्तरीय सूक्ष्म ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की क्षमता है। इसमें प्रत्येक भाषिक ध्वनि के लिए लिपि संकेत एक ही स्वनिम के लिए एक ही लिपि संकेत हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मानक लिपि में भी महाप्राण व्यंजनों के लिए स्वतंत्र वर्ण व्यवस्था नहीं है इसलिए उसमें निरन्तर अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण निर्मित कर दिया जाता है इसके विपरीत देवनागरी में ख, छ, ठ, थ, फ, घ, झ, ढ तथा भ महाप्राण वर्ण हैं। संघर्षी व्यंजनों को मुक्त लगाकर लिखा जाता है। इसमें प्रत्येक वर्ण केवल एक ही स्वनिम के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा डॉ. रामविलास–भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग,

नई दिल्ली–1100021
2. सान्याल नलिनी मोहन– भाषा विज्ञान, रामनारायण लाल पब्लिशर एण्ड बुकसेलर, इलाहाबाद
3. पाण्डेय डॉ. राजबली– भारतीय पुरालिपि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. जैन डॉ. महावीर सरन– भाषा और विज्ञान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. चौधरी तेजपाल– भाषा और भाषा विज्ञान, विकास प्रकाशन, कानपुर
6. अग्रवाल डॉ. सरयूप्रसाद– भाषा विज्ञान और हिन्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7. मिश्र डॉ. भगीरथ एवं डॉ. कपूर शुभकार– हिन्दी भाषादर्श, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. तिवारी डॉ. उदयनारायण– अभिनव भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 160-164

हिन्दी भाषा के विकास में संविधान की भूमिका

डॉ. निकिता शर्मा, (सहायक आचार्य)
जैन दिवाकर, महाविद्यालय, वल्लभबाडी, कोटा

किसी भी राज्य क्षेत्र व देश की पहचान उसकी भाषा से होती है जिसका संबंध उस देश की सभ्यता, संस्कृति, परम्परा व इतिहास से होता है। यह मात्र अपने विचार प्रकट करने का माध्यम ही नहीं है अपितु राष्ट्रीय एकता का आधार भी है। जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधती है। भाषा व्यक्तियों एवं समाजों को जोड़ने का कार्य करती है। इसके द्वारा ही ज्ञान का विकास होता है। मानव समाज, साहित्य संस्कृति आदि का विकास होता है। इसके माध्यम से ही राष्ट्र की पहचान एवं उसका गौरव छलकता है।

भारत सदैव से ही विभिन्न भाषा व संस्कृतियों वाला राष्ट्र रहा है। यहाँ विभिन्न धर्म, जाति एवं समाज के लोग निवास करते है। जिनके द्वारा विभिन्न भाषायें बोली जाती है। भारत में बोली जाने वाली इन भाषाओं में सर्वाधिक प्रमुख हिन्दी भाषा है। यह भारत की सर्वाधिक प्राचीन भाषा है जो कि भारत के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द 'हिन्दुस्तान' का पर्याय भी कही जा सकती है। यह वह भाषा है जिसे सर्वाधिक व्यक्तियों द्वारा बोला जाता है तथा जिसका सम्बन्ध आर्य संस्कृति से जुड़ा हुआ है। आर्य संस्कृति की भाषा 'संस्कृत' को हिन्दी भाषा की जननी के रूप में जाना जाता है समय एवं काल में परिवर्तन होने के साथ भाषा में भी परिवर्तन हुआ। भाषा में आये परिवर्तन के कारण संस्कृत से पाली, पाली से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश, एवं अपभ्रंश से अवहट्ट, अवहट्ट से ग्यारहवीं शताब्दी में प्राचीन हिन्दी का विकास हुआ। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि हिन्दी का इतिहास 1000 वर्ष प्राचीन है एवं संस्कृत की उत्तराधिकारिणी होने के नाते इस का संबंध आर्य संस्कृति से है।

भारत में हिन्दी भाषा केवल ऐतिहासिक गौरक का प्रतीक ही नहीं है अपितु स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय एकता का प्रतीक भी रही है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने में इसका स्थान महत्वपूर्ण रहा है। ब्रिटिश काल में यह जन आंदोलन के माध्यम से एक सम्पर्क भाषा के रूप में उभरी, जिसने भारतीयों के मध्य एकता, राष्ट्रीयता व देश प्रेम की भावना का संचार किया। इसकी महत्ता को देख कर ही हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा आजादी के पश्चात् हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया। यद्यपि हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कियो जाने पर कई गहरे मतभेद ऊभर कर सामने आये, परन्तु संविधान सभा में 3 दिनों की लम्बी बहस के पश्चात् 14 सितम्बर 1949 को सर्वसम्मति से इसे राजभाषा का स्थान प्राप्त हुआ।

संविधान निर्माताओं द्वारा हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा में विकसित करने के लिए अनेकों प्रयास किये तथा भारतीय संविधान के भाग XVII में अनुच्छेद 343 से 351 तक भाषा सम्बन्धी विशेष प्रावधान किये गए। ये सभी हिन्दी भाषा के साथ अन्य भाषाओं के विकास का भी प्रावधान करते हैं :–

भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा संबंधी विशेष उपबंध – अनुच्छेद 343 –

खण्ड (1) : संविधान के इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि संघ की राजभाषा हिंदीएवं लिपि देवनागरी होगी एवं संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

खण्ड (2) : इसमें यह व्यवस्था की गई है कि संविधान के प्रारम्भ होने से 15 वर्षों की अवधि तक संघ के सभी शासकीय प्रयोजनों हेतु अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रहेगा।

संविधान का अनुच्छेद 344 – यह अनुच्छेद हिंदी भाषा के विकास के लिए एक ''राजभाषा आयोग'' एवं इस आयोग की सिफारिशों का परीक्षण करने के लिए एक 'राजभाषा संसदीय समिति' का प्रावधान करता है।

राजभाषा आयोग की स्थापना – अनुच्छेद 344 की शक्ति की अनुपालना करते हुए 7 जून 1955 को श्री बी.जी. खरे की अध्यक्षता में प्रथम राजभाषा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने 1956 को अपना प्रतिवेदन निम्न संस्तुतियाँ के साथ प्रस्तुत किया जिसमें हिन्दी भाषा को राजभाषा बनाने के संबंध में निम्न सुझाव दिये गए –

1. भारत की जनतांत्रिक पद्धति को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजी को अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकार करना संभव नहीं है भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जानी चाहिये।
2. बहुमत द्वारा बोली एवं समझी जाने वाली हिन्दी को ही देश के लिए सुस्पष्ट, भाषा माध्यम बनाने पर इसके द्वारा बल दिया गया।
3. 14 वर्ष के प्रत्येक विद्यार्थी को हिन्दी का उचित ज्ञान कराये जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया।
4. माध्यमिक शिक्षा के स्तर तक हिन्दी को अनिवार्य शिक्षा के रूप में अपनाने का सुझाव दिया गया।
5. महाविद्यालयों में हिंदी माध्यम से परीक्षा देने वाले विद्यार्थी के लिए उचित प्रबन्ध किये जाने की आवश्यकता को इस आयोग द्वारा महसूस किया गया ताकि प्राथमिक व माध्यमिक स्तर से ही बालकों में हिंदी भाषा का विकास किया जा सके।
6. प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए हिन्दी का निश्चित अवधि में आवश्यक ज्ञान प्रदान करने के नियमों को लागू करने पर बल दिया।
7. इस आयोग ने राज्य एवं संघ सरकार के अधिकारियों के लिए हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य माना व अपनी रिपोर्ट में इसकी अनुशंसा की।
8. जनता से सीधा सम्पर्क रखने वाले विभागों और संगठनों के आन्तरिक कार्य में हिन्दी एवं व्यवहार हेतु क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग को अपनाने पर जोर दिया गया।

9. स्वीकृत सरकारी कानूनों को हिंदी में प्रकाशित करने पर बल दिया तथा जनता की सुविधा के लिए क्षेत्रीय भाषा में इनके अनुवाद प्रकाशित करने की संतुति की गई।

10. अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रिय सेवाओं हेतु कर्मचारियों के लिए हिंदी की योग्यता को आवश्यक माना गया।

राजभाषा अधिनियम 1963 –

राजभाषा आयोग की रिपोर्ट के आधार पर अनुच्छेद 343 के अन्तर्गत संसद द्वारा ''राजभाषा अधिनियम'' 1963 बनाया गया। हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से राजभाषा अधिनियम 1963 को स्थापित किया गया।

संसदीय राजभाषा समिति – भारत में राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा (4) के तहत 1976 में इस समिति की स्थापना की गई। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट नौ खण्डों में प्रस्तुत की। समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट का 9वाँ खण्ड 2011 को राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी को सौपा गया जिसमें हिन्दी को राजभाषा के रूप में विकसित करने के निम्न सुझाव दिये गये –

1. इस समिति की अनुशंसा में यह कहा गया कि राष्ट्रपति समेत मंत्रियों द्वारा संसद में हिन्दी में भाषण दिया जाना चाहिए।

2. संसदीय समिति द्वारा सी.बी.एस.ई. से जुड़े सभी स्कूलों और केन्द्रियों विद्यालयों में कक्षा 10 तक हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने का प्रस्ताव रखा गया तथा गैर हिन्दी भाषी राज्यों के विश्वविद्यालयों के लिये प्रावधान किया गया कि परीक्षाओं और इंटरव्यू में उत्तर हिन्दी में देने का विकल्प रखा जाये।

3. एयर इंडिया की टिकटों पर हिन्दी का उपयोग करने की सिफारिश का प्रस्ताव भी रखा गया।

4. सभी सरकारी और अर्धसरकारी संगठनों को अपने उत्पादों की जानकारी हिंदी में देने की सिफारिश की गई।

5. सरकारी संवाद में कठिन हिन्दी शब्दों का उपयोग ना करने एवं कठिन शब्दों के प्रयोग से बचने के लिए सरल व आसान भाषा के शब्दों को अपनाने एवं शब्द भाषा कोष के निर्माण करने की सिफारिश की गई।

अप्रैल 2017 में राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी द्वारा इस आयोग की उक्त सभी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया।

संविधान की 8वीं अनुसूची : –

भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में 22 भाषाओं का वर्णन किया गया है। (मूल रूप से 14 भाषा है) ये है असमिया, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कनन्ड़, कश्मीरी, कोकड़ी मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, मैथिली, औडिया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तैलगू, उर्दू, डोगरी, बोडो तथा संथाली इत्यादि।

संविधान की 8वीं अनुसूची में इन क्षेत्रीय भाषाओं को वर्णित करने के दो मुख्य उद्देश्य निम्न हैं –

1. इन भाषाओं के सदस्यों को राजभाषा आयोग में प्रतिनिधित्व प्रदान करना।

2. इन भाषाओं के रूप, शैली एवं भावों का प्रयोग हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिए करना।

समितियों की स्थापना का प्रावधान :–

हिन्दी भाषा को राजभाषा का दर्जा प्रदान करने एवं उसका विकास करने के उद्देश्य से राजभाषा हिन्दी सम्बन्धी निम्न समितियों का निर्माण भी किया गया है।

हिन्दी सलाहकार समितियाँ :–

भारत सरकार की राजभाषा नीति को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में हिन्दी सलाहकार समितियों की स्थापना की गई है। जिनका मुख्य कार्य अपने–अपने मंत्रालयों एवं विभागों में हिन्दी की प्रगति की समीक्षा करना है।

नगर राजभाषा समिति –

बड़े–बड़े नगरों में जहाँ केन्द्रिय सरकार के दस या उससे अधिक कार्यालय है वहाँ इन समितियों का गठन किया जाता है। 1976 के आदेशानुसार इनका गठन किया गया है तथा 1979 के आदेश द्वारा इनके कर्तव्य को निश्चित किया गया है जो इस प्रकार हैं –

1. यह समिति सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के संबंध में भारत सरकार द्वारा जारी आदेशों और हिन्दी के प्रयोग से सम्बन्धित वार्षिक कार्यक्रम के क्रियान्वयन की समीक्षा करती है।
2. हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के सम्बन्ध में उपाय प्रस्तुत करती है।
3. हिन्दी के संदर्भ साहित्य, टाइपराइटरों, टाइपिस्टों, आशुलिपिकों आदि की उपलब्धि की समीक्षा करती है।
4. हिन्दी, हिन्दी टाइपिंग तथा हिन्दी आशुलिपि के प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करती है।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति :–

राजभाषा आदेशों को क्रियान्वित करने के ठीक ठाक चलाने के उद्देश्य से राजभाषा कार्यान्यन समितियों का गठन किया गया है तथा इन्हें निम्न कार्य सौंपे गए हैं –

1. हिन्दी के प्रयोग के संबंध में गृह मंत्रालय के अनुदेशों के कार्यान्वयन का पुनरीक्षण करना है।
2. तिमाही प्रगति रिपोर्ट का पुनरीक्षण करना।
3. कार्यान्वयन संबंधी कठिनाइयों को देखना और उनका हल निकालना।
4. हिन्दी के प्रशिक्षण के बारे में अनुदेशों का पालन करना तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कर्मचारियों को उपर्युक्त संख्या में भेजना इत्यादि।

हिन्दी भाषा का विकास (अनुच्छेद 351) :–

संविधान के अनुच्छेद 351 में यह प्रावधान किया गया कि संघ का यह कर्तव्य होगा की वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाये तथा उसका विकास करें। जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और 8वीं अनुसूची में वर्णित भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए जहाँ आवश्यक अथवा वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौण रूप से अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करके उसकी समृद्धि करें।

केन्द्रिय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान :–

संवैधानिक उपबंधों की अनुपालना में केन्द्रिय सरकार के हिन्दी न जानने वाले कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के उद्देश्य से इसकी स्थापना की गई है। इसका का कार्य सर्वप्रथम 1952 में आरम्भ किया गया एवं 1955 में गृह मंत्रालय के तत्वाधान में केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए कार्यालय समय में हिन्दी कक्षाऐं चलाई जा रही है तथा सन् 1960 में हिन्दी शिक्षण योजना के अन्तर्गत हिन्दी भाषा, हिन्दी टंकण एवं हिन्दी आशुलिप का प्रशिक्षण अनिवार्य किया गया है। सन् 1974 से केन्द्रीय स्वामित्व अथवा नियंत्रणाधीन, निकायों और कम्पनियों, उपक्रमों, बैंको आदि के कर्मचारियों के लिए भी हिन्दी भाषा, हिन्दी टंकण तथा हिन्दी आशुलिपि का प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान ने हिन्दी भाषा के विकास के लिए जो प्रयास किए गए हैं वह सफल एवं कारगर सिद्ध हुए है। 2011 की जनगणना के भाषा संबंधी आँकड़े यह प्रदर्शित करते है कि हिन्दी भारत की सबसे तेजी से बढ़ने वाली भाषा है। 2001 से 2011 के बीच 10 वर्षों में हिन्दी बोलने वाले लोगों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है तथा इसमें 10 करोड़ की वृद्धि दर्ज की गई है तथा हिन्दी की वृद्धि दर 25.19 की सदी रही है। हिन्दी संवैधानिक रूप से देश की राजभाषा होने के साथ–साथ देश में सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा भी बन गई है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के 43. 63 प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते है।

हिन्दी भाषा के इस विकास को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दी भाषा का महत्व जिस प्रकार भारत वर्ष में लगातार बढ़ रहा है। उससे आने वाले भविष्य में यह भाषा सम्पूर्ण राष्ट्र में राजभाषा के रूप में अपना स्थान और अधिक मजबूत बनाएंगी जिसका प्रभाव अन्य विदेशी राष्ट्रों पर भी पड़ेगा वर्तमान में भी कई बड़े देशों के महाविद्यालयों में हिन्दी भाषा का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य आरमभ हो चुका है और आने वाले वर्षों में इसके विकास में ओर अधिक तेजी आने की संभावना है। यह माना जा सकता है कि विकास की दृष्टि से न केवल भारत में अपितु विश्व में भी इसके विकास का भविष्य सुनहरा है।

संदर्भ ग्रंथ :– .डॉ. बाहरी हरदेव, ''हिन्दी उद्भव विकास और रूप'' किताब महल 47वॉ प्रकाशन, 1 जनवरी 2018, पृष्ठ संख्या 296

2. भाटिया कैलाश चंद एवं चतुर्वेदी मोतीलाल, ''हिन्दी भाषा, विकास और स्वरूप'' प्रभात प्रकाशन : प्रथम संस्करण 1 जनवरी 2018 ASIN No. 8193295692
3. डॉ. बसु दुर्गादास, ''भारत का संविधान : एक परिचय'' Aexis MexiS पब्लिकेशन, 10वॉ संस्करण।
4. लक्ष्मीकान्त एम, ''भारत की राजव्यवस्था' Mc, braw Hill पब्लिकेशन, 6वां संस्करण।
5. शर्मा ब्रिज किशोर, ''भारत का संविधान'' पेज संख्या 536 ISBN No. 9789390544158 प्रकाशन, मार्च 2021,

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 165-166

मातृ भाषा हिन्दी

निर्मला, पीएच.डी., शोधार्थी, हिन्दी विभाग
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

प्रस्तावना :–

हिन्दी हमारी राष्ट्रीय भाषा हैं। यह विशेष रूप से उत्तर भारत की भाषा हैं। यह देश की सामान्य संचार की भाषा हैं।

हमारे देश के अधिकांश लोग बोल चाल में हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं। दक्षिण भारतीय लोगों की मांग के कारण अंग्रेजी भाषा को सहयोग के रूप में रखा गया क्योंकि वे हिन्दी को समझने में असमर्थ थे।

1947 में देश की आजादी के बाद हिन्दी भाषा को संविधान ने अपना लिया। भारत में आज भी बहुत अधिक संख्या में लोग हिन्दी भाषा के ज्ञान से वंचित हैं। क्योंकि इसमें संस्कृत के शब्दों का कुछ अंश मिला हुआ हैं। महात्मा गांधी जी हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में चाहते है, परन्तु उस समय यह संभव न हो सका। मातृ भाषा उस भाषा को कहा जाता है, जिससे बच्चा अपनी मां से सिखता हैं।

हिन्दी भाषा का महत्व :–आज वैज्ञानिक युग हैं। आज का युग प्रोद्योगिकी व्यवसाय प्रशासन के अधिकतर अंग्रेजी भाषा का बोल बाला हैं। आजादी के 65 वर्षों के बाद हिन्दी भाषा वो स्थान नहीं ले पाई जो आज भी अंग्रेजी ने प्राप्त कर रखा हैं।

कॉलेज, स्कूल आदि में हिन्दी भाषा की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा को महत्व दिया जाता हैं। अध्यापक साक्षात्कार में यदि अंग्रेजी नहीं बोल पाता हैं तो उसे अपने विषय का भरपूर ज्ञान होने पर भी एक योग्य अध्यापक नहीं माना जाता, इसका कारण अंग्रेजी भाषा ही हैं। इस स्थिति को हमे बदलना होगा, यदि हम हिन्दी भाषा को उंचा उठाना चाहते है, तो हिन्दी को उसका सम्मान दिलाना चाहिए। उसके बाद ही हम अपने राष्ट्रीय चरित्र को बनाये रख सकते हैं। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी भाषा का शोर हैं। अंतराष्ट्रीय बातचीत के लिए लोगों को अंग्रेजी भाषा को सिखने के लिए मजबूर होना पड़ रहा हैं। परन्तु इसे हमें रोकना ही होगा, इससे हम अपनी मातृ भाषा हिन्दी से दूर होते जा रहे हैं। आने वाली पीढी हिन्दी बोले व लिखे इसके लिए हमें हिन्दी भाषा के अस्तित्व को समाज में बनाए रखना होगा।

अब हम राष्ट्र भाषा व राज भाषा इन दोनों को जानेगे :– राममूर्ति त्रिपाठी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पांचवे अधिवेशन में परिभाषा देते हुए कहा है कि :

राष्ट्रभाषा : ''राष्ट्र भाषा का संबंध राष्ट्र की निजता या सांस्कृतिकता चेतना से है जो उसकी अपनी पहचान से है, इसके पीछे जातीय अस्मिता काम करती हैं।''

राजभाषा : ''राज भाषा देश की राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक सूत्रता में बाधने वाली प्रशासनिक

प्रयोजकों की भाषा हैं।''

''हिन्दी हमारी स्वाधीनता संग्राम की भाषा बनकर लोगों में जागृतिका काम करती रही। मैथिलिशरण गुप्त ने भारत–भारती में लिखा है :– हिन्दी का उद्‌देश्य यही है भारत एक अविभाज्य या रूस और अमेरिका जितना है उसका गणराज्य''

हिन्दी आजादी के प्रचार के कारण बहुत पहले ही हमारी मातृभाषा बन चुकी थी, 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राजकाज की भाषा घोषित किया गया। यह हमारे लिए बड़े गौरव की बात थी। हिन्दी आज द्वितीय स्तर की भाषा समझी है, यदि हम अनुवाद की बात करें तो हिन्दी भाषा का अनुवाद करना सरल व सहज नहीं हैं। आज हिन्दी को रोजगारोन्मुख बनाकर नये पाठ्य युक्त को विश्वविद्यालय स्तर पर लागू करना होगा, यह बहुत ही जरूरी विश्वविद्यालय स्तर पर लागू करना होगा, यह बहुत ही जरूरी भी है, ताकि हिन्दी भाषा जानने वाले लोगों को हिन्दी भाषा के माध्यम से रोजगार से जुड़ सके। आधुनिक युग में विज्ञापन की हिन्दी, संप्रेषण की हिन्दी, पत्रकारिता की हिन्दी, दूरसंचार की हिन्दी, लेखन की हिन्दी को यदि रोजगार की भाषा बना दिया जाए तो जनता हिन्दी को रोजी–रोटी की भाषा होने प्रशासन भी बात से सहमत हो जायेगी। हिन्दी भाषा जानने वाले लोगों को रोजगार भी प्राप्त हो जायेगा व वे लोग हीन भावना से भी बच सकेंगे।

हिन्दी भाषा को कम्प्यूटर की भाषा में भी आविष्कार होने चाहिए, क्योंकि आज डिजिटल इंडिया में बहुत अधिक काम कर्मचारी कम्प्यूटर पर ही करते है, इसलिए हिन्दी भाषा में कम्प्यूटर वेब साईट व सॉफ्ट वेयर उपलब्ध कराने चाहिए। जिससे कम्पयूटर पर हिन्दी भाषा में काम सरलता व सुगमता से हो सके। भारत की मुख्य साहित्यिक व सम्पर्क भाषा हिन्दी ही तो हैं। हिन्दी का स्थान भारत की प्रमुख भाषाओं में आता हैं। क्योंकि भारत में अधिकांश लोग हिन्दी भाषा के द्वारा ही अपने विचारों का आदान प्रदान करते हैं। हिन्दी को ही सुगमता से समझ भी पाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग हिन्दी भाषा को अपनाये हुए हैं, वे अंगेजी भाषा को न बोल सकते है और न ही समझ सकते हैं। हिन्दी भाषा को वास्तविक रूप से गौरव पूर्ण स्थान दिलाने के लिए भारत के लोगों को जागरूक होना पड़ेगा।

निष्कर्ष :–

हमें अपनी राष्ट्र भाषा को बचाने के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे। हमें लोगों को हिन्दी भाषा के महत्व से रूबरू करना पड़ेगा। आज हर माता–पिता इस बात पर गर्व महसूस करते है कि उनका बच्चा मातृ भाषा से पहले अंग्रेजी भाषा बोले, इसके लिए हमें हिन्दी भाषा को सरल बनाना होगा। इसमें से संस्कृत शब्दों को भी हटाना होगा। क्योंकि संस्कृत भाषा के शब्दों को बोलने में बच्चों को दिक्कत होती है, हिन्दी विषय पर बोलने वाले बच्चों को कुछ ईनाम देकर प्रोत्साहित करना चाहिए। हिन्दी हमारी मातृ भाषा है, इसकी गरिमा को हमें बनाए रखना हम सब भारतीयों का कर्तव्य हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. ''भारतीय–भारती'' मैथिलिशरण गुप्त काव्य ग्रन्थ।
2. हिन्दी–साहित्य के पचास वर्ष महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी मुबई पृ. 233
3. राज भाषा समस्या :–व्यावहारिक समस्या कन्हैया लाल गांधी–राजभाषा आयोग पृ. 55–56

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 167-168

राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की भूमिका

डॉ नूपुर अग्रवाल, (सहायक आचार्य)
जेएनटीटी कॉलेज

शिक्षा जीवन की तैयारी नहीं,
ये अपने आप में ही एक जीवन है।

शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्याय संगत तरुण कुमार और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के मूलभूत आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण तक सार्वभौमिक पहुंच प्रदान करना, वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के सन्दर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है। अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जन संख्या वाला देश होगा इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्ता पूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।

रोजगार और परिस्थितिकी में तीव्र गति से आरहे परिवर्तनों की वजह से यह जरूरी हो गया है कि बच्चे को जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखें ही और साथ ही वे सतत सीखते रहने की कला भी सीखें। 2040 तक भारत के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य होना चाहिए जो किसी सेपीछे नहीं हैं, एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जहां किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से संबंध रखने वाले शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध हों।

किसी देश या क्षेत्र के लोग जिन्हें एक समूह माना, जाए और जिनकी प्रथा और कानून समान हों, एक समाज कहलाता है। शिक्षक एक सामाजिक संस्था है जिसके माध्यम से समाज अपने सदस्यों को महत्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करता है जिसमें बुनियादी तथ्य, नौकरी कौशल और सांस्कृतिक मानदंड मूल्य शामिल है।

कहा जाता है कि विद्यालय ही समाज का लघु रूप है। अतः समाज उत्थान हेतु इसी स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए। श्रमदान, सामूहिक प्रार्थना, जन जागरुकता रैली, राष्ट्रीय दिवस या महापुरुषों के जन्मदिन मनाना, विद्यालय उत्सव जैसे वार्षिकोत्सव व पारितोषिक वितरण, बालसभा, व्यायाम, खेलकूद, एन. सी. सी., एन. एस. एस., स्काउट गाइडिंग, साहित्य क्लब, विज्ञान क्लब, पर्यावरण क्लब, नाटक, भ्रमण इत्यादि के माध्यम से समाज की प्रगति मे योगदान दिया जा सकता है। शिक्षा लोगों को बेहतरीन नागरिक बनने को प्रोत्साहित करती है। उन्हें उचित राजनीतिक निर्णय लेने, लोकतंत्र को बढ़ावा देने तानाशाही कदमो का विरोध करने में सक्षम

बनाती है। यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महामारी की रोकथाम में भी मदद करती है।

समाज शास्त्रियों के मतानुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि इनके अनुसार समाज के अस्तित्व पर ही शिक्षा का अस्तित्व निर्भर करता है। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, व्यवसायिक कुशलता की प्राप्ति, कार्य का व्यावहारिक ज्ञान एवं जीवन की तैयारी के लिए शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों, गलत परम्पराओ के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते हैं और धीरे –धीरे समाज में परिवर्तन होता जाता है। शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली एक उद्देश्य पूर्ण समाजिक प्रक्रिया है जिसके मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार मैं परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है।

विद्यालय रूपी समाज में शिक्षक ही वास्तव में समाज की रीड की हड्डी होते है। ये बच्चों के लिए रोल मॉडल है, मार्ग दर्शन और समर्पण प्रदान करते हैं। समाज के साथ अनुकूलन, सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं सुधार, सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति, संस्कृति और सभ्यता का विकास, व्यक्तिगत हित को सामाजिक हित से दूर रखना, सामाजिक भावना की जागृति, सामाजिक गुणो का विकास इत्यादि कार्य समाज हेतु करना एक शिक्षक का कर्तव्य है।

निष्कर्ष के रूप में शिक्षा वह मार्ग है जो एक राष्ट्र को उत्पादकता की ओर ले जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को उनमें रचनात्मक क्षमता की खोज करने में सक्षम बनाता है जो उन्हें स्वाभाविक रूप से उपहार में दिया गया है। शिक्षा लोगों को उस समाज के लिए उपयोगी बनाती है जिसमें वे रहते हैं।

उपयुक्त सभी विवरण से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय निर्माण एवं विकास मे शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा का कार्य व्यक्ति और समाज के बीच ऐसा एक ऐसा सामंजस्य स्थापित करना है जिसमें व्यक्ति स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार पुर्न व्यवस्थित करले जिससे दोनों को अधिकाधिक स्थायी संतोष प्राप्त हो सके।

'कर्तव्यों का बोध कराती, अधिकारों का ज्ञान,
शिक्षा से हीं मिल सकता है, सर्वोपरि सम्मान ।'

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 169-172

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी भाषा की संभावनाएँ

ओमवती, शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

भाषा हमारे भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम हैं। किसी भी देश की भाषा उस देश की सभ्यता और संस्कृति की पोषक होती है। भाषा के द्वारा ही हम अपने देश के आत्मिक सौंदर्य को शब्दबंध कर सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। भारत की एक बड़ी आबादी के कारण हिंदी विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। परंतु किसी भी वर्ग के द्वारा भाषा की अभिव्यक्ति के आधार पर वह भाषा समृद्ध नहीं कहीं जा सकती है। मात्र संचालित अभिव्यक्ति के आधार पर, कोई भाषा आधुनिक, प्रासंगिक या उपयोगी नहीं हो सकती है। बल्कि किसी भाषा की जीवंतता इस बात में है कि उसमें आधुनिक ज्ञान को संजोने, तीव्र गति से बढ़ रही विज्ञान और तकनीकी प्रगति के अनुकूल बनने, साथ ही उत्कृष्ट साहित्य रचना करने की कितनी क्षमता है। भूमंडलीकरण के इस दौर में जबकि विश्व की अधिकतर संस्कृतियाँ और भाषाएँ पश्चिम या विशेष रूप से अमेरिकी संस्कृति और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव में हैं ऐसे में हिंदी भाषा की वास्तविक स्थिति और उसके विकास की संभावनाओं से जुड़े संदर्भों पर विचार करना होगा।

वर्तमान समय में हिंदी भाषा संक्रमण के दौर से गुजर रही है। यह संक्रमण भाषाई होने के साथ – साथ सामाजिक और सांस्कृतिक भी है। आज भूमंडलीकरण ने हिंदी भाषा पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से विश्व ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के प्रारंभ में आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया में भूमंडलीकरण की अवधारणा को महसूस किया। भूमंडलीकरण समकालीन विश्व की विशिष्टताओं में से एक है। वस्तुतः यह संपूर्ण विश्व को एक गांव में बदलने की अवधारणा है जो कि प्रत्येक देश की सभ्यता और संस्कृति की विभिन्नताओं से परे है। भूमंडलीकरण का प्रत्यक्ष संबंध बाजार वाद और निजीकरण से है जिसका प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र साहित्य, धर्म, दर्शन, कला, राजनीति, विज्ञान, व्यावसायिक गतिविधि और विशेष रूप से हिंदी भाषा पर पड़ता है। चार्ल्स वुड इसी संदर्भ में कहते हैं कि "उपभोक्तामूलक संस्कृति में पनपी भाषा अपने साथ सिर्फ संस्कृति ही नहीं, अपना बाजार भी लाती है। "भूमंडलीकरण और निजीकरण के चलते आज विश्व की निगाह भारत पर है। क्योंकि भारत विश्व के बड़े बाजारों में से एक है। इस दृष्टि से बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने प्रचार के लिए तंत्र के लिए भारतीय भाषाओं को चुना है। क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस बात से भली भाँति परिचित है कि यदि हमें अपने माल को ज्यादा लोगों तक पहुँचाना है तो वहीं की भाषा में उत्पादों की जानकारी

देनी होगी। यही कारण है कि आज विदेशी कंपनियों ने अपने प्रचार सामग्री के लिए हिंदी भाषा को चुना है "यह सोच आज अप्रासंगिक हो गई है कि भूमंडलीकरण, उदारीकरण व निजीकरण के कारण भारतीय भाषाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जबकि दृष्टांत तो यह बता रहे हैं कि अनुकूल प्रभाव पड़ रहा है। आज विज्ञापन कंपनियां भी अपने विज्ञापन हिंदी में दे रही हैं। मीडिया और विज्ञापन दाताओं को मालूम है कि हिंदी का उपभोक्ता वर्ग काफी बड़ा है। अंतः हिंदी का प्रचार प्रसार काफी हुआ है।"

भूमंडलीकरण और हिंदी की इस अनुकूलता का एक बड़ा उदाहरण हमें जन संचार माध्यम में देखने को मिलता है हिंदी पत्र पत्रिकाओं का पाठक वर्ग तो संपूर्ण देश में है ही, उनका प्रकाशन भी देशभर में हो रहा है। डिजिटल टेकनीक और बहुरंगे चित्रों के प्रकाशन की सुविधा ने हिंदी पत्रकारिता जगत को आमूल – चूल परिवर्तित कर दिया है। प्रकाशन जगत में भी भूमंडलीकरण के साथ जुड़ी नई तकनीक के कारण मूलभूत क्रांति संभव हो सकी है। विभिन्न आयु और रुचियों के पाठकों के लिए हिंदी में विविध प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हो रहा है तथा मनोरंजन, ज्ञान, शिक्षा, और परस्पर व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में उसका विस्तार हो रहा है।

रेडियो तो हिंदी और भारतीय भाषाओं का प्रयोग करने वाला व्यापक माध्यम रहा ही है, साथ ही साथ टेलीविजन बहुत थोड़े ही समय के भीतर ही हिंदी माध्यम बन गया है। प्रतिदिन होने वाले सर्वेक्षण इस बात का प्रमाण है कि हिंदी के कार्यक्रम चाहे किसी भी विषय से संबंधित हो, देश भर में सर्वाधिक देखे जाते हैं, व्यावसायिकता की दृष्टि से हिंदी संचार माध्यमों के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र उपलब्ध कराती है। यही कारण है कि अंग्रेजी के तमाम कार्यक्रम हिंदी में अनुवादित करके प्रसारित करने की बाढ़ – सी आ गई है। इससे अन्य भारतीय भाषाओं में भी उनके अनुवाद में सुविधा होती है कहना न होगा कि टेलीविजन ने इस तरह हिंदी भाषा की क्षमता को बढ़ाया है। इसी प्रकार फिल्मों के माध्यम से भी हिंदी को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा है। आज अनेक फिल्मकार भारत ही नहीं यूरोप, अमेरिका और खाड़ी देशों के अपने दर्शकों को ध्यान में रखकर फिल्में बना रहे हैं और हिंदी सिनेमा को ऑस्कर तक पहुँच रहा है। विश्व की संस्कृतियों को निकट लाने के क्षेत्र में निश्चय ही इन संचार माध्यमों का अभूतपूर्व योगदान है यदि मनोरंजन और अर्थ उत्पादन के साथ – साथ हिंदी भाषा की सार्थकता का भी ध्यान रखा जाए तो हिंदी सिनेमा सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो सकता है।

संचार क्रांति में कंप्यूटर और मोबाइल ऐसे माध्यम हैं जिन्होंने दुनिया को सचमुच मनुष्य की मुठ्ठी में कर दिया है। "अब बहुतों को समझ में आ गया है कि रूपर्टमर्डोक अपना चौनल हिंदी में चलाने के लिए क्यों लपक रहें हैं ? क्यों बिलगेटस भारतीय भाषाओं में सॉफ्टवेयर बनाने को लालायित हैं ? कंप्यूटर और फोन वाले भारत में दिन – रात बढ़ रहे हैं। वे प्रयोग की कौन – सी भाषा अपना रहे हैं ? भारतीय भाषा या अंग्रेजी ? मोबाइल फोन वाली कंपनियाँ अब फोनों पर कौन – सी भाषा डायल कर रही हैं ? हर तरफ भारतीय भाषाओं, हिंदी का बाजार गर्म है। विदेशी लोग हिंदी सीख रहे हैं ताकि वह हिंदी में व्यापार कर सकें। "संचार और संप्रेषण का क्षेत्र तेजगति से बदल रहा है अकेली हिंदी में न जाने कितने शब्द मीडिया क्रांति से आ रहे हैं और हिंदी उन्हें

अपनाकर विस्तृत हो रही हैं। सूचना, समाचार और संवाद प्रेषण के लिए हिंदी को विकल्प के रूप में विकसित किया है। इसी प्रकार इंटरनेट और वेबसाइट की सुविधा ने पत्र पत्रिकाओं के ई – संस्करण तथा पूर्णतः ऑनलाइन पत्र – पत्रिकाएं हिंदी में उपलब्ध कराया है। आज हिंदी की अनेक पत्रिकाएँ इस रूप में विश्व भर में कहीं भी सुलभ हैं। तथा अब हर प्रकार की जानकारी इंटरनेट पर हिंदी में प्राप्त होने लगी है। इस तरह हिंदी ने बाजार और कंप्यूटर दोनों की भाषा के रूप में अपना सामर्थ्य सिद्ध कर दिया है।

एक समय ऐसा भी था जब यह माना जाता था कि अब हिंदी भाषा में वह क्षमता नहीं है कि वह सभी विषयों को सार्थक ढंग से व्यक्त कर सके। लेकिन अब आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक विषयों पर अनेक पुस्तकें आ चुकी हैं। जिनमें हिंदी भाषा का अत्यंत स्वाभाविक और सार्थक प्रयोग हुआ है। हिंदी के सर्जकों ने भाषा के इतने सटीक और मार्मिक प्रयोग किये हैं जो हिंदी भाषा को विश्व की किसी भी समर्थ भाषा के स्तर पर खड़ा कर सकते हैं। हिंदी भाषा में अनुवाद करने की कला भी तीव्र गति से विकसित हुई है और देशी विदेशी भाषाओं का साहित्य इतने स्वाभाविक रूप में अनूदित हुआ है कि भारत और अनेक देशों में भी अनेक भाषाओं में हिंदी के अनुवाद किए जा रहे हैं। "हिंदी भाषा का विकास जनभाषा के रूप में बढ़ रहा है इसके कई व्यवहारिक कारण भी है ! इस देश में हिंदी एक मात्र ऐसी भाषा है जिसके द्वारा संपूर्ण देश में आप संपर्क स्थापित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में देश की विशाल आबादी इसे संपर्क भाषा के रूप में आपसी बोलचाल की भाषा बनाए हुए है। राजनीतिक आंदोलन भी जनभाषा हिंदी को अपने प्रचार – प्रसार का माध्यम बनाये रहते हैं। जहाँ तक साहित्य या संस्कृति का प्रश्न है एक ओर भले ही व्यवसायिक हिंदी की पत्रिकाएँ बंद हो रही हों, किंतु दूसरी ओर सैकड़ों की संख्या में प्रकाशित होने वाली अनियत कालीन लघु पत्रिकाएँ जो जन पक्ष धरता की लिए प्रतिबंध हैं, इस विराट भाषाई अंधकार से जहाँ – तहाँ मुठभेड़ कर रही हैं। स्वतः स्फूर्त विदेशी भाषाओं का विविध ज्ञान विशेष तौर से साहित्य, दर्शन, इतिहास, अर्थशास्त्र या साहित्यिक उपन्यासों के अनुवाद भरी संख्या में हिंदी में प्रकाशित हुए हैं।"

वर्तमान दौर में हिंदी भाषा में मिलावट की एक नई समस्या देखने को मिलती है। बाजारीकरण की प्रवृत्ति ने हिंदी को इस कदर मिला दिया है कि दोनों भाषाओं को साथ–साथ बोलना आज आधुनिकता और उदारता का लक्षण माना जाने लगा है। परंतु यह कौन सी भाषा है ? इसकी प्रेरणा कहा से प्राप्त होती है ? क्या यह भाषा बाजार की भाषा है ? और क्या इसके पीछे भाषा साम्राज्यवाद की मनोवृत्ति है ? जो धीरे–धीरे हिंदी को तथा अन्य भारतीय भाषाओं को विस्थापित कर देंगी। इस तरह हम एक प्रकार से दूसरी गुलामी के दौर में पहुँच जायेंगे। गणेश शंकर विद्यार्थी इसी संदर्भ में कहते हैं कि "मुझे देश की आजादी और भाषा की आजादी में से किसी एक को चुनना पड़े तो मैं निः संकोच भाषा की आजादी को चुनूंगा, क्योंकि मैं फायदे में रहूँगा। देश की आजादी के बावजूद भाषा गुलाम रह सकती है लेकिन अगर भाषा आजाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता। "इस कथन के परिप्रेक्ष्य में हमें सोचना होगा कि हम किस दौर से गुजर रहे हैं आजादी के दौर से या मानसिक, आर्थिक गुलामी के दौर से और उसमें हिंदी भाषा की क्या भूमिका है। क्या अंग्रेजी भाषा की हिंदी भाषा में मिलावट से हिंदी अपनी वैचारिकता और साहित्यिकता के स्तर को कम करती हैं ? क्या इससे हिंदी की वैचारिक और

साहित्यिक भाषा बाजारू बन जाती है। यदि हिंदी भाषा के इतिहास पर दृष्टि डाले तो पाते है कि किसी भी दौर में ऐसा नही हुआ कि हिंदी भाषा ने अन्य भाषाओं के शब्दों को स्वीकार न किया हों। अरबी, फारसी, उर्दू, तुर्की आदि भाषाओं के ढेरों शब्द हिंदी में आये हैं और इससे हिंदी गतिशील और समर्थ हुई है। इस संदर्भ में कृष्णा सोबती ठीक कहती हैं कि "आम हिंदी यकीनन हिंदी प्रदेशों की भाषा नहीं। हिंदी अपना स्वरूप तय कर चुकी है, मैं ऐसा नही समझती। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित हो रही है। वह देश की संपर्क भाषा भी बन रही है और एक बड़ी भाषा की तमाम संभावनाएँ अपने में समेटे हैं, फिर भी कहना होगा कि इसका रचनात्मक स्वरूप इसके इस्तेमाल और विकास के साथ बदलता जाएगा। भाषाई लचक के लिए हमें हमारे देश में पनपी दूसरी भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी की ओर भी देखना चाहिए। हिंदी की जो भी राजनीति हो, आज उसकी एक रचनात्मक शैली को मानक समझना गलत होगा। करोड़ों–करोड़ों लोगों द्वारा बोली समझी जाने वाली भाषा पर अब क्षेत्रीय नागरिक और सर्वसाधारण का निश्चय ही दबाव होगा। हिंदी पर हिंदी भाषी प्रदेश का भले वर्चस्व हो, पर राष्ट्र भाषा जरूरत के मुताबिक नये–नये शब्द और स्वरूप ग्रहण करेगी, कर रहीं है "अंतः हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा गतिशील और समृद्ध भाषा हैं और भाषा में ऐसा संयोजन सहज रूप से होता है और प्रचलन की राह से आता है।

सारांश यह है कि हिंदी विश्व भाषा बनने की दिशा में निरंतर प्रगति कर रही है। विश्व के प्रायः सभी महत्वपूर्ण देशों के विश्व विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन में प्रयोग की जा रही है। अकेले अमरीका में ही लगभग एक सौ पचास से ज्यादा शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी का पठन पाठन हो रहा है आज जब 21वीं सदी में भूमंडलीकरण के दबाव के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियां और भाषाएं आदान प्रदान और संवादों की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिंदी भाषा इस दिशा में मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर रही हैं। हिंदी भाषा के पास पहले से ही विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव प्राप्त है जिससे हिंदी भाषा में पहले की अपेक्षा ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की संभावना हैं।

संदर्भ :– बाजारवाद में हिंदी – प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण –2009, पृष्ठ संख्या– 37

भूमंडलीकरण साहित्य समाज और संस्कृति –डॉ. रेनू, एकेडमिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण –2018, पृष्ठ संख्या –120

भूमंडलीकरण, निजीकरण व हिंदी –डॉ. माणिक मृगेश, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2012, पृष्ठ संख्या – 9

भूमंडलीकरण का अमानवीय चेहरा – डॉ. प्रभा दीक्षित, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण –2016, पृष्ठ संख्या ' 154

बाजारवाद में हिंदी – प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण –2009, पृष्ठ संख्या – 7

वैद संवाद – कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, संस्करण –2015, पृष्ठ संख्या – 86

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 173-177

मातृभाषा हिंदी एवं शिक्षा

पायल शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर
फैकल्टी ऑफ एजुकेशन तीर्थंकर महावीर विश्व विद्यालय, मुरादाबाद।

मातृभाषा – वह बोली या भाषा जो बच्चे को जन्म से ही माता के मुख से सुनाई पड़ती है, जिस घर परिवार में जो बोली या भाषा बोली जाती है, उसे उसकी मातृभाषा कहते हैं। जन्म से हम जिस भाषा का प्रयोग करते है वही हमारी मातृभाषा होती है। सभी संस्कार एवं व्यवहार हम इसी के द्वारा पाते हैं। इसी भाषा से हम अपनी संस्कृति के साथ जुड़कर उसकी धरोहर को आगे बढ़ाते हैं।

सभी राज्यों के लोगों का मातृभाषा दिवस पर अभिनन्दन – हर वो व्यक्ति जो उत्सव मना रहा है। उत्सव के लिए कोई भी कारण उत्तम है। भारत वर्ष में हर प्रांत की अलग संस्कृति है। यह एक अलग पहचान है। उनका अपना एक विशिष्ट भोजन, संगीत और लोकगीत हैं। इस विशिष्टता को बनाये रखना, इसे प्रोत्साहित करना अति आवश्यक है। मातृभाषा का हमारे जीवन में विशेष महत्व होता है। एक मात्र मातृभाषा ही हमें हमारी देश की संस्कृति, इतिहास, और सामाजिक परम्पराओं से जोड़ने की क्षमता रखती है। हमारे भारत देश में विभिन्न प्रकार की भाषाएं बोली जाती हैं। प्रत्येक मातृभाषा व्यक्ति को उसके सामाजिक स्तर की पहचान दाती है। जिस प्रकार एक सिख की पंजाबी भाषा उसकी पहचान है, गुजरात निवासी की गुजराती भाषा उसकी पहचान है इत्यादि। यूं तो भारत देश विभिन्नताओं का देश है। यहां आपको भाषाओं में भी अनेक विविधताएं देखने को मिलती हैं। हालांकि आधिकारिक तौर पर भारतीयों की मातृभाषा हिंदी है। वर्ष 2011 की गणना के अनुसार, लगभग 43.7 फीसदी लोगों ने हिंदी भाषा को अपनी मातृभाषा के रूप में स्वीकार किया है। आज के समय में हिंदी का प्रयोग हर क्षेत्र में उन्नत स्तर पर हो रहा है। लेकिन इसके बाबजूद अधिकतर लोग अन्य देशों की भाषा को अधिक प्राथमिकता देते हैं। भारतवासियों को अपने अंदर यह जागरूकता लानी होगी कि वह अपनी मातृभाषा का विकास करें। स्वयं मातृभाषा का ज्ञान अर्जित करें और प्रोत्साहन करने का प्रयास करें।

मुख्य शब्द – मातृभाषा, शिक्षण, विकास, शिक्षा, हिंदी

मातृभाषा शिक्षण का महत्व –

भारतीय बच्चे अपनी लोकभाषा जिसमें उन्हें कम से कम गिनती तो आनी चाहिए, उसे भूलते जा रहे हैं। इससे उनके मस्तिष्क पर भी गलत असर पड़ता है और उनकी लोकभाषा में गणित करने की क्षमता कमजोर हो जाती है। जब हम छोटे बच्चे थे तब पहली से चौथी कक्षा का गणित लोकभाषा में पढ़ाया जाता था। अब धीरे धीरे यह प्रथा लुप्त होती जा रही है। लोकभाषा, मातृभाषा में बच्चों का बात ना करना अब एक फैशन हो गया

है। इससे गाँव और शहर के बच्चों में दूरियाँ बढ़ती हैं। गाँव, देहात के बच्चे जो सब कुछ अपनी लोकभाषा में सीखते हैं अपने को हीन और शहर के बच्चे जो सब कुछ अंग्रेजी में सीखते हैं स्वयं को श्रेष्ठ, बेहतर समझने लगते हैं। इस दृष्टिकोण में बदलाव आना चाहिए। हमारे बच्चों को अपनी मातृभाषा और उसी में ही दार्शनिक भावों से ओतप्रोत लोकगीत का आदर करते हुए सीखना चाहिए। नहीं तो हम अवश्य ही कुछ महत्वपूर्ण खो देंगे।

बांग्ला भाषा में बेहद सुन्दर लोकगीत हैं जो वहां के लोकगायक बाउल (इंनस – इकतारे के समान दिखने वाला) नामक वाद्ययंत्र पर गाते, बजाते हैं। उनके गायन को सुनकर अद्भभुत अनुभव होता है – श्री रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने इन्ही से ही प्रेरणा ली थी। इसी प्रकार आंध्रप्रदेश में 'जनपद साहित्य' और वहां के लोकगीत, छत्तीसगढ़ के लोकनृत्य, केरल के सुन्दर संगीत, भोजन, संस्कृति सब कुछ अप्रतिम है।

शिक्षा :–

शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया हैं। शिक्षा समाज को शिक्षित करने के साथ साथ सत्ता के संचालन करने में भी सहायक होती हैं। यह समाज के विकास हेतु भावी नागरिकों का निर्माण करती हैं। शिक्षा के द्वारा छात्रों का सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विकास किया जाता हैं।

"शिक्षा मनुष्य की सभी क्षमताओं का विकास है जिनसे वह अपने पर्यावरण पर नियंत्रण रख सके और अपनी संभावनाएं पूरी कर सकें।"

मातृभाषा में शिक्षण की आवश्यकता :–

आज बच्चे अपनी मातृभाषा में गिनती करना भूल चुके हैं। मैं उन्हें प्रोत्साहित करता हूँ कि वे अपनी मातृभाषा सीखें, प्रयोग करें और इस धरोहर को संभाल कर रखें।

आप जितनी अधिक भाषाएँ जानेगें, सीखेंगे वह आपके लिए ही उत्तम होगा। आप जिस किसी भी प्रांत, राज्य से हैं कम से कम आपको वहां की बोली तो अवश्य आनी चाहिए। आपको वहां की बोली सीखने का कोई भी मौका नहीं गवाना चाहिएय कम से कम वहां की गिनती, बाल कविताएं और लोकगीत। पूरी दुनिया को ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार (Twinkle Twinkle Little Star) या बा – बा ब्लैक शीप (Ba-Ba Black Sheep) गुनगुनाने की कतई आवश्यकता नहीं है। अपनी लोकभाषा में कितने अच्छे और गूढ़ अर्थ के लोकगीत, बाल कविताएं, दोहे, छंद चौपाइयां हैं जिन्हें हम प्रायः भूलते जा रहे हैं।

बालकों के विकास में मातृभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का महत्व या भूमिका निम्नलिखित है –

1. **विचार –विनिमय का प्रमुख साधन –**

जिस स्वभाविकता एवं सहजता से हम मातृभाषा में विचारों का आदान –प्रदान करते हैं, उतना किसी अन्य भाषा का अटूट संबंध नहीं हो सकता है ! जितना अधिक हम विचारों को प्रकट करते हैं, उतने ही नवीन विचार हमारे मन में उठते रहते हैं ! हम मातृभाषा के माध्यम से ही इन विचारों को पूर्णता के साथ प्रकट करते हैं और दूसरे के विचारों के भाव के अर्थ को पूर्णता के साथ ग्रहण करते हैं !

2. **ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन –**

मानव श्रवण एवं पाठन क्रियाओं के माध्यम से देश–विदेश की सभी तरह की जानकारी प्राप्त करता है! शब्द –भंडार के माध्यम से उसकी शैशवावस्था में उसके पास धीरे–धीरे बढ़ता है ! शब्द –भंडार के माध्यम से वह किसी विचार को सुनता है या किसी रचना को पढ़ता है तो उस विचार को वह अनायास ही पूरी तरह ग्रहण कर लेता है और ये विचार उसके मस्तिष्क में एकत्रित होते हुए उसके ज्ञान में वृद्धि करते हैं ! वास्तव में, मातृभाषा ही बालक के ज्ञान वृद्धि का प्रमुख साधन है !

3. **विद्यालय जीवन की आधारशिला –**

बालक अपने परिवार में जिस भाषा को ग्रहण करता है ! यदि उसी भाषा में विद्यालय में भी शिक्षा दी जाती है तो वह उस शिक्षा को आसानी से ग्रहण कर लेता है ! वह जिस पूर्णता से सभी विषयों को मातृभाषा से आत्मसात कर लेता है, उसी पूर्णता से किसी अन्य भाषा में नहीं कर सकता ! अतः विद्यालय के सभी कार्यकलापों में भाग लेने के लिए मातृभाषा ही प्रमुख माध्यम है !

4. **मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायक –**

ज्ञान वृद्धि विकास होती है और बौद्धिक विकास प्रभावित होता है ! मानसिक विकास के लिए विचारशक्ति, तर्कशक्ति, विवेकशक्ति तथा अभिव्यक्ति कौशल का होना अत्यंत आवश्यक है ! जिस व्यक्ति की भाषा पर जितना अधिकार होगा, उसकी विचारशक्ति, तर्कशक्ति, एवं अभिब्यक्ति भी उतनी ही अधिक विकसित होगी ! सशक्त भाषा विचारशक्ति, तर्कशक्ति एवं अभिव्यक्ति कौशल को विकसित एवं व्यक्ति को मानसिक प्रबलता प्रदान करती है !

5. **भावात्मक विकास में सहायक**

– महात्मा गांधी ने कहा था – 'मनुष्य के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतना ही आवश्यक है जितना शिशु के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध' शैशवास्था में बालक माता के दूध के साथ –साथ उसकी वात्सल्य पूर्ण लोरीयो के माध्यम से मातृभाषा को ग्रहण करता है ! यह क्रिया बालक को सहज, सुरक्षा, खुशी एवं आत्मसंतुष्टि प्रदान करती हैं और आत्म –संतुष्टि तथा प्रसंता बालक के बिभिन्न भावात्मक गुणों जैसे –स्नेह, सहानुभूति, सहृदयता, सेवा, धैर्य एवं त्याग आदि को विकसित करने में सहायक होती है !

6. **शारीरिक विकास में सहायक –**

मातृभाषा में स्वाभाविक रूप से की गयी विचार भी व्यक्ति बालक के चित्त को प्रसन्नता एवं शरीर को स्वास्थ्य रखने में सहायक होती है! यह सत्य है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है और शारीरिक विकास स्वाभाविक रूप से होता है !

7. **सामाजिक विकास में सहायक –**

मातृभाषा में विचारों का आदान– प्रदान करके ही बालक, समाज में एक –दूसरे को सहयोग प्रदान करता है एवं आपसी संबंधों को विकसित करता है, जिससे वह समाज का सहयोगी सदस्य बनता है !

8. **सांस्कृतिक विकास में सहायक –**

अपनी मातृभाषा के साहित्य का अध्ययन कर हम अपने देश को परंपराओं, आदर्शों, मूल्यो एवं रहन–सहन आदि से आसानी से परिचित हो सकते हैं ! कहा भी गया है – 'मातृभाषा बच्चों को अपने पूर्वजों के विचारों, भावो,

रीति–रिवाजों, आदर्शों एवं महत्वाकांक्षाओं से परिचित कराने का सशक्त माध्यम है !'

9. **चारित्रिक एवं नैतिक विकास में सहायक –**

मातृभाषा के साहित्य का अध्ययन कर तथा मातृभाषा में व्यक्त किए गए विभिन्न रूपको एवं नाटकों आदि को देखकर बालक विभिन्न नैतिक गुणों से परिचित होता है और उसे ग्रहण करने का प्रयास करता है ! इस प्रकार, मातृभाषा वालक को नैतिक रूप से भी समृद्ध बनाती है !

10. **व्यवहारिक जीवन में सहायक –**

व्यवहारिक जीवन में सफल होने के लिए जरूरी है कि बालक को अपने बड़ों एवं छोटो एवं बराबर वालों के साथ बातचीत करनी आती हो ! यह कार्य मातृभाषा से जितनी कुशलता से हो सकता है उतनी कुशलता से किसी अन्य भाषा में नहीं ! मातृभाषा बालक को व्यवहारिक कुशलता प्रदान करती है !

11. **लोकतंत्रात्मक विकास में सहायक –**

बालक के लोकतंत्रात्मक विकास से अभिप्राय है कि बालक को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का पूर्ण ज्ञान हो, उसमें सामाजिक व राजनीतिक चेतना हो ! उसे देश की सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं का ज्ञान हो मातृभाषा के ज्ञान के बिना यह सब जानकारी असंभव है !

12. **व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास में सहायक –**

मातृभाषा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, संस्कृतिक, चारित्रिक एवं भावात्मक विकास में सहायक होकर व्यक्तित्व को संतुलित रूप में विकसित करती है ! एक तरफ साहित्य का अध्ययन बालक के ज्ञान में वृद्धि करता है, तो दूसरी तरफ मातृभाषा के माध्यमों से विचारों का आदान– प्रदान कर वह व्यावहारिक कुशलता प्राप्त करता है ! इससे बालक को आत्म–तुष्टि व प्रसन्नता का अनुभव होता है, उससे स्वस्थ भावनाओं का विकास होता है तथा उसका व्यक्तित्व संतुलित रूप से विकसित होता है !

अपनी संस्कृति, सभ्यता –

1970 में, कॉलेज के दौरान मैं केरल गया था। तब वहां पर सिर्फ केरल का ही भोजन 'लाल रंग के चावल' खाने को मिलते थे। उन्हें सफेद चावल, पुलाव इत्यादि के बारे में कुछ नहीं पता था। वे लोग वही परम्परागत उबले हुए लाल चावल ही खाते थे जो बहुत सेहतमंद होते हैं। लेकिन आज अगर आप वहाँ जाएंगे तो बर्गर, पिज्जा, सैंडविच इत्यादि सब कुछ पाएंगे और इसी प्रकार धीरे धीरे वहां का पंचकर्म और आयुर्वेद लुप्त होने लगा था। लेकिन कुछ प्रबुद्ध, विद्वान् लोगों ने उस प्रथा को जीवित रखा और उसे धीरे धीरे वापिस ले आये हैं। अतः हर प्रांत की कुछ न कुछ अपनी अनूठी विशेषता होती है – वहां का भोजन, संस्कृति, बोली, संगीत, नृत्य इत्यादि जिसका मान करना चाहिए और उस धरोहर को संभाल के रखना चाहिए। यही तो असली में विविधता है जिसका हमें आदर करना चाहिए और प्रोत्साहित करना चाहिए। तभी तो हम वास्तव में 'विविधता में एकता' की कसौटी पर खरे उतरेंगे जिसका सम्पूर्ण जगत में उदाहरण दिया जा सकेगा।यही बात मैं विश्व के आदिवासी संस्कृति के बारे में भी कहूंगा। कनाडा की अपनी एक विशिष्ट आदिवासी प्रजाति है। उनकी अपनी संस्कृति है और इस प्रजाति को वहां की सर्वप्रथम नागरिकता का सम्मान प्राप्त है। इसी प्रकार से अमरीका में भी, मूल

अमरीका के निवासी या अमेरिकन इन्डियन्स प्रजाति के लोग, जो अब अपनी भाषा तो भूल चुके हैं, किन्तु अब भी उन्होनें अपनी संस्कृति, सभ्यता को जीवित रखा है। इसी प्रकार से दक्षिण अमरीकी महाद्वीप में भी ऐसा ही है।

निष्कर्ष :-

शिक्षा मनुष्य को सभ्य बनाने का कार्य करती हैं, शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य समाज के साथ समायोजन कर अनुशासन के साथ जीवनयापन करता हैं। शिक्षा मनुष्य को आदर्शवादी बनाती हैं और उसमें नैतिक–मूल्यों का विकास करती हैं। शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति अपनी जन्मजात शक्तियों एवं योग्यताओं से परिचित होता हैं। शिक्षा के द्वारा ही एक समाज अपना विकास करता हैं और अपनी एक अलग पहचान बनाता हैं। दोस्तों शिक्षा का अर्थ, परिभाषा और प्रकार (Meaning and definition of education in hindi) के सम्बंध में ज्ञान प्राप्त कर आज अपने शिक्षा के महत्व को समझा। यह लेख आपके लिए फायदेमंद रहा हो तो इसे शेयर करना न भूलें !! भाषा संस्कृति और संस्कारों की संवाहिका होती है। भाषा के पतन से संस्कृति व संस्कारों का भी पतन हो रहा है । भाषा बदलने से मूल्य भी बदल जाते हैं। भाषा संस्कृति का अधिष्ठान है। वर्तमान में भारत में जिस प्रकार अंग्रेजी का स्थान है, उसी प्रकार सन् 1362 तक ब्रिटेन में फ्रांसीसी का स्थान था। फिनलेन्ड में 100 वर्ष पूर्व स्वीडिश भाषा चलती थी, रशिया में जार के जमाने में फ्रांसीसी भाषा का दबदबा था। इन सभी देशों में वहां की जनता एवं शासकों की इच्छा शक्ति के कारण, आज वहां अपनी भाषाओं में सारा कार्य हो रहा है, आवश्यकता है अपने देश की जनता में इस प्रकार की इच्छाशक्ति जागृत करने की। इसकी शुरूआत स्वयं से करनी पडेघ्गी। इस हेतु सभी स्थानों पर अपने हस्ताक्षर अपनी भाषा में करें। किसी भी भाषा में लिखें या बोलें तब 'भारत' – शब्द का प्रयोग करें, इन्डिया का नहीं। कार्य व व्यवहार में अपनी भाषा का ही उपयोग करें। अपने बालकों को मातृभाषा में ही पढ़ायें। अपने संगठन, संस्था के स्तर पर सारा कार्य व्यवहार अपनी ही भाषा में करें। अपने बालकों को मातृभाषा माध्यम के विद्यालय में ही पढाएं। घर, कार्यालय, दुकान में नाम पट्ट एवं पट्टिकाएं अपनी भाषा में ही लिखे। अपने व्यक्तिगत पत्र, आवेदन पत्र, निमंत्रण–पत्र आदि भी मातृभाषा या भारतीय भाषा में लिखें या छपायें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भटनागर, सुरेश, 'आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं', लाल बुक डिपो (2014)।
2. भटनागर, ए.पी. 'भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास', लाल बुक डिपो (2017)।
3. डॉ. शर्मा, आर. ए. 'मानव मूल्य एवं शिक्षा', आर लाल बुक डिपो मेरठ।
4. पांडे राम शकल, 'शिक्षा की समसामयिक चुनौतिया', श्री विनोद पुस्तक मंदिर प्रकाशन। (2020)

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 178-183

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

डॉ. पीयूष किरण माथुर, असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षा विभाग)
हितकारी सहकारी महिला शिक्षा महाविद्यालय, आरामपुरा कैथून रोड़, कोटा राजस्थान (325001)

शिक्षा समाज के सभी क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समाज और सभ्यता के विकास के लिए शिक्षा सबसे अधिक जिम्मेदार है। मानव जाति के विकास और प्रगति का श्रेय सीधे शिक्षित लोगों को दिया जा सकता है। जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने से लेकर समाज को बदलने में सक्षम प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण तक शिक्षा का समाज पर कई गुना प्रभाव पड़ता है। किसी व्यक्ति की सफलता बहुत हद तक उसकी शिक्षा के स्तर और विद्यालय में सीखी गई बातों को व्यावहारिक रूप से लागू करने की क्षमता पर निर्भर करती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए बल्कि समग्र रूप से समाज के विकास व उत्थान के लिए भी महत्वपूर्ण है।

शिक्षा असहिष्णुता को रोकने का प्रभावी साधन है। शिक्षित व्यक्ति अपने पर्यावरण की बेहत्तर व्याख्या करने में सक्षम होता है, अपने अधिकारों व कर्तव्यों को पहचानने में सक्षम होता है। बेहत्तर शिक्षा लोगों को सामाजिक संघर्षों और दूसरों की जरूरतों को बेहत्तर ढंग से समझने में मदद करती है। शिक्षा युवाओं को उनकी स्थिति समझने और उनके लिए उपलब्ध अवसरों को पहचानने में मदद करती है। नया ज्ञान और कौशल प्राप्त करने से बेहत्तर वेतन वाली नौकरियों के द्वार खुलते हैं, जो बदले में पूरे समुदाय की प्रगति को सीधे प्रभावित करता है। शिक्षा प्राप्त करने से बड़ी संख्या में लोगों की सामाजिक स्थिति में सुधार होता है।

शिक्षा एक स्वस्थ जीवनशैली को प्रोत्साहित करती है, जिससे व्यक्तियों और पूरे समुदायों से खराब स्वास्थ्य जैसी चुनौतियों से निपटना आसान हो जाता है। शिक्षा सभी को नया ज्ञान प्रदान कर जीवन को बेहत्तर बनाती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा करियर की सफलता का पर्याय है। व्यक्ति के विकास के सभी चरणों में शिक्षा समान रूप से महत्वपूर्ण है।

शिक्षा का अर्थ है समाज के सभी सदस्यों के बेहत्तर जीवन में दीर्घकालिक निवेश। यह संभावनाओं की एक पूरी श्रृंखला को खोलता है जैसे कि घर खरीदना, वित्तीय सुरक्षा, एक स्थिर पारिवारिक जीवन आदि। एक अच्छे दृष्टिकोण, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कड़ी, मेहनत, नवाचार और रचनात्मकता के साथ यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि समाज अच्छे हाथों में रहेगा।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कहा था, ''अगर आप मुझसे जानना चाहते हैं कि आदर्श समाज कैसा होगा, तो मेरा आदर्श समाज ऐसा होगा जो स्वतंत्रता समानता और भाईचारे पर आधारित होगा।''

शिक्षा एक ऐसा गुण है, जो किसी व्यक्ति के साथ पूरी जिदंगी रहता है। सुशिक्षित जन किसी समाज की बुद्धिजीवी पूंजी, विकास को बढ़ावा देने वाले और नैतिकता की बुनियाद तय करने वाले होते है। अलग–अलग क्षेत्रों और विषयों की पढ़ाई इस विभिन्नता वाले समाज को एकजुट करती है और इसी से लोगों में तरह–तरह की व्यापक विशेषज्ञता आती है। आधुनिक युग में शिक्षा को अधिक प्रभावोत्पादक एवं गुणवत्तापूर्ण स्वरूप प्रदान करने हेतु नित नए अभिनव प्रयोग हो रहे है। नेल्सन मंडेला ने कहा था, ''शिक्षा सबसे बड़ा हथियार है, जिससे आप दुनिया को बदल सकते है।'' लैंगिक, असमानता खत्म करने, गरीबी कम करने, दुनिया में शांति कायम करने और बीमारियों तथा इससे होने वाली मौतों को रोकने में शिक्षा की अहम भूमिका है।

सूर्य का प्रकाश धरा के समस्त अंधकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार शिक्षा मानव के जीवन से अज्ञानता के अंधकार को नष्ट कर देती है। शिक्षा के अभाव में जीवन का उचित मार्गदर्शन असम्भव है। मात्र जन्म लेने से ही मनुष्यता को प्राप्त नहीं किया जा सकता, सच्ची और उत्तम शिक्षा ही मानव जीवन को सही दिशा प्रदान करती है। शिक्षा की समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा के अभाव में उत्तम चरित्र का निर्माण असम्भव है तथा व्यक्तित्व के विकास की परिकल्पना करना भी व्यर्थ है। शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। शिक्षा के इतिहास में, अतीत की जिस सीमा तक हम जा सकते है, हम पाते है कि शिक्षा मानव समुदाय की स्वाभाविक विशेषता रही है। उसमें सामाजिक उत्थान के हर युग में समाज को दिशा और स्वरूप देने में सहायता दी है। शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है। यह मानव की एक विशेष उपलब्धि है। अतीत काल से मनुष्य ने जाकरूक रहकर अपनी वाकशक्ति का व्यक्ति और व्यक्ति के बीच समुदाय तथा समुदाय के बीच तथा सन्तति और सन्तति के बीच अपने व्यावहारिक अनुभव भण्डार का संचार करने के लिए उपयोग किया है। शिक्षा मानव जीवन को सार्थक करने के लिए अति आवश्यक है। मानव कुछ पाश्विक प्रवृत्तियाँ लेकर बहुत ही असहाय अवस्था में इस विश्व में प्रवेश करता है। जन्म के समय वह एक कच्ची मिट्टी के ढेर के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। शिक्षा की इस असहाय और पाश्विक प्रवृत्तियों वाले मानव का शोधन एवं मार्गदर्शन कर सही अर्थों में उसे मानव बनाती है। शिक्षा के माध्यम से उसमें इतने परिवर्तन आ जाते है कि वह अन्य प्राणियों से भिन्न हो जाता है। वास्तव में शिक्षा के अभाव में मानव की प्रगति कठिन ही नहीं, असम्भव है। शिक्षा मानव के लिए वह आधारशिला है जो उसे अन्य प्राणियों से पृथक करती है। प्रत्येक परिस्थिति से सामंजस्य करने योग्य बनाती है। शिक्षा समाज मे सदैव चलने वाली सौद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते है।

मानव समाज अपने आदर्शो, भावों, मान्यताओं तथा क्रियाओं को भावी सन्तति को प्रदान करता हुआ स्वयं को जीवित रखता है। जैसे–जैसे वह अनुभव करता है कि उसकी कुछ परम्पराएँ, विचारधाराएँ, मूल्य आदि पुरातन होते जा रहे है, और वे उसे लाभप्रद सिद्ध नहीं हो रहे है, वैसे–वैसे वह उनको त्यागता चलता है और नवीन मान्यताओं, परम्पराओं, विचारधारों आदि को अपनाता जाता है। समाज इस कार्य को शिक्षा के माध्यम से करता है। समाज शिक्षा को प्रदान करने के लिए विभिन्न शैक्षिक साधनों–औपचारिक, अनौपचारिक को प्रयोग में लाता है। औपचारिक साधनों के रूप में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जाती है जिसके द्वारा समाज के विचारों, भावों, आदर्शों, मूल्यों, क्रियाओं, मानदण्डों, परम्पराओं आदि को आने वाले सन्तति को हस्तान्तरित एवं संरक्षित किया जाता है।

सामान्यतः मनुष्य के समूह को समाज कहते है। यह रीतियों, तथा कार्य प्रणालियों की अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और विभागों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है। सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है, जो सदैव बदलता रहता है।

शिक्षा का उद्देश्य बालक का इस प्रकार से विकास करना है कि वह आगे चलकर समाज का उत्तरदायी सदस्य बन सकें। प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपनी–अपनी भूमिका के अनुरूप कार्य करता है। ऐसा करने से जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वहाँ समाज की भी प्रगति होती है। इसी सामाजिक उद्देश्य से ही प्रत्येक देश में शिक्षा व्यवस्था की जाती है। समाज शिक्षा की समुचित व्यवस्था किये बिना जीवित नहीं रह सकता और न ही शैक्षिक संस्थाएँ समाज की मांगों को पूर्ण किये बिना स्थिर रह सकती है। शिक्षा और समाज परस्पर एक दूसरे के पूरक है।

यदि समाज में बालकों को उचित और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाती है तो वे बड़े होकर उपयोगी नागरिक सिद्ध होते है। शिक्षा और समाज का गहरा संबंध है। इसलिए प्रत्येक समाज अपनी आकांक्षाओं, आवश्यकताओं तथा आदर्शों को सामने रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया को इस प्रकार से नियोजित करता है कि वह अपने आदर्शों को प्राप्त कर ले तथा उसके सभी व्यक्ति उपयोगी सदस्य बन सके। यह महान कार्य तभी पूरा हो सकता है जब समाज के सभी व्यक्ति उसके आदर्शों के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हुए उसके साथ अनुकूलन कर सके। शिक्षा इस संबंध में सहायता करती है। शिक्षा से समाज में जागरूकता आती है, जागरूकता से क्रांति आती है और क्रांति से परिवर्तन आता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि शिक्षा समाज में बदलाव लाने का सबसे अच्छा माध्यम है।

मैकाइवर तथा पैज के अनुसार समाज संबंधों का जाल है। इन सामाजिक सम्बन्धों का आधार समाज है। इन सामाजिक मूल्यों के निर्देश में ही सामाजिक नियम बनते हैं जो कि हमारे सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करते है। मानव त्याग, सेवा, आत्म नियंत्रण, सहनशीलता के आधार पर ही समाज बना रह सकता है। बड़ों का आदर, आज्ञापालन, निष्ठा, आस्था तथा ईमानदारी के बिना आगे नहीं बढ़ सकता है।

शिक्षा द्वारा मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि होती है, उसमें विचार करने एवं सत्य–असत्य के भेद करने की शक्ति का विकास होता है। समाज में राजनीति एवं सामाजिक जागरूकता आती है। शिक्षा के बिना समाज अधूरा है, और समाज के बिना शिक्षा। मानव सामाजिक प्राणी है, वह समाज में रहकर अपने क्रिया सांस्कृतिक, राजनैतिक रूप से मानव का सम्बन्ध शिक्षा द्वारा ही स्थापित होता है। सामाजिक और आर्थिक विकास में शिक्षा एक पड़ाव नहीं है, बल्कि पोषित होने की यात्रा है। यह न केवल व्यक्तियों के जीवन में बल्कि राष्ट्रों के इतिहास को भी शिक्षित करता है और विकास की मजबूत नींव का निर्माण करता है। शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है। एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।

बेहत्तर शिक्षा सभी के लिए जीवन में आगे बढ़ने और सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक है। यह हमें आत्मविश्वास विकसित करने के साथ ही हमारे व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायता करती है। जीवन में सफलता प्राप्त करने और कुछ अलग करने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। यह हमें जीवन के कठिन समय में चुनौतियों से सामना करने में सहायता करती है। शिक्षण प्रक्रिया के दौरान प्राप्त किया गया ज्ञान हम सभी को अपने जीवन के प्रति आत्मनिर्भर बनाता है। यह जीवन में बेहत्तर संभावनाओं को प्राप्त करने के अवसरों के लिए विभिन्न दरवाजे खोलती है। सभी व्यक्तियों में समानता की भावना लाती है और देश के विकास और वृद्धि को बढ़ावा देती है।

आज समाज में शिक्षा का महत्व काफी बढ़ चुका है। शिक्षा के उपयोग तो अनेक हैं परन्तु उसे नई दिशा देने की आवश्यकता है। शिक्षा प्राप्ति से व्यक्ति अपने परिवेश से परिचित होता है। शिक्षा का उच्च स्तर लोगों की सामाजिक और पारिवारिक सम्मान तथा पहचान बनाने में मदद करता हैं शिक्षा स्त्री और पुरुषों दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक है क्योंकि स्वस्थ और शिक्षित समाज का निर्माण दोनों द्वारा मिलकर ही किया जाता है। शिक्षा उज्जवल भविष्य के लिए आवश्यक यंत्र होने के साथ ही समाज व देश के विकास और प्रगति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। वो केवल शिक्षित नेता ही होते हैं जो एक राष्ट्र का निर्माण करके, इसे सफलता और प्रगति के रास्ते की ओर ले जाते हैं। अच्छी शिक्षा जीवन में बहुत से उद्देश्यों को प्रदान करती है जैसे व्यक्तिगत उन्नति को बढ़ावा, सामाजिक स्तर में बढ़ावा, सामाजिक स्वास्थ्य में सुधार, आर्थिक प्रगति राष्ट्र की सफलता, जीवन में लक्ष्यों को निर्धारित करना, हमें सामाजिक मुद्दों के बारे में जागरूक करना, पर्यावरण समस्याओं को सुलझाने के लिए हल प्रदान करना आदि। आधुनिक शिक्षा, अशिक्षा और असमानता के मुद्दे को विभिन्न जाति, धर्म व जनजाति के बीच से पूरी तरह से हटाने में सक्षम है।

शिक्षा लोगों के मस्तिष्क को उच्च स्तर पर विकसित करने का कार्य करती है और समाज में लोगों के बीच भेदभावों को मिटाकर सामाजिक उत्थान करने में मदद करती है। मानव अधिकारों, सामाजिक अधिकारों, देश

के प्रति कर्तव्यों और दायित्वों को समझने में हमारी सहायता करती है। पारिवारिक सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की क्षमता प्रदान करती है। मस्तिष्क को सकारात्मकता की ओर मोड़कर नकारात्मक विचारधाराओं को हटाती है। हम शिक्षा के महत्व को अनदेखा नहीं कर सकते, जीवन के हर पहलू में शिक्षा का महत्व है।

शिक्षा मनुष्य के अंदर अच्छे विचारों को भरती है और बुरे विचारों को बाहर निकालती है। मनुष्य को समाज में प्रतिष्ठित करने का कार्य करती है। शिक्षा के उद्देश्य समाज की संस्कृति से प्रभावित होते है। शिक्षा का उद्देश्य विश्व बन्धुत्व की भावना तथा सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना है। समाज और शिक्षा में अटूट संबंध हैं। जब हम किसी समाज का अध्ययन करते है तो उसके अन्तर्गत उसके घटक व्यक्ति, समूह और उनके सामाजिक सम्बन्धों अथवा सामाजिक अंतर क्रियाओं का अध्ययन करते है। तथ्य यह है कि जैसा समाज होता है वैसी ही उसकी शिक्षा होती है। व्यक्ति का जनम समाज में होता है तथा समाज में रखते हूए ही उसका सम्पूर्ण विकास होता है।

समाज के अन्दर संस्कृति तथा सभ्यता का जन्म एवं पोषण होता है। शिक्षा के बिना किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता । शिक्षा समाज की प्रगति का
आधार है, यह वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्यों के विचारों, आदर्शों, आदतों और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर समाज का उत्थान किया जा सकता है। शिक्षा समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है चाहे वह आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्वरूप हो चाहे आर्थिक। शिक्षा का प्रारूप समाज के स्वरूप को बदल देता है। जैसे–जैसे समाज में व्यक्तियों के दृष्टिकोण, रहन–सहन, खान–पान और रीति रिवाजों पर असर हुआ और इससे सम्पूर्ण समाज का स्वरूप बदला। शिक्षा समाज में व्याप्त, समस्याओं, कुरीतियों के प्रति लोगों को जागरूक बनाती है। समाज का स्वरूप बदलकर उस पर नियंत्रण भी रखती है। चारित्रिक, नैतिक, बौद्धिक गुणों के साथ सामाजिक गुणों का विकास करती है। समाज की संस्कृति एवं सभ्यता के हस्तान्तरण का आधार बनती है। मानव को सुसंस्कृत बनाकर समाजोपयोगी बनाती है। मानसिक, व्यावसायिक, राजनीतिक और कलात्मक विकास करके उसको स्थिरता प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. रीता बिष्ट, शिक्षा मे जेण्डर समस्याएँ, अरिहन्त शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
2. रत्ना गुप्ता, समकालीन भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
3. डॉ. रीटा शर्मा, समसामयिक भारत और शिक्षा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस आगरा।
4. Ram Shakal Pandey, Teacher in Developing Indian Society, Agrawal Publications, Agra.
5. डॉ. गोपी रमण प्रसाद सिंह, भारत में समान : संरचना संगठन और परिवर्तन। अग्रवाल ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स, आगरा।

6. डॉ. अजीत कुमार पाण्डेय, समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
7. डॉ. समर बहादुर सिंह, समसामयिक भारत एवं शिक्षा, राखी प्रकाशन, प्रा.लि. आगरा।
8. पी.डी. पाठक, समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
9. प्रो. अम्बिका प्रसाद शर्मा, Contemporary India and Education, राखी प्रकाशन प्रा.लि., आगरा
10. रितु शर्मा, किरन तिवारी, समकालीन भारत एवं शिक्षा, राखी प्रकाशन प्रा.लि., आगरा।
11. दीपक उदय, आशा उदय, शिक्षा, समाजीकरण एवं वैयक्तिकरण, अल्का पब्लिकेशनस, अजमेर।
12. डॉ. अशोक सेनानी, समकालीन भारत में शिक्षा, अल्का पब्लिकेशनस, अजमेर।
13. मित्तल एम.एल. (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ।
14. सक्सेना (डॉ.) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
15. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलॉटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
16. एलैक्स (डॉ.) शीलू मैरी (2008), शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाश : नई दिल्ली।
17. कुमार आनन्द, सामाजिक विचारों का अध्ययन, विमल प्रकाशन मंदिर, आगरा।
18. पाठक एवं त्यागी, शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
19. पचौरी (डॉ.) गिरीश (2007), शिक्षा और समाज इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 184-190

राजेश जोशी की कविताओं की भाषिक संरचना

पीयूष कुमार, शोधार्थी,
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू–कश्मीर

भाषा वस्तुतः साहित्य का आधार होती है। साहित्य का प्रासाद भाषिक संरचनाओं के आधार स्तम्भों से ही आसन्न होता है। भाषा और शब्दों के मामले में वर्तमान दौर एक प्रकार से अर्थस्फीति का है। आज जिस प्रकार शब्द अपनी अर्थवत्ता खोते जा रहे हैं, भाषा अशुद्ध और विकृत होती जा रही है, ऐसे समय में कविता के हवाले से भाषा पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। न केवल मीडिया और सत्ता अपितु साहित्य की भाषा भी अपेक्षा कृत हल्की हुई है। हिन्दी कविता को मद्देनजर रखते हुए यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि पिछले कुछ दशकों से हिन्दी कविता की भाषा अधिकांशतः बोझिल और असम्प्रेषणीय हुई है। कविता में वर्णित भाषा, प्रतीक एवं बिम्ब कभी–कभी तो रचनाकार के मानसिक धरातल के अधिक और लोकजीवन के कम होते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि कविता अपना अर्थ स्पष्ट कर पाने में अक्षम हो जाती है और प्रायः वह जनजीवन से दूर हो जाती है। इस प्रवृत्ति को देखते हुए कहा जा सकता है कि राजेश जोशी की काव्य भाषा इस मायने में अलहदा है। समकालीन हिन्दी कविता के क्षेत्र में कवि राजेश जोशी ने अपनी कविताओं के लिए एक नई प्रकार की भाषा ईजाद की है। बकौल डॉ. छबिल कुमार मेहेर 'राजेश जोशी पिछले चार दशकों से निरन्तर सृजनशील हैं और अपनी विशिष्ट भाषा, किस्सागोई शैली और सपाटबयानी के कारण अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं।'

(1) भाषा वस्तुतः अभिव्यक्ति का माध्यम है। दूसरे शब्दों में, अपने भावों एवं विचारों को प्रकट करने तथा दूसरे के भावों एवं विचारों को समझने के लिए जिस लिखित या मौखिक माध्यम का प्रयोग किया जाता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध भाषाविद डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं कि – 'भाषा उच्चारण–अवयवों से उच्चरित मूलतः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी समाज के लोग आपस में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।'

(2) अब जहाँ तक बात राजेश जोशी की काव्य भाषा की है तो कहा जा सकता है कि उनकी कविताओं की भाषा भावानुकूल और प्रसंगानुसार है। भाषा उनके यहाँ भावों एवं विचारों की सफल वाहिका के रूप में प्रयुक्त हुई है। अपनी कविताओं वे जब गम्भीर, वैचारिक बात करते हैं तो उनकी भाषा विदेशज शब्द प्रधान हो जाती है। जब वे लोकजीवन का उल्लेख करने लगते हैं तो उनकी भाषा तद्भव व देशज शब्द प्रधान और जब मिथकों या

पौराणिक आख्यानों की चर्चा करते हैं तो उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली युक्त हो जाती है। इसके अलावा उनकी कविताओं में ब्रज, अवधी और मालवी के शब्द भी भरपूर मात्रा में आए हैं। चूँकि राजेश जोशी का सम्बन्ध भोपाल शहर से रहा है। वे लम्बे अर्से से इस शहर में रह रहे हैं और भोपाल तो हिन्दी–उर्दू की साझी विरासत का शहर रहा है इसलिए न केवल उनकी कविताओं में अपितु उनके समूचे लेखन में उर्दू के शब्दों की भरमार है। साहित्यसृजन के लिए भाषा को वे साधन के रूप में ही मान्यता देते हैं। कलावादियों की तरह भाषा उनके लिए साध्य कभी नहीं रही। उनके व्यक्तित्व की तरह ही उनकी काव्यभाषा सहज और सरल है। बिलावजह का शब्दाडम्बर उनकी कविताओं में नहीं है। अप्रचलित और क्लिष्ट शब्दों का घटाटोप पैदा कर अपनी विद्वता की धाक जमाना भी उनके कविकर्म का उद्देश्य नहीं रहा है। राजेश जोशी की भाषा की इसी बहुआयामिता को लेकर चर्चित कवि और समीक्षक अरुण कमल की उक्ति ठीक ही प्रतीत होती है। वे कहते हैं कि – 'राजेश जोशी की भाषा समयानुसार कभी लोकगीतों की तरह मुलायम और आर्द्र हो जाती है तो कभी रमजान मियाँ की बोली बोलने लगती है तो कभी श्सरकार के पक्ष मेंश लिखते हुए बहुत शुष्क और तीखी हो जाती है। भाषा की यह नमनीयता ठीक पिछले दौर के कवियों में कम मिलती है।'

(3) राजेश जोशी की की कविताओं में प्रायः सभी प्रकार के शब्द–भंडारों का स्थल–स्थल पर सुन्दर प्रयोग हुआ है। राजेश जोशी के पूर्वज ज्योतिष विद्या में पारंगत थे। उनके पिता भी संस्कृत के ज्ञाता थे। अतएव राजेश जोशी को संस्कृत का ज्ञान पारिवारिक माहौल में ही प्राप्त हो गया था। इस दृष्टि से देखा जाए तो उनकी कविताओं में प्रचुर मात्रा में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक ही जान पड़ता है। उनकी कविताओं में मुद्रा, वाक्य, जीवन, समुद्र, राहु, रोहिणी, आकाश, प्रश्नवाचक, कमल, दिन, अज्ञान, आक्रमण, आश्रम, भक्ति, मस्तक, विष, संध्या, अनभिज्ञ, बुद्धि, जल, दृश्य, औषधि, नीति, मुहूर्त और भविष्य आदि सदृश अनगिनत तत्सम शब्दों की अधिकता है। तत्सम शब्दों के अलावा उनकी कविताएँ तद्भव शब्दों से भी महरूम नहीं हैं। तद्भव अर्थात उससे (संस्कृत से) से उत्पन्न। वस्तुतः तद्भव ऐसे शब्द हैं जो संस्कृत से उत्पन्न हुए और लम्बी यात्रा करते हुए उससे किञ्चित भिन्न हो गए। जैसे अग्नि से आग, अश्रु से आँसू, सर्प से साँप, अष्ट से आठ, पुत्र से पूत और दुग्ध से दूध आदि। राजेश जोशी की कविता में भी इस प्रकार के तद्भव शब्दों की भरमार है। इनमें दीठ, मुट्ठियाँ, मिट्टी, हाथ, सावन, धीरज, आधा, भीख, साँप, मछली, बूढ़ा, दाँत, घर, सपना, बरस, भादों, पीठ, हथेली, रस्सी और ऊँट आदि प्रमुख हैं।

राजेश जोशी लोकजीवन के भी कवि हैं। लोक में प्रचलित तीज–त्यौहार, मान्यताएँ, खानपान, किंवदन्तियाँ और बोलियाँ आदि उनकी कविताओं में प्रसंगवश स्थान पाते रहे हैं। उनके काव्यलोक में देशज शब्दों की भी एक अलग ही ठसक है। वे पूरी जीवन्तता के साथ कविताओं में आये हैं। दरअस्ल देशी शब्दों का प्रादुर्भाव यहाँ मूल निवासियों की भाषा से हुआ है। इन्हीं के द्वारा प्रयुक्त शब्द ही देशज शब्दों के अंतर्गत परिगणित किये जाते हैं। एक लोकधर्मी कवि होने के नाते राजेश जोशी की कविताएँ देशक शब्दों से भी लैस हैं। इनमें दोगला, नसेनी, फफूँद, खखार, तोंद, पटिया, बतंगड़, गपोड़, हथियाना, डेरा, ढाबा, खोपड़ी, दिखनौटा, हंडा, हिलगा, कुप्पी, धर दबोचना, करछुल, ओसरा और हुल्लड़ आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा उनकी कविताओं में कई अनुकरणात्मक

और ध्वन्यात्मक शब्द भी आये हैं जिनमें चिल्लाना, खनखनाना, चिड़चिड़ाना, घनघनाता, खिलखिलाहट, रतजगा, करमकल्ले, सरसराती, भुलक्कड़, घिघियाना, खिसियाना और बुदबुदाना आदि हैं।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के अतिरिक्त राजेश जोशी की कविताओं में विदेज शब्दों का भी जगह–जगह पर वाजिब प्रयोग हुआ है। विदेशज शब्दों से तात्पर्य ऐसे शब्दों से है जो दूसरे देशों से आकर भारतीय भाषाओं में शामिल हो गए। देखा जाए तो प्रारम्भ से ही भारत में विदेशियों का आगमन होता रहा है। फलस्वरूप समय–समय पर उनकी भाषा के बहुत से शब्द भारतीय भाषाओं में घुलते–मिलते भी रहे हैं। इनमें अंग्रेजी, पुर्तगाली, जापानी, चीनी, डच, फांसीसी और अरबी–फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों की बहुलता है। चूँकि राजेश जोशी विज्ञान पृष्ठभूमि के छात्र रहे हैं इसलिए उनकी कविताओं में कई अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। अंग्रेजी शब्दों में पॉलीथिन, पिस्तौल, कम्युनिस्ट, इंजीनियर, टेलीफोन, डॉलर, मिनरल वाटर, स्टेशन, टॉमस मोर, गार्ड, रजिस्टर, टिफिन, मिडिल स्कूल, शेयर, डॉक्टर, बैक्टीरिया, टाइपराइटर, फाइल, बैंक, टेबिल, प्लास्टिक और टेक्नोलॉजी आदि हैं। इसके अलावा उनकी कविताओं में तिलिस्म, शिफा, उकाब, लिफाफा, हस्बेमामूल, रूमाल, मुफीद, फिक्र, शहंशाह, तंगहाली, ख्वाबगाह, हिज्जे, तस्मे, अदब, नकाबपोश, तकलीफदेह, ताल्लुक, अचकन, किस्सा, फाहा और हिफाजत जैसे तमाम अरबी–फारसी के अल्फाजों की भी लम्बी फेहरिस्त है।

भाषा से सम्बन्धित एक उपांग मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी है। मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है – बातचीत करना या किसी सवाल का जवाब देना। अंग्रेजी में इसी 'इडियम' कहते हैं और हिन्दी में 'वाग्धारा'। हालाँकि हिन्दी वाला यह शब्द बहुत प्रचलित नहीं है। मुहावरों के विषय में कहा जा सकता है कि ये ऐसी वाक्यांश होते हैं जो अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर विशेष अर्थ व्यंजित करने लगते हैं। और लोकोक्ति का सामान्य अर्थ है – लोक में प्रचलित उक्ति या कथन। अंग्रेजी में इसे 'प्रोवर्ब' के नाम से जाना जाता है। मुहावरे और लोकोक्ति में अंतर यह होता है कि मुहावरा वाक्यांश बार होता है, जबकि लोकोक्ति एक सम्पूर्ण वाक्य। इसलिए मुहावरों का स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता, जबकि लोकोक्तियों का स्वतंत्र प्रयोग होता है। इसके अलावा मुहावरे 'रेडीमेड' होते हैं अर्थात इनमें परिवर्तन न के बराबर होता है, जबकि लोकोक्तियों में काल, स्थान और वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर परिवर्तन भी हो सकता है। राजेश जोशी की कविताई में मुहावरों और लोकोक्तियों के भी अनूठे प्रयोग मिलते हैं। इससे उनकी कविताओं की सम्प्रेषणीयता बढ़ जाती है और वे अधिक ग्राह्य हो जाती हैं। उनकी कविताओं में 'एक अनार सौ बीमार', 'आँख में सुअर का बाल' और 'इसकी टोपी उसके सिर' जैसी लोकोक्तियाँ हैं तो 'कन्नी काटना', 'चकमा देना', 'कुलाचे भरना', 'तबियत हिरन हो जाना', 'धर दबोचना', 'चौकड़ी भरना' और 'घोड़े बेंचकर सोना' आदि मुहावरे भी प्रसंगानुसार आये हैं। उनकी इस भाषा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध आलोचक सुधीर रंजन सिंह का कहना है कि – 'हिन्दी की रूढ़ियों को तोड़ने में कवि निराला हैं, रघुवीर सहाय हैं। समकालीनों में राजेश जोशी हैं, जो रूढ़ियों को भले न तोड़ें, भाषा की पहेलियों से सफल मुठभेड़ अवश्य करते हैं।'

(4) राजेश जोशी ने अपनी कविता ई के लिए नए–नए मुहावरों की भी तलाश की है। नयी कविता के दौर

में एक समय जैसे धूमिल ने अपनी कविता के लिए नए–नए मुहावरे गढ़े थे और एक अलग अंदाज में विकसित किया था। वैसे ही उदारीकृत हिन्दी कविता के समय में कवि राजेश जोशी ने भी नए मुहावरे गढ़कर उन्हें नए ढंग से अभिव्यक्ति किया है। उनकी इस शिल्पगत विशेषता के चलते उनकी काव्यभाषा कहीं–कहीं सूक्तिपरक और मुहावरेदार हो गयी है। उनकी कविताओं में बीच–बीच आए ऐसे वाक्य आप्तवचन–से लगते हैं, जो उनकी पूर्वनियोजित और सुचिन्तित काव्यकल्पना का ही प्रतिफलन मालूम पड़ते हैं। कभी–कभी तो कतिपय उक्तियाँ दार्शनिकता के धरातल को स्पर्श करने लगती हैं। 'मैं झुकता हूँ' कविता में वे खुद कहते हैं कि – 'कहावतें अर्थ से ज्यादा अभिप्राय में निवास करती हैं।' (5) उनकी कविताओं में उनके द्वारा नवगढ़ित मुहावरों की कतिपय बानगी इस प्रकार है –

'दुर्बल झुक कर स्वीकार कर लेते हैं अपनी पराजय' ('खिसियानी हँसी')

'पहाड़ अपनी ऊँचाई में डूबे हुए' ('पहाड़')

'स्याही की चिड़ियों की बीट और कागजी घोड़ो की लीद'('असली किस्सा तबीयत के हिरन हो जाने का')

'सबसे बड़ा अपराध है इस समय निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे, मारे जायेंगे' ('मारे जायेंगे')

'निराशा एक बेलगाम घोड़ी है' ('निराशा')

'तुम वो ही शब्द बोलते हो अक्सर जो तुम सुनना चाहते हो बार–बार' ('प्रतिध्वनि')

राजेश जोशी की कविताओं में उक्ति–वैचित्र्य के भी भी अनूठे प्रयोग मिलते हैं। वस्तुतः उक्ति–वैचित्र्य का आशय है – वचन का बाँकपन या कहने के ढंग की विचित्रता। अर्थात अपनी बात को विचित्र और कलात्मक ढंग से कह देने की शिल्पगत विशेषता ही उक्ति–वैचित्र्य कहलाती है। अपनी बात को अधिक आकर्षक और प्रभावी बनाने के लिए रचनाकार इस प्रवृत्ति का अवलम्ब ग्रहण करता है। कभी–कभी मनोविज्ञान या 'श्रम–परिहार' के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह राजेश जोशी की प्रौढ़ काव्यभाषा का ही प्रभाव है कि उनकी कविताओं में आया शब्द–चातुर्य स्वाभाविक और सहज लगता है। वह कहीं से भी थोपा हुआ तो बिल्कुल नहीं लगता। ध्यातव्य है कि उनकी कविताओं में आयी वक्रोक्ति कथ्य की स्वभावोक्ति को हो ध्वनित करती है। रीतिकालीन कवियों (बिहारी आदि) की तरह वे इसका प्रयोग महज शब्द–क्रीड़ा या पाण्डित्य–प्रदर्शन मात्र के लिए नहीं करते। यह उक्ति–वैचित्र्य अपने समय की विसंगतियों का द्योतक हैं। वे यथार्थ से हमारा साक्षात्कार करवाती हैं। अपने समय–समाज तमाम विसंगतियों और विडम्बनाओं ने उनकी काव्यभाषा का तेवर बदल दिया है। फलतः उसमें कतिपय व्यंग्यात्मकता का पुट भी आ गया है। साथ ही, उनकी काव्यभाषा मुहावरेदार और सूक्तिपरक भी हो गयी है। यह उक्ति–वैचित्र्य उनकी कई कविताओं में परिलक्षित होती है जिनमें 'पहाड़', 'हरी रोशनाई', 'नीली बाल्टी', 'चप्पलें', 'एक शैतान से मुलाकात', 'हाथ', 'जिद', 'अनुपात का खेल', 'रेल लाइन का भूत', 'चाँद की वर्तनी', 'विडम्बना', 'जादूगरनी' और 'व्याकरण–समय' आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजेश जोशी की एक कविता है – 'व्याकरण–समय'। इस कविता में उनकी वचनवक्रता या शब्दक्रीड़ा देखने लायक है। इसमें संचारी भाव की तर्ज पर कर्मचारी भाव, लाचारी भाव और लुच्चारी भाव जैसे शब्दों को

भी गढ़ लिया गया है। ध्यान रखना आवश्यक है कि यहाँ 'कर्मचारी' या 'लाचारी' शब्द केवल शब्दों की खानापूर्ति भर के लिए नहीं आये हैं बल्कि अपनी पूरी अर्थवत्ता और वजूद के साथ प्रायोजित ढंग से आये हैं। दरअस्ल राजेश जोशी कविता को केवल कला या मनोरंजन मानने के बजाय जनजीवन की समस्याओं से जुड़ने वाली विधा के रूप में भी देखने के हिमायती हैं। हास्य–व्यंग्य के आधार पर वे साहित्य–जगत की तमाम सच्चाइयों को भी उद्घाटित करते हैं। वे कविता में 'फॉर्म' (रूप) से ज्यादा 'टेक्स्ट' (वस्तु) को महत्त्व देते हैं। साथ–ही–साथ उन वैयाकरणों, आलोचकों और साहित्यकारों पर कटाक्ष भी करते हैं जो 'लकीर से फकीर' बने हुए हैं। जो आज की कविता को भी पुराने काव्य शास्त्रीय प्रतिमानों के आधार पर ही मूल्यांकित करने के पक्षधर हैं। इसके अलावा इस कविता के माध्यम से साहित्य–जगत में होने वाले अपशब्द पूर्णवाक युद्धों की ओर भी इशारा किया गया है –

'माफ करें कामताप्रसाद गुरु और हिन्दी के प्राध्यापक
पूर्णचन्द्र रथ की इस हिमाकत में मेरी शरारतन सहमति थी
और हमने व्यभिचारी भाव की तर्ज पर उच्चारी भाव से होते हुए
हिन्दी व्याकरण के पवित्र कोष में जोड़े
कर्मचारी और लाचारी भाव ३३३.

फिर यह एक ऐसा समय था
जिसमें रचना से ज्यादा व्याकरण के लिए
लोग आकुल–व्याकुल हुए जाते थे
कभी–कभी तो गाली–गलौज की भी नौबत आ जाती थी।' (6)

राजेश जोशी की कविता में आयी यह वक्रोक्ति कहीं–कहीं हास्य व विनोद का धरातल छोड़ व्यंग्यात्मक अधिक हो गयी है। उनकी एक कविता 'मैं झुकता हूँ' में ऐसा ही व्यंग्य है जो अपने समय की चापलूसी और चाटूकारिता पर कटाक्ष करता है। आचार्य द्विवेदी के भावानुकरण में कहें तो यहाँ भी व्यंग्य करने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा है। पर पूरी ईमानदारी और स्वाभिमान से साथ! लेकिन एक बात है, राजेश जोशी का व्यंग्य है बड़ा मार्मिक। वह कबीर की तरह तिलमिला देने वाला नहीं बल्कि राजेश जोशी की तरह संवेदना को झकझोर देने वाला है। वे कहते हैं कि –

'झुकता हूँ लेकिन उस तरह नहीं
जैसे एक चापलूस की आत्मा झुकती है
किसी शक्तिशाली के सामने
झुकता हूँ
जैसे घुटना हमेशा पेट की तरफ ही झुकता है।' (7)

राजेश जोशी की अनूठी काव्यभाषा और शब्दों की कारीगरी उनकी एक कविता श्चप्पलेंश में भी खूब दिखती है। काव्यपंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

'कोई झूठ इन्हें पहन नहीं सकता कि उसके पाँव नहीं
और सच इन्हें पहनेगा नहीं कि ये चप्पलें नहीं
उसका झूठ है!
ये सच और झूठ दोनों से परे हैं
दोनों की जरूरत से परे
चप्पल लेकिन कितनी भी स्थिर क्यों न हो
होगा उसमें यात्रा का कोई न कोई स्वप्न जरूर!!' (8)

राजेश जोशी का उक्ति–वैचित्र्य 'एक शैतान से मुलाकात' कविता में भी बड़ी बेबाकी से मुखरित हुआ है। वे इस कविता में अपने समय में हो रहे अनैतिक और अवैध कामों की ओर संकेत करते हैं। काव्यानुसार पहले की तुलना में शैतान और शैतानी कार्य अधिक बढ़ गए हैं, जिससे लोकप्रचलित शैतान (या दैत्य) से लोगों का खौफ कम हो गया है। आज इंसान ही शैतान होता जा रहा है। उसकी करतूतों ने शैतान को भी मात दे दी है–

'उसने कहा मैं बहुत अकेला हो गया हूँ और थक गया हूँ
तुम्हें नहीं लगता कि मैं लगभग हास्यास्पद और निरीह हूँ
अब तो कोई बच्चा भी नहीं डरेगा मेरे कारनामों से
एक जोकर या खिलौने से ज्यादा नहीं है अब मेरी औकात
मुझे लगता है मैं बहुत पिछड़ा हुआ शैतान हूँ
यह दुनिया मेरी करतूतों से कहीं बहुत आगे निकल चुकी है।' (9)

इसके अलावा 'नींद' कविता भी राजेश जोशी की काव्यभाषा और काव्यकला का बेहतरीन उदाहरण है। इस कविता में कम शब्दों में अधिक बात कही गयी है। चूँकि तकिए के भीतर कपास भरी होती है, इसलिए कवि उसे भी पेड़ का हिस्सा मानता है। कपास के पेड़ पर तो चिड़िया बैठती है लेकिन तकिए पर नहीं। प्रकारान्तर से कवि का आशय हो सकता है कि व्यक्ति जब सुख–सुविधाओं और विलास की तमाम भौतिक–अभौतिक वस्तुओं से लैस हो जाता है तो उसकी नींद उड़ जाती है। कविता इस प्रकार है –

'तकिए में
कपास का एक पेड़
कपास के फूल पर
चिड़िया नहीं आती
नींद
किस चिड़िया का नाम है!' (10)

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राजेश जोशी की काव्यभाषा तरल–सरल और भावानुकूल है। राजेश जोशी के लिए अपने समय की जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए सहज और सरल भाषा ही अभिधेय रही है। उन्होंने अपनी कविता को अनावश्यक क्लिष्ट शब्दों, अस्पष्ट बिम्बों और गझिन

बौद्धिकता से बचाने का यथासंभव प्रयास किया है। उनकी काव्यभाषा प्रवाहमान तो है ही, साथ ही किसी प्रकार की दुरूहता से भी परे है। वे अपनी बात को सीधे, स्पष्ट और साफ लहजे में कह देते हैं। अपनी अभिव्यक्ति के लिए उन्हें किसी भी प्रकार से 'दरेरा' देने की जरुरत नहीं पड़ती। शायद इसीलिए उनकी कविताएँ इतनी पठनीय, अर्थग्राह्य और बोधगम्य हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के लिए एक भाषिक संरचना भी विनिर्मित की है। उन्होनें अपने समय एवं समाज की निरन्तर बदलती हुई भाषा को समझा–जाना व परखा है और उसकी सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति भी अपनी कविताओं में की है।

संदर्भ सहायक ग्रंथ :-

1. मेहेर, छबिल कुमार, (2018), राजेश जोशी संचयिता, हरियाणा – आधार प्रकाशन, पृ. सं. 11
2. तिवारी, भोलानाथ, (2014), भाषा विज्ञान, इलाहाबाद : किताब महल प्रकाशन
3. कमल, अरुण, (2002), कविता और समय, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 190
4. जोशी, राजेश, (2017), प्रतिनिधि कविताएँ, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. सं.
5. रवि, पी. (सं.), (2011), कविता का वर्तमान, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 86
6. जोशी, राजेश, (2019), चाँद की वर्तनी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 81
7. वही, पृ. सं. 11 जोशी, राजेश, (2019), धूपघड़ी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
8. जोशी, राजेश, (2019), दो पंक्तियों के बीच, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 45
9. वही, पृ. सं. 97
10. जोशी, राजेश, (2014), धूपघड़ी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 91

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 191-194

हिन्दी भाषा की संवैधानिक स्थिति

पूजा मंगल, शोधार्थी इतिहास
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा राज.

स्वतंत्र भारत के निर्माण के साथ ही राष्ट्रभाषा की संकल्पना और उसकी रूपरेखा पर विचार आरंभ हुए। हिन्दी और अन्य भाषाओं द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन मे दिए गए योगदान को दृष्टिगत रखते हुए यह सुनिश्चित किया गया कि लोक व्यवहार और राजकाज में भारतीय भाषाओं का ही प्रयोग किया जाए। हांलाकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान हेतु बहस का कार्य भी अंग्रेजी में ही किया गया। 12 सितम्बर 1949 से 14 सितम्बर 1949 तक चली बहस में सभाध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने स्पष्ट रूप से कहा कि भाषा के विषय में आवेश उत्पन्न करने या भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए कोई अपील नहीं होनी चाहिए और भाषा के प्रश्न पर संविधान सभा का निश्चय सम्पूर्ण देश को मान्य होना चाहिए। इस सभा में भाषा संबंधी अनुच्छेदों पर लगभग तीन सौ से अधिक संशोधन प्रस्तुत किए गए। स्वतंत्रता संग्राम में जिस हिन्दी भाषा ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया उसी भाषा को लेकर इतनी लम्बी बहस और संशोधन चिंता का विषय कहे जा सकते हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व तक राजकार्य की भाषा अंग्रेजी होने के कारण अधिकांश का मत अंग्रेजी के पक्ष में रहा। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने भाषण में कहा था ''आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जबकि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है, जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी।'' अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का विचार इसलिए रखा गया था क्योंकि इसका क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत था। भारत के प्रांतों की अन्य भाषाओं का सीमित क्षेत्र होने के कारण उन्हें राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाना संभव नहीं था। लॉर्ड मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी उसने भारतीयों को अंग्रेजी का गुलाम बना दिया। गांधीजी ने भी हरिजन सेवक में लिखा था कि 'जिस तरह हमारी आजादी को छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलता पूर्वक इस देश से निकाल दिया है उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी हमें यहां से निकाल देना चाहिए।' भाषा को लेकर उठे विवाद के संबंध में यह भी स्पष्ट था कि हांलाकि संस्कृत में धार्मिक साहित्य आदि का लेखन और अध्ययन किया जाता था किन्तु उसे प्रशासकीय प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार भारत के अन्य प्रांतों की किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा निर्मित किए जाने से अन्य प्रांतों के मध्य विवाद उत्पन्न हो सकते थे। यही नहीं उस प्रांत की भाषा को सभी के लिए सीखना संभव नहीं था। ऐसे में एक ऐसी भाषा की संकल्पना आवश्यक थी जिसे सर्वाधिक लोग जानते हों तथा जिसका रूप सरल हो। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा भी था ' स्विट्जरलैण्ड

जैसे छोटे से देश में तीन भाषाएं हैं। क्या हम भारत में केन्द्रीय प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए पन्द्रह–बीस भाषाओं को एक साथ रखकर एकता स्थापित कर सकते हैं ?

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमें एक ऐसी भाषा की आवश्यकता थी जो कि सभी को परस्पर निकट लाए और हमारे संबंधों को घनिष्ठता प्रदान करे। संविधान पारित होने के बाद यह आशा व्यक्त की गई कि राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में विस्तार होगा तथा सम्पर्क भाषा के रूप में इसे प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। आरंभ में संविधान द्वारा हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग पर बल अवश्य दिया गया किन्तु सभी को हिन्दी सीखने के प्रति प्रेरित करने के लिए यह अवसर भी दिया गया कि वह थोड़े समय में हिन्दी के जानकार हो सकें। अनुच्छेद 350 में शिकायत के व्यक्ति या संघ को यह अधिकार दिया गया कि वह राज्य में प्रयुक्त किसी भाषा में प्रतिवेदन दे सकते हैं। उसी के साथ 350 क के अनुसार प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की गइ। अनुच्छेद 344 में राजभाषा के संबंध में आयोग और संसदीय समिति गठित की गई जिससे शासकीय कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाया जा सके और अंग्रेजी के प्रयोग को सीमित किया जा सके। अनुच्छेद 351 में संघ का कर्तव्य निर्धारित किया गया कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए जिससे कि वह भारत की संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। संविधान के 17वें भाग में राजभाषा विषयक व्यवस्था की गई। अनुच्छेद 345 से 351 तक चार अध्यायों में राजभाषा के संबंध में निर्देश दिए गए हैं। अनुच्छेद 343 (1) के अन्तर्गत संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होने का निर्देश है। हिन्दी के विवादित रूप के कारण यह व्यवस्था भी की गई कि अनुच्छेद 343 (2) के अनुसार संविधान के लागू होने के समय से पन्द्रह वर्ष की अवधि अर्थात् 26 जनवरी 1965 तक संघ के सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग किया जाएगा। लेकिन यह भी निर्धारित किया गया कि राष्ट्रपति जी द्वारा आदेश देने के बाद अंग्रेजी के साथ हिन्दी का प्रयोग भी किया जा सकेगा।

अंग्रेजी के प्रति मोह और हिन्दी के प्रति अवहेलना की दृष्टि के कारण संवैधानिक व्यवस्था में अंग्रेजी के प्रयोग की अनुमति दी गई लेकिन हिन्दीभाषा प्रेमियों के कारण यह व्यवस्था भी की गई जिससे हिन्दी के प्रयोग और उसके प्रसार क्षेत्र में वृद्धि हो सके। अनुच्छेद 343 के दूसरे खण्ड में प्रदान की गई शक्तियों द्वारा महामहिम राष्ट्रपति द्वारा 27 मई 1952 को प्रथम आदेश जारी किया गया जिसमें राज्यों के राज्यपालों, उच्च न्यायालय के न्यायधीशों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की अधिसूचना के लिए अंग्रेजी के साथ हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के अतिरिक्त देवनागरी के अंकों को भी प्राधिकृत किया गया। 1955 में राष्ट्रपति जी द्वारा द्वितीय आदेश पारित किया गया जिसमें संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया। इन सभी अनुच्छेदों से यह ज्ञात होता है कि हिन्दी के प्रसार के व्यापक प्रबंध किए गए लेकिन यह विडम्बना रही कि इतने अधिक समय तक अंग्रेजी के प्रयोग के कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प पूरा हो पाएगा या नहीं। संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत की उन सभी भाषाओं को सम्मिलित किया गया था जो कि प्रदेशों की राजभाषाएं थीं। आरंभ में इसमें असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम , उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलगू, उर्दू सम्मिलित थीं। 1956 के संशोधन द्वारा इसमें सिंधी और 1992 में मणिपुरी, नेपाली और कोंकणी को सम्मिलित किया गया। 2002 में मैथिली, संथाली, बोडो और

डोगरी भी इसमें सम्मिलित की गईं। 7 जून 1955 को अनुच्छेद 344 (1) के अन्तर्गत दी गई शक्तियों के अनुसार राष्ट्रपति जी द्वारा राजभाषा आयोग के गठन का आदेश दिया गया। श्री बी.जी. खेर की अध्यक्षता में निम्न विषयों पर सिफारिशों के लिए आयोग गठित किया गया– संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा का अधिक प्रयोग। संघ के राजकीय प्रयोजनों में किसी के अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधन। संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों का रूप। संघ की राजभाषा तथा संघ या किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा और प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति जी द्वारा पूछे गए अन्य विषय। आयोग द्वारा 1956 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जिसमें सिफारिशों की जांच के लिए संविधान के अनुच्छेद 344 खण्ड 4 के अनुसार 3 दिसम्बर 1957 को एक संसदीय समिति का गठन किया गया इसमें 30 सदस्य थे। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार प्रादेशिक भाषाओं को राज्यों में सरकारी कामकाज और शिक्षा का माध्यम बनाया गया। संघ के लिए कोई एक भाषा काम में ली जाए। अंग्रेजी से हिन्दी में परिवर्तन का कार्य धीरे–धीरे करने के लिए कहा गया। 1965 तक अंग्रेजी को मुख्य राजभाषा और हिन्दी को सह राजभाषा बने रहने का सुझाव भी दिया गया।

इस रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों में चर्चा होने के बाद संविधान के अनुच्छेद 344 (6) के अनुपालन में राष्ट्रपति जी द्वारा आदेश जारी किया गया जिसमें शब्दावली निर्माण, प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद, सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी का प्रशिक्षण, हिन्दी का प्रचार, अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती परीक्षा का माध्यम, अधिनियम की भाषा, उच्च और उच्चतम न्यायालय की भाषा तथा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार किया गया। हिन्दी टाइपराइटरों के कुंजीपटल को मानक रूप देने का कार्य आरंभ किया गया। हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं में आवश्यक प्रपत्रों और विभागीय साहित्य उपलब्ध करवाने के कार्य आरंभ हुए। अनुच्छेद 345 में राज्य की राजभाषाओं के संबंध में निर्देश दिए गए। अनुच्छेद 346 में व्यवस्था की गई कि यदि संघ और राज्यों या फिर एक राज्य और दूसरे राज्य के मध्य अंग्रेजी ही राजभाषा हो तो भी राज्य आपसी समझ के अनुसार राज्य में पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी को राजभाषा मान सकते हैं। अनुच्छेद 347 में निर्देश दिया गया कि राज्य के बड़े समुदाय की इच्छानुसार राज के सरकारी प्रयोजनों के लिए उस भाषा को मान्यता दी जाए। अनुच्देद 348 और 349 में उच्च और उच्चतम न्यायालयों की भाषा को अंग्रेजी ही रखा गया। अनुच्छेद 350 में व्यक्ति द्वारा अपनी शिकायतों के लिए दिए गए प्रार्थना पत्र की भाषा राज्य में प्रयुक्त कोई भी भाषा हो सकती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार 26 जनवरी 1965 से हिन्दी संघ की राजभाषा करने का निर्देश दिया गया था। उसके अनुसार अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त होकर हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए था लेकिन कुछ अंग्रेजी के हिमायती व्यक्तिया अनिश्चित काल तक अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने के पक्षधर थे। गैर हिन्दी भाषी प्रदेशों के लोगों का यह मत था कि उन पर हिन्दी जबरदस्ती थोपी जा रही है। इन आरोपों के कारण 1965 के बाद भी अनुच्छेद 343 (3) के अनुसार अंग्रेजी के प्रयोग को यथावत बनाए रखने की व्यवस्था की गई। 10 मई 1963 को राजभाषा अधिनियम 1963 पारित हुआ और उसके बाद 28 जनवरी 1965

के बाद भी हिन्दी के साथ अंग्रेजी को सरकारी कार्यों में निरन्तर किया गया। हिन्दी सलाहकार का पद सृजित कर राजभाषानीति के कार्यान्वयन का कार्य उन्हें सौंपा गया। राजभाषा अधिनियम की धारा 4 में 26 जनवरी 1975 के बाद एक संसदीय राजभाषा समिति के गठन का उपबंध किया गया। इसका कार्य हिन्दी के प्रयोग में हुई प्रगति की जांच और सिफारिशें करना था। दिसम्बर 1965 में दोनों सदनों ने एक सरकारी संकल्प पारित किया जिसे 18 जनवरी 1968 को अधिसूचित किया गया। इसके अनुसार केन्द्रीय सरकार हिन्दी के प्रचार के लिए अधिक विस्तृत और गहन कार्यक्रमों का निर्माण और कार्यान्वयन करेगी। इस अधिनियम के बाद संघ के सरकारी कामकाज में द्विभाषिक स्थिति का आरंभ हुआ। सरकारी कार्यालयों में हिन्दी और अंग्रेजी का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया जाने लगा।

25 जून 1976 को भारत सरकार के गृहमंत्रालय के अधीन राजभाषा विभाग स्थापित किया गया और राजभाषा अधिनियम 1963 और 1967 के प्रावधानों के अनुसार अधिनियम की धारा 8 के प्रावधानों को प्रकाशिक किया गया। इसके अनुसार सरकारी कामकाज के लिए सम्पूर्ण भारत को भाषाई क्षेत्रों के आधार पर तीन वर्गों में बांटा गया– क क्षेत्र– इसमें हिन्दी बहुल राज्यों और बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, अंडमान और निकोबार केन्द्र शासित प्रदेश सम्मिलित थे। ख क्षेत्र– गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब और चंडीगढ़ इसमें सम्मिलित थे। ग क्षेत्र– इसमें अन्य सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेश सम्मिलित थे। इनमें व्यवस्था की गई कि क क्षेत्र के राज्य सरकारों के कार्यालयों से केन्द्र के मध्य हिन्दी में पत्र व्यवहार किया जाएगा। ख क्षेत्र में आमतौर पर हिन्दी में पत्र भेजे जाएंगे लेकिन उनका अंग्रेजी अनुवाद भी संलग्न होगा। ग क्षेत्रों में अंग्रेजी में पत्रव्यवहार होगा लेकिन केन्द्र सरकार हिन्दी में ही पत्राचार करेगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जनमानस में अभी भी हिन्दी भाषा को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका है जिसकी वह अधिकारिणी है। हिन्दी भाषा के स्वतंत्रता संग्राम में अतुल योगदान और विस्तृत क्षेत्र के उपरान्त भी भाषायी विवाद और प्रांतों द्वारा उसे राजभाषा मानने में बाधाएं उपस्थित की जाती रही हैं। समय–समय पर किए गए संशोधनों के बाद भी वर्तमान में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है और हिन्दी भाषा के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार निरन्तर जारी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. चौधरी तेजपाल– भाषा और भाषा विज्ञान, विकास प्रकाशन, कानपुर
2. शर्मा डॉ. राजमणि–आधुनिक भाषा विज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. शर्मा डॉ. राजमणि– भाषा चिंतन, भाषा विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. झाल्टे डॉ. दंगल– प्रयोजनमूलक हिन्दी, विद्याविहार, नई दिल्ली
5. राजभाषा हिन्दी के प्रयोग संबंधी नियम– राजभाषा विभाग द्वारा प्रकाशित , नई दिल्ली।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 195-199

भारतीय सिनेमा और हिंदी भाषा

पूजा, सहायक प्रवक्ता,
बाबा कुंदन रूरल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, लुधियाना (पंजाब),

भारत विश्व का एक अद्भुत देश है जहाँ बहुजातीय, बहुभाषीय, बहुनस्लीय और बहुधर्मी मानव समुदाय परस्पर प्रेम–मिलाप और सौहार्द से मिलजुल कर रहते हुए एक गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण करते हैं। मिली–जुली सामाजिक संस्कृति ही भारत की आंतरिक शक्ति है। हमारी भाषाएँ न केवल हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम हैं, बल्कि वे हमारी संस्कृति का संवाहक भी है। अनेक भाषाएँ होने के बावजूद भी हर भारतवासी प्रत्येक भाषा का सम्मान करता है, जितना सम्मान वह अपनी मातृभाषा से करता है। सभी भाषाओं में हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो उत्तर से लेकर कश्मीर तक, सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, पूर्व में कामाख्या से लेकर पश्चिम में कच्छ तक बोली और समझी जाती है। यह गौरव का विषय है कि हिंदी आज भारत की सीमा लांघकर विश्व के हर कोने तक जा पहुँची है। विश्व के करीब 192 देशों में हिंदी न केवल पढ़ाई जा रहे हैं बल्कि शान से बोली भी जा रही है। इस व्यापकता के पीछे अन्य कारकों के अलावा सिनेमा भी एक कारक है जिसके माध्यम से हिंदी विषय में सिरमौर बन पाई है।

भारत की गौरवशाली परंपरा, उसका स्वर्णिम इतिहास और सामाजिक संस्कृति की अनुगूंज विश्व के कोने–कोने में हिंदी के माध्यम से प्रसारित–प्रचारित करने में भारतीय सिनेमा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिंदी सिनेमा अपनी प्रारंभिक अवस्था से ही भारतीय समाज का आईना रहा है जो समाज की गतिविधियों को रेखांकित करता आया है। पिछले पाँच दशकों की बात करें तो देखने को मिलेगा कि भारतीय सिनेमा ने शहरी दर्शकों को ही नहीं गांव के दर्शकों को भी प्रभावित किया है। टेलीविजन के प्रसार के कारण अब विश्व के प्रत्येक भूभाग में हिंदी फिल्मों तथा हिंदी फिल्मी गानों की लोकप्रियता सर्वविदित है।

''अगर आप किसी से ऐसी भाषा में बात करते हैं, जिसे वह समझता है, तो वह उसके दिमाग तक जाती है। यदि आप उससे उनकी ही भाषा में बात करते हैं तो वह उसके हृदय तक जाती है।'' –नेल्सन मंडेला विश्व के करीब 192 देशों में हिन्दी आज न केवल पढ़ाई जा रही है बल्कि बोली भी जा रही है। इसी हिन्दी भाषा को विश्वस्तरीय पहचान दिलाने में सिनेमा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में 14 भाषाओं को स्वीकृति प्रदान की गई थी। तब से लेकर आज तक भारत सरकार हिन्दी सिनेमा में प्रत्येक भाषा पर फिल्म बनाने के लिए सुख–सुविधा प्रदान कर भाषा को प्रोत्साहित कर रही है क्योंकि प्रत्येक कला विधा की

अपनी एक भाषा होती है और अपना एक मुहावरा होता है। जिस प्रकार से चित्र की भाषा रंग है उसी प्रकार नृत्य की भाषा मुद्राएं हैं। सिनेमा की भी एक अपनी भाषा है जिसके माध्यम से ही यह समाज के लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

प्रारंम्भिक दौर से लेकर आज तक इसके विकास में हिन्दी भाषा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सिनेमा में शुरु से अंत तक एक कहानी को प्रस्तुत किया जाता है। यह कहानी पात्रों के संवादों द्वारा व्यक्त की जाती है और इन संवादों को ही फिल्म की भाषा कहा जाता है। इन्हीं संवादों की भाषा के माध्यम से भारत की गौरवशाली परम्परा, उसका स्वर्णिम इतिहास और भारतीय संस्कृति को विश्व के कोने–कोने में हिन्दी के माध्यम से प्रचारित–प्रसारित करने में हिन्दी सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान है जो हमारे समक्ष कई संस्कृतियों और कलाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें आरंभिक दौर से लेकर अब तक कई परिवर्तन हुए हैं, जिससे समय के साथ–साथ इस हिंदी सिनेमा की तस्वीर भी बदलती रही है।

आज सिनेमा को लेकर नवीन प्रयोग हो रहे हैं। हिंदी सिनेमा में संवाद लेखन और पटकथा तक सभी में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव देखने को मिलता है। सिनेमा में प्रयोग तो प्रारंभ से ही होते रहे हैं परंतु वर्तमान समय में ये प्रयोग और भी बढ़ते जा रहे हैं। जब हम हिंदी सिनेमा का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि भाषा का प्रचार–प्रसार साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपातंरण, हिंदी गीतों की लोकप्रियता हिंदी की अन्य उपभाषाएँ और अन्य हिंदी बोलियों का सिनेमा और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में भारतीय सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी भाषा की संरचनात्मकता, शैली, कथन, बिम्ब, प्रतीक, दृश्य विधान आदि मानकों को हिंदी सिनेमा ने गढ़ा है।

भारतीय सिनेमा में हिंदी भाषा के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी सिनेमा तैयार किया गया लेकिन हिंदी की लोकप्रियता का ग्राफ उन सभी भाषाओं में सबसे ऊपरी पायदान पर रहा जिनकी प्रसिद्धि विश्व के हर कोने में फैलती चली गई ।

1934 में जब हिंदी सिनेमा का सफर आरंभ हुआ तो हिंदी भाषा अपने असली रूप में प्रयोग में लाई जा रही थी परंतु वर्तमान समय में गैंग ऑफ वासेपुर, पानसिंह तोमर जैसी फिल्मों ने हिंदी सिनेमा में प्राचीन परंपरा को परिवर्तित किया और फिल्मों में हिंदी भाषा के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं का भी प्रयोग होने लगा। आज सिनेमा में भारत के विभिन्न राज्यों के भाषाओं की खुशबू आती है। आज हिंदी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा ही नहीं है अपितु लोगों के जीवन सरोकारों, स्पन्दन, भावात्मक, संचार, आर्थिक स्थिति, वैचारिक बनावट आदि को भी दर्शाती है।

भारतीय सिनेमा के प्रारंभिक दौर में 'राजा हरिश्चंद्र' फिल्म में मराठी भाषा दादा साहेब फाल्के ने सब टाइटल्स अंग्रेजी के साथ–साथ हिंदी में भी रखे थे। जब उन्होंने पहली बार फिल्म में आवाज को शामिल किया तो उसमें हिंदी का ही प्रयोग किया। फिल्मों में व्यावसायिक संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए हिंदी के विशाल दर्शक वर्ग तक पहुँचने के लिए हिंदी भाषा से बेहतर कोई दूसरा विकल्प नहीं था। इसलिए आर्देशिर ईरानी ने

भारत की पहली सवाक फिल्म 'आलमआरा' 1931 में हिंदी उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। 1931 में जो 27 फिल्में बनी थी इनमें से 22 तो हिंदी में ही थी। आलम आरा के बाद जब बोलती फिल्मों का प्रारंभ हुआ तो बांग्ला मराठी आदि की भाषा–संस्कृति ने हिंदी सिनेमा को संपन्न किया। इस आरंभिक दौर को हिंदुस्तानी सिनेमा भी कहा जाता है। हिंदी फिल्में प्रारंभ से ही भारत की सामाजिक संस्कृति की उपज थी। प्रारंभिक दौर से लेकर वर्तमान समय तक सिनेमा की भाषा ने कई रंग बदले हैं। शुरुआती दौर में जहाँ भाषा साफ लयबद्ध और सरल थी। वही आधुनिक युग की भाषा के कई रंग हैं। गुलजार के गीत 'मारा रंग लई ले' से लेकर अमिताभ भट्टाचार्य के 'भाग–भाग डी के बोस' तक भाषा प्रयोग के बदलते स्वरूप को देखा जा सकता है। फिल्मों में भाषा बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फिल्म देखकर जब आते हैं तो सबकी जुबान पर फिल्म के डायलोग्स ही होते हैं। जब भी कोई नई फिल्म आती है तो सभी को अभिव्यक्ति की नई भाषा मिल जाती है। सिनेमा भाषा के प्रचार–प्रसार का एक बहुत ही अच्छा माध्यम है। सिनेमा में हर तरह की हिंदी के लिए जगह है। फिल्म में पात्रों की भूमिका व परिस्थितियों को देखकर ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। जिससे प्रारंभिक दौर से लेकर आज तक इसका रूप निरंतर परिवर्तित होता जा रहा है। अगर देखा जाए तो प्रारंभिक दौर की फिल्में अधिकतर देवी–देवताओं, पुराणों और ग्रंथों के चरित्र पर बनती थी जिनमें ज्यादातर में हिंदी भाषा ही प्रयोग में लाई जाती थी। इसके बाद ऐतिहासिक काल वाली फिल्मों में मुगल काल की प्रधानता होने के कारण उर्दू का अधिक प्रयोग किया जाने लगा। वहीं ग्रामीण परिवेश की प्रधानता वाली फिल्मों में हिंदी व प्रांतीय बोलियों का ही अधिक प्रयोग किया जाता था। जिस तरह 'मदर इंडिया' में हिंदी के साथ–साथ भोजपुरी भाषा का भी प्रयोग किया गया है व खेती छोड़ कर गांव से शहर में जाकर रहने वाले किसान की व्यथा कथा को आधार बनाकर विमल राय द्वारा बनाई गई फिल्म 'दो बीघा जमीन' में भी हिंदी भाषा का प्रयोग किया एवं गानों में भोजपुरी भाषा के शब्दों की अधिकता रही।

70 के दशक में अगर देखा जाए तो हिंदी सिनेमा में सशक्त और समानांतर सिनेमा का आरंभ हुआ। जिसमें श्याम बेनेगल और गोविंद निहलानी जैसी फिल्मकारों ने सिनेमा की भाषा और हिंदी के साथ–साथ उच्चारण की स्पष्टता पर भी ध्यान दिया। दुबे जी भी हिंदी भाषा के प्रबल समर्थक थे। जिसे उनकी जुनून, मंडी, निशांत, अंकुर, भूमिका आदि फिल्मों में देखा जा सकता है। इस दशक में समकालीन साहित्यकारों ने भी हिंदी भाषा के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिसमें तीसरी कसम, सारा आकाश जैसी फिल्में साहित्यिक कृतियों पर कालजयी निर्माण के रूप में जानी जाती हैं। ऋषिकेश मुखर्जी ने भी सत्यकाम, अनाड़ी, अनुपमा, चुपके–चुपके, खट्टा–मीठा, गोलमाल जैसी उत्कृष्ट फिल्में बनाई। इस दौर में मुस्लिम साहित्य से जुड़े हुए गीतकार साहिर लुधियानवी, शकील बदायूनी, कैफी आजमी, सुनील दत्त, राजेंद्र कुमार आदि भी अपना आधिपत्य जमा चुके थे। ये सभी उर्दू के अच्छे जानकार थे। जिसके कारण उर्दू गीत, गजल, कव्वालियों का हिंदी सिनेमा में प्रमुख स्थान रहा। 80 के दशक में हिंदी सिनेमा की भाषा में बंबईया पुट आने लगा। जिससे ऐसे ही आम घिसे–पिटे शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाने लगा। जिसका प्रभाव गानों पर भी देखने को मिला।

90 के दशक में भाषा और भी अधिक बिगड़ गई। इस दशक में बिगड़ी भाषा ने हिंदी सिनेमा का रूप की विकृत कर दिया। पैसों के लिए ही सब कुछ किया जाने लगा। जो सिनेमा पहले समाज का प्रतिबिंब होता था, समाज को जागृत करता था, वह आज पैसा कमाने का जरिया मात्र बनकर रह गया है। आज अश्लील शब्दावली का अधिक प्रयोग किया जा रहा है। दो भागों में पूरी हुई अनुराग कश्यप की फिल्म 'गैंग ऑफ वासेपुर' भी हिंदी सिनेमा में सिने भाषा को लेकर काफी चर्चित हुई। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी' पर बनी फिल्म 'मौहल्ला अस्सी' को भी गालियों के अधिक प्रयोग होने के कारण काफी विरोध का सामना करना पड़ा था। 'तू चीज बड़ी है मस्त–मस्त' गाने में भी लड़की को एक इस्तेमाल की जाने वाली चीज के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इस तरह वर्तमान सिनेमा की शब्दावली में काफी अश्लीलता और खुलापन देखा जा सकता है। वस्तुतः इस प्रवृत्ति के लिए सिर्फ गीतकारों को दोष देना उचित नहीं होगा। भारत में 'बाजारवाद' के प्रमोशन और 'ग्लोबलाइजेशन' के कारण जनरुचि में बदलाव आए हैं उसी के कारण फूहड़ता, अश्लीलता और विकृतियाँ समस्त कला माध्यमों पर हावी होती जा रही है।

सिनेमा में अगर बोलियों के प्रयोग को देखा जाए तो कहा जा सकता है कि हिंदी बोलियों का सिनेमा अपनी तकनीकी और परिपक्वता तथा अपने सीमित संसाधनों के कारण भले ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान नहीं बना पाया हो, किंतु इन बोलियों की शक्ति को बचाए रखने की संभावना उसने जरूर दिखाई है। जैसे जवरीमल्ल पारख कहते हैं कि बिमूल राय हिंदी में सिनेमा बनाते हैं, लेकिन बार–बार वे हिंदी में बंगला समाज को प्रस्तुत करते हैं, चाहे वह 'देवदास' में हो या 'परिणीता' में। गुजरात के महबूब खान भी अपनी महाकाव्यात्मक फिल्म 'मदर इंडिया' में गुजराती पृष्ठभूमि में किसान समस्या को उठाते हैं। इसी सच्चाई को हम वी. शांताराम से श्याम बेनेगल तक लगातार देख सकते हैं। वे हिंदी भाषा में तो सिनेमा बनाते हैं, लेकिन उस यथार्थ को लेकर, जिसका संबंध या तो उनकी मातृभाषा से है या फिर किसी एक भाषाई क्षेत्र से, उसे जोड़ना कठिन है। 'गंगा जमुना' या 'लगान' जैसी फिल्में, जिनमें भोजपुरी या अवधि का प्रयोग किया गया है। हिंदी भाषी क्षेत्र की फिल्में नहीं कही जा सकती। स्थानीय स्पर्श देने के लिए इनमें क्रमशः भोजपुरी और अवधि का प्रयोग किया गया है।

हिंदी फिल्मों के विस्तार का प्रभाव क्षेत्रीय भाषाओं पर भी पड़ा है और इसी प्रभाव के कारण हरियाणवी, पंजाबी, राजस्थानी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी आदि क्षेत्रीय भाषाओं में फिल्में बननी शुरू हुई। हिंदी की सहायक भाषाएँ होने के कारण अपने क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य हिंदी भाषी क्षेत्रों में भी चर्चित हुई। हिंदी फिल्मों पर भोजपुरी का इतना जबरदस्त प्रभाव है की हिंदी की अधिकांश मसाला फिल्मों में भोजपुरी गीत, संवाद या पात्र रखना एक आम बात हो गई है। अनेक प्रकार की भाषाओं और बोलियों ने मिलकर हिंदी सिनेमा को और भी अधिक प्रोत्साहन किया है और राष्ट्रीय एकता को भी मजबूत किया है। हिंदुस्तानी समाज में हिंदी सिनेमा ने विभिन्न राष्ट्रीयता, सामाजिक ढांचा, पारिवारिक रिश्ता, आतंकवाद, कृषि, किसान, प्रवासी जीवन आदि अनेक मुद्दों को उठाया है। हिंदी सिनेमा ने अपने कथानक, संवादों, पात्रों और भाषा की अभिव्यक्ति के आधार पर इन मुद्दों की तरफ हमारा

ध्यान आकर्षित किया है। हिंदी फिल्मों ने हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी भाषी समुदाय की चुनौतियाँ, चाहतों तथा संघर्ष सपनों को भी विश्व फलक पर पहुँचाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। हिंदी भाषा का विश्वव्यापी प्रसार इन मुद्दों को संबोधित किए बिना अधूरा ही माना जाता है लेकिन हिंदी सिनेमा ने अपनी इस भूमिका का बखूबी निर्वहन किया है।

हिंदी सिनेमा ने हिंदी भाषा को तकनीकी अनुकूलन के लायक बनाया। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि हिंदी सिनेमा ने हिंदी भाषा के नए–नए रूप रंग और साँचें ढाँचे को गढ़ा है। हिंदी फिल्मों ने देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी हिंदी को प्रोत्साहित किया है। देश के हर कोने में हिंदी फिल्म देखी–दिखाई जाती है आज हिंदी फिल्में जितनी लोकप्रिय हैं शायद ही किसी अन्य भाषा की फिल्में होंगी। भारत में निर्मित होने वाली 60 प्रतिशत फिल्में हिंदी भाषा में बनती हैं और वही सबसे अधिक चलन में हैं, वही सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भाषा ही सिनेमा की शक्ति है जिससे आज हिंदी सिनेमा अपनी उत्कृष्टता की चरम सीमा तक पहुँचा है। सिनेमा के लिए भाषा का बहुत महत्व है। भाषा समाज की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है और सिनेमा समाज के लोगों के लिए ही होता है। समय और समाज से ही सिनेमा शब्दावली ग्रहण करता है जिससे प्रारंभ से लेकर आज तक भाषा के कई रूप आए हैं। भारतीय समाज की भाषा हिंदी होने के कारण हिंदी के विकास में सिनेमा ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भाषा पर ही फिल्म की सफलता निर्भर करती है। जिस फिल्म में भाषा की शक्ति जितनी अधिक होती है वह फिल्म उतनी ही सार्वभौमिक और सर्वकालिक बन जाती है। इसी भाषा की सक्षमता के दम पर आज हिंदी सिनेमा अपना परचम लहरा रहा है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि हिंदी भाषा और हिंदी सिनेमा का आपस में गहरा संबंध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नया ज्ञानोदय संपादक, लीलाधर मंडलोई, पृष्ठ 1, अंक 172, जून 2017
2. सिनेमा के सौ वर्ष, संपादक मृत्युंजय, 'शिल्पायन', 2011, तृतीय संस्करण, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ 343, 396
3. पारख जवरीमल्ल, 'सांझा संस्कृति' सांप्रदायिक आतंकवाद और हिंदी सिनेमा, 2012, 'वाणी' प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 245, 246
4. भारतीय सिनेमा के सौ साल, आज तक, 9 मई 2012

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 5-6
पृष्ठ : 200-204

ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली हिंदी का विवाद

प्रभंजन कुमार झा, शोधार्थी, हिंदी साहित्य
मिजोरम विश्व विद्यालय, मिजोरम

ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली हिंदी का विवाद उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उभरकर सामने आया। जब खड़ी बोली हिंदी ने गद्य के रूप में अपनी पहचान बनाना शुरू कर दी थी। एक तरह से कहें तो खड़ी बोली हिंदी गद्य–भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी थी। बावजूद इसके उन्नीसवीं शताब्दी तक काव्य–भाषा के रूप में ब्रज भाषा का बोलवाला था। गद्य का आविर्भाव तो ब्रजभाषा में हुआ लेकिन गद्य का परिष्कृत रूप खड़ी बोली हिंदी सामने लेकर आयी। खड़ी बोली हिंदी का गद्य अपने देशकाल की बदली हुई परिस्थितियों को बहुत ही खुब सूरत ढंग से चित्रित कर रहा था वहीं ब्रज भाषा का कवि अभी भी भक्ति और रीति कालीन प्रवृत्तियों से बाहर नहीं निकल पा रहा था। ब्रजभाषा के कवियों के दिमाग में एक बात बार–बार कौंध रही थी। खड़ी बोली गद्य की भाषा के लिए तो ठीक है लेकिन कविता जैसी कोमल विधा के लिए इतनी कर्कश, शुष्क और खड़ी भाषा में रचना करना आसान कार्य नहीं है। इसलिए ब्रजभाषा के कवियों का मुखर विरोध बार–बार सामने आने लगा था। पहली बार गद्य और पद्य दोनों की भाषाई एक रूपता का सवाल मुजफ्फरपुर के अयोध्या प्रसाद खत्री ने मुखर रूप से उठाया। उस दौरमें खत्री जी का बहुत विरोध हुआ। भारतेन्दु मंडल जिसकी उस समय साहित्य में साहित्यिक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर लगभग एकाधिकार था।

उन्होंने काव्य–भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी की स्थापना का सर्वाधिक विरोध किया। तत्कालीन समय में अयोध्या प्रसाद खत्री का तीखा विरोध हुआ लेकिन उन्होंने अपने विरोधियों का डटकर मुकाबला किया। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी की वकालत करते हुए उस मौजूदा दौर में खड़ी बोली की कविताओं का एक संकलन तैयार किया जिसे उन्होंने साहित्यकारों के बीच प्रसारित करवाया। इस संकलन ने लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया। इस पूरे विवाद के एक बड़े जानकार डॉ. वीर भारत तलवार लिखते हैं, "दर असल, खत्री जी काव्य–भाषा के रूप में खड़ी बोली को स्थापित कर हिंदी–उर्दू के बीच सुलह परक भाषा–नीति की प्रस्तावना कर रहे थे जिसका एहसास इस संकलन में शामिल रचनाएँ पढ़ कर होता है। तत्कालीन भाषाई विवाद को सुलझाने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था जिसे अपने जातीय आग्रहों की वजह से उस दौर के साहित्यकार मानने को तैयार नहीं थे। आज कहने की जरुरत नहीं कि अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा संपादित खड़ी बोली का पद्य और उसकी भाषा–नीति अपने और बाद के युग के भी भाषाई विवाद को सुलझाने की दिशा में सार्थक हस्तक्षेप था।

इस किताब की ऐतिहासिकता इस बात में भी है कि विदेश (लंदन) में छपने वाली हिंदी की यह पहली पुस्तक थी। इस किताब के जरिए रचनाकारों को एहसास हुआ कि कविता की भाषा बदलनी चाहिए।" ।1

दरअसल ब्रज भाषा साहित्य के परिदृश्य पर एक लम्बे समय से आसीन थीं। यहाँ तक कि ब्रज भाषा अपनी कोमलकान्त पदावली, ध्वनायात्मक लालित्य विधान के कारण सम्पूर्ण मध्यकाल में कविता और संगीत की सिर मौर बनी हुई थी। इस की लोकप्रियता का आलम यह था कि उर्दू के शायर भी अपनी रचनाओं में कोमलता और लालित्य लाने के लिए ब्रज के ओकार बाहुल्य क्रिया पदों जैसे सुनियो, कहियो, रहियो, जइयो आदि शब्दों का प्रयोग करने लगे थे। जिस समय देश में राष्ट्र भाषा का प्रश्न खड़ा हो रहा था उस समय हिंदी बनाम उर्दू का झगडा बहुत तेजी से चल रहा था। इसलिए हिंदी के पाण्डित्य साहित्यकारों में एक डर यह भी घर कर रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि ब्रज की जगह खड़ी बोली हिंदी के विवाद में उर्दू भाषा अपनी जगह न बना ले। इसलिए हिंदी का एक बहुत बड़ा तब का इससे डरा हुआ था।

1887 में अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' के रूप में जिस जिस संकलन पुस्तक को सामने लेकर आए उसने एक बडे आन्दोलन को जन्म दिया। 'हिन्दोस्थान' पत्र के 1887–88 के कई अंकों में जम कर बहसें हुईं। इस बहस में जो नाम सबसे चमकदार थे उनमें राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक और प्रताप नारायण मिश्र सरीखे हिंदी के विद्वान शामिल थे। राधाचरण गोस्वामी जी लिखते हैं, "आजकल हमारे कई भाइयों ने इस बात का आन्दोलन आरम्भ कर रखा है कि जैसी हिंदी में गद्य लिखा जाता है, वैसी हिंदी में पद्य भी लिखा जाया करे।.....अब इस प्रकार की भाषा के छंद रचना करने में कई आपत्ति है। प्रथम तो भाषा के कवित्व, सवैया आदि छंदों में ऐसी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता और यदि किया भी जाता है तो बहुत भद्दा मालूम होता है। तब भाषा के प्रसिद्ध छंद छोड़कर उर्दू के बैत शेर, गजल का अनुसरण करना पड़ता है। पर फारसी शब्दों में होने से उसमें भी साहित्य नहीं आता।

दूसरा यह है कि चंद के समय से बाबू हरिश्चन्द्र तक जो कविता हुई वह सब ब्रज भाषा में हुई। और सब पंडितों ने संस्कृत के अनन्तर भाषा शब्द से इसी का व्यवहार किया। इसके साहित्य की जैसी उन्नति है, संस्कृत के बिना और किसी भाषा के साहित्य की उतनी उन्नति नहीं। और सिवाय क्रिया पदों के हिंदी से इसका भेद भी नहीं। तब भी इतने बड़े अमूल्य रत्न भंडार को छोड़ कर नये कंकड़–पत्थर चुनना हिंदी के लिए सौभाग्य की बात नहीं, बरंचइसब्रज भाषा के व्यवहार को हिंदी से निकाल देने से फिर हिंदी में क्या गौरव की सामग्री रह जाएगी। पृथ्वी राजरासो, सूरसागर, तुलसीकृत रामायण, बिहारी सतसई, पद्माकर, देव आनंद घन की अमृतमयी कविता को तिलांजलि दे दीजिए फिर क्या हजार वर्ष में इतनी हिंदी कविता इकठ्ठी कर सकेंगे। तीसरा हमारी कविता की भाषा अभी मरी नहीं है, तब फिर इसमें क्यों न कविता की जाए ?.....इस समय हमारे परम आतुर आर्य समाजी और मिशनरी आदि कों ने भाषा साहित्य की रीति और अलंकर आदि बीनी जाने कविता लिखने का आरंभ करके अपने हास्य के सिवाय काव्य की भी उल्टे छुरे से खूब हजामत की है। और इस पिशाची कविता से अपनी समाज का भी खूब मुख नीचा किया। बस यही खड़ी बोली की कविता भी पिशाचीन हीं तो डाकिनि अवश्य कवि

समाज में मानी जाएगी।"2 इस तरह राधा चरण गोस्वमी के इस लेख ने ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली विवाद कोतूल दिया। ब्रजभाषा के कवि भाषाई विवाद में परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को ठीक से नहीं समझ पा रहे थे। राधा चरण गोस्वमी के लेख का प्रत्युत्तर श्रीधर पाठक ने एक लम्बा पत्र लिखकर दिया। जिसमें उन्होंने लिखा, "राधा चरण गोस्वामी ने खड़ी बोली पद्य के कई आपत्ति दर्ज किए हैं और अंत में खड़ी बोली की कविता को भी पिशाचिनी, डाकिनी बना पत्र समाप्त किए हैं–"आज कल दुर्वाक्य और असंगत असभ्य वचनों का वर्ताव हिंदी पत्रों में इस बहुतायत में देखने में आता है कि आश्चर्य नहीं कि थोड़े दिनों में इस भाषा के अलंकार में गणना पा जाए और नागरी की सुन्दरता का एक अंग हो जाए, पर हमारी समझ में ऐसे वाक्य व्यवहार से केवल हिंदी की गौरव हानि है। यहाँ हम उनकी आपत्तियों पर विचार करते हुए कहना चाहते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि जिन छंदों में ब्रजभाषा की कविता की जाती है वे ही पद्य खड़ी बोली में काम में लाए जाएँ। घनाक्षरी, सवैया आदि के अतिरिक्त अनेक छंद ऐसे हैं जिनमें खड़ी बोली बहुत सुघराई के साथ आ सकती है। फिर गोस्वामी ने कैसे निश्चय कर लिया कि कवित्व इत्यादि में खड़ी हिंदी व्यवहृतन हीं हो सकती ? कभी खड़ी बोली में कवित्व लिखने पर श्रम भी किया है।"3

ब्रज भाषा और खड़ी बोली हिंदी विवाद ने कई स्तरों को छुआ। एक बात जो ब्रजभाषा के कवियों के बारे में बार–बार जोर देकर कही जाती है जो कुछ हद तक सही भी है कि ब्रज भाषा समर्थक कवियों–लेखकों में प्राचीन परम्परा का गौरव अधिक है। उनमें पुरातन पंथ और एक बने बनाए ढाँचे का अनुसरण है जिससे कविता में एक रसता बढती जा रही है। बदलते समय के साथ आधुनिक विचार और मूल्यों को कविता प्रकट करने में समर्थ नहीं दिखाई देती। दूसरी तरह खड़ी बोली हिंदी में आधुनिक तत्वों का सर्वाधिक समाहार है। उसमें भारत की सामाजिक संस्कृति और भाषाई विविधता के अनेक शब्दों का भी समावेश है। इसलिए श्रीधर पाठक यह कहते नजर आते हैं, "वास्तव में ठेठ हिन्दुस्तानी जो उर्दू कहलाती है और साधारण खड़ी हिंदी में कुछ भी भेद नहीं है। अंतर उस समय हो जाता है जब कि उर्दू में अधिकतर फारसी के और हिंदी में अधिकांश संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का व्यवहार किया जाता है।..... हमको यहाँ तक कहने का साहस हो जाता है कि यदि इस विविध भाषाओँ के देश भारत वर्ष की कोई एक भाषा कही या मानी जा सकती है तो हिंदी ही मानी जा सकती है और वह हिंदी खड़ी हिंदी है–ब्रज भाषा की हिंदी नहीं।"4

ब्रज भाषा और खड़ी बोली हिंदी के इस विवाद में प्रताप नारायण मिश्र भी कूद पड़े। जिनकी असहमतियों का श्रीधर पाठक ने जवाब देते हुए लिखा है, "हमारे मित्रवर मिश्र प्रताप नारायण भी खड़ी बोली हिंदी कविता के विरोधी हैं और अपने 'ब्राह्मण' पत्र में लाला अयोध्या प्रसाद खत्री संग्रहित पद्य की समालोचना में 'लेखक की मनोगति असंगत' सिद्ध करने को कहते हैं कि आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेन्दु जी ही से 'जब यह (कार्य) न हो सका तो दूसरों का यत्न निष्फल है। हम नहीं समझते मिश्र जी 'न हो सका' का प्रयोग किस प्रमाण पर करते हैं।"5 वैसे श्रीधर पाठक ने ब्रज भाषा और नवीन हिंदी को दो अलग–अलग भाषा बताते हुए कहा है कि इन दोनों में जो बहुत ही थोड़े अंश में एकता है वह भी धीरे–धीरे नष्ट होती चली गई। उन्होंने नवीन हिंदी को

कच्ची उम्र और नया सन्धि वाली कोमल नायिका बताया और ब्रज भाषा को प्रौढावस्था की डांक, बूढी नायिका की दशा पर पहुँच चुकी साबित किया।

हिंदी के सिरोधार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी ब्रजभाषा के प्रति अपने प्रेम को छिपा न सके। उन्होंने जब अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में खड़ी बोली पद्य के सन्दर्भ में अयोध्या प्रसाद खत्री का जिक्र किया उससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि आचार्य शुक्ल खत्री जी की बातों से ज्यादा सहमत नहीं थे। आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री खड़ी बोली का झंडा लेकर उठे। संवत् 1945 में उन्होंने 'खड़ी बोली आन्दोलन' की एक पुस्तक छपायी जिसमें उन्होंने बड़े जोर–शोर से यह राय जाहिर की कि अब तक जो कविता हुई, वह तो ब्रज भाषा की थी, हिंदी की नहीं। हिंदी में भी कविता हो सकती है। वे भाषा तत्व के जानकार न थे। उनकी समझ में खड़ी बोली ही हिंदी थी।"6

दर असल एक बहुत बड़ा तब का बाबू हरिश चन्द्र की दुहाई देकर ब्रज भाषा के पक्ष में अपने तर्कों को रख रहा था। इन सब की खबर अयोध्या प्रसाद खत्री ने तीखे अंदाज में लेते हुए एक लेख में लिखा, "ब्रज भाषा कविता के पक्ष पाती बाबू हरिश चन्द्र की दुहाई देते हैं। इसलिए हरिश चन्द्र के वचन का खंडन भी होना आवश्यक है। बाबू हरिश चन्द्र ईश्वर नहीं थे। उनको शब्द ज्ञान का कुछ भी बोध नहीं था। यदि शब्द शास्त्र का ज्ञान होता तो खड़ी बोली में पद रचना नहीं हो सकती है, ऐसा नहीं कहते। भारतेन्दु खड़ी बोली की दीर्घमात्रा की कठिनाई बताते हैं, यदि दीर्घ मात्रा के कारण खड़ी बोली में कविता करने में कठिनाई है तो दीर्घको ह्रस्वकर देने का कवियों को Poetical License बहुत दिनों से हासिल है। दुकान उठा लो मैं घोड़ा न हटाऊँगा का हठ करना दूसरी बात है। दीर्घ मात्रा रहते हुए ही उर्दू के कवि पद्य रचना करते हैं और बाबू हरिश चन्द्र भी करते थे।"7

इस भाषाई विवाद के पीछे ब्रज भाषा का एक बहुत बड़ा तबका इस बात से डरा हुआ था, जैसा कि मैंने पहले भी इशारा किया है कि ब्रज भाषा ने अगर खड़ी बोली हिंदी के किए कविता का क्षेत्र खाली कर दिया तो कहीं उर्दू कहीं कब्जा न कर ले। खड़ी बोली हिंदी में तो उर्दू के शब्दों की वैसे भी भरमार है। राधाचरण गोस्वामी इसकी ओर इशारा भी करते जान पड़ते हैं, "हम अनुमान करते हैं कि यदि खड़ी बोली की कविता की चेष्टा की जाए तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाएगा। इधर सरकारी पुस्तकों में फारसी शब्द घुसे पड़े हैं। उधर पद्य में भी फारसी भरी गई तो सहज ही झगड़ा निपटा।"8

अतः ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली भाषा का विवाद कविता की भाषा तक सीमित नहीं था बल्कि इसका असर अन्य स्तरों पर भी दिखाई पड़ रहा था। एक तरफ भाषा की आतंरिक बुनावट और विचारों की सहज अभिव्यक्ति काम सला उभर रहा था तो दूसरी तरफ आधुनिकता और समाज सुधार के परिवर्तन का विचार भी भाषाई जड़ता की सीमा को दर्शा रहे थे। नवजागरण ने व्यक्ति की संकुचित मानसिकता और अंधविश्वास से बहुत हद तक मुक्ति दिलाई। श्रृंगार और भक्ति अपने चरम को छू चुकी थी। उसमें नया करने के लिए बहुत कुछ शेष नहीं था। इसलिए ब्रज भाषा आधुनिक समस्याओं के साथ बहुत ज्यादा समय तक साथ नहीं दे सकती थी। प्रताप

नारायण मिश्र जैसे कुछ सरीखे कवियों ने ब्रज भाषा में जरूर नये विचार और आधुनिक मूल्यों को प्रकट करने की एक कोशिश की, लेकिन ऐसे कवियों की संख्या नाम मात्र की थी। इस भाषाई विवाद का एक दूसरा पक्ष देश की राजनीति को प्रभावित कर रहा था। अंग्रेज सरकार छोटे–छोटे मुद्दों पर अपना हित देखकर फैसले सुना रही थी। हिन्दू–उर्दू के विवाद में भी सरकार ने दोहरी नीति अपनाई, जिसका असर यह हुआ कि हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा तब का जो उर्दू जबान को पड़ता लिखता था उसने भी बाद में अपनी संतानों को उर्दू से दूर रखा। इसलिए उर्दू बहुसंख्यक रूप में मुसलमानों की भाषा बन कर रह गई। इसलिए ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली विवाद में ब्रज भाषा प्रेमियों को उर्दू के सत्ता में आ जाने का भय भी सता रहा था। कहीं हिंदी, उर्दू में तब्दील न हो जाए इसलिए ब्रजभाषा के जिन पैरोकारों ने ब्रज के बजाय हिंदी को स्वीकार किया उन्होंने हिंदी में संस्कृत के शब्द प्रयोग की वकालत की। वह इसलिए कि खड़ी बोली हिंदी का उर्दू से अलगाव रहे और मुसलमान इस भाषा पर आराम से कब्जा न जमा सके। इसलिए हिंदी बनाम उर्दू के बीच कभी न खत्म होने वाली खाई बन तीचली गई। जिसे हम आज तक नहीं पाट सके।

सन्दर्भ-सूची :-

1 नया ज्ञानोदय, मार्च–2009, पृष्ठ संख्या–42

2 अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ संख्या–64

3 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–66

4 उपर्युक्त पृष्ठ संख्या–67

5 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–75

6 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मालिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, संस्करण – 2009, पृष्ठ संख्या–422

7 अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ संख्या–86

8 डॉ. केदारदत्त तत्राडी, श्री गोस्वामी राधा चरण जी – व्यक्तित्व एवं कृतित्व, संख्या–96

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 205-209

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

प्रमिला देवी, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
कन्या महाविद्यालय खरखौदा, (सोनीपत)

सृष्टि के समस्त प्राणियों में मानव जाति का स्थान सर्वोपरि है, जिसका केवल एक ही कारण है– विद्या। यदि विद्या मनुष्य के पास न होती तो अन्य जीव ही उनसे अधिक सम्मान के भागीदार होते । चूंकि इस संस्कार के द्वारा क्षणभंगुर संसार में व्यक्ति के पदार्पण के बाद विद्या रूपी परम लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु श्री गणेश किया जाता है जो कि एक महत्वपूर्ण एवं दूरदृष्टि तथा दूरगामी परिणाम का कारण होता है। अतः भारतीय संस्कृति में विद्यारंभ संस्कार का महत्व सभी संस्कारों में प्रमुख है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप अत्यंत ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पन्न करने के लिए शिक्षा की नितांत आवश्यकता थी। "मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही संभव माना जाता रहा है। सही बात तो यह है कि शास्त्र और विवेक से शिक्षा संपन्न होती है और शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। इसलिए ज्ञानोद्भव का आधार तत्व शास्त्र और विवेक माना गया है। ज्ञान अथवा विद्या से मुक्ति प्राप्त होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है।"[1] इस तरह ज्ञान के आलोक से मनुष्य का जीवन आलोकित होता है क्योंकि "किसी भी कार्य को करने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो वे जो उसको समझ अथवा ज्ञान से करते हैं, दूसरे वे जो बिना समझे अथवा अज्ञान से करते हैं। किंतु विद्या (ज्ञान) और अविद्या (अज्ञान) दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। विद्या और सच्ची लगन के साथ जो व्यक्ति कर्म करता है, वही अधिक शक्तिशाली होता है।"[2] वस्तुतः ज्ञान अथवा विद्या से व्यक्ति का कर्म और आचरण परिष्कृत और दिव्य हो जाता है और वह ज्ञान संपन्न होकर देव तुल्य हो जाता है। "भारतीय विचारकों द्वारा तीन लोकों की कल्पना की गई है– मनुष्य लोक, पितृलोक और देवलोक। इनमें से मनुष्य लोक पुत्र द्वारा ही जीता जा सकता है, किसी और कर्म से नहीं। पितृलोक यज्ञादि कर्म द्वारा और देवलोक विद्या द्वारा ही जीता जा सकता है। तीनों लोकों में देवलोक ही श्रेष्ठ है, इसलिए विद्या प्रशंसनीय है।"[3] स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन में विद्या का अनुपम योग रहा है।

ज्ञान अथवा विद्या की महत्ताः मनुष्य के जीवन में विद्या अथवा ज्ञान का अत्यंत विशिष्ट स्थान है। "विद्या के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकुचित है और जीवन बोझिल। अज्ञानता अंधकार के समान है।"[4] अतः ज्ञान से ही

मानव जीवन आलोकित होता है। "ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ करता तथा सही कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है।"[5] निश्चय ही ज्ञान के बिना व्यक्ति जीवन और जगत के रहस्यों को जान पाने में असमर्थ होता है। संसार की समृद्धि और अभीष्ट की प्राप्ति ज्ञान पर ही अवलंबित रहती है। जीवन की समस्त बाधाएं और कठिनाइयां ज्ञान के कारण समाप्त हो जाती हैं। शिक्षा से मनुष्य को जीवन संबंधी सिद्धांतों और आचरणों को समझने में आसानी होती है। उसका शरीर और मन शिक्षा से ही परिष्कृत और पवित्र होता है। इसलिए ज्ञान को अप्रतिम माना गया है।

शिक्षा की सार्थकताः शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है। उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुदृढ़ और प्रांजल होती है। "कोई मनुष्य अन्य किसी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है जब उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा द्वारा तीव्र और उच्च होती है। इसीलिए विद्याहीन मनुष्य को पशुवत् कहा गया है।"[6] विद्या से ही मनुष्य अपना जीवन सार्थक करता है। इसके बिना उसका जीवन निरर्थक और सारहीन रहता है। इसके संयोग से बुद्धि प्रखर, बोध क्षमता विकसित और विवेक संपुष्ट होता है। यह ऐसे मार्ग का दिग्दर्शन करती है कि मनुष्य पथभ्रष्ट होने से बच जाता है तथा सही मार्ग का अनुसरण करके अपना जीवन सुखमय बनाता है।

शिक्षा के उद्देश्यः शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा संपन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नहीं होता बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सनमार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्मप्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शों से संवलित और बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही है, साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योग प्रदान करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तित्व का उत्थान, उसके सामाजिक दायित्वों का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रधान उद्देश्य हैं। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। "अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्य और उसके परिणाम का उल्लेख किया गया है जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु और अमृत तत्व को सन्निहित किया गया है।"[7]

समाज के विकास में शिक्षा का योगदानः समाज में परिवर्तन लाने, उसके विकास, उसके उत्थान तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में शिक्षा की महती भूमिका होती है। शिक्षित और ज्ञानवान होने के कारण व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को निष्ठापूर्वक निष्पन्न करता है। प्राचीन काल में वह स्नातक के रूप में वह अपने ही हित का ध्यान नहीं रखता था बल्कि वह अन्यान्य जिज्ञासु विद्यार्थियों को निशुल्क शिक्षा भी प्रदान करता था। वह अपने कर्म करते हुए अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा दृढ रखता था। पुत्र, पति और पिता के रूप में वह अपने विभिन्न उत्तरदायित्व को संपन्न करता था। विद्यार्थी के समावर्तन समारोह के उपदेश में उसके लिए इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया था। "सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना, स्वाध्याय में प्रमाद न करना, आचार्य की दक्षिणा दे लेने पर संतति उत्पादन की परंपरा विच्छिन्न न करना। सत्य से न हटना, धर्म से न हटना, लाभ कार्य में प्रमाद न करना, महान बनने के सुअवसर से न चूकना। पठन– पाठन के कर्तव्य में प्रमाद न करना, देवता और पितरों के कार्य (यज्ञ और श्राद्ध आदि) से प्रमाद न करना। माता को देवी समझना। आचार्य को देवता

समझना, अतिथि को देवता समझना। अन्यान्य दोष रहित कार्यों को करना।'[8] इस कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य के अनेकानेक उत्तरदायित्व थे, जिन्हें वह शिक्षा प्राप्ति के बाद सोत्साह मनोनिवेशपूर्वक संपादित करता था। भारतीय समाज में सभी वर्णों और जातियों के अपने प्रथक– प्रथक कर्म थे, जिनको निष्पन्न करना उनका परम धर्म था। सबके अपने व्यवसाय और पेशे थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने धीमी किंतु सतत् विकास यात्रा पूरी की है। स्वतंत्रता के समय देश लगभग निरक्षर हो गया था। साक्षरों की संख्या उंगलियों में गिनने लायक थी, कहने का तात्पर्य है कि देश की औसत शिक्षा न्यून ही थी। ब्रिटिश शासन ने अपना हित साधने के लिए भारतीयों को सहयोगी बनाया था ताकि वे उनके कार्यों में सहयोग कर सकें। भारत सरकार ने इस ओर काफी ध्यान दिया। 21वीं सदी में भारत शिक्षित युवा के रूप में विश्व के सामने उभरकर आया है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा देश भारत है। युवा शक्ति के बल पर आज देश ने हर क्षेत्र में प्रगति की है।

शिक्षा को हम व्यापक रूप में देखते हैं तो हम पाते हैं कि हमारा समाज मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित है– उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। इन वर्गों के शिक्षाओं में काफी असमानता है। भारत सरकार हर वर्ग को शिक्षित करने के लिए संकल्पित है। मुख्यतः मध्य वर्ग और निम्न वर्ग शिक्षा के लिए जोर दिया जा रहा है। हर व्यक्ति शिक्षित हो यह हमारी प्राथमिकता बन गई है। शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। बिना शिक्षा के पशु और मनुष्य में कोई अंतर नहीं रह जाता। शिक्षा से मनुष्य के जीवन स्तर में सुधार आता है और वह लगातार उन्नति करता जाता है।

विभिन्न वर्गों की शिक्षा एवं प्राथमिकताएं :-

1) **उच्च वर्ग :-** उच्च वर्ग अपने बालक– बालिकाओं को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलाने में ही अपना सम्मान समझता है। उसके लिए अंग्रेजी माध्यम शान बन चुका है। महंगे स्कूलों में वह अपने बालक– बालिकाओं को शिक्षा दिलवाता है, जिससे वे अपने स्तर को ऊंचा रख सकें। यही कारण है कि निम्न वर्ग में खास सुधार नहीं हो सका। यह वर्ग निम्न वर्ग की मूलभूत समस्याओं को पकड़ने में असमर्थ रहता है। गरीब की दशा में विशेष सुधार नहीं हो सका है। ऊँचे पद प्राप्त कर लेना उनकी प्राथमिकता में आ गया है।

2) **मध्य वर्ग :-** मध्य वर्ग अपने संघर्ष और सतत से शिक्षा की ओर बढ़ तो रहा है किंतु वह उच्च वर्ग से काफी पिछड़ा हुआ है। वह उच्च वर्ग का पिछलग्गू गया है। उतने संसाधन न हो पाने पर भी वह उच्च वर्ग का अनुसरण करने से कर्जदार होकर परेशान सा दिखता रहता है। फिर भी मध्यवर्ग सफलता के सोपानों को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्पित रहता है। वह ऊंचे पदों को प्राप्त करने का सफल प्रयास कर रहा है किंतु अभी उसके लिए मंजिल बहुत दूर है। हां, देश के विकास में अपना पूरा योगदान दे रहा है।

3) **निम्न वर्ग :-** शिक्षा के क्षेत्र में निम्न वर्ग की स्थिति अत्यंत सोचनीय एवं दयनीय है। एक तो अभिभावक उतना शिक्षित नहीं है कि बच्चे के भविष्य का निर्धारण कर सके। बच्चे को क्या बनाना है ? या बच्चा किस स्तर एवं रुचि का है ? वह उसके मनोविज्ञान को नहीं जान पाता है। यही कारण है कि विषय रुचिपूर्ण न होने पर अभिभावक जबरन बच्चे पर थोप देता है।

भारत सरकार इनके उत्थान के लिए प्रयासरत है। पर इतना काफी नहीं है। सरकार को इस प्रयास में तेजी लानी होगी, तभी शिक्षा के स्तर में सुधार हो सकेगा। वर्तमान सरकार मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग की शिक्षा पर विशेष जोर दे रही है। शिक्षा किसी राष्ट्र की विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होती है, इसीलिए मानव समाज में उसे उच्च प्राथमिकता प्रदान की जाती है । शिक्षा ज्ञान का वह अमूल्य अस्त्र है जो अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है जिससे सभ्यताएं बनती हैं, संस्कृतियां परवान चढ़ती हैं, व इतिहास लिखे जाते हैं। शिक्षा जीवन दर्शन है। वह सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली माध्यम है इसीलिए शिक्षा को विकास के एक मापदंड के रूप में पहचाना जाने लगा है। जो राष्ट्र पढ़ता है वही आगे बढ़ता है। किसी भी समाज को अगर प्रगति के पथ पर अग्रसर होना है तो शिक्षा को ही माध्यम बनाना पड़ेगा। शिक्षा ही मात्र एक ऐसा साधन है जिसके सहारे व्यक्ति और समाज में चेतना जागृत कर उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य आचरण की सभ्यता, उत्कृष्ट सांस्कृतिक चेतना, मंगल की उत्कंठा, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को चरमोत्कर्ष करता है। हमारे देश का युवा विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। भारतीय युवाओं ने परिश्रम और लगन से शिक्षा के हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना ली। इसी पहचान को देखकर इंग्लैंड के प्रधानमंत्री तथा अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपनी– अपनी युवा पीढ़ी को आगाह किया कि यदि वे आलस छोड़कर अपनी शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं रहेंगे तो वे भारतीयों से पिछड़ जाएंगे। इन नेताओं के द्वारा अपने देश की युवा पीढ़ी को आगाह करना यह दर्शाता है कि हमारे देश की युवा पीढ़ी विश्व को टक्कर दे रही है। आज के इस भूमंडलीकरण के युग में विश्व सिमटकर एक गांव बन गया है। जिस प्रकार से गांव में एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में जाना कोई कठिन काम नहीं है, उसी तरह एक देश से दूसरे देश जाना आना बड़ा आसान काम हो गया है।

आज की युवा पीढ़ी ने समाज की रूढ़ि मान्यताओं को समाप्त कर अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है। वह शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर आगे बढ़ रहा है। आज का युवा अपनी मंजिल पाने के लिए तत्पर है। इनकी मेहनत, जोश और ज्ञान को देखकर लगता है कि सारी सफलताएं इन्हें के कदम चूमेंगी। इनके इस जोश से लगता है कि यह भारतीय युवा पीढ़ी अपनी मंजिल प्राप्त ही नहीं करेगी वरन उस ऊंचाई पर भी पहुंच सकती है जिसके आगे कोई और ऊंचाई नहीं है। कवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में

'इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रांत भवन में टिक रहना।
किंतु पहुंचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह ना होद्य।'

भारतीय युवा 21 वीं सदी से 22 वीं सदी का मार्ग प्रशस्त करने वाला युवा बन गया है, जिसे विश्व उनकी तरफ बड़ी जिज्ञासा से देखता है कि यह आगे के लिए क्या कर रहा है ? हमारी शिक्षा व्यवस्था जो एक अच्छे समाज का सृजन करती है, विचार परिवर्तन करती है और जिसका मुख्य प्रयोजन होता है– देश और समाज को सुनागरिक उपलब्ध कराना। शिक्षा के द्वारा समाज को सुनागरिक प्राप्त होंगे तो समस्या कहीं रहेगी ही नहीं क्योंकि क्योंकि कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों के होते हुए कोई भी समाज विकृत हो ही नहीं सकता। स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक भारत ऐसे राष्ट्रीय शिक्षा तंत्र को विकसित करने के लिए निरंतर संघर्षरत है, जो मात्रा और गुणवत्ता

के प्रश्न तथा शिक्षा के अतिरेक बनाम सफलता के मुद्दों को राष्ट्रीय संस्कृति तथा राष्ट्रीय मूल्यों के आधार पर सुलझा सके। यदि भारत के उच्च शिक्षा तंत्र को एक उचित स्वरूप प्रदान किया जाए तो यह विकास की अपार संभावनाओं के द्वार खोलकर मानवीय उद्यमशीलता को केंद्र में स्थापित कर सकता है तथा ज्ञान आधारित समाज के अकादमी के नेतृत्व का सर्जन कर सकता है। अतः प्रत्येक क्षेत्र की तरह भारतीय शिक्षा का क्षेत्र भी वैश्वीकरण से अछूता नहीं रह गया है। वास्तव में हम चाहें या ना चाहें हम समय के एक ऐसे बिंदु पर आकर खड़े हो गए हैं जहां वैश्वीकरण एक सच्चाई है जिस से बचकर निकला नहीं जा सकता है। वैश्वीकरण के अपने ही लाभ हैं और अपनी ही हानियां भी हैं। बुद्धिमत्ता यही है कि उचित रणनीति के निर्माण द्वारा इसकी हानियों को न्यूनतम किया जाए और अधिकतम लाभ की प्राप्ति की जाए। वास्तव में भूमंडलीकरण भारतीय शिक्षा तंत्र के नवनिर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान कर सकता है और एक ऐसे नए समाज की स्थापना कर सकता है जिसके निर्माण का अवसर कई हजारों वर्षों में एक बार ही आता है। इस प्रकार कहा जा सकता है "शिक्षा एक ऐसी चीज है जो किसी राष्ट्र को बना सकती है, किसी व्यक्ति को ऊपर पहुंचा सकती है, पीढ़ियों तक इसका असर रहता है आज यदि भारत का नाम पूरे विश्व में हुआ है तो इसका बहुत बड़ा कारण भारतीय इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिकों, प्रोफेसर और कंप्यूटर विशेषज्ञ अर्थात शिक्षा ही है।[9]

संदर्भ :–

1. विष्णु पुराण, 6.5.61, वही 1.19.41
2. छांदोग्य उपनिषद, 1.1.10
3. ब्राह्मण उपनिषद, 1.5.16
4. विष्णु पुराण, 6.5.62
5. सु.र.सं., 194
6. नीतिशतक, 16
7. अथर्ववेद, 11.3.15
8. तैतीरीय उपनिषद, 1.11
9. दैनिक जागरण, 27 नवम्बर 2010

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 210-212

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

प्रतिमा सिंह, (सहायक आचार्य)
जे.एन.टी.टी कॉलेज सकतपुरा, कोटा

विकसित राष्ट्र की कल्पना, शिक्षित पूरे देश को करना।

शिक्षा के बिना एक आदमी बिना नीव के एक इमारत के समान है। शिक्षा जीवन की एक अमूल्य निधि है जिसका कोई मोल नहीं है। शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी समाज का उत्थान उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों से होती है अगर हमें हमारे समाज को समृद्धि के उच्च शिखर पर ले जाना है तो हमें एक शिक्षा रूपी हथियार का प्रयोग करना चाहिए यह ऐसा मजबूत हथियार है जो बिना किसी के नुकसान पहुंचाए जिस व्यक्ति के हाथ में होता है उसे जीवन पर्यंत सुखी जीवन प्रदान करता है। शिक्षा और ज्ञान ना केवल व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है बल्कि अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भी आवश्यक है बल्कि यह अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भी आवश्यक भी आवश्यक है शिक्षा एक व्यक्ति की सोच का पोषण करती है और उन्हें जीवन में सोचने कार्य करने और जीवन में आगे बढ़ने की क्षमता प्रदान करती है।

शिक्षा लोगों को सशक्त बनाती है और उन्हें काम के संबंधित क्षेत्रों में रहने और अनुभव के सभी पहलुओं में कुशल बनने में मदद करती है शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है यह लोगों के दिमाग को खोलती है और समाज आगे बढ़ने और विकास करने की क्षमता प्रदान करती है । शिक्षा एक मात्र ऐसी अमूल्य संपत्ति है जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है और अगर वह प्राप्त करना चाहे शिक्षा एक मात्र आधार है जिस पर मानव जाति का भविष्य निर्भर करता है शिक्षा एकमात्र आधार है जिस पर मानव जाति का भविष्य निर्भर करता है। मानव जाति ही समाज का निर्माण करते हैं अगर मानव अपना विकास कर ले अपने ज्ञान के इंद्रियों का जागरण कर ले तो उसका विकास और उसका उत्थान अवश्य होगा और अगर एक एक व्यक्ति अपना अपना विकास कर ले तो समाज का उत्थान स्वयं ही हो जाए हम सभी जानते हैं कि शिक्षा हमारे जीवन में क्या स्थान है या कितना महत्वपूर्ण है आज आधुनिक जीवन यापन करने के लिए हमें आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना चाहिए आज नौकरी व्यवसाय या कोई भी अन्य काम करने के लिए शिक्षा हमारी मूल आवश्यकता है शिक्षा के माध्यम से हम हमारे जीवन की गाड़ी को अच्छे से चला सकते हैं ।

हम जब भी शिक्षा के बारे में सोचते हैं सबसे पहले हमारा ध्यान ज्ञान प्राप्त करने पर जाता है। शिक्षा एक ऐसा आवश्यक उपकरण है जो हमारा ज्ञान कौशल तकनीक बढ़ाता है साथ ही हमारे कर्तव्य को समझने में सक्षम

बनाती है इसके अलावा शिक्षा हमें अन्याय हिंसा भ्रष्टाचार और अन्य बुरे तत्वों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है।

शिक्षा ही हमें आसपास की दुनिया का ज्ञान देती है शिक्षा राष्ट्र के विकास में सबसे महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा के बिना हम कुछ भी नया न तो कर सकते हैं और नहीं सोच सकते हैं अर्थात हम नए विचार नहीं ला सकते हैं इसका मतलब शिक्षा के बिना किसी भी प्रकार का विकास संभव नहीं है शिक्षा हर देश के लिए महत्वपूर्ण है शिक्षा घर से शुरू होती है और जीवन पर्यंत जारी रहती है शिक्षा हमें नई चीजें सीखने अच्छी नौकरी खोजने और समाज में सम्मानजनक जीवन जीने में मदद करती है अच्छी नौकरी सुख खोजने और समाज में सम्मानजनक जीवन जीने में मदद करती है। एक व्यक्ति जितना अधिक शिक्षित होता है जीवन में उसकी सफलता की संभावना उतनी ही अधिक होती है।

हमारे पहले शिक्षक हमारे माता–पिता हैं। वह हमें सिखाते हैं कि कैसे अपनी मूल भाषा बोले और अपने आसपास की चीजों को पहचाने। शिक्षकों प्राध्यापक हमें विभिन्न महत्वपूर्ण और विशिष्ट विषयों की शिक्षा देकर हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षा हमें सही गलत को जानने में मदद करती है और हमें हमारे देश के जिम्मेदार नागरिक बनाती है। शिक्षा के माध्यम से आने वाली पीढ़ी को समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों के दुष्परिणामों से प्रदेश बाद अवगत कराकर उसके प्रति शीत क्रांति लाई जा सकती है सीत क्रांति लाई जा सकती है। जैसे जाति प्रथा बाल विवाह सती प्रथा कन्या भरूण हत्या आदि अन्य जो समाज में व्याप्त कुरीतियां है उनको हम केवल देश के नागरिकों को शिक्षित करके ही दूर कर सकते हैं इसका यह एक मजबूत हथियार है जो इन्हें जड़ से खत्म कर सकता है।

दूसरी तरफ धार्मिक दृष्टि से देखें तो हमारे समाज में अनेक वाद–विवाद धर्म में व्याप्त अंधविश्वास के कारण होते हैं धार्मिक दृष्टि से देखें तो हमारे समाज में अनेक वाद विवाद धर्म में व्याप्त अंधविश्वास के कारण होते हैं। धर्म का सही मतलब समझना केवल शिक्षा के साधन ही हैं यदि हम निष्पक्ष भाव से देखें तो कोई भी धर्म दूषित विचारों को स्थान नहीं देता है और सभी धर्मों के आदर्शों पर चला जाए तो सभी उन्नति के पथ पर ले जाते हैं केवल शिक्षा के सही ज्ञान से समाज के इस समस्याओं को दूर कर सकते हैं।

किसी भी समाज का विकास उस समाज में रहने वाले नागरिकों को पर निर्भर करता है अगर देश का नागरिक सुख शिक्षित है तो वह अपना विकास अपने ज्ञान के माध्यम से कर सकता है। पढ़े लिखे लोगों की सोच भी विस्तृत होती है यदि हमें अपने समाज का विकास हर रूप में करना है तो केवल हम शिक्षा के माध्यम से ही कर सकते हैं शिक्षित व्यक्ति समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करता है तथा सही सोच को बढ़ावा देता है। अगर देश के हर नागरिक का विकास करना है तो केवल शिक्षा ही वह साधन है जिससे समाज के नागरिकों का विकास किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा बालक की मूल प्रवृत्तियों का परिष्कार होता है और यह परिष्कार आदत बनकर चरित्र का निर्माण करता है। चरित्र की व्याख्या करते हुए राधाकृष्णन ने कहा है, ष चरित्र भाग्य है। चरित्र वह वस्तु है जिस राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है तुच्छ चरित्र वाले मनुष्य श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण

नहीं कर सकते हैं। यदि हमारे पैरों के नीचे की जमीन खिसक रही हो तो हम पहाड़ पर नहीं चल सकते हैं जबकि हमारे भवन की न्यू ही हिल रही है तब हम उस ऊंचाई पर किस प्रकार पहुंच सकते हैं जिस पर हम पहुंचना चाहते हैं।'

शिक्षा मानव को उस की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता का विकास करती है। वह अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति शिक्षित होने पर अच्छे से कर सकता है। अगर वह अच्छी शिक्षा लिए है उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता का विकास करती है। वह अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति शिक्षित होने पर अच्छे से कर सकता है। अगर वह अच्छी शिक्षा लिए है अर्थात दूसरे शब्दों में हम कर सकते हैं कि शिक्षा अगर वह व्यवसाय परख लिया है तो वह अपने जीवन में कभी बेरोजगार नहीं रह सकता है। वह अपनी जीविका चलाने के लिए किसी और पर निर्भर नहीं होना शिक्षा अगर वह व्यवसाय पर रख लिया है तो वह अपने जीवन में कभी बेरोजगार नहीं रह सकता है। वह अपने जीविका चलाने के लिए किसी और पर निर्भर नहीं होना पड़ता और जीवन पर्यंत वह एक अच्छा जीवन यापन करता है किसी के विचारों तले दब ना नहीं पड़ता है विचारों तले दवना नहीं पड़ता है।

निष्कर्ष :–

अतः अंत में हम कह सकते हैं कि किसी भी देश की उन्नति उस देश की जनता पर निर्भर करती है जिस देश में जितनी अधिक शिक्षा होगी वह देश समाज उतनी ही अधिक समृद्ध होगी होगा अगर हमें हमारे समाज में व्याप्त बुराइयों को जड़ से खत्म करना है तो सबसे अधिक हमें उस समाज की शिक्षा प्रणाली को मजबूत करना होगा क्योंकि हमारे जीवन की न्यू शिक्षा ही है। भारत एनडीपी 2020 का मुख्य उद्देश्य इस समाज को पूरी तरह से उनकी मांगों को उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही बनाया गया है। इस समय समाज को समृद्ध बनाने के लिए रोजगार की जरूरत है अगर हर व्यक्ति अपनी जीविका पार्जन अच्छे से करता है तू अपना और अपने परिवार का भरण पोषण अच्छे से कर सकता है और अगर वह संतुष्ट है तो समाज संतुष्ट है और इस तरह से समाज का दिन–प्रतिदिन विकास होगा और आगे बढ़ेगा हम कर सकते हैं कि एक एक व्यक्ति अपना विकास कर ले तो समाज का विकास अपने आप होगा क्योंकि समाज इन व्यक्तियों के मेल से ही बना है अंत में हम कर सकते हैं कि :–

'बच्चों को तुम पढ़ाओ लिखाओ
कर संसार को बेहतर बनाओ'

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 213-215

वैश्विक भाषा की ओर अग्रसर – हिन्दी

डॉ. प्रेमलता शुक्ला

सहायक आचार्य

जवाहरलाल नेहरू शिक्षा शास्त्री महाविद्यालय, सकतपुरा, कोटा (राज.)

सृष्टि के निर्माण काल से ही भाषा का सम्बन्ध मानव समाज से रहा है। मानव जीवन में भाषा एक अभिन्न अंग है, जिसके बिना मानव गूंगा है।

हमारे देश भारत की राष्ट्रीय एवं मातृभाषा हिन्दी है। हमारे देश में दैनिक बोलचाल एवं अधिकांश क्रियाकलाप हिन्दी भाषा में ही किये जाते है।

प्राचीन काल से ही विदेशी व्यापार एवं राजनैतिक संबंध स्थापित करने के लिये व सम्प्रेषण के लिये आवश्यकतानुसार भाषा अपनानी पड़ती है। उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री और उनके प्रचार–प्रसार के लिये अपनाये जाने वाले साधनों में स्थानीय भाषा का प्रयोग होता है, भारत में इस कार्य के लिए अधिकतर हिन्दी भाषा का प्रयोग हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी माल बेचने के लिए हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ अपना रही है।

भारत के बहार नेपाल, भूटान, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैण्ड, हांगकांग, फीजी, मौरीशस, ट्रिनीकाड गयाना, सूरीनाम इग्लैण्ड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में हिन्दी भाषी प्रचूर मात्रा में है।

वैश्वीकरण एवं बाजारवाद के संदर्भ में हिन्दी का महत्व इसलिए बढ़ेगा क्योंकि भविष्य में भारत व्यावसयिक व्यापारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से एक विकसित होगा ।

विश्वभाषा तो विश्व की उस प्रत्येक भाषा को कहा जा सकता है जिसके प्रयोक्ता एकाधिक देशों में बसे हुए है। किन्तु विश्वभाषा पद की वास्तविक अधिकारिणी वे भाषाएँ है, जो विश्व के अधिकतर देशों में पढ़ी, लिखी, बोली, सूनी और समझी जाती है। वस्तुतः विश्वभाषा के प्रमुख कार्य होते है। – बोलचाल एवं जनसम्पर्क, साहित्य सृजन शिक्षा एवं जनसंचार माध्यम, प्रशासनिक कामकाज व्यावसायिक और तकनीकी अनुप्रयोग और विश्वबोध या वैश्विक चेतना ।

वह भाषा लचीली हैं, उसमें विभिन्न मानक रूप है। परस्पर संप्रेषणीयता किसी ना किसी स्वीकृत मानक

के माध्यम से बनी हुई है, और हिन्दी भाषा इन सभी पर खरी उतरती है।

वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा के लिये सकारात्मक प्रवृतियाँ–

(1) विदेशी सरकारे भी भारत में अपनी स्वीकार्यता बढ़ाये और जनसंवाद स्थापित करने के दृष्टिकोण से बहुत कुछ कर रही है । विभिन्न विदेशी संचार माध्यम हिन्दी में प्रसारण करते है। जैसे – बी.बी.सी. लंदन, वायस ऑफ अमेरिका, रेडियो तेहरान, जापान रेडियो चायन, रेडियो कून्टरनेशनल आदि से नियमित कार्यक्रम प्रसारित किये जाते है।

(2) विश्व बाजार में हिन्दी की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए मोबाइल कंपनियों ने हिन्दी को अपना लिया हैं। माइक्रोसॉफ्ट सॉफ्टवेयर (एक्सपो हिन्दी) निकालना सूचनाक्रांति के इस दौर में अभिनव उपलब्धि के रूप में देखा जा रहा है।

(3) वैश्विक स्तर पर हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन होना ।

(4) हिन्दी की व्यापकता के कारण दुनिया के 175 देशों में हिन्दी के शिक्षण एवं प्रशिक्षण के अनेक माध्यम केन्द्र बन गये है । हिन्दी का शिक्षण एवं प्रशिक्षण विश्व के लगभग 180 विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थाओं में चल रहा है। सिर्फ अमेरिका में 100 अधिक विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में हिन्दी पढाई जा रही है।

(5) लोक तान्त्रिक आधार पर हिन्दी एक विश्वभाषा उसके बोलने और समझने वालो की जनसंख्या विश्व तृतीय स्थान पर है।

(6) दिसम्बर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की जो सूची जारी की है, उसमें हिन्दी भी एक है।

(7) ''कोर लैंग्वेजेज'' नामक साइट में दस सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया था।

(8) इन्टरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिये सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया है।

(9) विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की गई ।

(10) विश्वस्तर पर यह सिद्ध हो चुका है कि हिन्दी भाषा अपनी लिपि और ध्वन्यात्मकता (उच्चारण) के लिहाज से सबसे शुद्ध और विज्ञान सम्मत भाषा है। इसमें एक बिंदू (अनुस्वार) का भी अपना महत्व है, दूसरी भाषाओं में यह वैज्ञानिकता नही पाई जाती है।

इसलिये ये आवश्यक है कि हिन्दी अपने आप में एक परिपूर्ण भाषा हैं और वक्त आ गया है, कि अब इसे विश्व भाषा का दर्जा मिलना ही चाहिये ।

संदर्भ –

हिन्दी विश्व भाषा बनने की ओर

लेखक – डॉ. दिनेश मणि,

शैक्षिक मंथन, जून –2009

विश्व भाषा की ओर हिन्दी के बढते कदम

राकेश शर्मा निशीथ

https//pajbhashagov.in.pdf

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 216-217

भारतीय समाज एवं हिन्दी साहित्य

डॉ. राकेश गौतम
सहायक आचार्य
जवाहरलाल नेहरू शिक्षा शास्त्री महाविद्यालय, सकतपुरा, कोटा (राज.)

विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है हिन्दी भाषा हिन्दी भाषा का जन्म संस्कृत भाषा से माना जाता है, परन्तु मध्ययुगीन भारत के अवधी, मागधी, अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य को हिन्दी का आरम्भिक साहित्य माना जाता है। हिन्दी साहित्य में अपनी शुरूआत लोकभाषा कविता के माध्यम से की और गद्य–गद्य का विकास तदुपरान्त हुआ। हिन्दी का आरम्भिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता हैं। हिन्दी भाषा में साहित्य तीन प्रकार का मिलता हैं। गद्य, पद्य और चम्पू। गद्य व पद्य के मिश्रण को चम्पू कहा जाता है। खड़ी बोली की पहली रचना कौन–सी है, इस विषय में विवाद है लेकिन अधिकांश साहित्यकार लाला श्रीनिवास द्वारा लिखे गये उपन्यास परीक्षा गुरू को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते है। वैसे हिन्दी साहित्य का आरम्भ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। हिन्दी साहित्य के विकास को आलोचक सुविधा के लिए पाँच ऐतिहासिक चरणों में विभाजित कर देखते है। आदिकाल (1400 ईस्वी पूर्व), भक्ति काल (1375 से 1700), रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900), आधुनिक काल (1850 ईस्वी के पश्चात्), नव्योत्तर काल (1980 ईस्वी के पश्चात्)

आदिकाल :– हिन्दी साहित्य आदिकाल को आलोचक 1400 ईस्वी से पूर्व का काल मानते है जब हिन्दी का उद्‌भव हो ही रहा था। हिन्दी की विकास–यात्रा दिल्ली, कन्नौज और अजमेर क्षेत्रों में हुई मानी जाती है। पृथ्वीराज चौहान का उस समय दिल्ली में शासन था और चंदबरदाई की रचना नामक उसका एक दरबारी कवि हुआ करता था। चंदबरदाई की रचना 'पृथ्वीराजरासो' है। जिसमें उन्होने अपने मित्र पृथ्वीराज की जीवन गाथा कही है। चंदबरदाई का यह ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य का सबसे वृहत् रचना मानी गई है।

भक्तिकाल :– हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल का समय 1375 से 1700 तक माना जाता है। इस समय भारत में भक्ति लहर चल रही थी, इस काल को समृद्ध बनाने वाली दो काव्य धाराएँ है– (1) निर्गुण भक्तिधारा तथा (2) सगुण भक्तिधारा। निर्गुण भक्तिधारा को आगे दो हिस्सों में बाँटा गया है। एक ज्ञानाश्रयी शाखा जिसके प्रमुख कवि, कबीर, नानक दादूदयाल, मलूकदास, रैदास व सुन्दरदास आदि है।

निर्गुण भक्ति की दूसरी शाखा सूफी काव्य है। इसे प्रेमाश्रयी शाखा भी कहा जाता है। इस शाखा के प्रमुख

कवि है – कुतुबन, मंझन, मलिक मोहम्मद जायसी, कासिम शाह, नूर मोहम्मद आदि।

भक्तिकाल की दूसरी धारा को सगुण भक्ति धारा कहा जाता है। सगुण भक्तिधारा की दो शाखाऐं प्रथम रामाश्रयी शाखा तथा कृष्णाश्रयी शाखा। रामाश्रयी के प्रमुख कवि– अग्रदास, तुलसीदास, केशवदास, विश्वसिंह आदि है।

कृष्णाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि – नन्ददास, सुरदास, मीरा, रसखान, रहीम आदि है, इन्होने कृष्ण के ऊपर पद्य आदि की रचना की ।

रीतिकाल – हिंदी साहित्य का रीतिकाल संवत् 1700 से 1900 तक माना जाता है। रीति का सामान्य अर्थ परिवाटी है। इस काल को इसलिए रीतिकाल कहा जाता है, क्योंकि इस काल में अधिकतर कवियों ने श्रृंगार वर्णन, अलंकार प्रयोग, छन्द बद्धता आदि के बँधे रास्ते की ही कविता की । इस काल को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त तीन भागों में बाँटा जाता है।

आधुनिक काल – हिन्दी साहित्य पिछली दो सदियों में विकास के पडावों से गुजरा है। आधुनिक काल हिन्दी साहित्य जिसमें गद्य तथा पद्य में अलग–अलग विचार धाराओं का विकास हुआ। इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग और यथार्थवादी युग इन चार नामों से जाना गया, वहीं गद्य में इसको द्विवेदी युग, भारतेंदु युग, रामचन्द्र शुक्ल व प्रेमचन्द युग और अद्यतन युग का नाम दिया गया।

अद्यतन युग के गद्य साहित्य के अनेक ऐसी साहित्यिक विधाओं का विकास हुआ जो पहले या तो थी ही नही या फिर इतनी विकसित नही थी कि उनको साहित्य की एक अलग विधा का नाम दिया जा सके। जैसे – यात्रा विवरण, आत्मकथा, डायरी, रूपक, रेडियों नाटक, फिल्म आलेख पटकथा लेखन इत्यादि।

नव्योत्तर काल – इस काल की कई धाराएँ है एक तो पश्चिम की नकल को छोड़ एक अपनी वाणी पाना, दो अतिशय अलंकार से परे सरलता पाना, तीन जीवन और समाज के प्रश्नों पर असंदिग्ध विमर्श । वर्तमान समय में हिन्दी में कम्प्यूटर से जुडी नई विधाओं का भी समावेश हुआ है, जैसे जालधर की रचनाएँ और चिट्ठालेखन, पत्र– पत्रिकायें। कम्प्यूटर साहित्य केवल भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व के हर कोने से लिखा जा रहा है। इसके साथ हिन्दी साहित्य का आद्यतन युग में प्रवासी साहित्य के एक नए युग का आरम्भ भी माना जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

इलाहबाद, लोकभारती प्रकाशन

हिन्दी साहित्य का इतिहास – सुमनराजे

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 218-223

वैश्वीकरण एवं हिन्दी

रामसेवक राम भगत
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
शासकीय श्यामा प्रसाद मुखर्जी
महाविद्यालय सीतापुर

डॉ. डी.एस. मरावी
सहायक प्राध्यापक दर्शनशास्त्र
शासकीय टी.सी.एल. स्नातकोत्तर
महाविद्यालय जांजगीर

सारांश :-

वैश्वीकरण आज की अनिवार्यता है, क्योंकि यह समकालीन दुनिया की सच्चाई है। वर्तमान युग वैश्वीकरण का है। आधुनिक संदर्भ में वैश्वीकरण का आशय बाजारोन्मुख अर्थतंत्र पर आधारित व्यापारिक व्यवसायिक क्रियाकलापों के वैश्विक प्रसारण से है जिसमें न केवल व्यापार और व्यवसाय का वैश्वीकरण होगा अपितु विभिन्न देशो के मध्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विचारो के आदान प्रदान से संपूर्ण विश्व को एक ग्राम में परिवर्तित करने की अवधारणा है।

इक्कीसवीं सदी के इस दौर में उच्च शिक्षा के लिए अंभियांत्रिकी, चिकित्सा विज्ञान प्रौद्योगिकी की किताबें हिन्दी में ''न'' के बराबर है। उत्तर आधुनिकता के कारण हमारा देशी भावबोध हमसे दूर हो गया। आज के बाजारवाद की गिरफ्त में सहित्य का संसार भी आ गया है।

हिन्दी के प्रचार–प्रसार में बाधक स्थिति जीवन मूल्यों के प्रति हमारी निरन्तर बढ़ती अनास्था है। हमने हिन्दी का मूल्यांकन मात्र एक भाषा के रूप में किया है जबकि उसका मूल्यांकन भारतीय संस्कृति और जीवन मूल्यों की वाहिका मानकर किया जाना चाहिए।

किसी भी भाषा को जन–जन में आत्मस्थ करने के लिए सबसे जरूरी और प्रभावी कदम यह है कि हम उसे शिक्षा का माध्यम बनाए। जिससे भावी पीढ़ी के मन में इस भाषा के प्रति सम्मान जगे वो प्रारंभ से ही इससे स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करें। इस दिशा में महात्मा गांधी के दर्शन सहअस्तित्व सहभागिता–सहकारिता और संवेदनशीलता को हमे प्रयोग में लाना होगा। तब ही देश के जन जन के मन में हिन्दी गौरवमयी स्थान जरूर प्राप्त करेगी।

प्रस्तावना–

वैश्वीकरण का भाषा वैविध्य पर प्रभाव पड़ा है। भारतीय भाषाएं भी इससे अछूती नहीं है। वर्तमान वैश्विक युग में विकासशील देशो की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अस्मिता दॉव पर लगी है। उपभोक्तावाद का प्रचार–प्रसार वैश्वीकरण की प्रमुख शर्त है। अतः व्यवसायिकता के दृष्टिकोण से अंग्रेजी का पलड़ा अन्य भाषाओं

पर भारी रहा है। भाषिक संस्कार शताब्दियों से एक लंबी प्रक्रिया के अंतर्गत विकसित होते है। किसी भाषा के बोलने वालो की संख्या घट सकती है लेकिन वह भाषा किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। संभवतः इसी कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी बड़े पैमाने पर अपने उत्पादो के विज्ञापन न केवल हिन्दी में तैयार करवा रही है बल्कि उनमें क्षेत्रीय लहजा भी अपनाने पर जोर दे रही है। यह सच है कि वैश्वीकरण ने संवाद के कई रास्ते खोले है इसमें भाषा के मुद्रित स्वरूप पर जरूर आघात पहुंचा है।

वैश्वीकरण की लगातार तीव्र होती आंधी ने भारतीय भाषाओं की बुनियाद हिला दी है, हमारी बोलियॉ पीछे छूटती जा रही है। वास्तव में वैश्वीकरण आंचलिकता, क्षेत्रीयता एवं स्थानीयता का विरोधी है। ऐसे में देशज तत्वों पर संकट आना स्वाभाविक है।

भाषा मनुष्य और मनुष्यता की वह धरोहर है जो युगों से निरन्तर पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभवो को सुरक्षित और संवर्धित करती आ रही है। फलस्वरूप उसमें समाज की रूढ़िया भी है और परम्पराएं भी। रूढ़ियॉ स्थिर होती है जबकि परम्पराएं गतिशील और इसी से मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास की अवधारणा चरितार्थ होती है। भाषा मनुष्य की चेतना है जिसमें मनुष्य का अस्तित्व और संपूर्ण व्यवहार जगत परिचालित होता है।

विष्व हिन्दी सम्मेलन –

प्रथम– 10–14 जनवरी 1975 – नागपुर

द्वितीय – 28–30 अगस्त 1976 – मॉरीशस

तृतीय – 28–30 अक्टूबर 1983 – नई दिल्ली

चतुर्थ– 2–4 दिसम्बर 1993 मॉरीशस – पोर्टलुई (राजधानी)

पंचम् – 4–8 अप्रैल 1996 – पोर्ट ऑफ स्पेन (त्रिनिदाद व टोबेको की राजधानी)

षष्ठम् – 14–18 सितम्बर 1999 – लंदन

सप्तम् – 5–9 जून 2003 पारामारिबो (सूरीनाम की राजधानी)

अष्ट्म – 13–15 जुलाई 2007 – न्यूयार्क (अमेरिका)

नवम् – 2012 – जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका)

हिन्दी की भूमिका केवल जीविका रोजगार या अर्थोपार्जन तक सीमित न होकर सांस्कृतिक संपर्क और आदान–प्रदान की भाषा रही है।

यूरोपीय देशों ने इसके प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिन्दी के इतिहास पर सर्वप्रथम साहित्य की रचना गार्सा–द–तासी नामक एक फ्रांसीसी ने की। इसका पहला व्याकरण जासुआ केटलेर से डच भाषा में लिखा। प्रथम विस्तृत सर्वेक्षण अन्ब्राहम ग्रियर्सन ने किया। हिन्दी में प्रथम शोधकार्य ''तुलसी का धर्म दर्शन'' लंदन विश्वविद्यालय में जे.आर. कारपेन्टर ने प्रस्तुत किया था।

प्रो. आर. एस. मैकग्रेगर ने हिन्दी अंग्रेजी कोष तैयार किया। रूसी विद्धान प्रो. बेस्क्रोवनी ने ''हिन्दी रूसी शब्दकोष'' बनाया, चीनी विद्वान प्रो. यीन ने ''हिन्दी चीनी शब्दकोष'' तैयार किया। जापान के प्रो. क्यूया दोई ने प्रेमचंद के गोदान, सुमित्रानंदन पंत्र के स्वर्णकिरण, जैनेन्द्र कुमार की प्रतिनिधि कृतियों और महादेवी वर्मा की कुछ कविताओं के अनुवाद जापानी भाषा में किए। इटली के प्रो. मिलानेत्ती ने पद्भावत सुश्री चेचिलिया कोसियों ने

फणीश्वर नाथ रेणु के मैला ऑचल, प्रो. दोलचीनी ने ''रानी केतकी की कहानी'' का इटालियन में अनुवाद किया।

बल्गारिया की डॉ. वाल्या मानिरोवा ने कई हिन्दी उपन्यासो का बल्गारियाई अनुवाद किया। श्री दनिल इकजे ने प्रेमचंद की 22 कहानियों का रोमानियन भाषा में अनुवाद किया। ऐसे विद्वानों की सूची लम्बी है इन सभी हिन्दी प्रेमियों के प्रति हम नतमस्तक है। जिनके कारण हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य अधिक प्रखर और विस्तृत हुआ है।

हिन्दी भारत की अकेली भाषा है जो समय के साथ सबसे तेज गति से बदलती है। जैसे अंग्रेजी में फ्रेंच, लेटिन और तमाम भाषाओं के शब्द घिस–घिस कर अंग्रेजी के हो गए है उसी तरह हिन्दी में न जाने कितनी ही भाषाओं के शब्द रोजाना सम्मिलित होते है और घिसते–घिसते हिन्दी के हो जाते है। हिन्दी बदल जाती है मगर उसकी छवि नहीं बदलती। न्यूज चैनलों के स्क्रीन की सीमित जगहों से हिन्दी ने कमाल की जगह बनाई है। स्क्रीन पर चमकने वाले सुपर बैंड अभी तक अंग्रेजी के योग्य माने जाते थे। क्योंकि चारो दिशाएँ मात्राएं न होने के कारण अंग्रेजी के ज्यादा शब्द आ जाते है। लेकिन हिन्दी ने भी उस स्पेस के हिसाब से खुद को खूब ढाला है।

सोशल मीडिया ने हिन्दी की विविधता को समृद्ध किया है। आज की हिन्दी बिना कोई समय गॅवाये अंग्रेजी के शब्दो को अपना लेती है। हिन्दी की आधुनिकता का स्वरूप दिल्ली मुंबई और सभी बड़े शहरो के एफ एम चैनलों पर सुनाई पड़ता है। लाख रूपये से लेकर करोड़ रूपये तक की कारो में हिन्दी घनघना रही है। यह हिन्दी की आर्थिक ताकत है। हिन्दी के बोलने की सभी शैलियॉ रोज बनती है और चलती है फिर बदल जाती है। एफ एम रेडियो ने हिन्दी को फास्ट फूड की भाषा बना दिया है। सामान्य व्यंग्य से लेकर – क्रूर व्यंग्य के नए–नए वाक्य और लहजे गढ़े जा रहे है।

रेडिया जॉकी की जुबान पर अंग्रेजी के शब्द हिन्दी में ऐसे समाहित हो जाते है जैसे पता ही न चले कि ये शब्द किसी और के घर से आए है। स्टार स्पोर्ट्स की हिन्दी में कमेन्ट्री हिन्दी को खेल की नई भाषा बना रही है। यह भाषा सिर्फ आकाश और मौसम के विवरण से नहीं बन रही बल्कि दिग्गज खिलाड़ियो के अनुभवो से निकले तकनीकी शब्दो से भी बन रही है। हिन्दी अब एक बैंड विथ है जिसमें एक साथ कई हिन्दियॉ भाग रही है। अंग्रेजी भी हिन्दी के साथ भाग रही है, आगे नहीं।

अंग्रेजी दां हो चुकी राजनीति में भी हिन्दी ने वापसी की है। मोबाईल की दुनिया में भी हिन्दी की वापसी कमाल की है। सभी मंहगे फोन बिना हिन्दी फॉन्ट के नहीं बिक सकते। इंटरनेट और मोबाईल तकनीक आई अंग्रेजी में लेकिन इन दोनो को हिन्दी ने अपना लिया है।

हिन्दी को पल्लवित करने के प्रयास –

हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं को आर्थिक सहायता, हिन्दी अध्यापक तथा अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थाओं को खर्च देना, हिन्दी की महत्वपूर्ण पुस्तक का अनुवाद और प्रकाशन करना आदि कार्य किए है। 1951 में शिक्षा मंत्रालय में हिन्दी एक्ट की स्थापना 1960 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना, 1961 में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली की स्थापना हुई। केन्द्र सरकार द्वारा प्रबोध प्रवीण की प्रशिक्षण कक्षाओं के माध्यम से और हिन्दी कार्यशालाओं के माध्यम से हिन्दी में प्रशिक्षित किया

है। 1971 में स्थापित केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो सरकारी उपक्रमों प्रतिष्ठानों, कम्पनियों, राष्ट्रीयकृत बैंको की असांविधिक सामग्री का अनुवाद करने के साथ साथ कार्यालयों के मैन्युआलों का भी अनुवाद करता है।

आज मॉरीशस और भारत की साझेदारी में विश्व हिन्दी सचिवालय मॉरीशस में कार्यरत है। विश्व हिन्दी सचिवालय ने हिन्दी को विश्वव्यापी बनाने का अपना अधिकारिक अभियान 11 फरवरी 2008 से प्रारंभ किया था। संपूर्ण विश्व में चल रही हिन्दी की गतिविधियों से हिन्दी प्रेमियों को समय–समय पर अवगत कराने के लिए सचिवालय की ओर से त्रैमासिक ''विश्व हिन्दी समाचार'' का प्रकाशन मार्च 2008 से आरंभ किया गया था। ''प्रवासी भारतीय दिवस'' सन् 2003 से प्रतिवर्ष 9–11 जनवरी को भारत में मनाया जाता है। 10 जनवरी 1975 को प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का शुभारंभ नागपुर में हुआ था अतः इस ऐतिहासिक तिथि को याद रखने के साथ ही पूरी दुनिया में हिन्दीमय वातावरण बनाने के लिए प्रतिवर्ष 10 जनवरी का दिन विश्व हिन्दी दिवस के रूप में मनाने का निर्णय विदेश मंत्रालय भारत सरकार द्वारा सन् 2006 में लिया गया था। अब प्रति वर्ष 14 सितम्बर को भारत में हिन्दी दिवस तथा 10 जनवरी को पूरे विश्व में ''विश्व हिन्दी दिवस'' के रूप में मनया जाता है।

हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ –

वर्तमान में हिन्दी भाषाई–हीनता का शिकार है। पिछले एक दशक से हिन्दी बाजारवाद की चपेट में है। वरिष्ठ हिन्दी लेखक कांति कुमार जैन के अनुसार – रक्तचाप को जैसे साइलेंट किलर कहा जाता है वैसे ही हिन्दी के संदर्भ में अंग्रेजी को हम साइलेंट चेंजर कह सकते है। हीनता के बोध से भरे लोग हिन्दी को कमतर भाषा के रूप में ऑकते है। अंग्रेजी उनके लिए छवि को चमकाने का साधन है। यह ठीक है कि जीवंत भाषाएँ उदारता के रथ पर सवार होकर चलती है। हिन्दी भी चल रही है, लेकिन तथाकथित उत्तर आधुनिक होते हिन्दी समाज में अपनी ही राष्ट्रभाषा के लिए धीरे–धीरे जगह कम हो जाए तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा ?

भौतिक विकास को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानने की हठ धर्मिता ने मनुष्य और मनुष्यता को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। यह विनाश सबसे पहले भाषा में और उसकी सर्जनात्मकता में दिखाई देता है। फलस्वरूप आज हमारी भाषा भी साधन मात्र रह गई है। विश्व बाजार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों में खपने के लिए आज हम अपनी भाषा को नकार कर अंग्रेजी अपनाने के लिए विवश हो गए है।

हिन्दी के प्रयोग में बाधक हिन्दी भाषा–भाषियों की अकर्मण्यता है। निरन्तर हिन्दी की बात करने वाला एक बड़ा वर्ग न तो वे उस हीन मानसिकता को चीर पा रहे है जो हमारे अपने ही भाईयो को अंग्रेजी में कार्य करने के लिए विवश कर रही है और न ही वे हिन्दी को ऐसी ऊर्जा दे पाए है जिससे प्रत्येक नागरिक हिन्दी भाषा में ही कार्य करने को बाध्य हो जाए। सरकारी तंत्र में तो हिन्दी केवल अनुवाद की भाषा बन कर रह गई है।

भावी रणनीति :–

हिन्दी को विश्वभाषा बनाने, विश्वमंच पर मजबूती से स्थापित करने के लिए उसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा बनाना होगा। इसके लिए देश के वैज्ञानिकों को अपना मौलिक चिन्तन और लेखन हिन्दी में करना चाहिए। राजनेताओं को देश–विदेश में अपना अभिभाषण हिन्दी में देकर हिन्दी प्रेम का परिचय देते हुए एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। हिन्दी समाज को हिन्दी के प्रचार प्रसार में जरूरी प्रयास के साथ हीनता बोध मिटाने

की आवश्यकता है। हिन्दी के संवर्द्धन के लिए सरकार द्वारा भी गंभीर प्रयास जरूरी है। ऐसे समन्वित प्रयासो के द्वारा ही हमारी हिन्दी विश्व मंच पर मजबूती से स्थापित हो सकेगी।

हिन्दी के उत्थान हेतु अब एक नए सांस्कृतिक नवजागरण का आंदोलन चलाया जाना चाहिए जो समाज में साहित्य संस्कृति जैसे विषयों के प्रति रूचि जागृत करने के लिए एक बौद्धिक वातावरण बनाने का काम करें। सत्साहित्य का प्रकाशन और उसे पढ़ने की एक राष्ट्रव्यापी संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिए अब साहित्यकारो को भी सामने आना होगा। साहित्य और मीडिया में आने वाली नई पीढ़ी की पुनश्चर्या भी जरूरी है। उनके बौद्धिक नवाचार के लिए हिन्दी ही एक कारगर विकल्प सिद्ध हो सकता है। लेकिन यह तब ही संभव है जब एक संयुक्त अभियान प्रारंभ हो। समाज में वह चेतना तथा रचनात्मक वातावरण बनाना होगा जैसे स्वातंत्र्य संघर्ष काल में बनाया गया था। पाठक दर्शक उस मीडिया का बहिष्कार करें जिसमें साहित्य–संस्कृति, जीवन–मूल्यों तथा अपनी भाषा के लिए कोई जगह नहीं हो।

मातृभाषा से लगाव तथा हिन्दी बोलने में शर्म नहीं गर्व महसूस हो। हिन्दी वाचनालय की स्थापना तथा इंटरनेट पर हिन्दी साइट्स सुलभ उपलब्ध हो। छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से बच्चो में रूचि जागृत की जाए। हिन्दी शब्द कोष को सरल रूप में बच्चो के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

भारत के प्रबुद्ध नागरिको को भावी पीढ़ी में पुस्तक संस्कार और पुस्तकों के प्रति आकर्षण एवं आदर पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए। अनेक अवसरो पर भेंट स्वरूप पुस्तक देने की परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। हिन्दी के उत्कर्ष के लिए लोक अभियानो के माध्यम से उसके प्रति रूचि, निष्ठा और आदर भाव जगाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष –

मातृभाषा एवं द्वितीय भाषा के रूप में विश्व की बहुत बड़ी आबादी द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिन्दी की गिनती विश्व की शीर्षस्थ भाषाओं में की जाती है। भारत के आर्थिक विकास और एक उभरते हुए वैश्विक ताकत के रूप में उसकी पहचान के कारण विश्व समुदाय, अंतर्राष्ट्रीय संबंधो तथा विभिन्न समाजो, समुदायो एवं लोगों के बीच हिन्दी का महत्व बढ़ गया है। हिन्दी भारत को उन देशो के साथ जोड़ती है जहॉ भारतीय मूल के लोग बसे हुए है। अपने भावो और संचित स्मृतियों के साथ कविता, गद्य, साहित्य एवं सिनेमा की भाषा के रूप में हिन्दी के सौन्दर्य में गुणात्मक वृद्धि हुई है। आज हम गर्व से यह कह सकते है कि हिन्दी विश्व के सभी महादेशो में बोली जाती है और यह एक ऐसी भाषा है जो वैश्विक स्तर पर 93 से भी अधिक देशो में पूरे उत्साह के साथ पढ़ाई जाती है। विदेशो में हिन्दी का अधिक प्रचार भविष्य में कई बातो पर निर्भर करता है। भारत का साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक महत्व जितना बढ़ता जायेगा उतना ही विश्व मंच पर हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ती जाएगी।

संदर्भ :–

1. **योजना** : सितम्बर 2015, सितम्बर 2016, सितम्बर 2017, जुलाई2018, जनवरी 2019, सितम्बर 2020, सितम्बर 2021
2. **उद्योग व्यापार पत्रिका**: फरवरी 2008, मई 2010
3. **राष्ट्रीय कार्यशाला स्मारिका** : डॉ. राधाबाई शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

06.08.2012

4. **शोध समीक्षा और मूल्यांकन** : अक्टूबर–नवम्बर 2009

5. Research Journal of Arts Management & Social Sciences – March 11

From Internet .

1. वैश्वीकरण – विकीपीडिया
2. विश्वभाषा की ओर हिन्दी के बढ़ते कदम
3. भाषा – वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी
4. हिन्दी का वैश्वीकरण
5. वैश्वीकरण में बढ़ा हिन्दी का महत्व
6. वैश्वीकरण, बाजारवाद और हिन्दी भाषा
7. वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी का स्वरूप
8. ग्लोबलाइजेशन के दौर में ग्लोबल होती हिन्दी
9. हिन्दी की वैश्विक चुनौतियॉ
10. हिन्दी – कला, आज और कल
11. राजभाषा हिन्दी के समक्ष चुनौतियॉ

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 224-229

भारतीय सिनेमा और हिंदी भाषा

डॉ. रानी कुमारी, सहायक प्राध्यापक, इतिहास
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश

भारत की गिनती विश्व के ऐसे देशों में की जाती है जहाँ विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, नस्ल, के लोग परस्पर प्रेम एवं सौहार्द से रहते हुए एकीकृत, अखंड एवं महानत्तम राष्ट्र के निर्माण को संभव बनाते हैं और इसे एक अद्वितीय एवं अमिट पहचाने देते हैं। भारत की शक्ति इसकी सामासिक संस्कृति में निहित है और इस सामासिक संस्कृति में भाषाई पहचान होना किसी भी देश के लिए बहुत आवश्यक होता है क्योंकि यह न केवल हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम है बल्कि हमारी संस्कृति की संवाहिका भी है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में यहां के निवासी प्रत्येक भाषा का सम्मान करते हैं भले ही उनकी मातृभाषा कोई भी भाषा हो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमारी भाषा हिंदी अपने राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमा को लांघते हुए भारत के बाहर भी बड़े सम्मान से बोली व पढ़ी जाती है और यह भारत के लिए गौरव का विषय है। यही कारण है कि आज विश्व के लगभग 102 देशों में हिंदी बोली एवं पढ़ाई जा रही है और इसकी इस सर्वव्यापकता के पीछे न केवल हिंदी भाषा की सरलता, सुगमता व सहजता है बल्कि सिनेमा का भी योगदान महत्वपूर्ण माना जा सकता है। हिंदी भाषा को विश्व स्तरीय पहचान दिलाने में सिनेमा का महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत की गौरवपूर्ण इतिहास, परंपरा, संस्कृति को वैश्विक स्तर पर प्रचारित–प्रसारित करने में भारतीय सिनेमा के योगदान को कैसे भूलाया जा सकता है? क्योंकि भारतीय सिनेमा न केवल भारत में लोकप्रिय है बल्कि भारत के बाहर भी इसकी धाक बनी हुई है और इसे न केवल भारतीय प्रवासी बल्कि गैर भारतीय भी बड़ी उत्सुकता एवं रूचि से देखते हैं।

भारत में दशकों से ऐसे फिल्मों का निर्माण किया जा रहा है, जिससे भारतीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति को जोड़ने का काम दशकों से जिस सरलता एवं सहजता से भारतीय सिनेमा ने किया है, वह अविस्मरणी है। यही कारण है भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मर्म एवं पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर फिल्म निर्माता फिल्मों का निर्माण करते आए हैं। इसकी बानगी हमें स्वर्गीय फिल्म अभिनेता राजकपूर के श्री 420 में भी देखने को मिला। इस फिल्म में स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू का रूस के प्रति जो प्रेम था उसी को लक्ष्य कर बनाया गया था और इसका एक गाना बेहद लोकप्रिय हुआ था ''मेरा जूता है जापानी, पतलून इंग्लिशतानी, सिर पर लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी''।

ऐसा कहा जाता है कि सिनेमा भारतीय समाज का दर्पण होता है, इसमें अतिशयोक्ति भी नहीं है क्योंकि फिल्मों में उन्हीं कहानियों, चरित्रों, घटनाओं को स्थान दिया जाता है जो हमारे इर्द–गिर्द हो रही होती हैं। फिल्मों में भाषा का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है, कारण उसी भाषा में फिल्म बनती है जिसे पूरे भारत में स्वीकार्यता व लोकप्रियता हासिल हो तो इस मामले में हमारी हिंदी भाषा काफी कारगर हुई। यही कारण है कि भारतीय हिंदी सिनेमा नें समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया है चाहे वह किसी भी वर्ग से संबंध रखता हो क्योंकि भारत का एक बड़ा वर्ग हिंदी बोलता और समझता है। इस संदर्भ में देखा जाए तो भारतीय सिनेमा की प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होगी और वह सतत् बनी रहेगी। सिनेमा को आज जितनी लोकप्रियता मिल रही है उसमें टेलीविजन के योगदान को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते क्योंकि सिनेमा के प्रारंभिक दौर की बात करें तो फिल्में देखना आम आदमी के लिए संभव नहीं था पर टेलीविजन के आने से घर–घर फिल्में देखी जाने लगी और भारतीय मानस तक अपनी पहुंच बनाई और इसने जन–जन को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में स्वीकार्यता पाई। देश के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यों को सिनेमा के माध्यम से फिल्मी पर्दे में उतारने में हिंदी एक सशक्त भाषा बन चुकी है। जब हम भारतीय हिंदी सिनेमा का मूल्यांकन करते हैं तो हम पाते हैं कि भाषा का प्रचार–प्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतरण, हिंदी गीतों की लोकप्रियता और हिंदी की अन्य उप भाषाओं को प्रसारित करने में सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान है। आज भारतीय सिनेमा हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के संवाहक के रूप में देश के कोने–कोने में पहुंच चुकी है।

अगर भारतीय सिनेमा के इतिहास पर सरसरी निगाह डाले तो पाते हैं कि इसके आरंभिक दौर में जिन फिल्मों का निर्माण हुआ था, उसमें हमें भारतीय संस्कृति खुशबू का अहसास होता है। पचास एवं साठ के दशक की बात करें तो उस दौर के चर्चित पुरूष कलाकारों में अशोक कुमार, राजकपूर, गुरूदत्त, बलराज साहनी, दिलीप कुमार, देवानंद, शम्मी कपूर आदि के नाम एवं कार्यों को कैसे भूल सकते है ? उसी प्रकार उसी दौर के महिला कलाकारों में सुरैया, निरूपा राय, कामिनी कौशल, नरगिस, नूतन, वैजयंती माला आदि का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने अपने अभिनय एवं भाषा अभिव्यक्ति से भारतीय जनमानस के अंतर्मन को झकझोर कर रख दिया था और आज भी ये भारतीय सिनेमा के अनमोल नगीनों में गिने जाते हैं। इन कलाकारों ने अपने अभिनय से कई यादगार फिल्में दीं जो पारिवारिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक दृष्टि से शानदार तो थी ही, उसकी गायकी की खनक एवं गीतों ने भारतीय सिनेमा को एक ऊँचे मुकाम पर पहुंचाया। आज भले ही ये फिल्में बीते जमाने की बात हो गई हो पर इसके किरदार एवं गाने आज भी लोगों के मानसपटल पर बनी हुई है।

ऐसा भी नहीं है कि आज फिल्में नहीं बन रही है फिल्में तो आज भी बड़े पैमाने पर बन रही हैं लेकिन उनमें पुरानी फिल्मों की तरह पारिवारिकता, सहिष्णुता, देशभक्ति के जज्बात देखने को नहीं मिलता। फिल्मकार न केवल भारतीय दर्शकों को बल्कि यूरोप, अमेरिका और खाड़ी देशों के दर्शकों को ध्यान में रखकर भी फिल्मों का निर्माण कर रहे हैं। इस प्रकार आज फिल्मों के माध्यम से हिंदी को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा है। पूरे विश्व को एक परिवार की तरह बांधने में सिनेमा का योगदान भी है। फिल्में न केवल मनोरंजन हेतु बल्कि

समाज को एक संदेश, अनुभव एवं सीख देने के लिए अपरिहार्य प्रतीत होता है क्योंकि यह एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया है।

हिंदी भाषा को विश्व का सिरमौर बनाने एवं सुगमतापूर्वक जनमानस तक पहुंचाने में मोबाइल एवं कंप्यूटर की संचार क्रांति को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। आज हिंदी भाषा विश्व के दूसरे पायदान पर है, भले ही इसे अपने देश में राष्ट्रभाषा का दर्जा न मिले लेकिन यह विश्व भाषा जरूर बन गई है। भारतीय सिनेमा निश्चय ही हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उनकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेशणीय एवं ग्राह्य है। समाज पर सिनेमा के प्रभाव की बात करें तो इसका सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष उभरकर हमारे सामने आता है। सिनेमा का प्रभाव किशोरों, युवाओं एवं बुर्जुगों सामानांतर रूप में होता रहा है।

वर्तमान परिदृश्य में देखें तो भारत विश्व में सर्वाधिक फिल्में बनाने में अग्रगण्य है लेकिन गुणवत्ता की दृष्टि से भारतीय सिनेमा का सफर अभी अपनी मुकाम पर नहीं पहुंच पाई है और उसका सफर अभी बाकी है। भारतीय सिनेमा को यह टटोलना होगा कि समाज के उत्थान में उसकी क्या भूमिका है ? नहीं तो वह दिन दूर नहीं कि टेलीविजन उसे पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ जाएगा। हिंदी सिनेमा को बॉलीवुड के नाम से जाना जाता है और यह नाम हॉलीवुड के तर्ज पर रखा गया है। भारतीय हिंदी फिल्में विश्व के कई देशों में देखा एवं पसंद किया जाता है। सिनेमा में हिंदी, उर्दू के साथ साथ अवधी, भोजपुरी, पंजाबी जैसी बोलियां भी गानों एवं संवादों में उपयोग में लाए जाते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में 14 भाषाओं को स्वीकृति प्रदान की गई थी। तब से लेकर आज तक भारत सरकार भारतीय सिनेमा को प्रत्येक भाषा पर फिल्म बनाने के लिए सुख सुविधा प्रदान कर भाषा को प्रोत्साहित कर रही है। आज सिनेमा को लेकर नवीन प्रयोग हो रहे हैं, हिंदी सिनेमा में संवाद लेखन और पटकथा तक सभी में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव देखने को मिलता है। हिंदी सिनेमा भाषा प्रचार की संस्कृति और जातीय प्रश्नों के साथ निरंतर गतिमान रहा है। गैंग ऑफ वासेपुर, पान सिंह तोमर जैसी फिल्मों ने हिंदी सिनेमा में प्राचीन परंपरा तोड़कर नयी अवधारणा को जन्म दिया है और फिल्मों में हिंदी भाषा के साथ साथ क्षेत्रीय भाषाओं का भी प्रयोग होने लगा। आज सिनेमा मे भारत की विभिन्न राज्यों की भाषाओं की झलक देखने को मिलता है लेकिन जितनी स्वीकार्यता हिंदी भाषा को मिली है उतनी किसी भी भाषा ने जगह नहीं बना पाई है। हिंदी सिनेमा के शुरूआती इतिहास की बात करें तो जब आर्देशिर ईरानी ने भारत की पहली सवाक फिल्म आलमआरा में हिंदी उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी एवं आज की बोल चाल की भाषा का प्रयोग किया। फिल्मों में व्यावसायिक संभावनाओं को देखते हुए हिंदी के विशाल दर्शक वर्ग तक पहुंचने के लिए हिंदी भाषा से बेहतर कोई दूसरा विकल्प नहीं था। इसलिए 1931 में बनी 27 फिल्मों में 22 हिंदी में ही थीं ।

जब भी हिंदी सिनेमा में हिंदी भाषा के योगदान की बात आती है तो हिंदी साहित्य की चर्चा भी अवश्य की जाती है। साहित्य चाहे लिखित हो या अलिखित उसने हमेशा से भारतीय समाज को प्रभावित किया है, यही

कारण है कि आज साहित्य की पहुंच निरक्षर एवं गैर भाषाई वर्ग तक भी हो गई है। यद्यपि साहित्य रचना का मूलाधार भाषा है परंतु वही साहित्य जब फिल्मी पर्दे पर आता है तो दृश्य उसके केन्द्र में आ जाता है, हिंदी भाषा की लोकप्रियता में हिंदी सिनेमा की दृश्यता का भी योगदान है। अब एक सवाल जेहन में यह उठता है कि हिंदी सिनेमा की अखिल भारतीय स्तर पर पहुंच बनाने में हिंदी के साहित्यिक स्वरूप के इतर अन्य किस स्वरूप का योगदान अधिक है, राष्ट्रभाषा, जनभाषा, संपर्क भाषा एवं राजभाषा। तो जवाब मिलता है इसका जनभाषा वाला रूप अथवा सभी रूपों के सम्मिश्रण वाला रूप। फिल्मकारों ने हमेशा से भारत की विभिन्न जातीय और सांस्कृतिक परंपराओं को अपनी फिल्मों में समाहित करने का प्रयास किया और हिंदी को उच्च स्थान दिया। बाजारवाद, तकनीकी विकास, उदारवाद का व्यापक एवं स्पष्ट प्रभाव हिंदी सिनेमा पर देखा जा सकता है। इसी का प्रभाव है कि जो हिंदी कभी भारतीय सिनेमा का प्राण तत्व मानी जाती थी उसका स्थान अब इंग्लिश ने ले लिया है। आज हिंदी फिल्में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के दूत के रूप में वैश्विक स्तर में अपना परचम लहरा रही है। लेकिन ऐसा नहीं है कि भारतीय हिंदी सिनेमा ने अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है अभी भी कसर बाकी है, जरूरत है इसके पुर्नव्याख्या की, तभी हिंदी सिनेमा अपने मजबूत एवं सकारात्मक पक्षों के बल पर पुनः अपनी खोई विरासत को पा सकेगी तथा अपनी जड़ों को सिंचित कर पाएगी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो हिंदी सिनेमा ने तमाम पंरपरागत रूढ़ियों एवं वर्जनाओं को तोड़ते हुए समय के नब्ज को पहचाना है और विषय, भाषा, पात्र, प्रस्तुति सभी स्तरों पर अपने को बदला है, साथ ही एक नया दर्शक वर्ग तैयार किया है। आज सिनेमा ने मनोरंजन के अर्थ और पैमाने बदले हैं, भारतीय हिंदी सिनेमा को यह इल्म हो चुका है कि यह नया एवं बदला हुआ यह दर्शक केवल लटकों झटकों से संतुष्ट नहीं होने वाला। अब हिंदी सिनेमा ने दर्शकों की बैचेनी को समझा है उसे आवाज दी है। अनुराग कश्यप, दिवाकर बनर्जी, इम्तियाज अली जैसे युवा निर्देशकों और जोया अख्तर, रीमा कागती, किरण राव जैसे सशक्त महिला फिल्मकारों ने हिंदी सिनेमा को तीखे तेवर देते हुए उसके रंग ढंग को परिवर्तित करने का प्रयास किया है, इनकी स्त्री चरित्र जीने के नए रास्ते और उड़ने को नया आसमान की खोज में किसी भी हद तक जाने को तैयार है। दर्शकों को अब रोना धोना, दुखड़े सुनाते चरित्र पात्रों की जगह एक सशक्त व्यक्तित्व की खोज हैं। हंसी तो फंसी, हाईवे, उड़ान और क्वीन जैसी फिल्मों ने परंपरागत ढांचे को तोड़ते हुए बिल्कुल नए तरह के सिनेमाई सौंदर्यशास्त्र का विकास किया है।

प्रारंभिक दौर से लेकर वर्तमान समय तक सिनेमा की भाषा ने कई रंग बदले हैं। शुरूआती दौर में जहाँ भाषा साफ, लयबद्ध और सरल थी, वहीं आधुनिक युग की भाषा के कई रंग है। फिल्मों में भाषा बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि जब हम फिल्म देखते हैं तो कुछ डायलोग्स ऐसे होते हैं जो दर्शकों के जुबान पर होते हैं। जब भी कोई नई फिल्म रिलीज होती है तो दर्शकों को नई अभिव्यक्ति की भाषा मिल जाती है। सिनेमा में हर तरह की हिंदी के लिए जगह है, फिल्मों में पात्रों की भूमिका व परिस्थितियों को देखकर ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। प्रारंभिक दौर में जहां अधिकांश फिल्में देवी–देवताओं, पुराणों और ग्रंथों के चरित्र पर बनती थी

और इनमें अधिकांशतः हिंदी भाषा ही उपयोग में लाई गई थी वहीं इसके बाद ऐतिहासिक काल वाली फिल्मों में मुगलकाल की प्रधानता होने के कारण उर्दू का प्रयोग अधिक होने लगा। ग्रामीण परिवेश वाली फिल्मों में हिंदी व प्रांतीय बोलियों का ही अधिक प्रयोग किया जाता था। इसकी झलक हमें मदर इंडिया में देखने को मिलती है, जिसमें हिंदी के साथ साथ क्षेत्रीय भाषा के रूप में भोजपुरी का भी प्रयोग किया गया था व दो बीघा जमीन में भी हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया लेकिन गानों में भोजपुरी भाषा के शब्दों की अधिकता रही।

सत्तर के दशक में हिंदी सिनेमा में सशक्त और समानांतर सिनेमा का आरंभ हुआ। इस दौर के फिल्मकारों ने जिसमें श्याम बेनेगल, ऋषिकेश मुखर्जी, गोविंद निहालानी का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने सिनेमा में भाषा के साथ साथ हिंदी के उच्चारण की स्पष्टता पर भी ध्यान दिया। इस दशक में समकालीन साहित्यकारों ने भी हिंदी भाषा के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसमें तीसरी कसम, सद्गति, सारा आकाश जैसी फिल्में साहित्यिक कृतियों पर कालजयी निर्माण के रूप में जानी जाती है। अस्सी के दशक में हिंदी सिनेमा की भाषा में बम्बईया पुट आने लगा, जिसका प्रभाव हमें इस दौर के गानों में देखने को मिला। नब्बे के दशक में भाषा के स्वरूप में और भी गिरावट देखने को मिली, बिगड़ी भाषा ने हिंदी सिनेमा का रूप ही विकृत कर दिया। जो सिनेमा पहले समाज का दर्पण होता था और समाजे को संदेश एवं जागृत करने का माध्यम माना जाता था वह अब पैसा कमाने का जरिया मात्र बनकर रह गया। आज अश्लील एवं द्विअर्थी सिनेमा का दौर चल पड़ा है जिसने समाज के किशोर एवं युवा वर्ग को सबसे अधिक प्रभावित किया है।

अनुराग कश्यप की गैंग ऑफ वासेपुर की हिंदी सिनेमा में सिने भाषा को लेकर काफी चर्चा हुई थी, इसी तरह काशीनाथ सिंह के उपन्यास काशी के अस्सी पर बनी फिल्म मोहल्ला अस्सी को भी गालियों के अधिक प्रयोग होने के कारण काफी विरोधों का सामना करना पड़ा था। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आज कल के फिल्मों में की शब्दावली में काफी अश्लीलता और खुलापन आ गया है। जब इसके पीछे के कारणों के तह में जाए तो ज्ञात होता है कि भारत में बाजारवाद और ग्लोबलाइजेशन के कारण दर्शक वर्ग के पसंद में बदलाव आए हैं और उसी के कारण फूहड़ता, अश्लीलता और विकृतियां समस्त कला माध्यमों पर छाती जा रही है। सिनेमा में अगर बोलियों के प्रयोग को देखें तो इसने बोलियों की शक्ति को बचाए रखने की संभावना को जरूर जिंदा रखा है। जैसे जवरीमल्ल पारख कहते हैं ''विमल राय हिंदी में सिनेमा बनाते हैं लेकिन बार बार वे हिंदी में बंगला समाज को प्रस्तुत करते हैं। चाहे वह देवदास में हो या परिणीता में।

जब वे यहूदी में बंगाली समाज से बाहर आते हैं तो वे हिंदी भाषी समाज की तरफ नहीं मुड़ते बल्कि हिंदुस्तानी से दूर रोम और मिश्र के इतिहास की तरफ मुड़ते हैं। गंगा जमुना या लगान जैसी फिल्में, जिनमें भोजपुरी या अवधी का प्रयोग किया गया है। इन्हें हिंदी भाषी क्षेत्र की फिल्में नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इनमें स्थानीय स्पर्श देने के लिए क्रमशः भोजपुरी व अवधी का प्रयोग किया गया है। किसी भी भाषा की स्वीकार्यता एवं लोकप्रियता उसकी अनुकूलता पर निर्भर करती है, दुनिया की कोई भी भाषा अपने नए माहौल से अनुकूलन स्थापित किये बिना अपना अस्तित्व स्थापित नहीं कर सकती। समाज के बदलते स्वरूप एवं बयार को समझने

एवं पहचानने के लिए भाषा को अपने ताने बाने में परिवर्तन करना ही होगा। हिंदी भाषा भी नवीन चुनौतियों के वहन के लिए नई विधाओं और नए नए रूपों में हमारे सामने आई है। । हिंदी साहित्य, हिंदी भाषा और हिंदी की अन्य उपबोलियों भाषाओं पर हिंदी सिनेमा का गहरा प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा ही सिनेमा की शक्ति है, और आज हिंदी सिनेमा इसी के दम पर अपनी उत्कृष्टता की चरम सीमा पर पहुंचा है क्योंकि भाषा पर ही फिल्म की सफलता निर्भर करती है।

संदर्भ सूची :-

1. लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय, अंक 172, जून 2017
2. मृत्युंजय, सिनेमा के 100 वर्ष, शिल्पायन, 2011, तृतीय संस्करण, शाहदरा, दिल्ली
3. पारख जवरीमल्ल, साझा संस्कृति, सांप्रदायिक आंतकरवाद और हिंदी सिनेमा, 2012 वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
4. डॉ. काजल बाजपेयी, संगणकीय भाषा वैज्ञानिक, सी–डैक, पुणे
5. संजय श्रीवास्तव, समय, सिनेमा और इतिहास, हिंदी सिनेमा के 100 साल
6. विनोद विप्लवे, हिंदी सिनेमा के 150 सितारे
7. भारतीय सिनेमा के 100 साल, आज तक, 9 मई 2012
8. भारतीय सिनेमा का इतिहास, मेप्स ऑफ इंडिया

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 230-232

हिन्दी भाषा का स्वरूप एवं विकास

रणवीर सिंह सोढ़ी (असिस्टेंट प्रोफेसर)
श्री मिश्रीलाल दुबे महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय केकड़ी, अजमेर 305404

भाषा मनुष्य अभिव्यक्ति का मुखर साधन है। भाषा न सिर्फ चिंतन अपितु भावों और विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। भाषा के बिना मनुष्य का जीवन मौन है क्योंकि भाषा के द्वारा ही उसका चिंतन विकसित होता है। सृष्टि के आरंभ से ही भाषा का अस्तित्व विद्यमान रहा है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य और समाज का विकास होता है। इनके पारस्परिक संबंधों के द्वारा ही नवीन चिंतन को आयाम मिलता है तथा नई संस्कृति पल्लवित होती है। मानवीय और मानवेत्तर भाषा में अत्यधिक अंतर दृष्टिगत होता है जैसे कि पशु–पक्षियों की भाषा में सृष्टि के आरंभ से वर्तमान तक कोई परितर्वन नहीं हुआ है लेकिन मानव की भाषा ने विभिन्न कालों में विकास को प्राप्त कर वर्तमान रूप प्राप्त किया है।

मानव की भाषा विभिन्न ध्वनियों से निर्मित है– सार्थक ध्वनि और निरर्थक ध्वनि। सार्थक ध्वनि के द्वारा ही भाषा का विकास होता है जबकि निरर्थक ध्वनि–हा, अह, उई आदि हर काल में यथावत रूप में प्रचलित रहती हैं। भाषाशास्त्री डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने गुजराज वर्नाक्यूलर सोसायटी के अनुसंधान और स्नातकोत्तर विभाग में भारत की आर्य भाषाओं के विकास और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की उपयोगिता विषय पर जो व्याख्यान दिए वह मानक माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी को भाषा के रूप में स्थापित किया इससे पूर्व इसे मात्र बोली माना जाता था। हांलाकि स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा सर्वप्रथम हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया था। उससे पूर्व भारत में एक भाषा न होने की समस्या थी जिसके कारण राष्ट्रवाद का विकास नहीं हो पा रहा था। भारत के विभिन्न प्रांतों में विभिन्न बोलियां एवं भाषाएं थीं। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए व्यापक जनसमूह को एक झंडे के नीचे एकत्र करने के लिए एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता थी जो सहज, सरल व सभी के लिए समझने में सहायक हो। ऐसे में मात्र हिन्दी ही ऐसी भाषा थी जिसमें इस प्रकार की सभी योग्यताएं थीं जो सभी भाषाओं के मूल को समाहित किए थीं।

भारत में वैदिककालीन संस्कृत के क्लिष्ट स्वरूप से सर्वथा नूतन और सरल भाषिक सामग्री की प्राप्यता हिन्दी भाषा से हो सकती थी। आरंभ में इसे अपभ्रंश नाम से संज्ञापित किया जाता रहा। इसके विभिन्न स्वरूपों को कबीलों और समूहों में विभिन्न नामों से संबोधित किया गया। हिन्दी के विकास का आरंभ तब हुआ जब इसका क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल आदि के साहित्य में हुआ। हिन्दी के साहित्य में योगदान को अनदेखा करना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता है। हिन्दी भाषा में सभी

बोलियों और भाषाओं की शब्दावलियों का योगदान रहा है। इसी कारण इसकी प्रसिद्धी अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक व्यापक तौर पर हुई और इसने सम्पूर्ण भारत में अपनी साख स्थापित की। वर्तमान हिन्दी में संस्कृत, प्राकृत, मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, अपभ्रंश, अवधी, ब्रज के साथ ही फारसी के भी शब्दों को अपनाया गया है। भाषा विकास पर चिंतन और मनन वैदिक काल से ही किया जाता रहा है। शब्द शास्त्र पर मनन करने वाले भारतीय विद्वानों– कात्यायन, पतंजलि आदि आचार्यों ने इस विषय पर विस्तृत विमर्श किया है। भारतीय भाषाओं का मूल एक ही है। प्राचीन वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत और फिर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से आर्यभाषा हिन्दी का विकास हुआ। आचार्य भर्तहरि ने ''वाक्यपदीय'' में कहा है की परिस्थिति–भेद, देश–भेद, काल–भेद से हर वस्तु में भेद होता है अर्थात् भाषा में परिवर्तन होता है लेकिन इनके पीछे क्या कारण होते हैं उनके संबंध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। प्राचीन संस्कृत से वर्तमान हिन्दी तक परिवर्तन के विभिन्न कारण रहे हैं –

1. आभ्यान्तरण कारण
2. बाह्य कारण

आभ्यान्तरण कारण– इनमें वह कारण सम्मिलित हैं जो कि भाषा की प्रवृत्ति या फिर वक्ता या श्रोता की शारीरिक–मानसिक स्थिति से संबंधित होते हैं। इनमें जाने–अनजाने में भाषा में परिवर्तन आता है। जैसे अपूर्ण श्रवण के कारण त्रुटि हो जाना, अज्ञानता या अन्य किसी कारण से उच्चारित शब्द का भंलीभांति अनुकरण नहीं कर पाना, वाग्यन्त्र में दोष के कारण भाषा में परिवर्तन, अशिक्षा या फिर ध्यान से न सुन पाने से भाषा का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य द्वारा प्रयत्नलाघव अर्थात् कम परिश्रम से अधिक सीखने की प्रवृत्ति के कारण या अन्य शब्दों को अधिक प्रयोग किया जाए तो भी इसके स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। भावों के कारण भी भाई को भैय्या कहना, किसी शब्द के उच्चारण में अधिक बल देना निम्ब का नीम हो जाना, एक समान शब्दों में भेद न कर पाना, असावधानीपूर्वक शब्दों को तोड़मरोड़कर बोलना, कुछ नवीन करने की प्रवृत्ति के कारण अनेक नवीन शब्दों का जन्म होना है। यही नहीं जातीय मनोवृत्ति भी भाषा के विकास में अत्यधिक योग देती है जैसे आर्य जाति के प्रगतिशील होने के कारण संस्कृत में गत्यर्थक धातुओं– गम, इ, अट् की प्रधानता है। फ्रांसिसीयों में कोमलता के कारण उनकी भाषा में सुकुमारता है। अंग्रेजों के समय का पाबंद होने के कारण भाषा में काल पर बल दिया गया है।

बाह्य कारण– भाषा को अनेक बाह्य कारक जैसे भौगोलिक कारण प्रभावित करते हैं। भारत के संदर्भ में कहावत है कि ''चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी''। भाषा पर जलवायु का अत्यधिक प्रभाव होता है जैसे उष्ण जलवायु के निवासियों का वाग्यंत्र इतना मुखर होता है कि वह स्पष्ट उच्चारण कर सकते हैं– राजस्थानी, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश लेकिन शीत प्रदेशों के निवासियों का उच्चारण अस्पष्ट होता है। इतिहास भी भाषा को अत्यधिक प्रभावित करता है। किसी विदेशी आक्रमण, व्यापारिक संबंधों के कारण भी भाषा में नवीन शब्दों का समावेश होता रहा। सांस्कृतिक रूप में विभिन्न संस्थाओं, महानपुरूषों तथा संस्कृतियों के सम्मिश्रण से अनेक भाषाओं का प्रभाव एक–दूसरे पर होता है। जैसे आर्य–द्रविड़, आर्य–ग्रीक, आर्य–यवन आदि संस्कृतियां। अप्रत्यक्ष रूप में महानपुरूषों द्वारा भी भाषिक विकास में योगदान दिया जाता है। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा

हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिए जाने के कारण इसका विकास हुआ और सम्पूर्ण भारत में इसका क्षेत्र विस्तृत हुआ। इसी प्रकार आर्य भाषा के प्रचार के लिए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की, पत्रकारिता में हिन्दी के लेखों के माध्यम से, तुलसीदास, सूरदास आदि ने अवधी और ब्रज भाषा के साथ ही हिन्दी को भी अभिव्यक्ति प्रदान की। विभिन्न साहित्यिक कारणों, वैज्ञानिक कारणों, सामाजिक कारणों का भी भाषा के विकास में योगदान रहता है। हिन्दी भाषा की व्याकरण का विकास संस्कृत व्याकरण के अनुसार हुआ और उसमें विदेशी शब्दों को भी अपना लिया गया। इस प्रकार हिन्दी में तत्सम अर्थात् संस्कृत से मूल रूप में हिन्दी में लिए गए शब्द भंडार को सम्मिलित किया जाता है। सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार इनमें भी अर्द्ध तत्सम शब्द भी होते हैं जो बृज आदि के कारण प्रचलित हुए जैसे कृष्ण के लिए कान्हा। तद्भव शब्द वह हैं जो संस्कृत से उत्पन्न हैं और पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से हिन्दी में परिवर्तित हुए हैं जैसे अक्षि से अक्खि और आंख।

देशज शब्दों का स्त्रोत न तो देश से है न ही संस्कृत से यह भाषा के स्वयं के शब्द हैं जैसे चाचा, काका, टट्टू। भारत के सदियों तक पराधीन रहने के कारण शक, हूण, मंगोल, मुगल और अंग्रेज आदि के सम्पर्क से इनके भाषिक शब्दों को भी हिन्दी में अपना लिया गया। भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'हिन्दी ने तुर्की के लगभग 125, फारसी–अरबी के 7000, अंग्रेजी के 3500, पुर्तगाली के 80 शब्द लिए गए हैं।' इसी प्रकार अंग्रेजी–हिन्दी, अंग्रेजी–संस्कृत, हिन्दी–फारसी आदि के द्वारा संकर शब्दों का निर्माण हुआ। इन शब्दों के सम्मिश्रण से हिन्दी शब्दावली का विस्तार हुआ। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी द्वारा हिन्दी का स्वयं का व्याकरण विकसित किया गया। इस कारण हिन्दी राजभाषा और सम्पर्क भाषा के रूप में विस्तार पा सकी। हिन्दी भाषा की शब्द सम्पदा अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक सम्पन्न है। भाषा का लचीलापन और उसकी ग्राहिता क्षमता के अनुसार ही उसका विकास और ख्याति होती है। अन्य आर्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी का प्रसार क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि इसमें निरन्तर गतिशीलता और विकास के कारण सजीवता बनी हुई है।

भाषा विकास के संबंध में यह कहा जा सकता है कि भाषा का विकास बिना धर्म और जाति के नहीं हो सकता है। धर्म के प्रचार के लिए भाषा के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता है। भारत में आर्य भाषा को विभिन्न कालों में विभिन्न संबोधन प्राप्त हुए और वैदिक संस्कृत के सरलीकृत रूप से वर्तमान हिन्दी भाषा का विकास हुआ। भाषाविज्ञान के अध्ययन के अनुसार यह सिद्ध हो चुका है कि यह भारोपीय परिवार की मूल भाषा संस्कृत से विकसित है जो कि विश्व की भाषाओं की निर्देशिका रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. शर्मा डॉ0 राजमणि– हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, वाणी प्रकाशन 21 पी दरियागंज दिल्ली
2. शर्मा डॉ. राजमणि– भाषा चिंतन, भाषा विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
3. बाहरी डॉ. हरदेव– हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, किताब महल प्रा.लि. इलाहाबाद
4. तिवारी डॉ. उदयनारायण– हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, साहित्य भवन, इलाहाबाद
5. सक्सेना बाबूराम– सामान्य भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागल

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 233-237

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में मध्यवर्ग के परिपेक्ष्य में

रश्मि पूशाम (शोधार्थी हिन्दी)
पंडित एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय शहडोल (म.प्र.)
प्रो. नीलमणि दुबे (शोध निर्देशक)
विभागाध्यक्ष हिन्दी पंडित एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय शहडोल (म.प्र.) भारत

सारांश :-

मनुष्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की स्थानों में विभाजित किया गया है। यदि समाज में यह वर्ग न रहे तो सारे समाज समस्याओं से घिर जाएगा वह किसी भी दृष्टि से उभर नहीं पायेगा। उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की परिधि में बांध दिया गया है। अरस्तु ने – मध्यवर्ग के संदर्भ में अपना विचार इस प्रकार प्रस्तुत किया है– '' प्रत्येक राज्य में तीन तत्व होते हैं– एक अत्याधि धनी एक अत्याधिक गरीब और तीसरा मध्यम इसमें मध्यवर्ग को सर्वोत्तम माना जाता है क्योंकि यह वर्ग तार्किक व बुद्धिसंगत है जो व्यक्ति सौंदर्य शक्ति कुलीनता या धन दौलत की दृष्टि से उत्तम है या निम्नतम है वह बुद्धिसंगत विवेकवूर्ण सिद्धांतो पर नहीं चल सकता। वह या तो फिर धूर्त, दृष्ट और छोटा बदमाश बन जाता है।''[1] मध्यवर्ग को शहरी मध्यवर्ग और ग्रामीण मध्यवर्ग इन दो हिस्सों में भी परिभाषित किया जा सकता है । शहरी मध्य वर्ग अधिकतर लोग नौकरी पेशा और व्यासायिक लोगों से जुड़ा रहता है।

शहरों में उद्योगों की स्थापना तेजी से बढ़ती जा रही है। इसिलिए मध्यवर्ग की सारी मानसिकता भी निजी भूमि नहीं रहती है, किन्तु वह धीरे–धीरे जड़े फैलने में वे कामयाब हो जाते हैं वे हर कार्य अपने लिए ही करते हैं। जबकि ग्रामीण मध्यवर्ग के लोगों में आपस में मिल जुलकर रहने की भावना होती है। शहरी मध्यवर्ग इतना स्वार्थी हो चुका है कि जो कुछ भी करता है उसके अंदर उसका निजी स्वार्थ छिपा रहता है। यदपि ऐसा आने से उनका व्यतिगत जीवन और भी अधिक विलासी हो जाता है किन्तु ऐसे लोग भीड़ में अकेले ही होते हैं। ग्रामीण मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है, जो हर वक्त अपने से घिरा रहता है और इन बंधनों में उसे अपार आनंद की प्राप्ति होती हैं कृष्णा जी अपने उपन्यासों में पाठक की हेसियत से सभी उत्तरी हैं। मध्यवर्ग की सारी पीड़ाओं को इन्होंने अपनी कलम से लिख डाली है। कृष्णा सोबती के उपन्यास में रूढ़ि परम्परा रीति रिवाजों की जड़ता भी और उनको खुलकर जीने की कामना भी स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है कृष्णा जी ने जिस परिवेश को स्वीकार किया है हमारे मध्यवर्गीय घर की कहानी है। उन्होंने सम्पूण भारतीय मानसिकता को अपने उपन्यासों में प्रति

बिम्बित किया है। उनके उपन्यासों में पात्रों ने मध्यवर्गीय झूठी नैतिकता को स्वीकार नही किया यदि कही स्वीकार करना भी पड़ा जो एक चुपचाप सी मजबूरी की तरह उन्होंने इन नैतिक परिवेश के साथ समर्थन कर लिया है। पत्रों के साथ कृष्णा सोबती जी का अहम बराबर जुड़ा हुआ है और इस अहम ने उनके संवादों को रचनात्मक शक्ति देकर विकृत काम को नष्ट सा कर दिया हैं।

मध्यवर्ग का सामाजिक परिवेश :-

कृष्णा सोबती मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश में बच्चों को जैसा वातावरण में रखा जाता है वैसे ही उनके गुणों का विकास होता है हम जैसे ही उनको बताया या सिखाया जाता है वैसे ही हमारे बातों का अनुकरण करते है। तो जिंदगी भर पछताना पड़ता है। बच्चे मां बाप की पूंजी होता है उन्ही पर घर पर की नीव टिकी रहती है। 'डार से बिछुड़ी' में नानी का अपना छोटा सा समाज उसका परिवार ही हैं। जिस में वह अपनी नातिन बच्ची पाशों और दो विवाहित बेटे साथ रहती हैं छोटी बच्ची इस उपन्यास का समाजिक परिवेश ठेठ हिंदुस्तानी परिवार जैसे है वहा बहु बेटिया सिर पर कपड़ा आढ़ती है और शर्म हवा जैसे चीजों का गहना पहनती इसलिए पाशों के दुध न पीने पर नानी कहती है–'' सून ले तो भट्टी में भुन डालेंगे।'' माँ द्वारा किया गया असमाजिक कार्य बेटी भी करेगी ऐसा अरोपित कर दिया जाता है करीम से न मिलने की बार–बार सफाई देने पर भी न कहा ''अरी कालिख पुत्री तेरी माँ भी यही कही थी।''[3]

भाई बहन पर कितने भी जुल्म करे किन्तु भाई बहन सदा उसका भला ही चाहती है यह भरतीय समाजिक परिवेष का एक संवेदनात्मक पहलु है तभी पाशों का नया पुराना अगला पिछला दर्द सुनते समय मेहर कर उठी– ''बिटिया तेरा दोष नही, मैं ही इस सबकी भागीदार हैं। मेरे वीर तो सच्चे है। मुझसी अभागी बहन जिनकी लिशकती पगड़ियों का खरा पानी उतार फेके उनकी जायी उन्हें कैसे सुहाएगी।''[4]

हमारी सामाजिक व्यवस्था में धर्म का बडा महत्व हैं। व्यक्ति ईश्वर में विश्वास करता है वही से अपना सबल पाता है। दुख–सुख जीवन में आता रहता है। सुख में उसके द्वार माथाटिका और दुख मे उसी की आस लगा वह अपने कार्य करता जाता हैं। बड़ी बहु सुमित्रावती की गोदभरी जानकर सास धनवंती उससे कहती है ''शुक्र है उस दाते का जिसकी दरगाह में देर है, अंधेर नहीं''[5]

मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश में सामाजिक व्यवस्था स्त्री से ऐसा ही कुछ चाहती थी। बल्कि स्त्री की समझ में नहीं आ रहा था। ऐसा क्यों ? उसने क्या किया ? अब जो भी उसे अस्वीकार करता उसका रोष उनके प्रति बढ़ता जाता वह बात अनेक रूपों में सामने आती है। दवाई, छुपाई घटना की फिर नई नोके बनाकर उसे चुभाई जाती फलस्वारूप उसका व्यक्तित्व खंडित होता गया ''उपन्यास में रक्तिका द्वारा समय–समय पर आक्रोश करना समवयस्कों को पीटना पुरूषों को आकर्षित करना शराब पीना उसकी विघटित मानसिकता के परिचायक सूत्र हैं।''[6]

मध्यवर्गीय परिवार में बच्चा यदि मानसिक रूप से दिखता है तो समाज में माँ बाप की कार्यकुशलता पर प्रश्न उठेगा स्त्री की माँ स्त्री से कहती है– ''पापा से कह दो बेटी उन्हें तुम्हारी मिस को ज्वाब देना है।''[7] पिटाई

के बाद दुख उत्पन्न होता है बच्चों के प्रति स्नेह पैदा हो जाता है– ''बेटे यह बात तुम्हें अम्मा– पिता को पहले बता देनी चाहिए थी।''[8]

इस प्रकार सामाजिक परिवेश द्वारा नकारे जाने पर स्त्री ने बाद में सम्पूर्ण समाजिक परिवेश को ही नकार दिया। वह अनेक पुरूषों के सम्पर्क में आई उन्हें छला और तड़पता छोड़ दिया। कृष्णा सोबती ने अपने इस उपन्यास में रक्तिका के माध्यम से यह प्रस्तुत किया कि एक स्त्री समाज में अपने अस्तित्व एवं अपने आत्मसम्मान की रक्षा स्वयं कर सकती है। वह अपनी मर्जी के अनुसार अपने सामाजिक परिवेश की सृष्टि रच सकती है।

बीज शब्द :–

पारदर्शिता, निडर व्यक्तित्व।

प्रस्तावना :–

मध्यवर्ग का आर्थिक परिवेश

हमारे भारत वर्ष समाज का रीढ़ का हड्डी है यह कहे कि पैसे ने सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को अपने घेरे में ऐसा जकड़ लिया है कि कोई भी प्राणी इस के मोह से उभर नहीं पा रहा है । मध्यवर्ग की कहानी तो अत्याधिक सुन्दर है। क्योंकि इस वर्ग ने तो अपनी आत्मा ही आर्थिक दृष्टि से बनाई है और उसका संपूर्ण जीवन इसी की प्राप्ति में गुजर जाता है। परिवार जो भारतीय समाज की एक अनमोल पहेली है, उसकी सभी खुशियां धन पर आधारित होती है। यहाँ तक की परिवार के सदस्यों का प्रेम व्यवहार काम विषय वासनाएँ, तृप्तियाँ–अतृप्तियाँ ये सारी व्यवस्थाएँ आर्थिक परिवेश से ही जुड़ी रहती है । एक और पैसा इस वर्ग का जीवन सुधारता है तो दुसरी ओर से उसे जीवन स्तर भी प्रदान करता है इस वर्ग की आवश्यकताएँ भी अंतहीन हैं।

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में समस्त पात्र सामंती पृष्ठभूमि से भी जुड़े हुए हैं सब कुछ होते हुए भी अगर हमें आर्थिक परेशानी हो तो जीवन में एक अंधेला सा छा जाता है लगता है हमारे पास रोशनी नहीं है। उनका मित्रो मरजानी उपन्यास इस आर्थिक परिवेश मानव का मजबूत कड़ी है। 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में परिवार के चारों पुरूषों ने व्यापार में समान रूप से परिवार का मुखिया तीनों बेटों के हाथ में व्यापार की बागडोर देकर जीवन चलाने के लिए पैसा जरूरी है। बनवारी, सरदारी, और गुलजारी व्यापार को आगे बढ़ा रहे थे। घर की आर्थिक स्थिति भी ठीक भी किन्तु फूला की बीमारी और मानसिक उलझाव ने गुलजारी को पैसो में गड़बड़ी करने को उकसाया जिससे व्यापार में हानि हुई और कर्जा सिर चढ़ गया। घर की स्त्रीयाँ घाटे के नाम से ही काँप उठती हैं। क्योंकि घाटे का अर्थ है प्रत्येक घरेलु उपभोक्ता वस्तुओं में कटौती जिससे घरेलु वातावरण कलह से भर जाता हैं। गुरूदास धनवंती से कहते हैं–

''छोटी सी बात को बड़ी बनाकर कहने की तेरी पुरानी आदत है जो मंडी का व्यापार करेगा उसी के सिर देना भी चढेगा और उसी की हथेली के जोर से उतरेगा भी ''[9] घर की आर्थिक स्थिति को सुधारने एवं पुरूषों की चिंता दूर करने में स्त्रियाँ भी सहयोग करती हैं। फूला ने जहाँ परिवार पर कर्जा चढ़वाया वही मित्रों ने अपने जोड़े हुए रूपये देकर कर्ज से छुड़वा भी दी। मित्रो ने सरदारी से कहा ''यह दमड़ी दात परवान करो, लाल जी ! कौन

इस नाँवे के बिना मित्रो की बेटी कँवारी रह जाएगी।''[10] सूरजमुखी अँधेरे के उपन्यास का आर्थिक परिवेश अन्य मध्यवर्ग का है यहाँ अर्थ का कोई महत्व नहीं है। सभी पुरूष काम–काजवाले है। सभी के पास इतना पैसा है कि वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते ही हैं। अपने जीवन स्तर और जीवन शैली से भी संतुष्ट हैं। वे जो चाहते है करते हैं। कॉफी–शराब सिगरेट, पार्टी पर घूमना हवाई जहाज से यात्रा करना सब उनकी पहुँच से है। वे समय काल देश के अनुसार जीवन निर्वाह करते हैं। 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास का आर्थिक परिवेश परिवार को भिन्नता और उसका स्वरूप के आधार पर बदलता रहता है।

'जिंदगीनामा' में मध्यवर्गीय प्रत्येक परिवेश की उपस्थिति है। सामाजिक परिवेश में शाहती का सामंती शासन प्रवृत्ति में सयुक्त परिवारिक नियमों पर आधारित है। आर्थिक परिवारिक नियमों पर आधारित है। आर्थिक परिवेश भा आदमी को परेशान कर देता है। अर्थ सारा कार्य सहाजी के हाथ में। गाँव का प्रत्येक वाशिदा वक्त जरूरत पड़ता पर शाह कि घर की ओर दौड़ लगाता दिखाई देता है। शाहनी भी गाँव भर की रसोई की जरूरत पूरी करती, मुश्किल परिस्थितियों का हल निकालती है। अपनी जीवियों के शाह से वापस लेने के पैसा कमाने गए नवयुवकों को स्टेशन पर कुली गिरी करते सुनकर शाह उनके हिसाब पर भी कलम फेर देते हैं। 'जिंदगीनामा' का आर्थिक परिवेश अर्थ की महत्ता को प्रति पादित करता है। बिना अर्थ कमाए मध्यवर्गीय परिवार का खर्च नहीं चल सकता है।

मध्यवर्ग का नैतिक परिवेश :–

एकांकी मनुष्य के सामने नैतिक अनैतिक नाम की कोई भावना नही थी। मानव जो करता है वह सिर्फ कर्म था। नैतिकता से अपना व्यवहार रखना चाहिए वही मनुष्य धीरे–धीरे कार्य जब समूह रूप में रहने लगा तो कुछ नियमों कि आवश्यकता हुई जिससे वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सुरक्षित रखते एक दूसरे तालमेल बनाएँ रखे असमान की भावना आवश्यकता और स्तर के व्यक्तियों के करण समूह के मुखिया द्वारा इन नियमों में समय–समय पर फेर बदल होते रहे। धीरे–धीरे सभ्यता के विकास के साथ–साथ सभ्य और असभ्य आचरणों को अलग–अलग किया गया और उसके मध्य इस प्रकार के नियम बंधन रखे गए जिससे व्यवस्था न बिगड़े। मध्यवर्गीय समाज में नैतिकता के बंधन में जकडा हुआ है। ''यदपि वह शाश्वत नैतिक मूल्यों अर्थात मानवीयता में विश्वास करता है पर उसके मन में ग्रहण और त्याग का द्वंद्व भी रहता है। समयानुसार इसके एक प्रभावी होता है। मध्यवर्ग के रीति–रिवाज उसकी दयनीय दशा के प्रमुख कारण होते हैं। वह उच्चवर्गीय आकांक्षाओं के कारण होते हैं वह उच्चवर्गीय आकांक्षाओं के कारण इनके अनुपालन के लिए विवश भी हैं।''[11] जीवन संघर्ष मानसिक अवसाद आदि भी मनुष्य को सीधे मार्ग अर्थात् नैतिक मार्ग से पतन की ओर ले आते हैं।

कृष्णा सोबती ने मध्यवर्गीय समाज की नैतिकता की डोर को अपने उपन्यासों में पकड़े रखा। उनके उपन्यासों में नैतिकता और अनैतिकता का निर्वाह करने वाले दोनों प्रकार के पात्र हैं। समाज जिस नैतिकता की बात करता है वह पुराने समय की है वातावरण में उनका पात्र नये नियमों मान्यताओं की बात करता है और सत्य भी है आज के परिपेक्ष्य में यदि देखा जाए जो एक समूह के नियमों में बँधता चलता मनुष्य अपना व्यक्तिगत सत्ता

का हनन कैसे कर दे। नैतिकता मध्यवर्गीय भारतीय जनमानस के सामाजिक जीवन का एक बड़ा गुण भी है और मान प्रतिष्ठा का हथियार भी। मध्यवर्गीय परिवार में संगठन के सारे नैतिकता पर आधारित रहते हैं।

निष्कर्ष :-

हम कह सकते हैं कि कृष्णा जी के उपन्यासों में मध्यवर्ग के विविध परिवेश का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है इसके समस्त आयाम इनके उपन्यासों में उपलब्ध होते है आर्थिक और नैतिक परिवेशों की अभिव्यक्ति कृष्णा जी के उपन्यासों में हुई है उपन्यासों में वर्णित घर परिवार का सामाजिक समावेश एवं आम मध्यवर्गीय परिवार की तरह ही वे सारे किया कलाप उपन्यास की कथा वस्तु में समाहित है जिनके बल पर गृहस्थी की नीव टिकी की होती है धर्म का स्थान जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहता है कृष्णा जी मध्यवर्ग की परिवारिक प्रथा के महत्व का प्रतिष्ठित करती है 'मित्रो मरजानी' 'दिलो दानिश' 'जिन्दगीनामा' सभी कालो मे सामाजिक परिवेश की प्रस्तुत करते हैं जिसमें परिवारिक मान–मर्यादा के साथ निभाई जाने वाली सामाजिक परिवेश है। समाज अच्छा या बुरा का आकलन करता है स्वयं की बुराई या अच्छाई का आकलन समाज करता है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो वह बिना समाज का नहीं रह सकता समाज शास्त्री मैकाश्वर एवं पेज ने कहा है मनुष्य संबंधों का जाल है। कृष्णा सोबती लिखती हैं हमें समाज का भय हमेशा बना रहता है जो कुछ भी हम गृहण करते है अपने परिवार या अपने समाज से ही सीखना पड़ता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. प्रेमचन्द एक विवेचन – डॉ. इन्द्रनाथ मदान पृ.–67
2. 'डार से बिछुड़ी' – कृष्णा सोबती – पृ. – 11
3. 'डार से बिछुड़ी' – कृष्णा सोबती– पृ. – 15
4. 'डार से बिछुड़ी' – कृष्णा सोबती– पृ. – 25
5. 'मित्रो मरजानी' – कृष्णा सोबती– पृ. – 62
6. व्यक्तित्व विघटन के निकष पर – डॉ. नीरज जैन – पृ. – 103
7. 'सुरजमुखी अँधेरे के' – कृष्णा सोबती– पृ. – 47
8. 'सुरजमुखी अँधेरे के' – कृष्णा सोबती– पृ. – 48
9. 'मित्रो मरजानी'– कृष्णा सोबती– पृ. – 37
10. 'मित्रो मरजानी'– कृष्णा सोबती– पृ. – 47
11. प्रेमचंद के कथा साहित्य में मध्यवर्ग – डॉ. प्रताप सिंह – पृ. –15

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 238-241

हिंदी साहित्य के विकास में सूर्य कान्त त्रिपाठी "निराला" का योगदान

डॉ. रत्नेश कुमार जैन
प्रिंसीपल, शिक्षा विभाग
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

प्रस्तावना :-

साहित्य और मानव एक दूसरे के पूरक हैं। मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति साहित्य के द्वारा ही सम्भव हुई है और साहित्यिक चेतना का विकास मानव द्वारा आधुनिक युग में जीवन की सरलता जटिलता में तथा विचार तत्वों के अन्तर द्वन्द्वों की ओर अग्रसर हुआ हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल हिन्दी गद्य के सर्वतोन्मुखी विकास के साथ हुआ। अपने नये–नये कलेवर से हिन्दी साहित्य भरा हुआ है और अपने नये प्रयोग से हिन्दी की विभिन्न गद्य शैलियों का विकास हुआ जैसे नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, एकांकी, गद्य–गीत, गद्य काव्य, रेडियो नाटक, रिपोर्ताज, डायरी लेखन, जीवन चरित्र, आत्मकथा, संस्मरण, ध्वनि रूपक, यात्रा साहित्य, ललित निबन्ध आदि।

उपन्यास निर्माण सौंदर्य का नया चिंतन :-

निराला जी कवि होने के साथ–साथ एक सफल उपन्यासकार भी हैं। क्योंकि उन्होंने उपन्यास की रचना में एक नए सौन्दर्य का चित्रण किया है। इसका कारण उनका यह विश्वास है कि जीवन की असली छाप इस साहित्य के पात्रों में है। वैसे वे प्रेमचंद्र जी की श्रेणी में आते हैं और उन्हीं की तरह वे समस्याग्रस्त साहित्य की रचना करते हैं। उनके उपन्यासों की मुख्य समस्या नारी जीवन की विडंबना है। वह स्त्री जो समाज में कहीं जाती है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए उन्होंने उपन्यास लिखा।

उपन्यास पर निराला के विचार केवल दो टिप्पणियों में दिखाई दे रहे हैं। उनमें उपन्यास जैसे आधुनिक युग के महत्वपूर्ण विज्ञान की आलोचनात्मक सोच ऐसी नहीं दिखती। जैसा कि निराला ले ने कविता के मूल्यांकन और रचना के संदर्भ में गहराई से चर्चा की है, उपन्यास पर उनकी पकड़ उतनी मजबूत नहीं लगती है। लेकिन उनकी एक या दो उपन्यास मान्यताएं बहुत महत्वपूर्ण हैं, जिनका वास्तविक रूप उनके उपन्यासों में मिलता है। पहला उपन्यास को सामाजिक परिवर्तन के अर्थपूर्ण विज्ञान के रूप में मान्यता देना और दूसरा समाज का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करना। तीसरा, निराला के उपन्यासों में एक नई सुंदरता पैदा करने की यह कसौटी देखी

जा सकती है। निराला जी के उपन्यासों की संरचना समाज से प्रभावित है। ज्यादातर उन्होंने प्रेम उपन्यासों को चुना, जिसमें उनकी कहानी ने बार–बार नाटकीयता की स्थिति पैदा की और पूरे कथानक को कई दिशाओं में बिखेर दिया। निराला समाज को जो कुछ देना चाहते थे, उन्होंने कथा साहित्य और साहित्य का माध्यम बनाया। उनका उपन्यास तीन विधाओं, उपन्यास, कहानी और स्केच में विभाजित है। निराला जी ने कुल छह उपन्यास अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती पीक की पाक, कुली भट, बिलेसुर बकरीहा और ब्लैक एडवेंचर्स लिखे हैं। निराला के उपन्यास उस समय के समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। उनकी विचारधारा इतनी प्रगतिशील है कि उन्हें इसमें कोई संशोधन नहीं करना पड़ा, वे अब उपन्यास लिखते हैं, पाठक की मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, इसका एक निश्चित उद्देश्य और उद्देश्य है और समाज को एक सांचे में समय देना है। वे कल्पना की कृतियों को प्रस्तुत करते हैं, वे साहित्य में ऐश्वर्य के रूप में उतरते हैं, वे समाज में जो भी सत्य और असत्य देखते हैं, वे उन्हें अपने कथा साहित्य में जीवित पात्रों के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

निराला अपने उपन्यास के पात्रों की रचना इस भौतिक जगत से करते हैं। उनके चरित्र सामान्य वर्ग में होते हुए भी लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। उनके पात्रों के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं, मुख्य और लघु मुख्य पात्र, नायक–नायिका सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है। निराला के उपन्यास की नायिका एक भावुक और स्नेही सौंदर्य है, वह कविता से भरपूर है, और एक मध्यमवर्गीय परिवार में रहती है। उन्होंने नायिका के चरित्र के माध्यम से समकालीन जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। महिला पात्रों की तरह निराला ने भी नायक के रूप में पुरुष पात्रों को प्रस्तुत किया है। निराला ने उन विशेषताओं का उल्लेख किया जो एक कहानीकार के पास होनी चाहिए। वह मुख्य पात्रों की तुलना में छोटे पात्रों को चित्रित करने में अधिक सफल रहे हैं। क्योंकि ये पात्र वास्तविक अर्थों को व्यक्त करने में अधिक सफल रहे हैं। निराला उतनी कल्पना–उन्मुख छवियों को कैप्चर नहीं कर सके, क्योंकि वे वास्तविक रूप से चित्रित करने में सक्षम थे, इसलिए उनके उपन्यासों में माध्यमिक पात्रों का महत्व था।

उन्होंने उपन्यास उपन्यासों के निर्माण में एक नई सुंदरता का खुलासा किया क्योंकि उनके उपन्यास सामाजिक परिस्थितियों की उपज हैं। यह भावना महत्वपूर्ण है। उन्होंने ऐसे उपन्यासों की रचना की जो समाज की मांग थी, लेकिन उन्होंने अपना मूल उद्देश्य और लक्ष्य निर्धारित करते हुए समाज को बदलने की अपनी दृष्टि रखी। साहित्यकार–निर्माता निराला ने गद्य शैली में जितनी सामग्री प्रस्तुत की, निराला जी को गद्य की शक्ति के लिए जाना जाता था, छायादार कवियों में शायद ही कोई अन्य कवि रहा हो। उनका गद्य लेखन विभिन्न साहित्यिक विधाओं अर्थात उपन्यासों, कहानियों, रेखाचित्रों, निबंधों आदि में सामने आया है। अद्वितीय गद्य के क्षेत्र में, भारतेंदु, महावीर और प्रेमचंद एक अगली कड़ी साबित हुए हैं। प्रेस की मांगों और शर्तों को ध्यान में रखते हुए लेखक को भाषा का रूप भी बनाना पड़ता है। उन्होंने गद्य में अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए न केवल निबंधों और समालोचनाओं का उपयोग किया, बल्कि उपन्यासों, कहानियों, रेखाचित्रों और आत्मकथाओं का भी इस्तेमाल किया। निराला जी ने समाज की प्रकृति और सुंदरता को समझा और फिर उसकी मांग के आधार पर अपने साहित्य की रचना की। उल्लेखनीय है कि इसी क्रम में उन्होंने गद्य साहित्य की समीक्षा

कसौटी भी बनाई थी।

साहित्य और ललित कला : कविता का नया नियम :-

सृष्टिकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि संसार की सभी वस्तुएँ चाहे अच्छी हों या बुरी, सृष्टिकर्ता की दृष्टि में समान महत्व रखती हैं। एक कलाकार को जितनी अच्छी तस्वीरें बनाने में सफलता मिलती है, उतनी ही उसे बुरे को निकालने में मिलनी चाहिए, तभी वह सच्चा कलाकार हो सकता है। ललित कलाओं को अनुपम काव्य में समाहित करने में कवि पूर्णतः सफल रहा है। एक क्रांतिकारी कवि होने के कारण वे प्रचलित अवधारणा को पहले की तरह स्वीकार नहीं कर सके। वे एक सफल कलाकार की दृष्टि की एक सच्ची और प्रभावी तस्वीर पेश करते हैं और उसी क्रम में अन्य ललित कलाओं की तकनीकों को शामिल करते हैं। एक कलाकार की तरह निराला अपनी कला को तराशते हैं, फिर उसमें अपनी भाषा–शैली की शक्ति का संचार करते हैं, साहित्य को प्रभावशाली और शक्तिशाली बनाते हैं और पाठकों को आकर्षित करते हैं। वे साहित्य के निर्माण के लिए केवल उन्हीं विशेषताओं को उपयोगी नहीं मानते, जो साहित्य में लिखी जाती हैं, बल्कि वे कला के सभी तत्वों को कविता के लिए आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार कला की समग्रता साहित्य को प्रगति के पथ पर ले जाती है।

निराला जी अपने साहित्य की मूर्ति को मूर्तिकार की तरह गढ़ते हैं, उसे एक निश्चित रूप या संरचना बनाते हैं, फिर उसे अलग–अलग रंगों से भरते हैं और उसे सजाते हैं, जिससे साहित्य की मूर्ति जीवंत हो जाती है। शब्दों के माध्यम से साहित्य की जीवंत मूर्ति बनाना भी एक कला है और निराला जी इस कला में बहुत माहिर हैं। जब वे मूर्ति का निर्माण करते हैं तो शब्दों के साथ–साथ वाक्य, विन्यास, ध्वनि विन्यास, प्रतीक, छवि, वास्तुकला और भाषा की मुख्य आवश्यकता होती है। निराला जी साहित्य के माध्यम से ऐसी मूर्ति की रचना करते हैं, जिसकी छाप पाठक के हृदय तक पहुँचती है और पाठक उस मूर्ति को उसके प्रकट रूप में देखता है। निराला भी इसी प्रकार काव्य के सर्वोत्तम सौन्दर्य की रचना की माँग करते हैं। निराला के साहित्य में संगीत का व्यापक प्रयोग हुआ है। उन्हें संगीत से विशेष प्रेम था, इसलिए उनकी कविता भारतीय और पश्चिमी संगीत दोनों के प्रभाव को दर्शाती है। उन्होंने साहित्य में नए गीतों की रचना की, उसे नई लय, नई लय और नए शब्दों से भर दिया, जो कविता को संगीत के करीब ले आए। उनकी कविता को पढ़कर ऐसा लगता है कि उनका सारा साहित्य स्वर में बंधा हुआ है, जिसमें अनुभूति की गहराई है।

वस्तुतः मूर्तिकार, कलाकार, संगीतकार की तरह निराला भी कुशल शिल्पकार हैं। वे अपनी रचनात्मक सामग्री के साथ अंतराल को भरते हैं और अपनी कला का एक सुंदर भवन बनाते हैं, लेकिन इसके विभिन्न भागों में सामंजस्य स्थापित करते हैं। जिस प्रकार एक वास्तुकार ईंट, गारे, पत्थर का उपयोग करके एक सुंदर घर बनाता है, निराला अपनी काव्य रचना का उपयोग काव्य साहित्य की एक सुंदर और जीवंत इमारत को खड़ा करने के लिए करता है, लेकिन उससे पहले वह एक नक्शा बनाता है। है। वह केवल अपनी भावनाओं को भरता है। इतना ही नहीं निराला उस स्थापित साहित्यिक भवन को चित्रकार की तरह सुंदर रंगों से भी भर देते हैं। निराला की कृतियाँ न केवल इसका प्रमाण हैं, बल्कि उनकी साहित्यिक सोच भी इस बात का प्रमाण है। साहित्य की पूर्णता पर विचार करते हुए, निराला ने रस पद्य अलंकरण के बाहर कला की सूक्ष्मताओं की बार–बार चर्चा

की। इसे समझाओ। इसे स्वयं साहित्यिक कला की परीक्षा भी माना जाता है।

साहित्य : समाज और आलोचना :–

निराला जी के साहित्य चिन्तन तथा सृजन का आधार समाज हैं। उनके अनुसार समाज की सच्ची रूपरेखा साहित्य के माध्यम से ही प्रस्तुत की जा सकती है। इसके लिए साहित्य एक उपयोगी अस्त्र का काम करता है, जिसके माध्यम से समाज के वास्तविक स्वरूप के दर्शन हो जाते है। साहित्य की व्याख्या में समाज सापेक्ष व्याख्या ही सर्वोत्तम है, और यह इसलिए आवश्यक है कि साहित्यकार समाज में अपने साहित्य सृजन से हस्तक्षेप करता है। निराला जी का समस्त साहित्य समाज और उसमें अपेक्षित परिवर्तन के लिए है। साहित्य मात्र कल्पना की उपज नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके अनुसार साहित्य की दिशा, आदर्श, विचार समस्याये और उनके निवारण पर आधारित है जो पाठक के लिए उपयोगी भी हों। उनके पात्र समाज द्वारा निर्मित किए गए है, जो समाज की समस्याओं का डटकर मुकाबला करते हैं, और ऐसी सामाजिक व्यवस्था को धराशायी करते हैं, जो ऊंच नीच तथा जाति पाति के भेदभाव पर टिकी हुई है। निराला साहित्य के माध्यम से ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते है जिसमें जीर्ण–शीर्ण रीति रिवाजों का बन्धन न हो वे ऐसी ही आलोचना की माँग करते हैं जो ऐसी रचनाओं को सराहे।

क्रान्ति साहित्य की जननी है और निराला जी इसी क्रान्ति द्वारा समाज में नवीनता लाना चाहते है। इस साहित्य की क्रान्ति और नवीनता के द्वारा निराला जी समाज की दिशा को परिवर्तित करना चाहते है। व्यक्ति के संस्कारों को बदलना चाहते है, जिससे मानव धर्म की रक्षा की जा सके। साहित्यकार समाज का एक सजग प्रहरी होता है, वह अपने युग के साथ कदम से कदम मिलाकर चलता है। इससे वह समाज की समस्याओं का निवारण कर सकता है। इससे समाज परिवर्तित भी होता रहता है। निराला ऐसे ही साहित्य सृजन के समर्थक हैं।

इस प्रकार से निराला ने आलोचना के रूप में कम लिखा है और जो लिखा वह अपनी ही कृतियों की व्याख्या के लिए लिखा लेकिन उसके भीतर से निराला के एक गम्भीर आलोचक साहित्य चिन्तक तथा काव्य कला का बारीक विश्लेषण कर्त्ता उभरता है जिसका हिन्दी आलोचना के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. निराला साहित्य में जीवन दर्शन – डॉ. विनोदिनी श्रीवास्तव
2. निराला का काव्य – नन्द दुलारे वाजपेयी
3. निराला – डॉ. रामविलास शर्मा
4. निराला की साहित्य साधना भाग – डॉ. रामविलास शर्मा
5. निराला के काव्य प्रतिमान – डॉ. शशि सिंह
6. निराला – पदम सिंह शर्मा 'कमलेश'
7. निराला जीवन और साहित्य – प्रो. अनन्त चौधरी
8. निराला का परवर्ती काव्य – रमेश चन्द्र मेहरा
9. निराला के उपन्यास – सन्देव शुक्ल

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 242-247

गांधी के शैक्षिक विचार

रीता रानी रिहालिया
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला 171005

डॉ० महेंद्र सिंह यादव
सहायक आचार्य
राजनीति विज्ञान
संध्यकालीन विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला– 05

सारांश :–

वर्तमान की हमारी शिक्षा पर गाँधी का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। उनकी बुनियादी शिक्षा का हमारी राष्ट्रीय शिक्षा में बड़ा योगदान रहा है । गाँधी हमेशा कहा करते थे कि शिक्षा सम्पूर्ण जीवन के विकास के लिए तथा मानसिक, शारीरिक नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। गाँधीजी राजनीति में प्रवेश के पहले ही के भारत में प्रचलित शिक्षा के दोनों को जान चुके थे और उस समय जो शिक्षा दी जाती थी वह शिक्षा सिद्धान्तों से परे थी और सरकार द्वारा इस ओर किए जाने वाले प्रयत्न पूर्णतया अयोग्य थे। गाँधीजी भारत के जन नेता थे और वे यहाँ की प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं के आधार पर अपनी शिक्षा को, बालकों को देने के पक्ष में थे।

गाँधी अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहते थे। सामाजिक ढांचे को बदलने के लिए शिक्षा में प्रारम्भ से ही सुधार करना उन्होंने आवश्यक समझा । रामचन्द्र भाई, टालस्टॉय, जान रस्किन आदि की विचारधाराओं एवं उनके द्वारा पुस्तकों में समाज के सभी प्रकार के शोषण और अन्याय से मुक्त करने के लिए तथा व्यक्ति के अपने पूर्ण विकास के लिए आध्यात्मिक समाज को आवश्यक समझते थे जो सत्य, अहिंसा, प्रेम और न्याय पर आधारित हो । गाँधी की विचारधारा के ये ही प्रमुख आधार हैं और इनको कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी अनेक प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में तथा भारत में किए। उनकी बुनियादी शिक्षा योजना एक महत्त्वपूर्ण देन है।

श्री मगन भाई देसाई ने 'बुनियादी शिक्षा' (लेखक गाँधीजी) की भूमिका में लिखा है– वर्षा योजना केवल शिक्षा पद्धति ही नहीं है, वह उससे कुछ ज्यादा है। वह तो शिक्षा द्वारा भारत के पूरे राष्ट्रीय प्रश्न को हल करने का एक रास्ता है। इससे गाँधीजी ने उसे भारत के लिए। अपनी सबसे बड़ी भेंट कहा था। तारीख 31 जुलाई, 1937 के 'हरिजन' में स्वयं गांधीजी ने लिखा था– "शिक्षा से मेरा मतलब है बच्चे या मनुष्य की तमाम शारीरिक,

मानसिक और आत्मिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास है। अक्षर ज्ञान न तो शिक्षा का आरम्भ है और न अन्तिम लक्ष्य । वह तो अनेकों उपायों में से एक है जिससे स्त्री–पुरुषों को शिक्षित किया जा सकता है।'' इन्हीं विचारों के आधार पर 1937 के अक्तूबर में वर्धा में राष्ट्रीय सेवकों के सम्मेलन में, जिसके गांधीजी अध्यक्ष थे, राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में चार प्रस्ताव स्वीकार किए गए जिन्हें बुनियादी शिक्षा का मुख्य अंग कह सकते हैं। वे थे, "(1) सप्तवर्षीय निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा, (2) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, (3) उद्योग के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था, एवं (4) स्वावलम्बन पर आधारित शिक्षा । इन प्रस्तावों के आधार पर शिक्षा विशेषज्ञों की एक कमेटी बनाई गई जिसके अध्यक्ष डॉ. जाकिर हुसैन तथा सदस्य सत्यदेव, विनोबा भावे, कालेलकर, आशादेवी थे। 1937, दिसम्बर 2 को जाकिर हुसैन कमेटी की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसके पहले भाग में वर्षा योजना के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालते हुए इसे शैक्षणिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणों से उचित ठहराया है। दूसरे भाग में उद्योग तथा विभिन्न विषयों के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया गया है। तीसरा भाग शिक्षकों के शिक्षण के विषय से सम्बन्धित है। चौथे भाग में निरीक्षण व परीक्षण से सम्बन्धित बातों का उल्लेख पाँचवें भाग में प्रबन्ध आदि के विषय में वर्णन है। अन्त में सब विषयों का क्रम दिया गया है। इस रिपोर्ट में जिस पद्धति को मान्यता दी गई है। वही बुनियादी शिक्षा के नाम से विख्यात है।" अतः यह रिपोर्ट वर्धा योजना, जिसका आधार ऊपर लिखे गए चार प्रस्ताव हैं का व्यावहारिक पहलू है।

यह अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें हस्तकलाओं को महत्व दिया गया है, क्योंकि मशीन का प्रयोग सदैव पूंजीवाद तथा गरीबों के शोषण को बढ़ावा देता है। इसमें हाथ से काम करने को महत्त्व दिया गया है। इस योजना में बालक से प्रारम्भ से ही शारीरिक कार्य कराए जाते हैं ताकि उसे इसके प्रति घृणा की भावना न रहे और और आगे चलकर वह समाज में गौरव तथा सहयोग की भावना के साथ अपना स्थान ग्रहण कर सके। ऊँच–नीच का भाव या दीनता की भावना उसमें न हो । साथ–साथ वह दूसरों के परिश्रम पर स्वयं प्रानन्द उड़ाने की इच्छा न रखे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पुस्तकों को तथा साहित्य को बहुत महत्व दिया जाता है। व्यावहारिक शिक्षा नहीं दी जाती है। परिणाम स्वरूप आत्म निर्भर रहने की शक्ति तथा अपनी ओर से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है जो सफलता के लिए अत्यावश्यक है। इस योजना में हस्तकौशल के द्वारा मस्तिष्क का विकास किया जाता है। हस्तकौशल या कलाएँ वैज्ञानिक रूप में सिखाई जाती हैं, यन्त्रवत् नहीं। कला एवं शिल्प के द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास किया जाता है। साथ–साथ अन्य विषयों, जैसे साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि की शिक्षा भी चलती है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखी गई है। इसमें 6 या 7 वर्ष से लेकर 14 वर्ष की आयु तक के लिए शिक्षा–क्रम रखा गया है। 6–7 वर्ष से पहिले बालक खेलकूद में मग्न रहना चाहता है, गम्भीर कार्य में उसका मन नहीं लगता। 7–8 वर्ष तक हस्तकलाएँ सीखने पर व्यक्ति अपनी आजीविका भली प्रकार कमा सकता है। "आधुनिक शिक्षा में पाठ्यक्रम सब बालकों के लिए और सब स्थानों पर एक जैसा ही अपरिवर्तनशील रखा हुआ है । वही विषय यंत्रवत् सब जगह पढ़ाए जाते हैं। इस योजना में पाठ्य–विषय और पाठ्यक्रम ऊपर से नहीं लादे जाते बल्कि प्रध्यापकों के अपने अनुभवों से तैयार किए जाते हैं । इस योजना में

बाहर की परीक्षाएँ नहीं होतीं। इसमें शिक्षा का सम्बन्ध जीवन की वास्तविक समस्याओं के साथ रखा गया है। जीवन में बिना किसी व्यवसाय को अपनाये काम नहीं चल सकता । प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई हस्तकला ग्रानी ही चाहिए। इस योजना में उद्योग ऐसे छाँटे जाते हैं जो उत्पादक भी हों। इस योजना की एक विशेषता यह है कि विषय अलग–अलग नहीं पढ़ाए जाते बल्कि एक–दूसरे से सम्बन्धित कर दिए जाते हैं। एक विषय जैसे तकलीं चलाना, कपड़ा बुनना, सूत कातना या और कोई क्राफ्ट, शिक्षा का केन्द्र बनाकर अन्य विषय उसी से सम्बन्धित कर दिए जाते हैं। जैसे वस्त्र बुनने के साथ रूई पैदा करने वाले प्रदेशों का भूगोल, वस्त्रों का इतिहास, रुई के पेड़, फूल मादि के चित्र बनाना आदि अनेक विषय साथ–साथ पढ़ाए जा सकते है। वस्त्र बुमना, रंगना, डिजाइन करना आादि भी साथ–साथ सिखाये जाते हैं ताकि 7 वर्ष के बाद बालक उस कार्य में निपुण हो जाये। कापट, क्षेत्र के अनुसार छाँटा जाता है। जैसे, गाँव में कहीं गुड़ या गन्ने सम्बन्धी शिक्षा, कहीं लकड़ी की चीजें बनाना, कहीं चटाई बुनना कहीं बढ़ई, लुहार आदि का काम यह योजना भारत जैसे देश के लिए उपयोगी है क्योंकि यह स्वावलम्बन पर आधारित है। विद्यार्थी जो वस्तुएँ तैयार करेंगे उनसे अध्यापकों का वेतन निकल सकता है। बिल्डिंग आदि का व्यय सरकार तथा जनता वहन करेगी। प्राइमरी शिक्षा में (6 से 11) तक स्वच्छता, स्वास्थ्य रक्षा, न्यूटरिशन, निजी कार्य करना, ड्रिल, घर माता–पिता की सहायता आदि विषय भी शामिल हैं जो व्यावहारिक जीवन में महत्त्व रखते हैं। यही शिक्षा योजना राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के नाम से भी प्रसिद्ध हूँ। कुछ उलट–फेर के पश्चात् इसे राष्ट्र ने स्वीकार कर लिया है।"

बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा विशेषज्ञों को यह प्रपत्ति थी कि इसमें 1– 7 वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। इसे दूर करने के लिए महात्मा गाँधी ने इसे सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा का रूप दिया। 1945 में सेवा ग्राम में उन्होंने घोषित किया कि बुनियादी शिक्षा का क्रम गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त रहेगा। फलस्वरूप इसके चार भाग किए गए– (1) पूर्व–बुनियादी (2) बुनियादी (3) उत्तर– बुनियादी और (4) प्रौढ़ शिक्षा ।

पूर्व– बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य है– "(1) बालकों का सर्वांगीण विकास करना । (2) उनमें सुन्दर मौर स्वस्थ व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदतें डालना । (3) बुनियादी शिक्षा के लिए उन्हें तैयार करना। (4) भोजन, स्वास्थ्य, रहने सहने के ढंग, अच्छी प्रादतें बनने तथा मानसिक और नैतिक विकास के लिए जिस उत्तम वातावरण की उपलब्धि घरों में सम्भव नहीं है उसको प्रदान करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सात वर्ष तक के जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया है– (1) गर्भावस्था से जन्म तक, (2) जन्म से पढ़ाई वर्ष तक, (3) बढ़ाई वर्ष से चार वर्ष तक एवं (4) चार से छः सात वर्ष तक । पूर्व बुनियादी शिक्षा में ये विषय रहेंगे– (1) भाषा, (2) गणित (3) कला, (4) विज्ञान, (5) सामाजिक 1 ज्ञान, (6) संगीत, (7) खेल एवं व्यायाम (8) सफाई, (9) पशुपालन भौर (10) स्वावलम्बन । इन विषयों का प्रारम्भिक ज्ञान समवाय प्रणाली के द्वारा दिया जाएगा। ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष पर अधिकतर बल देना उचित है प्रातः बालकों को ये प्रवृत्तियाँ करनी होंगी– (1) सफाई, (2) भोजन तथा पानी सम्बन्धी अभ्यासक्रम (3) दस्तकारी सम्बन्धी कार्य, (4) बागवानी ।" "बुनियादी शिक्षा के पश्चात्

उत्तर बुनियादी शिक्षा की योजना होगी। इसमें भी बुनियादी शिक्षा के अनुसार ये सिद्धान्त सामने रहेंगे – (क) शिक्षा उद्योग केन्द्रित होगी । (ख) समवाय–पद्धति द्वारा शिक्षा दी जाएगी। (ग) शिक्षा को पूर्णरूप से स्वावलम्बी बनाया जाएगा। विषयों का प्रशिक्षण किसी न किसी काम द्वारा ही दिया जाएगा अर्थात् जहाँ–जहाँ आवश्यकता पड़ेगी वहाँ–वहाँ काम से सम्बन्धित ज्ञान दिया जाएगा। उत्तर बुनियादी शिक्षा छात्रों को निश्चित व्यवसाय के लिए तैयार करेगी। यही व्यवसाय उसकी आजीविका उपार्जन में सहायक होगा। विभिन्न व्यवसायों की अवधि व्यवसाय के अनुसार भिन्न होगी। यह दो वर्ष से लेकर पाँच वर्ष तक भी हो सकती है । उद्योगों के अतिरिक्त इसमें सामान्य विषयों की शिक्षा भी दी जाएगी जैसे (1) मातृभाषा, (2) गरिणत, (3) सामान्य विज्ञान, (4) समाजशास्त्र, (5) ललित कलाएँ, (6) अर्थशास्त्र, (7) शिक्षाशास्त्र, (8) गृहविज्ञान और (9) यन्त्रशास्त्र आदि । यह शिक्षा पूर्णरूप से स्वावलम्बन पर माश्रित होगी । उत्तर बुनियादी शाला में प्रवेश करने वाले छात्र प्रायः वे होंगे जो बुनियादी शिक्षा समाप्त कर लेंगे।"

यद्यपि हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति गाँधीजी के मूल शिक्षा पद्धति से दूर भटकी हुई है लेकिन प्रारम्भिक स्तर पर वह गाँधीजी के शिक्षा दर्शन से बहुत कुछ प्रभावित है। वास्तव में तो बुनियादी शिक्षा देश की वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल एक विकासशील शिक्षा प्रणाली है जो देश व समाज की समस्याओं को हल करने में काफी सीमा तक सक्षम है और जिसका स्थान ले सकने योग्य या जिससे श्रेष्ठतर शिक्षा प्रणाली अभी तक कोई दृष्टि में नहीं आती है । शिक्षा के संदर्भ में डॉ. कमल दाघीच के अनुसार, विवेकानन्द एवं गॉधी के शिक्षा दर्शन का उद्देश्य एक नये समाज की स्थापना था। विवेकानन्द एवं दोनों शिक्षा के माध्यम से सर्वांग मानववाद स्थापित करना चाहते थे। दोनों देश के प्रत्येक नर नारी को शारीरिक भौतिक नैतिक और आध्यात्मिक की दृष्टि से सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाना चाहते थे । शिक्षा के संदर्भ में डॉ० कमल दाधीच के अनुसार, 'विवेकानन्द एवं गाँधी के शिक्षा दर्शन का उद्देश्य एक नये समाज की स्थापना था। विवेकानन्द एवं दोनों शिक्षा के माध्यम से सर्वांग मानववाद स्थापित करना चाहते थे। दोनों देश के प्रत्येक नर नारी को शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक की दृष्टि से सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाना चाहते थे।' "दिमाग में बहुत–सी बातें भर लेने या विविध पुस्तकें पढ़कर परीक्षाएँ पास कर लेने में सच्ची शिक्षा नहीं है प्रत्युत चरित्र संगठन सच्ची शिक्षा है।" "सच्ची शिक्षा तो स्कूल छोड़ने के बाद शुरू होती है। जिसने उसका महत्व समझा है वह सदा ही विद्यार्थी है। अपना कर्तव्य पालन करते हुए और उसके पालन के लिये मनुष्य के ज्ञान में रोज बढ़ना ही चाहिये।" "सुघड़ घर के समान कोई स्कूल नहीं हो सकता, न ईमानदार सदाचारी माता–पिता के समान कोई अध्यापक ही हो सकते हैं।" "ग्राम सेवा ही सच्ची जनशिक्षा है। शिक्षा अक्षर ज्ञान की नहीं देना है बल्कि ग्रामवासियों को सिखाना है, कि मनुष्य, जो विचार करने वाला प्राणी कहा जाता है, वास्तविक जीवन व्यतीत करने के योग्य किस प्रकार बन सकता है।"

डॉ० कमल दाधीच के अनुसार, "पुस्तकों को पढ़ने से ही बुद्धि का विकास होता है, यह खयाल गलत है। इसको दिमाग में से निकालकर यह सच्चा खयाल मन में जमाना चाहिये कि शास्त्रीय रीति से कारीगर का काम सीखने से मन का विकास सबसे जल्दी होता है।" "बुद्धि का सच्चा विकास हाथ, पैर, कान आदि अवयवों के

सदुपयोग से ही हो सकता है अर्थात् शरीर का ज्ञानपूर्वक उपयोग करते हुए बुद्धि का विकास सबसे अच्छी तरह और जल्दी से जल्दी होता है। इसमें भी यदि पारमार्थिक वृत्ति का मेल न हो तो बुद्धि का विकास एक तरफा होता है। गरमार्थिक वृत्ति ह्रदय यानी आत्मा का क्षेत्र है । अतः यह कहा जा सकता है कि बुद्धि के शुद्ध विकास के लिये आत्मा और शरीर का विकास साथ साथ तथा एक–सी गति से होना चाहिये ।" "शिक्षा से मेरा मतलब है बच्चे या मनुष्य की तमाम शारीरिक, माना तक और नैतिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास अक्षर ज्ञान शिक्षा का न तो आरम्भ है और न लक्ष्य। वह तो उन अनेक उपायों में से एक हैं जिनके द्वारा स्त्री–पुरुषों को शिक्षित किया जा सकता है। खुद अक्षर प्रचार की शिक्षा कहना गलत है। इसलिये बच्चे को शिक्षा का आरम्भ किसी दस्तकारी की तालीम से ही मैं करूँगा और उसी क्षण से उसे कुछ निर्माण करना सिखा दूंगा।" "आपको इस विश्वास के साथ चलना होगा कि हिन्दुस्थान के गाँवो की आवश्यकता को देखते हुए, अगर हमें शिक्षा को अनिवार्य बनाना है तो हमें अपनी ग्राम शिक्षा को जरूर स्वावलम्बी बनाना चाहिये।"

डॉ० कमल दाधीच के अनुसार, "अब भी गरीब आदमियों के बच्चे अपने माता–पिता को अपने आप सहारा देते हैं, इसमें उनके मन में यही भाव होता है कि अगर वे उनके साथ काम न करेंगे, तो उनके माता–पिता क्या तो खुद खायेंगे और क्या उन्हें खाने को देंगे। यह स्वयं ही एक शिक्षा है।" "मैं असल जोर धन्धे या उद्यम पर नहीं किन्तु हाथ उद्योग द्वारा शिक्षण पर दे रहा हूँ – साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान इत्यादि सभी विषयों की शिक्षा पर ।" "हम यह नहीं चाहते कि कोई हमारा शोषण करे, न हम खद ही किसी दूसरे राष्ट्र का शोषण करना चाहते हैं। इस योजना (वर्धा शिक्षा योजना) के द्वारा तो हम सब बालकों को उत्पादक बनाकर सारे राष्ट्र की शकल बदल देना चाहते हैं, क्योंकि इससे हमारा सामाजिक हांचा ही बदल जाएगा ।" "मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन उस उच्च शिक्षा का मैं जरूर विरोधी हूँ जो कि इस देश में दी जा रही है। मेरी योजना के अन्दर तो अब से अधिक और अच्छे पुस्तकालय होंगे, अधिक संख्या में और अच्छी रसायनशालाएँ और प्रयोगशालाएँ होंगी। उसके अन्तरगत हमारे पास ऐसे रसायनशास्त्रियों, इंजीनियरों तथा अन्य विशेषज्ञों की फौज की फौज होनी चाहिये, जो राष्ट्र से सच्चे सेवक हों, और उस प्रजा की बढ़ती हुई विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, जो अपने अधिकारों और अपनी आवश्यकताओं को दिन–दिन अधिकाधिक अनुभव करती जा रही है । और ये सब विशेषज्ञ विदेशी भाषा नहीं बल्कि जनता की ही भाषा बोलेंगे। ये लोग जो ज्ञान प्राप्त करेंगे वह सबकी संयुक्त सम्पत्ति होगी। तब खाली नकल की जगह, सच्चा असली काम होगा और उसका खर्च न्यायपूर्वक समान रूप से विभाजित होगा ।"

अतः हरेक दस्तकारी की कला और विज्ञान को व्यावहारिक शिक्षण द्वारा सिखाया जाय और फिर उस व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा शिक्षा दी जाय। उदाहरण के लिए तकली पर की कताई कला को ही लीजिये । इसके द्वारा कपास की मुख्तलिफ किस्मों का और हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रांतों की किस्म–किस्म की जमीनों का ज्ञान दिया जा सकता है। वस्त्र उद्योग हमारे देश में किस तरह नष्ट हुआ इसका इति हास हम अपने बच्चों को बता सकते हैं, इसके राजनैतिक कारणों को बतायेंगे तो भारत में अंग्रेजी राज्य का इतिहास भी उसमें आ जाएगा,

गणित इत्यादि की भी शिक्षा इसके द्वारा उन्हें दी जा सकती है। हमें तो उनको (बच्चों को) अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपने देश की सच्ची प्रतिभा का प्रतिनिधि बनाना है और यह उन्हें स्वाबलम्बी प्राथमिक शिक्षा देने से ही हो सकता है। अतः उनकी बुनियादी शिक्षा योजना एक महत्त्वपूर्ण देन है।

निष्कर्ष :-

गांधी जी शिक्षा को विकास की प्रक्रिया मानते थे। वे शिक्षा को एक साधना समझते थे। वह साक्षरता मात्र को शिक्षा नहीं मानते थे। उनकी इच्छा थी कि हर नागरिक शिक्षित होना चाहिए। वे शिक्षा को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक प्रगति का आधार मानते थे, गांधी ने बेसिक शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया था इस शिक्षा प्रणाली का पाठ्यक्रम छात्रों को आत्मनिर्भर बनाने वाला और उसके सर्वांगीण उन्नति में योगदान देने वाला था। अतः उनका शिक्षा संबंधी सिद्धांत बेसिक शिक्षा का व्यावहारिक रूप था। जिसके द्वारा सभी को शिक्षित किया जा सके। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गांधी जी का शिक्षा दर्शन आदर्शवाद, प्रयोजनवाद और प्रगतिवाद का समन्वय है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. हरिजन, 25–6–1948, पृ० 68
2. प्रतापसिंह, गांधीजी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ० 161
3. डॉ० महेशचंद्र सिंघल, भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं, पृ० 112–113
4. डॉ० प्रभातकुमार भट्टाचार्य, भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं, पृ० 239
5. कमल दाधीच, गांधी का आर्थिक चिंतन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, पृ० 142
6. आनंद शर्मा, गांधी का पथ, एकैडमिक फाउंडेशन, दिल्ली, पृ० 187

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 248-250

हिन्दी में भाषा शिक्षण के महत्व का विवेचन

रेणु शर्मा, शोधार्थी समाजशास्त्र
कैरियर पाइंट यूनिवर्सिटी कोटा राज.

मानव की शिक्षा और ज्ञान की आधारशिला भाषा ही है। इसी के माध्यम से सभी कार्य सम्पादित किए जा सकते हैं। सभ्य समाज में मानवीय उन्नति का आधार भाषा ही रही है। इसकी उन्नति के कारण सभ्यताओं का विकास हुआ और नवीन तकनीकी अनुसंधान संभव हो सके। मनुष्य के विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वान किया। काव्यादर्श में दण्डी का कथन है कि यह दिव्य ज्योति ही समस्त संसार में अपना प्रकाश फैलाए हुए है। इस भाषा रूपी ज्योति के अभाव में संसार में सिर्फ अंधकार ही होता। भाषा शब्द संस्कृत की भान् धातु से निर्मित है। इसका अर्थ है व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जा सकती है।

शिक्षा और शिक्षण– जिस प्रकार भाषा मनुष्य के जीवन का प्रकाश है उसी प्रकार शिक्षा भी उसके जीवन के विकास के लिए अत्यावश्यक है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर शिक्षा प्राप्त करता रहता है। यह प्रकृति प्रदत्त शिक्षा उसके ज्ञान की परिधि को विस्तृत करती है तथा उसे समयानुकूल प्रतिक्रियाओं के लिए प्रेरित करती है। दूसरे अर्थों में शिक्षा का अर्थ अक्षरज्ञान या भाषाज्ञान से लिया जाता है। जे.एस. मेकेन्जी के अनुसार'' व्यापक अर्थ में शिक्षा ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है और जीवन के प्रायः प्रत्येक अनुभव के भण्डार में वृद्धि करती है।'' शिक्षा देने कार्य शिक्षण कहलाता है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक घटकों का योगदान होता है। मानव जिस देश, परिस्थिति आदि में रहता है उसी के अनुरूप शिक्षा ग्रहण करता है। इसमें अधिक विकसित व्यक्ति द्वारा कम विकसित व्यक्ति को ज्ञान प्रदान किया जाता है। शिक्षा शास्त्रियों द्वारा शिक्षण की विभिन्न विशेषताएं बतलाई गई हैं– शिक्षण एक अन्तः क्रिया है जिसका उद्देश्य निश्चित है। यह सामाजिक, व्यावसायिक और विकासात्मक प्रक्रिया है। इसमें कला और विज्ञान दोनों ही हैं। यह एक उपचार विधि और तार्किक प्रक्रिया से गुजरती है। इसमें सुधार और विकास भी किया जा सकता है। शिक्षण का कार्य औपचारिक और अनौपचारिक प्रक्रियाओं से किया जाता है।

शिक्षण में भाषा शिक्षण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें छात्रों को भाषिक दक्षता, सुनने, बोलने, लिखने और पढ़ने में दक्ष किया जाता है। भाषा शिक्षण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें भौतिक पक्ष अर्थात् वर्ण, शब्द, पद, वाक्य, लिपि, विराम चिन्ह, उच्चारण के अंगों, संकेतों को व्यक्त करने के लिए सामग्री, आदि का समावेश होता

है। जबकि मानसिक पक्ष में मनुष्य के मन, भाव, भावना, मनोवेग एवं विचार आदि सम्मिलित होते हैं। भाषा शिक्षण के लिए व्यक्ति का बोलने, लिखने, सुनने आदि में मन लगना चाहिए। हांलाकि बालक द्वारा बाल्यावस्था में माता–पिता के अनुकरण द्वारा एक भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह कार्य आदत निर्माण के द्वारा होता है जिसे पावलन ने अधिगम सिद्धान्त कहा है। भाषा शिक्षण कई सोपानों से गुजरता कर पूर्ण होता है– अनुबंधन अर्थात् अक्षरों और वर्णो का ज्ञान होना। प्रशिक्षण में इन्हें लिखने, पढ़ने, बोलने के कौशलों का विकास किया जाता है। अनुदेशन के द्वारा हिन्दी भाषा में लिखित कविता, गद्य, पद्य, लेखन आदि का बोध और साहित्य का शिक्षण किया जाता है। प्रतिवादन में पढ़े गए की समीक्षा, आलोचना, समालोचना और सौंदर्यानुभूति का शिक्षण करवाया जाता है। इससे भाषा से संबंधित सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है और उसमें दक्षता प्राप्त होती है।

हिन्दी भाषा में शिक्षण के मुख्य दो उद्देश्य होते हैं प्रथम है भाषा पक्ष जिसमें भाषा के तत्वों का ज्ञान और उनका प्रयोग करना सिखाया जाता है। इससे शुद्ध रूप लिखने, बोलने, पढ़ने आदि से संबंधित व्याकरण का पूर्ण ज्ञान होता है। इसमें कौशल पक्ष की प्रधानता होती है। ज्ञान प्राप्त कर उसमें कौशल का विकास करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है। भाषा शिक्षण की उपयोगिता किसी भी भाषा को सीखने में अत्यन्त उपयोगी होती है। कौशल प्राप्त करने से व्यक्ति शुद्ध और स्पष्ट वाचन करता है। उसका सही अर्थ ग्रहण कर सकता है। अपने विचारों को शुद्ध रूप से लिखकर व्यक्त कर सकता है। गद्य और पद्य , कहानी, नाटक को पढ़कर उसका सही उच्चारण और अर्थ ग्रहण करता है। भाषा शिक्षण के द्वारा व्यक्ति में ज्ञान और कौशल को विकसित किया जाता है जिससे वह उसमें दक्षता प्राप्त कर सके।

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है लेकिन कुछ क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का ज्ञान नहीं होने के कारण वहां भाषा शिक्षण की विभिन्न विधियां प्रयुक्त की जाती हैं। भाषा शिक्षण के लिए प्रत्यक्ष विधि के द्वारा नवीन भाषा को मातृभाषा के माध्यम से सिखाया जाता है। इसमें पहले वाक्य बोलना सिखाया जाता है फिर लिपि का ज्ञान करवाकर लिखने के लिए उत्साहित किया जाता है। आगमन विधि के द्वारा व्याकरण का व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता है। परोक्ष विधि में मातृभाषा के द्वारा प्रत्येक वाक्य को अनुदित किया जाता है। इसमें सम्पूर्ण व्याकरण को अनुदित किया जाता है। इसमें व्याकरण के नियमों द्वारा शिक्षण करवाया जाता है। व्यवस्थित विधि में भाषा के कुछ चुने हुए प्रमुख शब्दों और निर्मित समान वाक्यों के माध्यम से भाषा शिक्षण का कार्य किया जाता है। इसमें वाक्यों को कंठस्थ करवाया जाता है। वेस्ट या नवीन विधि के माध्यम से वाचन करवाया जाता है । इन सभी विधियों में मातृभाषा को आधार बनाया जाता है। हिन्दी भाषा में उच्चारण का सर्वाधिक महत्व होता है। शुद्ध उच्चारण के बाद उसका लेखन भी शुद्ध होना अत्यावश्यक है क्योंकि हिन्दी में मात्राओं और चिन्हों के बदलने से उनका अर्थ भी भिन्न हो जाता है। अशुद्ध उच्चारण करने अथवा लिखने से उसका अर्थ भी गलत ग्रहण किया जा सकता है। हिन्दी भाषा में अक्षरों, शब्दों, ध्वनियों का विशेष महत्व है। इनके शुद्ध उच्चारण से बोधगम्यता आती है और भाषा भी परिष्कृत होती है। हिन्दी में विभिन्न ध्वनियां स्वरकृत भेद, कालकृत भेद, स्थानकृत भेद, आभ्यन्तर प्रलयकृत भेद और बाह्य प्रयत्न भेद होते हैं। इसी प्रकार से हिन्दी में वर्तनी की शुद्धता भी आवश्यक होती है।

हिन्दी भाषा की मूल ध्वनियां होती हैं जिन्हें अक्षर कहा जाता है। इन अक्षरों को विशेष चिन्हों से अभिव्यक्त किया जाता है। इन चिन्हों के समूह को लिपि कहते हैं। हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इस लिपि में भी प्रत्येक मूल ध्वनि के लिए विशेष चिन्ह हैं साथ ही संयुक्त ध्वनियों को संयुक्ताक्षरों द्वारा अभिव्यक्त करने का विधान भी होता है। इन ध्वनियों को मात्राओं, अनुनासिक, अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु आदि के द्वारा ध्वनियों के नीचे कुछ चिन्हों से व्यक्त किया जाता है। इसे ही शुद्ध वर्तनी कहा जाता है। हिन्दी में भाषा शिक्षण इसलिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अक्षर संबंधी अशुद्धियां, संयुक्ताक्षर संबंधी, मात्राओं और रेफ संबंधी अशुद्धियां, अनुनासिक, अनुस्वार आदि की अशुद्धियां, ध्वनि का लोप संबंधी अशुद्धियां, ध्वनि आधिक्य की अशुद्धियां, ध्वनि परिवर्तन की अशुद्धियां, अनुस्वार और नुक्ता का अनावश्यक रूप से प्रयोग, शब्द रचना संबंधी वर्तनी की अशुद्धियां होती हैं। इन अशुद्धियों के निवारण के लिए लेखन संबंधी नियमों, निरोधात्मक और सुधारात्मक उपायों का ज्ञान आवश्यक है। हिन्दी साहित्य सम्पदा अत्यन्त सम्पन्न है। इसमें कविता, कहानी, नाटक का शिक्षण भी महत्वपूर्ण है। कवि के भावों और विचारों के साथ बालक को अलौकिक आनंद की अनुभूति करवाना। उसमें कविता के लय, ताल और भाव के अनुसार पाठ की योग्यता उत्पन्न करवाई जाती है। यह तीनों विधाएं मनोरंजन के लिए लेखनीबद्ध की गईं हैं जिनके शिक्षण से व्यक्ति में मर्मर्स्पशी, ह्रदयस्पर्शी, कलात्मकता का विकास होता है। उसमें रचनात्मकता, भाषा सौंदर्य, विचार सौंदर्य और कल्पना का विकास होता है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा का स्वरूप ग्रहण करने के बाद इसका प्रयोजन विविध प्रकार का हो गया है। इसके विविध प्रयोजनों की पूर्ति के लिए सभी को इसका ज्ञान अत्यावश्यक है। हिन्दी का पूर्ण ज्ञान इसके समझने और व्यवहाररूप में प्रयोग के लिए अत्यावश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. प्रसाद वासुदेव– आधुनिक हिन्दी व्याकरण रचना, भारती भवन, पटना।
2. बाहरी डॉ. हरदेव–हिन्दी उद्‌गम : विकास और रूप, किताब महल, इलाहाबाद।
3. रस्तोगी डॉ. प्रेमप्रकाश– हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास, प्र.सं. 1966
4. डॉ. रत्तू कुमार कृष्ण– भाषा विज्ञानः नए भाषायी संदर्भ, बुक एनक्लेव, जयपुर, प्र.सं. 2003
5. मिश्र डॉ. नरेन्द्र– भाषा और भाषा विज्ञान, प्र.सं. 2001

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 251-255

वैश्वीकरण के बदलते परिप्रेक्ष्य में अनुवाद की भूमिका

रिंकी कुमारी, पी.एचडी., शोधार्थी,
हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा

अनुवाद दो या दो से अधिक भाषाओं के बीच विचारों के आदान–प्रदान का एक सेतु माना गया है। अनुवाद के माध्यम से दो या दो से अधिक समाज, संस्कृतियों में प्रयुक्त भाषाओं के बीच एक संबंध स्थापित होता है। भारत एक बहुभाषिक देश है, तथा अनुवाद के माध्यम से सभी भाषाओं के साहित्य, उनकी संस्कृति तथा समाज आदि को बहुत सरल तरीके से समझा जा सकता है। इस कार्य में अनुवादक को एक कलाकार या रचनाकार की भांति सृजन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। पहले से सृजित पाठ का पुनः सृजन करते समय अनुवादक को अनुवाद की वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा भाषा सिद्धांत का अनुपालन करना पड़ता है। प्रत्येक भाषा स्थानीय परिवेश, सामाजिक एंव सांस्कृतिक स्थितियों से प्रभावित होती है। भाषा व्यवहार और प्रयोग की गतिशील वस्तु इसके प्रयोग में विविधता एवं विशिष्टता पाई जाती है। विषयगत, संदर्भगत तथा भूमिगत प्रयोगों के कारण भाषा के प्रयोग में भिन्न–भिन्न अंतर पाए जाते है।

आज जब हम ग्लोबल विश्व की तरफ अग्रसर हो रहें है, और जब भाषाई सीमाएं समाप्त हो रही है ऐसे में अनुवाद ही वह सेतु है जिसके माध्यम से विश्व भर की घटनाओं, विचारों, साहित्य को जब चाहें जहाँ चाहें जिस भाषा में चाहें पढ़ा जा सकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में अनुवाद ही वह उपकरण है जिसके माध्यम से भाषाई सीमायों को लांघते हुये सभी देशों एंव भिन्न भाषा–भाषी वाले एक दूसरे के विचारों को आदान–प्रदान करते है। विश्व फलक पर तेजी से अविभूर्त ज्ञान–विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से संबंध सभी विषयों और क्षेत्रों की जानकारी देना, देश–विदेश की संस्कृति, राजनीति, कूटनीति, व्यावसायिक नीति की समुचित अभिव्यक्त देने में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। यह अनुवादक की रचनात्मक क्षमता के लिए जहाँ एक ओर चुनौती है वहीं दूसरी ओर एक ऐसा शिल्प है, जो पूर्णता पाकर एक कृति–सा आनंद प्रदान करती है। क्योंकि अनुवाद का प्रत्यक्ष संबंध भाषा से होता है तथा इतना गतिशील तत्त्व है, जो मन–मस्तिष्क एवं भावना का पुंज होता है। भाषा शब्द चयन से लेकर अभिव्यक्ति तक अनुभूति से होते हुए गुजरती है। अनुवाद अस्मिता की परिचायक तो होती ही है, साथ ही यह विचारों की संवादक भी होती है जो प्रयोग, ध्वनि एवं शब्द के आधार पर भिन्न–भिन्न स्वरुप धारण करती है। उदाहरण के लिए हिंदी में इनका 'घाट' और "कलश" 'घड़े' के अर्थ में प्रस्तुत होता है। अंग्रेजी में इनका समानार्थी शब्द है, 'चवज' कहने से 'घडे' का बोध होता है लेकिन 'कलश' का सही अर्थ संप्रेषित नहीं होता है। कलश

का अर्थ पानी से भरा हुआ घड़ा या पूजा के लिए उपयोग किया जाने वाला होता है। अंग्रेजी भाषा में पूजा की कोई संकल्पना नहीं है। इसलिए 'कलश' को संप्रेषित करने वाला शब्द भी नही है। अनुवाद करते समय अनुवादक को मूल पाठ के कथ्य और तथ्य पर भी ध्यान देना पड़ता है। अनुवाद का व्यापक संदर्भ प्रतीक सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। इसप्रकार "डार्ट के अनुसार" अनुवाद एक भाषा के सुसंबंध प्रतीकों से दूसरी भाषा के सुसंबंध प्रतीको में अर्थ का अंतरण है"।

अनुवाद और निर्वचन एक दूसरे के पूरक है। क्योंकि अनुवाद के लिए जिस प्रकार भाषा की व्याख्या या विश्लेषण चाहिए वह निर्वाचन प्रक्रिया द्वारा भी पूर्ण होता है। और स्रोत पाठ की तुरंत लक्ष्य पाठ में अनूदित करना आशु अनुवाद है। प्रत्येक भाषा अपने स्थानीय परिवेश, सामाजिक एंव संस्कृतियों से प्रभावित होता है। अनुवाद एक प्रायोगिक विधा है, इसकी प्रक्रिया में प्रयोग, प्रयोजन और प्रयोगता कई तत्व समाहित होते है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार "भाषा की यादृच्छिकता अलग–अलग भाषाओं में अलग– अलग दिखाई देती है। जैसे –हिंदी का शब्द है 'बेटा' इसके लिए मराठी में 'मुलगा', तेलगु में 'कोडुकु' तथा में अंग्रेजी में (वेद) शब्द का व्यवहार किया किया जाता है।" यह सभी शब्द मात्र का ही एक प्रतीक है जो उस भाषा –भाषी के लिए रूढ़ हो चुके है और समाज में इन्हें स्वीकार किया जा चुका है। प्रतीक की अवधारणा त्रिवर्गीय संकेत संबंधों पर आधारित है। यह तीन इकाइयों के आधार पर बनते है।

1. सांकेतित वस्तु
2. संकेतार्थ
3. संकेत प्रतीक

सांकेतित वस्तु का संकेतार्थ से तथा संकेतार्थ का ध्वनि प्रतीक से सीधा संबंध है। लेकिन संकेतित वस्तु और प्रतीक का सीधा संबंध नहीं है। प्रतीक सीधे संकेतित को संकेतित नहीं करता वरना उसको संकेतित करने के लिए संकेतार्थ का सहारा लेना पड़ता है। कहा जा सकता है कि संकेतित वस्तु के लिए ध्वनि प्रतीकों का निर्माण यादृच्छिकता के आधार पर किया जाता है। रोमन यकोब्सन के अनुसार "प्रतीक व्यवस्था के आधार पर किसी भाषिक पाठ के अनुवाद के तीन रूप हो सकते हैं"।

अन्वयांतर :– अनुवाद के इस रूप में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के द्वारा उद्घघाटित अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था के रूप में अंतरण किया जाता है। इसे अंतरूभाषिक अनुवाद भी कहा जाता है। प्रेमचंद ने अपनी हिंदी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' (माधुरी में प्रकाशित, 1924) का उर्दू में 'शतरंज की बाजी' (जमाना में प्रकाशित, 1924) शीर्षक से अनुवाद किया था। उसमें उन्होंने केवल लिपि परिवर्तन ही नहीं किया था बल्कि शब्द के साथ–साथ वाक्य के चयन में भी परिवर्तन किया था। इससे रचना के वातावरण के घनत्व और संवेदना में अंतर हो गया था। इस प्रकार के अनुवाद को अन्वयांतर कहा जाता है।

भाषांतरण :– स्रोत भाषा की सामग्री का लक्ष्य भाषा में अनुवाद की प्रक्रिया में भाषांतरण अत्यंत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि मूल्य भाषा की संपूर्ण इकाइयों का लक्ष्य भाषा में अंतर्गत होता है। अनुवादक को भाषांतरण करते समय

लाक्षणिक आशय को ध्यान में रखते हुए भाषांतरण करना होता है। अनुवाद के इस रूप में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा उद्घघाटित अर्थ का दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण किया जाता है, इसे अंतर भाषिक अनुवाद कहा जाता है। अनुवाद का वास्तविक क्षेत्र अंतर भाषिक अनुवाद ही है। इसके लिए अनुवादक को द्विभाषिक होना आवश्यक होता है। अनुवाद के रूप में अनुदित पाठ स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा के सर्जनात्मक संयोग से घटित पुनः सृजन बन जाता है। रामधारी सिंह दिनकर द्वारा अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद 'सीपी और शंख'इसका एक उदाहरण है। सस्यूर के अनुसार–"भाषा प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके सहारे हम विचारों को व्यक्त करते हैं। इसी कारण इस व्यवस्था की तुलना लेखन पद्धति, गूंगे, बहरों द्वारा व्यवहृत (व्यवहार) वर्णमाला–व्यवस्था प्रतिकात्मक कर्मकांड विधान, शिष्टाचार के नियम, सैनिक संकेत चिन्हों आदि के साथ करना संभव है।

वस्तुतः इन विभिन्न क्षेत्रों के बीच भाषा की अपनी व्यवस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मानवीय व्यवहार की इन विभिन्न प्रतीकात्मक व्यवस्थाओं को ध्यान में रखकर ही सस्युर ने प्रतीक विज्ञान की संकल्पना को आगे बढ़ाया है। यह कहना संभव है कि भाषा की अपनी प्रकृति को समझने के लिए सस्युर ने 'प्रतीकविज्ञान के केन्द्र के रूप में भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था को ही स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उनके चिंतन को समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पहले यह देखना है कि प्रतीक क्या है, और भाषिक प्रतीक से उनका क्या संबंध है। अंतरूभाषिक अनुवाद :– अनुवादक एक ही बात को उसी भाषा में कुछ दूसरी तरह से व्यक्त कर देता है। उदाहरण के लिए यदि कोई हिंदी कविता का अनुवाद हिंदी गद्य में या हिंदी गद्य का अनुवाद पद्य में करता है तो यह अंतरूभाषिक अनुवाद माना जायेगा। इस प्रकार जब एक भाषा की एक शैली से उसी भाषा की किसी दूसरी शैली में अनुवाद किया जाता है तो वह अंतरूभाषिक अनुवाद होता है। मुंशी प्रेमचंद ऐसे ही कहानीकार है जिन्होंने अपनी कुछ रचनाएं पहले हिंदी या उर्दू में लिखी और फिर उनका हिंदी अनुवाद दूसरी शैली में किया गया।

अंतरू भाषिक अनुवाद :– अनुवाद का वह रूप है जिसका प्रयोग हम प्रतिदिन अपने कार्य–कलापों में करते है। उदाहरण के लिए हिंदी से अंग्रेजी, रुसी, चीनी या जापानी भाषा में यदि अनुवाद किया जाता है तो यह अनुवाद अंतर भाषिक अनुवाद कहलायेगा। अंतरूभाषिक अनुवाद में अनुवादक को न केवल स्रोत भाषा पाठ की संरचना तथा बुनावट पर ध्यान देना होता है बल्कि सभी सामाजिक – सांस्कृतिक मूल्य विशिष्ट होते है। इस प्रकार भिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ वाली अभिव्यक्तियों का अनुवाद करना अनुवादक के लिए एक श्रम–साध्य कार्य होता है।

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद :– इस अनुवाद में अनुवाद किसी भाषा की प्रतीक व्यवस्था से किसी अन्य भाषेतर प्रतीक व्यवस्था में अनुवाद किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी कहानी को फिल्म के रूप में अंतरित करना वस्तुतः अंतर– प्रतीकात्मक अनुवाद के अंतर्गत आता है। जैसे कि 'गोदान' 'गबन' 'साहब बीवी और गुलाम' 'तिरिया चरित्तर' 'कसाईबड़ा' आदि अनेक उपन्यासों एंव कहानियों को लेकर जो फिल्में बनी है, वे अंतरप्रतीकात्मक

अनुवाद के उदाहरण है। इस प्रकार किसी कविता का चित्रांकन भी अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद की कोटि में आता है। अनुवाद का यह प्रकार इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों पर आधारित प्रतीक की वास्तविक सत्ता उसकी प्रतीकात्मकता में होती है न कि उसके मात्र कथ्य या अभिव्यक्ति पक्ष में। अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद मूलपाठ की प्रतीकात्मकता पर अपना ध्यान केंद्रित कर उसका अंतरण भाषेत्तर प्रतीक–व्यवस्था द्वारा किया जाता है। इस प्रकार यह होता है कि अनुवादक एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करता है किंतु प्रत्येक भाषा अपने सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ी रहती है और शायद ही कोई दो भाषाएँ ऐसी हों जिनका सांस्कृतिक परिवेश पूर्णतया एक हो। इन्हीं विभिन्नताओं के परिणाम स्वरुप किसी भी भाषाओं में न तो सभी प्रकार की वैचारिक समानता होती है न अभिव्यक्ति अंतरू अनुवाद प्रकारों के अतिरिक्त इसी आधार पर अनुवाद के निम्नलिखित प्रकार देखे गए है। जैसे –विधा के आधार पर, काव्यानुवाद, नाट्यनुवाद, कथानुवाद, निबंधानुवाद आदि अनेक प्रकार है। किन्तु यह सभी प्रकार उपर्युक्त प्रकारों के अंतर्गत किसी न किसी रूप में देखने को मिलाता है। यह कहा जा सकता है की अनुवादक ऐसी परिस्थितियों से जूझते हुए अनुवाद करता है। वह विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हुए अपने अनुवाद कार्य को सफल कर पाता है।

निष्कर्ष :–

भाषा वैविध्य की स्थिति अनुवाद तथा निर्वचन की जननी है। अनुवाद और निर्वचन दोनों ही एक भाषा से दूसरी भाषा में कथ्य के अंतरण की प्रक्रिया होने के बावजूद भी दोनो में एक मौलिक अंतर है अनुवाद का संबंध लेखनी से तथा निर्वचन का संबंध वाणी से है। कहने का तात्पर्य यह कि आशुअनुवाद, भाषांतरण, आशुव्याख्या आदि संज्ञाओं से नामित 'निर्वचन' अनुवाद की ही एक विशिष्ट मौखिक प्रक्रिया होते हुए भी इससे कुछ भिन्न प्रतीत होती है। अनुवाद और निर्वचन के अंतरूसंबंध के संदर्भ में बात दोनों विधाओं में समानत्व के अन्वेषण की बात होगी। परंतु इनमें समानता की अपेक्षा अंतर पर अधिक ध्यान जाता है। अतरू अनुवाद और निर्वचन के अतरूसंबंध पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार आवश्यक है जिसके लिए दोनों को संकेतविज्ञान के एक भूमि पर उतारकर देखना होगा। प्रत्येक लिखित या मौखिक पाठ मूलतः संकेतो से बना होता है । अनुवादक तथा निर्वचक को उस कथित के पिछे के संकेतित को पकड़कर लक्ष्यपाठ के समतुल्य संकेतो मे प्रस्तुत करना होता है। इसके लिए अनुवादक तथा निर्वचक को दोनों भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक, धार्मिक आदि संदर्भों से परिचित होना आवश्यक है। क्योंकि जैसे कि सस्यूर ने कहा है कि भाषा केवल नाम पद्धति नहीं है। हर भाषा भौतिक और अनुभव संसार को अपने अपने ढंग से व्यवस्थित करती है। अतः यही कारण है कि एक भाषा के संकेत दूसरी भाषा में उसी तरह प्राप्त नहीं होते। उसे समतुल्यता के आधार पर ही प्रतिस्थापित करना होता है। सी. एस. पर्स संकेत को परिभाषित करते हुए कहते है।

निर्वचन की प्रक्रिया में भाषिक तथा भाषेतर संकेत सम्मिलित रहते है। निर्वचन के दौरान निर्वचक को वक्ता की भाषा का विषयानुरूप लहजा, आंगिक चेष्टाओं तथा हावभाव आदि भाषेतर संकेतों को भी समझना होता है। अनुवाद के पास जहां सोच–विचार कर अनुवाद करने के लिए समय होता है वहीं निर्वचक को तत्काल ही

अनुवाद मौखिक रूप मे प्रस्तुत करना होता है। अनुवादक तथा निर्वचक दोनों के उद्देश्य, कार्यक्षेत्र, साधन भिन्न है। दोनों विधाओं अनुप्रयुक्त और अनिवार्य कौशल भिन्न–भिन्न है फिर भी दोनों का लक्ष्य एक ही है– किसी भाषा के कथ्य को निष्ठापूर्वक और यथासंभव पूर्ण रूप से अन्य भाषा में अभिव्यक्त करना। कह सकते है कि अनुवाद तथा निर्वचन संकेतों से बने संदेश के अंतरण का क्रिया व्यापार ही है। अतः अनुवादक और निर्वाचक एक भाषा से दूसरी भाषा संदेश के अंतरण में मूलतः एक ही प्रक्रिया का अनुसरण करता है। अनुवादक और निर्वचक दोनो ही एक भाषा से दूसरी भाषा मे संदेश प्रेषित करने वाले माध्यम है। और इस दृष्टि से अनुवाद तथा निर्वाचन अंतरू संबंधित है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. तिवारी भोलानाथ, अनुवाद विज्ञानं सिद्वांत एंव प्राविधि, किताब महल, इलाहबाद, 2009
2. नगेन्द्र, श्रीवास्तव रविन्द्रनाथ, भाषाशास्त्र के सूत्रधार, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली, प्रथम सं. 1984
3. तिवारी भोलानाथ, अनुवादविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1972
4. तिवारी भोलानाथ, भाषाविज्ञान, किताब महल, इलाहबाद

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 256-263

वैश्विक परिपेक्ष्य में हिंदी भाषा और संभावनाएं

डॉ. रूबी चौधरी, सहायक प्राध्यापक,
राजकीय महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

शोधसार :-

हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं है। हिंदी है प्रत्येक हिंदुस्तानी का गर्व, हिंदी है प्रत्येक हिंदुस्तानी की पहचान, हिंदी है हिंदुस्तान का ताज। हिंदी भाषा का इतना परिचय यद्यपि काफी है, परंतु हिंदी के ज्ञान, उसकी अभिव्यक्ति, उसका इतिहास, उसकी सरलता, उसकी सहजता, उसकी परिपक्वता, उसकी मिठास और गहराई और भी न जाने क्या – क्या जिन्हें शब्दों में वर्णित करना आसान कृत्य नहीं है। इन सबके बारे में हम विस्तार से जानने का प्रयत्न करेंगे क्यों कि 'पूर्णता' किसी भी विषय पर प्राप्त करना अपने आप में एक लक्ष्य है। हम केवल अपने सार्थक प्रयास करेंगे।

वास्तव में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, भारतीय साहित्य जितना अधिक प्रचारित–प्रसारित है, वृहद है, अनूठा है, विविध है उतना किसी और देश का संभव हो ही नहीं सकता। हमारे भारतीय साहित्य में जितने वेद, पुराण, श्रुतियां, स्मृतियां, महाकाव्य आदि की उपलब्धता है वह किसी अन्य सभ्यता के पास हो, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अभी हमने सिर्फ साहित्य की बात की इसलिए की है क्योंकि साहित्य की वैश्विक स्तर पर उपलब्धता प्राप्त करने का एक महान हेतु बनी है 'हिंदी'। क्योंकि इसी साहित्य को आम पाठक वृंद की पहुंच एवं समझ तक सरलता से बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। वैसे हिंदी साहित्य में भी ना तो ग्रंथों की कमी है और ना ही विविधता की। प्रत्येक विषय पर (जैसे राजनीति, अर्थ, काम आदि पर) प्रत्येक रस पर (जैसे वीर श्रृंगार, वात्सल्य आदि पर) प्रत्येक विधा पर (जैसे दोहा, सौरठा, कविता, कहानी, नाटक, एकांकी आदि) पर प्रत्येक भाव पक्ष पर या भावना पर (जैसे वीरता, भक्ति, प्रेम, आदि) पर प्रचुर मात्रा में साहित्य, पूर्ण प्रामाणिकता के साथ उपलब्ध है।

हिंदी साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण ही इन्हीं भाव पक्षो की प्रधानता को लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया है जैसे वीर गाथा काल, रीति काल, भक्तिकाल आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी भाषा में ज्ञान है, प्रेम है, करुणा है, मित्रता है, भावा भी व्यक्ति की चरम सीमा है, काव्य सौष्ठव है, छंद अलंकार के साथ सौंदर्यात्मकता है, और इन सबके साथ – साथ है हिंदी भाषा का जो सबसे महत्वपूर्ण गुण, और वह है इसकी सरलता और आसानी से उपलब्धता। क्योंकि भाषा संबंधी यह गुण तो अन्य भाषाओं में भी हैं परंतु और वे भाषाएँ

भी सरल कही जा सकती है। परंतु हिंदी जितनी नहीं, क्योंकि भारत में प्रत्येक राज्य में हिंदी बोलने वालों की एक विशेष जन संख्या उपलब्ध है। और उत्तर भारत जैसे हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश को लगभग पूर्णतया ही हिंदी भाषी क्षेत्र है। इसलिए हिंदी की महत्ता में और इजाफा हो जाता है।

इसकी अखंडता और प्रगाढ़ हो जाती है जब हिंदी की सरलता के साथ – साथ हिंदी की आसान पहुंच, उपलब्धता भी जुड़ जाती है जो इसके वैश्विक रूप को आलंबन देती है।

कीवर्ड्स

अभिव्यक्ति, परिपक्वता, एकीकरण, सम्मेलन, उपलब्धि, अखंड, प्रचारित–प्रसारित, स्मृतियां, श्रुतियां, महाकाव्य, राष्ट्रीय, एकीकरण, परिश्रम, प्रमाणिकता, वैश्विक।

परिचय

हिंदी हमारी अपनी भाषा है, प्रत्येक हिंदुस्तानी की भाषा है, और प्रत्येक हिंदुस्तानी का फर्ज है कि वह हिंदी को अपने ह्रदय से अपनाए, उसका प्रचार–प्रसार करने का यथा संभव प्रयास करे। हिंदी के गौरव की रक्षा करे, तथा विश्व में उसका एक स्थान निश्चित करने में अपना सक्रिय योगदान दे।

बदलती दुनिया बदलते भाषिक परिदृष्य

यदि हम विगत तीन शताब्दियों पर विचार करें तो कई रोचक निष्कर्ष पा सकते हैं। यदि अठारहवीं स दी आस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व का साक्ष्य देती है। इसी तरह बीसवीं सदी अमेरिका एवं सोवियत संघ के वर्चस्व के रूप में विश्व नियति का निदर्शन करने वाली रही है। आज स्थिति यह है कि लगभग विश्व समुदाय दबी जुबान से ही सही, यह कहने लगा है कि इक्कीसवीं सदी भारत और चीन की होगी। इस सदी में इन दोनों देशों की तूती बोलेगी। इस भविष्य वाणी का चरितार्थ करने वाले ठोस कारण हैं। आज भारत और चीन विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थ व्यवस्थाओं में से हैं तथा विश्व स्तर पर इनकी स्वीकार्यता और महत्ता स्वतः बढ़ रही है। इन देशों के पास अकूत प्राकृतिक संपदा तथा युवतर मानव संसाधन है जिसके कारण ये भावी वैश्विक संरचना में उत्पादन के बडे स्रोत बन सकते हैं। अपनी कार्य निपुणता तथा निवेश एवं उत्पादन के समीकरण की प्रबल संभावना को देखते हुए ही भारत और चीन को निकट भविष्य की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वतः महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकास मान अंतरराष्ट्रीय है सियत हिंदी के लिए वरदान–सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिंदी की है सियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिंदी राष्ट्र भाषा की गंगा से विश्व भाषा का गंगा सागर बनने की प्रक्रिया में है।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ :–

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। ऐसा करके हम हिंदी

के विश्व संदर्भ का वस्तु पर कविश्लेषण कर सकते हैं। जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्व भाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्व प्रथम विश्व भाषा का स्वरूप विश्लेषण कर लें। संक्षेप में विश्व भाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्मित किए जा सकते हैंः–

1. उसके बोलने–जानने तथा चाहने वाले भारी तादाद में हों और वे विश्व के अनेक देशों में फैले हों।
2. उस भाषा में साहित्य–सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्रायः सभी विधाएँ वैविध्य पूर्ण एवं समृद्ध हों। उस भाषा में सृजित कम–से–कम एक विधा का साहित्य विश्व स्तरीय हो।
3. उसकी शब्द–संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बड़ी भाषाओं से विचार–विनिमय करते हुए एक –दूसरे को प्रेरित –प्रभावित करने में सक्षम हो।
4. उसकी शाब्दी एवं आर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन–पाठन और लेखन सहज–संभाव्य हो। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।
5. उसमें ज्ञान–विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वाङमय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।
6. वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने–आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।
7. वह अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो।
8. वह जन संचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश–विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।
9. उसका साहित्य अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो।
10. उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधार भूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसल नई–मेल, ई–कॉमर्स, ई–बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके।
11. उसमें उच्च कोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभि व्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।
12. वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो, जो विश्व स्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों।

वैश्विक संदर्भ में हिंदी की सामर्थ्य :–

जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी

निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों – जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है – में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। इस बात को सर्व प्रथम सन् 1999 में 'मशीनट्रांसलेशन समिट' अर्थात यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्व विद्यालय के प्रो. होजुमितनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकडों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है। अंग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान अनुसंधित्सु भी सक्रिय हैं जो हिंदी को चीनी के ऊपर अर्थात प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं। डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन 2005 के हवाले से लिखा है कि, विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1,02,25,10,352) है जब कि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90,04,06,614) है।

यदि यह मान भी लिया जाय कि आँकडे झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिंदी बोलने वालो ंकी संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बड़ी भाषाओं में से है। लेकिन वैज्ञानिकता का तकाजा यह भी है कि हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें कि अंग्रेजी के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गति विधियों को चलाने वाली सबसे प्रभाव शाली भाषा बनी हुई है। चूंकि हिंदी का संवेदनात्मक साहित्य उच्चकोटि का होते हुए भी ज्ञान का साहित्य अंग्रेजी के स्तर का नहीं है अतः निकट भविष्य में विश्व व्यवस्था परिचालन की दृष्टि से अंग्रेजी की उपादेयता एवं म हत्त्व को कोई खतरा नहीं है। इस मोर्चे पर हिंदी का बड़े ही सबल तरीके से उन्नयन करना होगा। उसके पक्ष में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज अंग्रेजी के बाद वह विश्व के सबसे ज्यादा देशों में व्यवहृत होती है।

आने वाली पीढ़ी की भाषा :–

वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश में विशाल जनसंख्या भारत और चीन के साथ–साथ हिंदी और चीनी के लिए भी फायदेमंद सिद्ध हो रही है। हमारे देश में 1980 के बाद 65 करोड़ से ज्यादा बच्चे पैदा हुए हैं। जो विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षित प्रशिक्षित हो रहे हैं। वे सन् 2025 तक विधिवत प्रशिक्षित पेशेवर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के लिए विश्व के समक्ष उपलब्ध होंगे। दूसरी ओर जापान की साठ प्रतिशत से ज्यादा आबादी साठ साल पार करके बुढ़ापे की ओर बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है। ऐसी स्थिति में विश्व का सबसे तरुणमान व संसाधन होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तमाम देशों में लगातार मांग बढ़ेगी। जाहिर है कि जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे । वहाँ की व्यवस्था परिचालन का सशक्त पहिया बनेंगे तब उनके साथ हिंदी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया

में होगा वहाँ हिंदी स्वतः विश्व मंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह माना जा सकता है कि हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा। हिंदी जिस गति तथा आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि सन् 2020 तक वह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि :–

यदि हम इन आँकडों पर विश्वास करें तो संख्या बल के आधार पर हिंदी विश्व भाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृ भाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिंदी में साहित्य–सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत–अविरल धारा की भाँति प्रवाह मान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्व स्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसके पास पच्चीस लाख से ज्यादा शब्दों की सेना है। उसके पास विश्व की सबसे बड़ी कृषि विषय की शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारता पूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदल तेजी वन संदर्भों से दूर हो गए हैं उनका त्याग भी कर दिया है। आज हिंदी में विश्व का महत्त्व पूर्ण साहित्य अनु सृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है।

जहाँ तक देव नागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी की शाब्दी और आर्थी संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मान की करण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिंदी भाषा में है बेशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर, उपग्रह चौनल हिंदी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं।

हिंदी भाषा का प्राकट्य एवं क्रमिक विकास

संपूर्ण भारत में मिले शिला लेखों एवं ताम्र पत्रों के माध्यम से यह प्रमाणिक ऐतिहासिक तथ्य है कि 8वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक संस्कृत आर्यों की सामान्य बोल चाल की भाषा होने के साथ ही साहित्य की परिनिष्ठित भाषा थी। कालांतर में (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) यह भाषा देश में 'ली' भाषा तथा विदेश में 'अरबी' एवं 'फारसी' में परिवर्तित हो गई। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश 'पाली' भाषा में ही दिए थे। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक आते–आते पाली भाषा से एक अपभ्रंश भाषा 'प्राकृत' का जन्म हुआ। हिंदी साहित्य का प्रारंभ इसी 'प्राकृत' भाषा से हुआ है।

प्राकृत भाषा सिंधु नदी के उस पार फारस में 'हिंदवी' नाम से जानी जाने लगी। वस्तुतः 'हिंदवी 'शब्द की उत्पत्ति सिंधी भाषा से हुई है, क्योंकि फारसी लोग 'स' को 'है' उच्चारित करते थे। यही 'हिंदवी' शब्द बाद में हिंदी हो गया।

आमिर खुसरो ने इसी भाषा में साहित्य की रचना की है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक भारत की समस्त भाषाओं का जन्म 'प्राकृत' अथवा 'हिंदवी' से ही हुआ है। यही कारण है कि हिंदी भाषा में सभी दक्षिण एशियाई भाषाओं के शब्द चाहे वे विदेशी, अरबी, फारसी, हो या मूल संस्कृत तत्सम शब्द हों, बहुतायत में मिलते हैं।

हिंदी भाषा का प्रचार – प्रसार

'सब देसन से लैकर हू, निज भाषा माही प्रचार'।

अर्थात् सब देशों में रहते हुए, भ्रमण करते हुए भी अपनी भाषा के द्वारा ही स्वयं का, अपनी भाषा का ही प्रचार – प्रसार करना चाहिए। इसका सबसे उत्तम उदाहरण हमारे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। जब विवेकानंद जी 11 सितंबर 1893 में शिकागो में 'विश्व धर्म सम्मेलन' में भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे तो उन्होंने अपनी ही भाषा में अपना व्यक्तव्य प्रस्तुत किया था। जिसके शुरूआती शब्द थे– 'अमेरिका में रहने वाले मेरे प्यारे भाई – बहनों'।

उन्होंने विदेशी धरती पर जाकर भी अपनी हिंदी भाषा को, अपने स्वाभिमान को, अपने आत्म गौरव को, अपनी हिंदुत्व को, अपनी पहचान 'हिंदी' को नहीं छोड़ा।

यह हम सबके लिए एक सबक है, हम सब के लिए अनुकरणीय है।

प्रस्तुत समय में लोग अंग्रेजी भाषा को बोलना, उसका प्रचार –प्रसार करना गौरव की बात समझते हैं। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि '"English is just a Language, not a measure of any one's Intelligence" यानी अंग्रेजी सिर्फ एक भाषा है, यह किसी के ज्ञान, उसकी विद्वत्ता का परिचायक या पैमाना नही है।

यही हिंदी भाषा अखंड भारत में कैलाश मानसरोवर से लेकर सिंहलद्वीप तक प्रचलित थी जो बाद में अपभ्रंश होकर नवीन भाषाओं के रुप में विकसित हो गई। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत की प्रथम मौलिक उत्तराधिकारी भाषा हिंदी ही है जो प्रमाणिक रुप से देश की समस्त आधुनिक भाषाओं की जननी है। इसी कारण हम इसे भारत की 'सर्वव्यापी' भाषा का दर्जा देते हैं, और एक अन्य तथ्य एवं गौरव शाली बात यह भी है हिंदी विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। भारत और अन्य देशों में 60 करोड़ से अधिक लोग हिंदी भाषा बोलते पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरीशस, गयाना, सूरी नाम और नेपाल की अधिकतर जन संख्या हिंदी भाषा का ही प्रयोग करती है। हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, जन भाषा के विभिन्न सोपानों को पारकर 'विश्वभाषा' बनने की ओर निरंतर अग्रसर है।

हिंदी हम सब का गौरव

जब विश्व के अन्य देश अपनी मातृ भाषा को अपनाना, अपनी पहचान बताना गौरव की बात मानते हैं तो

हम हिंदुस्तानी हिंदी को अपनाने से क्यों कतराते हैं ? राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी कार्य यथा संभव हिंदी में ही होने चाहिए। हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार विद्यार्थी जीवन से ही प्रारंभ हो जाना चाहिए ताकि हिंदी का धारा प्रवाह प्रसार हो सके। इस विषय पर जगदीश त्यागी का यह दोहा अनुकरणीय सिद्ध हो सकता है–

'गूंज उठे भारत की धरती, हिंदी के जयगानों से,
पूजित, पोषित, परिवर्द्धित हो बालक, वृद्ध, जवानों से'।

राजभाषा के रूप में हिंदी का संवैधानिक महत्त्व तथा अन्य आधुनिक विषयों के साथ उसका संबंध और समन्वय भारतीय संविधान सभा ने विशद विचार मंथन के बाद 14 सितंबर 1949 को हिंदी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया। भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ और तभी से देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी विधिवत भारत संघ की राजभाषा है। हिंदी को राज भाषा तो घोषित कर दिया गया परंतु केंद्र सरकार के कार्यों में हिंदी को अंग्रेजी का स्थान देने के लिए गंभीरता से प्रयास, केंद्र सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए। जिसके परिणाम स्वरुप राज भाषा अधिनियम 1963 को पास किया गया। इस अधि नियम के तहत प्रशासन चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करने का प्रस्ताव किया गया जिनमें विभिन्न आधुनिक विषय जैसे तकनीकी, पत्रकारिता आदि भी सम्मिलित किए गए। इस अधिनियम के आधार पर जिन बिंदुओं पर कार्य किया कार्य हुआ वह हैं –

1. शब्दावली का निर्माण।
2. प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद।
3. हिंदी शिक्षण योजना।
4. यांत्रिक साधनों की व्यवस्था।
5. कंप्यूटर।
6. इलेक्ट्रॉनिक टेली प्रिंटर।
7. हिंदी की मुद्रण क्षमता में वृद्धि।
8. राजभाषा के संबंध में कानूनी व्यवस्थाएं।

इसी क्रम में आगे राजभाषा अधिनियम 1976 का भी प्रावधान किया गया। राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भारत सरकार के सभी मंत्रालयों विभागों पर है। यह विभाग समन्वय के लिए वार्षिक कार्यक्रमों को जारी करने के अलावा कई प्रकार की समितियों का गठन करके यह कार्य कर रहे हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है– 1. केंद्रीय हिंदी समिति। 2. हिंदी सलाहकार समितियां।
3. राजभाषा कार्यान्वयन समितियां।

यह सभी अपने – अपने कार्य क्षेत्रों में हिंदी के लिए, हिंदी के उत्थान के लिए आवश्यक कार्य कर रही हैं। और समय–समय पर विभिन्न स्तरो पर हिंदी की कार्यशालाओं का आयोज न भी कराया जाता है। तात्पर्य है कि हिंदी में काम करने का, हिंदी को विश्व स्तर की भाषा बनाने का कार्य प्रगति पर है। यहां यह बात स्पष्ट कर देना मैं अपना कर्तव्य समझती हूं कि साहित्यिक महत्व, विचारों की महत्ता, आदि इन सबका ओचित्य तभी

है, जब इन सबको संवैधानिक आधार मिले। कोई भी विचार, कानून तब बनता है जब उसे सरकारी अनुमति प्राप्त होती है। और वह तभी प्रभाव शाली भी हो पाता है। इसलिए केवल वैचारिकता ही उपयोगी नहीं है। उसके लिए हमारे देश का सर्वश्रेष्ठ कानून 'संविधान' में इसका क्या प्रावधान किया गया है, यह जानना भी अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष :- इसलिए निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि हमारा शोध जो एक विचार, एक सोच, एक भाव से आरंभ हुआ था, हमने उसे विस्तार प्रदान करते हुए प्रमाणिक ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि प्रदान की। तथा इसके साथ – साथ उसे आधुनिकता के विषयों के साथ समायोजित करते हुए संवैधानिकता का आलंबन प्रदान किया जो उसके अस्तित्व, उसकी प्रमाणिकता, उसकी विश्वसनीयता के लिए अत्यंत आवश्यक है। अंत में यही कहना पर्याप्त है कि ' तू हिंदी है हिंदी को पढ़ता चला जा,
और हिंदी के पथ पर बढ़ता चला जा।

संदर्भ सूची :-

1. हिंदी साहित्य और सामासिक संस्कृति–डॉक्टर कर्ण राजशेखर गिरी राव, पृष्ठ संख्या 55
2. हिंदी साहित्य में सामासिक संस्कृति की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति–प्रोफेसर केसरी कुमार, पृष्ठ संख्या 46
3. भारतीय व्यक्तित्व के संश्लेष की भाषा–डॉक्टर रघुवंश, पृष्ठ संख्या 85
4. देश की सामसिक संस्कृति की अभिव्यक्ति में हिंदी का योगदान–डॉक्टर राजकिशोर पांडे, पृष्ठ संख्या 59
5. हिंदी साहित्य में संस्कृति के तत्व–डॉक्टर शिवनंदन प्रसाद, पृष्ठ संख्या 152
6. हिंदी का विकासशील स्वरूप–डॉक्टर आनंद प्रकाश दीक्षित, पृष्ठ संख्या 109
7. मानक भाषा की संकल्पना और हिंदी–डॉक्टर कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृष्ठ संख्या 89
8. सांस्कृतिक भाषा के रूप में हिंदी का विकास– डॉक्टर त्रिलोचन पांडे, पृष्ठ संख्या 74
9. प्रशासनिक हिंदी का विकास–डॉक्टर नारायण दत्त पालीवाल, पृष्ठ संख्या 63
10. जन – जन की विकासशील भाषा 'हिंदी'–भागवत झा आजाद, पृष्ठ संख्या 121
11. भारत की भाषिक एकता, परंपरा और हिंदी–प्रोफेसर माणिक गोविंद, पृष्ठ संख्या 76
12. हिंदी की संवैधानिक स्थिति और उसका विकास शील स्वरूप–प्रोफेसर विजेंद्र स्नातक, पृष्ठ संख्या 129
13. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देवनागरी–श्री जीवन नायक, पृष्ठ संख्या 108
14. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी–प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 78
15. भारत की राज भाषा नीति और उसका कार्यान्वयन–श्री देवेंद्र चरण, पृष्ठ संख्या 69

हिंदी का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य–श्री बच्चन प्रसाद सिंह, पृष्ठ संख्या 112

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 264-267

भारतीय सिनेमा और हिंदी भाषा

सुश्री संगीता कुमारी, असिस्टेंट प्रोफेसर
जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
सकतपुरा, कोटा (राज.), 324008

भारत विश्व का एक अद्भभुत देश हैं, जहां बहुजातीय, बहुभाषीय, बहुनस्लीय और बहुधर्मी मानव–समुदाय परस्पर प्रेम–मिलाप और सौहार्द से मिलजुल कर रहते हुए एक गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण करते हैं। मिली–जुली सामाजिक संस्कृति ही भारत की आन्तरिक शक्ति है हमारी भाषाएं न केवल हमारी अभिव्यक्ति का माध्य है, बल्कि वे हमारी संस्कृति की संवाहक भी है। अनेक भाषाए होने के बावजूद भी हर भारतवासी, प्रत्येकभाषा का सम्मान वह अपनी मातृभाषा से करता हैं। सभी भाषाओं में हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा हैं, जो उत्तर से लेकर कश्मीर तक, सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, पुर्व में कामाख्या से लेकर पश्चिम में कच्छ तक बोली और समझी जाती है, यह गौरव का विषय हैं कि हिंदी आज भारत की सीमा लांघकर विश्व के हर कोने तक जा पहुँची है। विश्व के करीब 192 देशों में हिंदी न केवल पढ़ाई जी रही हैं, बल्कि शान से बोली भी जा रही है, इस व्यापकता के पीछे अन्य कारकों के अलावा सिनेमा भी एक कारक है, जिसके माध्यम से हिंदी विश्व में सिरमौर बन पायी हैं।

हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की प्रथम राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा है। लेकिन फिर भी इसका विकास नहीं हो रहा है, हिंदी सिनेमा ने इसे व्यापार और आर्थिक लाभ की भाषा के रूप में जिस तरह विस्मय जनक रूप से स्थापित किया है, आज इसके पारंपरिक विरोधियों व उनके दुराग्रहो का मुंह बंद कर दिया है। आज आर्थिक सुधारों व उदारीकरण के दौर में इस निजी पहल का जो चमत्कार हमारे सामने आया है इससे हिंदी भाषा अपने आप दुनिया भर के दूरदराज के एक बड़े भूभाग में समझी जाने वाली भाषा बन गई है। हिंदी सिनेमा के माध्यम से देश–विदेश के छात्रों में हिंदी गाने सुनने व देखने का उत्साह बढ़ गया है तथा हिंदी फिल्मों को देखकर उन्हें सीखने में मदद मिलती है।

हिंदी सिनेमा संवादों की परंपरा के साथ सीधे ही रंगमंच और तत्समय व्याप्त शैलियों से बड़ा प्रभावित रहा है। सिनेमा से पहले रंगमंच था, पात्र थे, अभिव्यक्ति की शैली थी।

भारतीय सिनेमा में फिल्मकार व अभिनेता राज कपूर संगीत से लेकर भाषा तक के प्रति गहरा समर्पण रखते थे। उनकी फिल्म आह,आग, आवारा आदि फिल्मों में हिंदी के संवादों में कहीं कोई समस्या नहीं है। हिंदी के साथ निरंतर बने रहने वाले लेखक, पटकथा कारों, और निर्देशकों ने अपनी एक धारा का साथ नहीं छोड़ा।

70 के दशक में श्याम बेनेगल और गोविंद निहलानी जैसे फिल्मकारों ने अपने सिनेमा में हिंदी भाषा के साथ साथ उच्चारण की स्पष्टता पर भी ध्यान दिया गया है। जिसे हम जुनून, अंकुर, निशांत आदि फिल्मों में देख सकते हैं। भारतीय सिनेमा ने पिछले 5–7 दशक पूर्व से ही शहरी दर्शकों के साथ–साथ ग्रामीण अंचलों तक प्रभावित किया और आज भी अपना प्रभाव बनाए हुए हैं, टेलीविजन के आश्चर्यजनक खोज के साथ ही उसने समुचे विश्व में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है।

भारत की गौरवशाली परंपरा, उसका स्वर्णिम इतिहास और सामाजिक संस्कृति की अनुगूंज विश्व के कोने–कोने में हिंदी के माध्यम से प्रसारित– प्रचरित करने में भारतीय सिनेमा के योगदान को कैसे विस्मृत किया जा सकता है ? भारत के पहले प्रधानमंत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू के परामर्श को शिरोधार्य करते हुए उस दशक के जादुई करिश्मा के धनी और अपने समय के सबसे बड़े स्टार, निदेशक राज कपूर ने ''श्री 420'' का निर्माण किया था। उस फिल्म में एक गाना था ''मेरा जूता है जापानी पतलून इंग्लिषतानी, सिर पर लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्थानी'' आज भी रूस में लोग बड़े चाव के साथ गाते नाचते देखे जा सकते हैं। ल्युमर बंधुओं ने 1895 में एडिसन के सिनेमैटोग्राफी यंत्र पर आधारित एक यंत्र की सहायता से चित्रों को चलते हुए प्रदर्शित करने में सफलता पाई। इस तरह सिनेमा का आविष्कार हुआ।

अपने अविष्कार के बाद लगभग तीन दशकों तक सिनेमा मूर्ख बना रहा। सन् 1927 ई में वार्नर ब्रदर्स ने आंशिक रूप से सवाक् फिल्म जाज सिंगर बनाने में सफलता अर्जित की। इसके बाद 1928 में पहली पूर्ण सवाक् फिल्म लाईटस ऑफ न्युयार्क का निर्माण हुआ।

सिनेमा के आविष्कार के बाद से इसमें कई परिवर्तन होते रहे और इसमें नवीन तकनीकों का प्रयोग होता रहा। अब फिल्म निर्माण तकनीक अत्यधिक विकसित हो चुकी है। इसलिए आधुनिक समय में निर्मित सिनेमा के दृश्य और ध्वनि बिल्कुल स्पष्ट होते हैं।

सिनेमा का अर्थ चलचित्र का आविष्कार 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। चित्रों को संयोजित कर उन्हें दिखाने को ही चलचित्र कहते हैं। इसके लिए प्रयास तो 1870 के आसपास शुरू हो गया था किंतु इस सपने को साकार करने में विश्वविख्यात वैज्ञानिक एडिसन एवं फ्रांस के ल्युमिर बंधुओं का प्रमुख योगदान था।

यूनियन बंधुओं ने 1895 में एडिन के सिनेमैटोग्राफी यंत्र पर आधारित एक यंत्र की सहायता से चित्रों को चलते हुए प्रदर्शित करने में सफलता पाई इस तरह सिनेमा का आविष्कार हुआ।

वर्तमान में हिंदी फिल्मों का बहुत बड़ा बाजार है यहां ज्यादा मात्रा में बजट के अनुरूप हिंदी फिल्में बन रही है। गुलज़ार व जावेद अख्तर जैसे लेखक हिंदी भाषा में संवाद व गीतों को लिखकर हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। स्पीलबर्ग की फिल्म''जुरासिक पार्क'' ने भारत में हिंदी संस्करण कर हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार किया तथा लाभ प्राप्त किया। इसी तरह हॉलीवुड के फिल्म निर्माताओ ने अपनी अंग्रेजी फिल्म को हिंदी रुपांतरित कर भारत में अपना अलग ही प्रदर्शन स्थापित किया।

हिंदी भाषा में डबिंग किए हुए अंग्रेजी फिल्मो के इन संस्करणो ने उन्हें देश में लोकप्रियता के शिखर पर

पहुंचा दिया है। भारत को आकर्शित करने का उनका उद्देश्य हिंदी भाषाओं को जानना व महत्व देना है।

इसी क्रम में आज भारत के कई कोने में इसकी पहुंच हों गई है। भाषा प्रचार प्रसार की संस्कृति और जातीय प्रश्नों के साथ सिनेमा हमेशा से गतिमान रहा है, उसकी यह प्रक्रिया अत्यंत सह बोधग्मय रोचक संप्रेषणीय और ग्राह्म है जब हम भारतीय सिनेमा का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि भाषा का प्रचार प्रसार साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतरण हिंदी गीतों की लोकप्रियता हिंदी की अन्य उपभाषाओं /बोलियों का सिनेमा में योगदान रहा है।

आज भारतीय सिनेमा में जीवन भर की उपलब्धियों पर जो सबसे बड़ा पुरस्कार है, वह दादा साहेब फाल्के पुरस्कार ही है, और यह भारत रत्न जैसा है, संस्कृति के इतिहासविदों के लिए यह फाल्के की अंतिम विरासत है, तो अन्य लोगों के लिए लोकप्रिय भारतीय दृष्टि कला की शुरुआत है।

भारतीय फिल्मों के माध्यम से हिंदी भाषा को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा है, तथा हमारे फिल्मकारों के माध्यम से हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार पूरे विश्व में हो रहा है। भारतीय सिनेमा ने हिंदी भाषा की लोकप्रियता में जहां चार चांद लगाए हैं, वही उसकी व्यवहारिकता को भी बढ़ाया है।

ग्लोबल होती इस दुनिया में मोबाइल और कंप्यूटर की संचार क्रांति ने हिंदी को विष्व की सिरमौर भाषा बना दिया है।

आपको याद होगा कि अमेरिका के राष्ट्रपति ओबामा ने अपने अमेरिकी नागरिकों को भी हिंदी भाषा सीखने के लिए संबोधित किया है।

हिंदी आज विश्व की अन्य भाषाओं को पीछे छोड़ते हुए दूसरे पायदान पर खड़ी है। हिंदी आज भले ही भारत की राष्ट्रभाषा ना बन पाई हो लेकिन यह विश्व भाषा जरूर बन गई है।

निष्कर्ष :-

हिंदी फिल्मों के माध्यम से हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार किया गया है तथा हिंदी फिल्मों के माध्यम से ही भारत की संस्कृति का विस्तार किया गया है आज के युवा वर्ग की मांग है कि वह दर्शकों को अपने देश की सभ्यता संस्कृति गौरवपूर्ण परंपरा के दर्शन सिनेमा के माध्यम से कराए।

सन्दर्भ :-

1. भारतीय इतिहास कोश :– सच्चिदानंद भट्टाचार्य, (उत्तर प्रदेश , हिंदी लखनऊ)
2. हिंदी विश्वकोश :–कमलापति त्रिपाठी सुधाकर पांडे, (नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी)
3. हिंदी भाषा का इतिहास :– डॉ भोलानाथ तिवारी, (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)
4. राजभाषा भारती :–डॉक्टर श्री प्रकाश शुक्ला (नीति पत्रिका)
5. देशबंधु :– महेंद्र मिश्र, (1959)
6. सिनेमा के सौ वर्ष संस्करण :– संपादक मृत्युंजय (2011, संस्करण)
7. हिंदी सिनेमा :– पारख जवरीमल्ल, वाणी लोक, (नई दिल्ली, 2012)

8. डॉ. विजय शिंदे का आलेख :– विश्व सिनेमा के इतिहास का विहंगवलोकन
9. डॉ. विजय शिंदे का आलेख :– भारतीय सिनेमा का आरंभ
10. डॉ. विजय शिंदे का आलेख :– सिनेमा की कथा संरचना संरचना (Narrative Structure of Film)
11. सिनेमा का सफर
12. https://web-archive-org/web/20190103051111/http://agoodplace4all.com
13. भारतीय सिनेमा घर :– 1930 से अब तक

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 268-273

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका

डॉ0 संगीता यादव, पूर्व शोधार्थी,
पी॰डी॰एफ॰, हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 221005

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।।"

आचार्य मम्मट [1]

आचार्य मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताए हैं, कवि काव्य की रचना जिन छः प्रयोजनों को केन्द्र में रख कर करता है वह है यश की प्राप्ति, अर्थ की प्राप्ति, व्यवहार कुशलता, अमंगल से रक्षा, आनन्द और कान्ता के समान मधुर उपदेश देना। इन तत्वों के उचित समावेश का ही परिणाम एक स्वस्थ साहित्य है जो भौतिक सुविधाओं और दार्शनिक सिद्धान्तों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। हितैन सह इति सष्टिमूह तस्याभावः साहित्यम् अर्थात् साहित्य का मूल तत्व सबका हितविधान है। स्वान्तः सुखाय से लेकर लोकमंगल की भावना से लिखा गया साहित्य निश्चित रूप से समाज के प्रत्येक वर्ग को जोड़ने का कार्य करता है। यह व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक स्तर दोनों मोर्चों पर समान रूप से प्रभाव डालता है। साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है। यह कटु एवं अव्यवस्थित मन को शान्त तथा निर्मल बनाता है तो वहीं समाज को समय–समय पर नवीन धारा से भी जोड़ता चलता है।

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका की यदि चर्चा की जाय तो यह ज्ञात होगा कि हिन्दी साहित्य व्यक्ति विशेष और सामूहिक दोनों मोर्चों पर समान रूप से अपनी छाप छोड़ता है। आदिकाल से वर्तमान समय तक हिन्दी साहित्य की रचनाएँ मनुष्य को प्रभावित करती रही हैं और उन्हें उचित मार्ग दिखाने की भी कार्य करती रही हैं। साहित्य और समाज दोनों अलग–अलग हो कर भी एक दूसरे से जुड़े हैं वैदिक, साहित्य के बाद का लिखा गया साहित्य इस बात की पुष्टि करता है। साहित्य में समाज को अधोरेखित किया जाता है, डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में, ''महान लेखक सामाजिक जीवन का केवल वर्णन नहीं करते। लेखक का दृष्टिकोण स्वभावतः अधिक समीक्षात्मक होता है। उसके लिए ऐसे प्रसंग का आविष्कार करना ज़रूरी हो जाता है। जिनमें उसके पात्र स्वयं अपनी नियति की खोज कर सकें। समाज केवल संस्थाओं का साधन मात्र नहीं है। उसमें एक ओर जहाँ

व्यक्ति के आचार–विचार के आदर्शों एवं प्रतिमानों की व्यवस्था है–वहीं दूसरी ओर ऐसे सुविचारित मूल्यों का अन्तर्भाव भी है, जिन्हें सामाजिक स्तर पर सिद्ध करने के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना होता है। साहित्य में सामाजिक प्रतिमानों और प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब रहता है, इसमें संदेह नहीं किन्तु उसमें लेखक के अभिमत मूल्यों का प्रतिफल भी उतना ही अनिवार्य है और यह कहना गलतन होगा कि मूल्यों के स्तर पर ही साहित्य समाज शास्त्रीय अध्ययन को शक्ति एवं अर्थवत्ता प्रदान करता है।''[2]

साहित्यकार जब कोई रचना करता है तो वह तत्कालीन समाज में घटित हो रही घटनाओं से प्रेरित हो रहा होता है, ये घटनाएँ सकारात्मक या नकारात्मक दोनों हो सकती हैं। सकारात्मक विचारों एवं घटनाओं को लिखते समय उसके महिमामंडन में कोई कमी नहीं रखता तो वहीं, समाज में सदियों से चली आ रही कुप्रथाओं का विरोध करता है तथा उसके उन्मुलन के प्रयास में साहित्य की रचना करता है, साथ ही वह नवीन विचारों के संचार का माध्यम भी बनता है। साहित्य का महत्वपूर्ण कार्य अपने लेखन द्वारा समाज को यह बताने का प्रयास करना भी है कि वैश्विक स्तर पर उसकी उपस्थिति कहाँ पर है। अज्ञेय लिखते हैं कि, ''चिन्तन साहित्य और साहित्यकार को न केवल सीधे–सीधे सामाजिक परिवर्तन से जोड़ता है बल्कि उसे अपना अधिकार समझाता है कि साहित्यकार को बताये कि कौन सा सामाजिक परिवर्तन सही और वांछनीय है। और इसके लिए वह योजना बना कर साहित्यकार को देना चाहता है–जिस योजना का साहित्यकार की अपनी दृष्टि या अपने विवेक से आत्यन्तिक सम्बन्ध होना वह आवश्यक नहीं मानता। जिन संस्कृतियों में लीला–भाव नहीं रहता वे उस हद तक बन्ध्य और स्थितिशील हो सकती हैं, भले ही गम्भीरता उनमें बनी रहे।

बल्कि उनकी यह गम्भीरता भी परम्परा के आग्रह का रूप ले लेती है। और जिन साहित्यों में लीला–भाव नहीं रहता वे भी स्थितिशील हो जाते हैं और उनकी गम्भीरता भी रीति और परम्परा के आग्रह का रूप ले लेती है, प्रयोग से कतराती है।''[3] यदि हमें किसी भी समाज के लोक जीवन और वर्ग संघर्ष की खोज करनी है तो वहाँ के साहित्य का अध्ययन हमेशा से ही मददगार साबित होता है। ऑस्टिन वारेन ने लिखा है कि, ''साहित्य और समाज के सम्बन्धों के अध्ययन का सबसे आसान तरीका है साहित्यिक कृतियों को सामाजिक दस्तावेज मान कर, सामाजिक यथार्थ की कल्पित तस्वीर मानकर उसका अध्ययन करना।''[4] समाज में साहित्य की भूमिका के संदर्भ में शमशेर बहादूर सिंह का कथन है कि, ''साहित्य का दायित्व अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणा में, अपने आन्तरिक संस्कारों में समाज–सत्य के मर्म को ढालना–उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है।''[5] मनुष्य अपनी भावनात्मक अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से करता है तथा उसके विचार

अधिक से अधिक जनमानस तक सुगमता से प्रेषित करने के लिए ऐसी भाषा का भी चुनाव करता है जो समाज में लोकप्रिय हो तथा सामान्य जन की भाषा हो, जिसके लिए हिन्दी भाषा सबसे उपयुक्त जान पड़ती है। हिन्दी भाषा को लेकर विद्वानों के विचार निम्नवत है–

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।''

भारतेन्दु हरिश्चन्द[6]

''यूं तो देश में कई भाषाएं और हैं, पर राष्ट्र के माथे की बिन्दी है हिन्दी।'' मृणालिनी घुले [7]

''लगा रहे प्रेम हिन्दी में, पढ़ूँ हिन्दी लिखूँ हिन्दी चलन हिन्दी चलूँ, हिन्दी पहरना, ओढ़ना खाना।।

भवन में रोशनी मेरे रहे हिन्दी चिरागों की स्वदेशी ही रहे बाजा, बजाना, राग का गाना।।''

राम प्रसाद बिस्मिल[8]

''आते ही मुख पर अति सुखद जिसका पावन नाम ही, इक्कीस कोटि–जन–पूजिता हिन्दी भाषा है वही।''

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध[9]

जब भारत देश स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय था तब हिन्दी ही अपना भाषायी दायित्व निभा रही थी। सभी क्रान्ति–समाचार, संवाद और संदेश हिन्दी में ही प्रसारित किए जाते थे। देश के क्रान्तिकारियों द्वारा भारतवासियो को प्रोत्साहित करने के लिए जो गीत गाये जाते थे वे भी हिन्दी के तत्कालीन कवियों की कविताएँ हुआ करती थीं। भारत जैसे बहु भाषायी देश, जहाँ प्रत्येक प्रान्त अपनी–अपनी विविधताओं से सम्पन्न रहा है बावजूद इसके अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एकजुट हो कर संघर्ष कर रहा था जिसके नेपथ्य में भाषा का एक होना महत्वपूर्ण था, ऐसे में सबको एक साथ जोड़ने के लिए हिन्दी जैसी सशक्त एवं लोकप्रिय भाषा जिसमें वो सारे गुण मौजूद रहे जो सभी को एक सूत्र में जोड़ सकने का कार्य कर सके, अपना अभिन्न कार्य कर रही थी। ''हमारे देश की दशा के सुधार और उन्नति के लिए हमारा सबसे बड़ा साधन विद्या है। यह अमृत है, जिसके सेवन करने से हमारे भाई–बहन फिर बलवान, धर्मवान, ज्ञानवान और धनवान हो सकते हैं। प्रजा में विद्या का प्रचार उसकी मातृभाषा के द्वारा ही हो सकता है।

जिस प्रान्त में उसी भाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिए। अंग्रेजी के द्वारा हमारा बहुत उपकार हुआ है, किन्तु हम अंग्रेजी के द्वारा पढ़े हुए लोगों को उचित था कि अब तक प्रत्येक प्रान्त की भाषा की ऐसी उन्नति करते कि उसी के द्वारा ऊँची जाति की शिक्षा हो सकती, क्योंकि बिना ऐसी शिक्षा के जातीय जीवन का वृक्ष न हरा–भरा और पुष्ट हो सकता है न रक्षित रह सकता है। इसलिए सब प्रकार के देशी भाषाओं का प्रचार करना हमारा धर्म है।''[10] उक्त अंश काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महान शिक्षाविद्, भारतरत्न महामना मदन मोहन मालवीय के द्वारा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को लिखे एक पत्र का है जिसे गाँधी जी ने इंदौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए 28 मार्च 1918 को पढ़कर सुनाया था। सन् 1910 में काशी में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता मालवीय जी ने की थी। इस सम्मेलन में उच्च कक्षाओं में हिन्दी शिक्षण, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग आदि महत्वपूर्ण प्रस्तावों को पारित किया गया। हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने एवं उसे आगे की पंक्ति में रखने के लिए मालवीय जी ने अनेकानेक प्रयास किए। उनका कहना था कि, ''भारतवासियों को अपनी भाषा विदेशी अक्षरों मे लिखने को कहना वैसा ही है जैसा कि अंग्रेजों से अपनी भाषा को नागरी अक्षरों में लिखने को कहना।''[11]

एनी बेसेन्ट ने हिन्दी को सर्वाधिक प्रचलित भारतीय भाषा स्वीकार करते हुए उसे राष्ट्र की एकता का मुख्य

साधन माना। उनका मानना था कि हिन्दी जानने वाला आदमी सम्पूर्ण भारतवर्ष में यात्रा कर सकता है। 1816 में विलियम कैरी ने लिखा कि हिन्दी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है। रामकृष्ण मिशन, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन–प्रयाग, बम्बई हिन्दी विद्यापीठ आदि अनेक संस्थाएँ इस दिशा में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही थी। महात्मा गाँधी हिन्दी भाषी नहीं थे लेकिन वे जानते थे कि हिन्दी ही देश की सम्पर्क भाषा बनने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में गाँधी जी ने लोगों के मन से भाषा विषयक संदेहों के निवारणार्थ यह प्रस्ताव पास कराया कि, ''यह सम्मेलन घोषित करता है कि राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी का वह स्वरूप मान्य समझा जाय जो हिन्दू, मुसलमान आदि सब धर्मों के ग्रामीण और नागरिक व्यवहार करते हैं, जिसमें रूढ़ सर्वसुलभ अरबी, फारसी, अंग्रेजी या संस्कृत शब्दों या मुहावरों का बहिष्कार नहीं और जो नागरी या उर्दू लिपी में लिखी जाती है।''[12] देश की एकता एवं अखण्डता को बनाये रखने के लिए हिन्दी का अहम योगदान है।

स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी पत्रकारिता ने अहम भूमिका निभाई है। 1816 में बंगाल गजट (राजा राम मोहन राय), मिरातुल, संवाद कौमुदी, बंगाल हैराल्ड, उतंड मार्तण्ड, मर्यादा, लीडर, इण्डियन ओपिनीयन, वर्तमान पत्र, क्रान्ति, समाचार सुधा वर्षण, अभ्युदय, शंघनाद, कल्याण, हिन्दी प्रदीप, चाँद, हंस, प्रताप, बलिदान आदि जनवादी पत्र–पत्रिकाओं में तत्कालीन साहित्यकारों, समाज सुधारकों एवं क्रान्तिकारियों ने आन्दोलन सम्बन्धी साहित्य की रचना कर स्वतंत्रता आन्दोलन को गति प्रदान की। जिसके लिए उन्होंने हिन्दी भाषा को माध्यम बनाना उपयुक्त समझा। हिन्दी साहित्यकारों में मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीधर पाठक, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद आदि ने अपनी राचनाओं के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सुभद्राकुमारी चौहान ने झाँसी की रानी, मैथिलीशरण गुप्त ने भारत–भारती, जयशंकर प्रसाद ने अरूण यह मधुमय देश हमारा, इकबाल ने सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुतां हमारा, बंकिमचंद्र चटर्जी ने वंदे मातरम् एवं बालकृष्ण शर्मा नवीन ने विप्लव गान लिख कर क्रान्तिकारियों के बल व साहस को और ऊँचा कर दिया।

1. ''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए/एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर को जाए/नाश! नाश! हाँ महानाश!!! की प्रलयंकारी आँख खुल जाय।''[13]
2. ''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।''

जय शंकर प्रसाद[14]

इसी कड़ी में राधाकृष्ण दास, बद्रीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, पंडित अम्बिका दत्त व्यास, बाबू रामकिशन वर्मा जैसे प्रबुद्ध रचनाकारों ने राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति को सर्वोपरि मानते हुए कालजयी रचनाओं का सृजन किया। यह स्पष्ट है कि भाषा की सुगमता साहित्य को लोक प्रिय बना देती है यही हिन्दी साहित्य के साथ हुआ हिन्दी भाषा में लिखा गया साहित्य आम–जन तक आसानी से पहुँचा और समाज को प्रभावित भी किया। साहित्य में मुख्य रूप से तीन विशेषताओं का समावेश होता है जिसके कारण किसी भी समाज एवं परिवेश के

लिए साहित्य महत्वपूर्ण हो जाता है—पहला तो साहित्य अतीत से प्रेरित होता है, दूसरा वह वर्तमान में हो रही गतिविधियों को चित्रित करता है और तीसरी विशेषता भविष्य के लिए समाज को साहित्य का योगदान नवीन दिशा दिखाने तथा उसके उत्थान में व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। समाज—कल्याण में हिन्दी साहित्य का योगदान हम आदिकाल से आधुनिक काल तक के साहित्य में देख सकते हैं कि किस प्रकार हिन्दी साहित्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पारिवारिक मुद्दों पर वैचारिक और तार्किक वर्णन करने के साथ स्वतंत्र और नव्य विचारधारा को भी उद्घाटित करता है और यही इसकी विशेषता भी है।

हम हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नज़र डाले तो यह ज्ञात होगा कि आदिकाल में जहाँ नाथ, सिद्ध, बौद्ध एवं लोक साहित्य की रचना हो रही थी वे उस समय के सामान्य जन—मानस पर केन्द्रित थी, रासों साहित्य जिसमें राजाओं की प्रशंसा की गई थी उसके परोक्ष में प्रजा ही सम्मिलित थी जो राजा के पराक्रम एवं वीरता पर विश्वास करे। भक्तिकाल में की गई रचनाएँ पूर्ण रूप से समाज और सामान्य मनुष्य के जीवनोत्थान से प्रेरित थी। इस काल के कवियों में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, रसखान आदि ने ईश्वर और मनुष्य के बीच की दीवार गिरा कर समाज के गरीब और संघर्ष कर रहे लोगों को एक सम्बल प्रदान किया। राम, कृष्ण के साथ ईश्वर को प्राप्त करने के लिए तत्कालीन कवियों ने ज्ञान और प्रेम को भी उचित माध्यम बताया। रीति काल तक आते—आते आहित्य तीन भागों में विभाजित हो गया—रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त जहाँ कुछ कवि राजा की प्रशंसा में काव्य की रचना कर रहे थे तो कुछ कवि आचार्यत्व भाव से प्रेरित काव्य लिख रहे थे वहीं कुछ रचनाएँ सामान्य जन द्वारा समाज में घट रही घटनाओं से भी प्रेरित थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी साहित्य की पैठ धीरे – धीरे समाज के हर वर्ग में हो चली थी । उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी तो भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक समाज निर्माण की शताब्दी कही जा सकती है।

इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ – साथ समाज

l/kkj dksHkh l a/kkZdk fo'k; cuk;k A bl dky dsl kfgR; usl ekt tkx j.k dsfy, d Hkh v iuh ijk rk u l a—fr dksfu'Bk d sl kFk Lej .k fd ; k g S rksd Hkh r kRd kfy d fLFkfr ; ksa ij x gjk oZd sl kFk fpUr k Hkh O; Dr d h g S vk/kqud dky r d v kr&v kr sl kfgR; nksfo/kkvksa esa foHkDr gksx ; k&x | v kS i |] r Fkk v usd mi foHkk t u t S sHkkj r esa nq; ksa] f} osnh ; qx] "kDy ; qx] "kDy dkyhu ; qx] Nk; kokn] i zx fr okn] i zx sokn] L=h&foe"kZ nfy r foe"kZ v kfnokn h&l kfgR;] FkMZ&t SMj d fUnz v kfn cgq l sfoHkkx ksa esa foHkDr gksfgUnh l kfgR; esa dO; d s v yokd gkuh] mi U; kl] ukVd] v ky kspuk j fucU/k , oa v kRed Fkk v kSd sy S ku } kjk l ekt d ksl kfgR; l sr Fkk l kfgR; d ksl ekt l st kS Vsj [kusd k d k; Zfd ; kA i zsp Uh] t ; "kdj i zn] fuj ky k] egknsh oekZ; "ki ky] v er` y ky ukx j] gfj "kdj i jl kn] v kS i zd k"k okYeh fd] ekgunk uS e"k jk, v kfn l kfgR; d k j ksa d sfp Ur ui wkZ y S ku usl ekt d ko.kZ d j usd sl kFk ml subZ fn"kk fn[kkusd k Hkh i z k fd ; k g S A v kt d y d sv f/kd k"ka% l kfgR; esa l ekt esa i pfy r fol axfr ; ksa, oa d q Fkk v ksa d ksd sUnz esa j [k d j l kfgR; fy [kk t k j gk g S fd l h d sfy , ; g fojks k d j usd k ek/; e g S rksfd l h d sfy , o S kfj d ep a t gk; foe"kkZd k v kn ku&i zk ku fd ; k

जाता है। इसका प्रयोग विद्रोह के औजार के रूप किया जा रहा है जिसके कारण कभी–कभी वैचारिक मतभेद एवं टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। महीप सिंह लिखते हैं कि, ''प्रायः दलित साहित्य विद्रोह का साहित्य है। विद्रोहयानि आवेश, विद्रोह यानि शत्रुता, विद्रोह यानि विप्लव। दलित साहित्य एक ओर वंचना के कारण होने वाली हृदय विदारक यातनाओं को उद्धार प्रदान करता है। सामाजिक व्यवस्था में दलितों को जीवन जीने के लिए प्रतिबद्ध किया जाता है। दलित साहित्य जातीय व्यवस्था को नष्ट करना चाहता है। सामाजिक व्यवस्था का निर्मूलन करना चाहता है। वे सामा जिक परिर्वतन चाहते है।''[15]

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सकें, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बता सके उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[16] हिन्दी साहित्य के लेखन के निरन्तर प्रवाह के कारण यह अपनी लोकप्रियता के सर्वोच्च है।

संदर्भ सूची :-

1. आचार्य मम्मट
2. डॉ0 नगेन्द्र साहित्य का समाज शास्त्र, पृ0 15
3. अज्ञेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 20
4. ऑस्टिन वारेन, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 56
5. शमशेर बहादूर सिंह, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 112
6. कविता, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 02
7. कविता, मृणालिनी घुले, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ0 66
8. कविता, राम प्रसाद बिस्मिल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 98
9. कविता, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 345
10. महामना मदन मोहन मालवीय, 1918, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
11. महामना मदन मोहन मालवीय, वही
12. महात्मा गाँधी, 1935 हिन्दी साहित्य सम्मेलन
13. कविता, बालकृष्ण शर्मा नवीन, विप्लव गान
14. कविता, जयशंकर प्रसाद, प्रयाण गीत
15. महीप सिंह, साहित्य और दलित चेतना, पृ0 117
16. महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन, डॉ0 धर्मपाल सैनी, मधुमती, पृ0 15

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 274-278

वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा

प्रा. डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे, हिंदी विभागाध्यक्ष
आ. शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा
ता. जावली जि. सातारा पिन – 415012

वैश्वीकरण के इस युग में विदेशी भाषाओं को बड़ी संख्या में आत्मसात किया जा रहा है। उसी प्रकार हिंदी भाषा को भी पूरे विश्व में अपनाया जा रहा है। विश्व के अनेक देशों में बसे भारतीयों ने अपनी सांस्कृतिक विरासत और हिंदी भाषा के साहित्य को अक्षुण्ण रखने के लिए विविध हिंदी न्यास की स्थापना की है। इन न्यास के माध्यम से भारतीय अनेक सांस्कृतिक गतिविधियों और साहित्यिक गतिविधियों को बढ़ावा दे रहे है। विश्व के कोने कोने में बसे भारतीय लोग हिंदी भाषा के माध्यम से एक दूसरे के करीब आकर अपनी पहचान को मजबूत कर रहे है। साहित्य का सृजन करते हुए विदेशों में हिंदी चैनल भी शुरू कर रहे है।

हिंदी भाषा भारतीय संस्कृती की संवाहक है। विश्व के देशों ने जब सांस्कृतिक आदान प्रदान हो या साहित्यिक आदान प्रदान हो पूरे विश्व में हिंदी भाषा पीति को स्वीकार किया है। कई विदेशी हिंदी प्रेमियों के ब्लॉग्स एवं हिंदी पत्रिका है। साहित्यिक कृतियों का निर्माण हो रहा है। विश्व के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है। इन विश्वविद्यालयों में करोड़ों छात्र हिंदी का अध्ययन कर रहे है। उन देशों में अमेरिका, जापान, यूरोप आदि प्रमुख देश है। हिंदी भाषा और उसका साहित्य विश्व पटल पर आधुनिक जनसंचार इंटरनेट के माध्यम से विश्वभाषा बन रही है।

भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति मानव समुदाय के चार मुख है। जिनसे चराचर दिशासंबंधी ज्ञान तथा भाव बोध का प्रवाह होता रहता है। 20वीं सदी में सबसे बड़ा परिवर्तन आखरी दशक में हुआ। वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का फायदा ग्राहकों को हुआ। घरेलु गैस, स्कूटर, गृहकर्ज आदि अब माल तथा सेवा देने वाले विक्रेता अब हतारे दरवाजे पर खड़े है। इन सब प्रक्रिया में हिंदी भाषा का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग होता है। वैश्वीकरण के कारण भारतीय संस्कृति भी काफी प्रभावित हो रही है। हिंदी हमारे देश की राष्ट्रभाषा, राजभाषा तथा सांस्कृतिक एकता की भाषा है। इसका सर्वप्रमुख कारण है हर किसी हिंदुस्तानी के बीच संपर्क स्थापित करने वाली संपर्क भाषा हिंदी है।

विश्व के किसी भी स्थान पर रहने वाला कोई भी मनुष्य एक ऐसे समाज की अवश्य कामना करता है, जहॉ व्यक्ति– व्यक्ति के बीच कोई संघर्ष ने हो, कोई किसी को उलाहना ना दे, एक दूसरे की कमजोरियो को अनदेखा कर दे। अंजना संधीर भी ऐसे ही स्वप्नमयी संसार की कल्पना करती है –

''फिर एक बार, चलते है
उलाहनों से दूर
करते है अनदेखा खामियो को
भूलते है एक दूसरे के फेके हुए
दर्द भरे, चूमते आग से तीरों को''

अपने संस्कारो के कारण ही कवदेश में रहकर भी प्रवासिनी कवयित्रियों ने हिंदी भाषा के गौरव को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। पूर्णिमा देसाई हिंदी भाषा को भारत मॉ की बिंदी के रूप में कल्पित करती हुई हिंदी भाषा की ताकत को इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है–

''मै हिंदी हूँ, भारत मॉ की बिंदी हूँ
जाति धर्म के बन्धन तोड़ो, भारत मॉ की गरिमा हूँ ।
एक ही माला के मोती सब, रेशम की मै डोरी हूँ।''

विश्व मानव के संदर्भ में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना भारतीय समाज में सदियों से व्यवह्रत रही है। आज सारी सीमाएँ तोड़कर मानव कलॉ एवं भावना के माध्यम से एक–दूसरे के नजदीक आ गये है, परंतु स्वार्थ एवं भौतिक लालसा के कारण जब राष्ट्र–राष्ट्र के बीच जंग शुरू होती है तब विश्व मानव या मानव मात्र के मन में मानवता के संदर्भ में प्रश्न उपस्थित हो जाते है। नेहा गुप्ता ने इसी प्रश्न को उछालते हुए कहा है –

''माना जीती है जंग हमने
सो किया वीर करार
लेकिन झुठला सकते है
मानवता की ये हार ?''

मारिशस, फिजी, हालैंड, सूरीनाम, इंग्लैंड, अमेरिका, जापान आदि देशों में भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिंदी का सृजनात्मक एवं प्रचार साहित्य न्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है, जिसका प्रभाव इन राष्ट्रों के बाजारो पर भी पड़ना स्वाभाविक है। विकसित राष्ट्रों के बड़े बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठान भी अपने व्यापार प्रसार–प्रचार में भारतीय भाषाओं विशेष रूप से हिंदी व्यवहार रूप में लाने को बाध्य है। धीरे – धीरे कम्प्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से हिंदी भाषा का दायरा काफी व्यापक हो रहा है। सिंगापुर में भी हिंदी भाषा सीखने वालों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। आर्य समाज मंदिर तथा स्वामी दयानंद सरस्वती की स्मृति में चलने वाले विद्यालयों के माध्यम से भी हिंदी प्रचार–प्रसार बड़ी तेजी से बढ़ रहा है।

आस्ट्रेलिया में भी हिंदी भाषा बड़ी तेजी से बढ़ रही है। व्यवसाय और उद्योग बढ़ाने के लिए हिंदी भाषा के विज्ञापन उनके लिए एक महत्वपूर्ण साधन है। यह निर्विवाद है कि भारतीय नागरीकों में सबसे अधिक प्रचलित और लोकप्रिय भाषा हिंदी ही है, और वे अधिकांशतः इसी भाषा का व्यवहार करते है। अतः विदेशी नागरिक और कंपनियॉ भी हिंदी अपनाने को बड़ी तेजी से अपना कदम बढ़ाती जा रही है। वैश्वीकरण के युग में आज साहित्य का नया रूप 'तरंग साहित्य', 'वेबसाइट साहित्य' सामने आया है। इसकी सत्ता राज्य, राष्ट्र, जाति वर्ग को

अस्वीकार करती है। विश्व के अन्य भाषा के साहित्य का अनुवाद हिंदी में करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है।

वैश्विक दौर में आज हिंदी तल से उठकर आकाश की उन उॅचाइयों तक जा पहुॅची है, जिसका हम सभी को, विशेषकर भारतवर्ष को, भारतवासियों को इंतजार था। आज हिंदी ने गॉव की कच्ची व सॅकरी गलियों से निकलकर शहर की लंबी चौड़ी सड़कों को पार कर हवाई पट्टी पर तेज रफ्तार से दौड़ती हुई अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पकड़ मजबूत की है।

हिंदी को वैश्विक रूप प्रदान किया है – उन्नत सूचना प्रोगिकी ने, कम्प्यूटर ने और साहित्य ने। वैसे कहा भी गया है – 'साहित्य समाज का दर्पण है'। साहित्य का संबंध सदैव संस्कृति से रहा है और हिंदी भारतीय संस्कृति की अस्मिता की पहचान है। स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी और लोक भाषाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वाधीनता की बलिवेदी पर न्योछावर होने की लौ जो देशवासियों में जगाई, वह हिंदी भाषा के माध्यम से ही जगाई, वह हिंदी भाषा के माध्यम से ही जगाई थी। क्योंकि इस संग्राम में हर तबके, हर मजहब, हर भाषा और विभिन्न संस्कृतियों को जानने वाले लोग थे, जिनके मध्य संचार और व्यवहार का कार्य हिंदी ही करती थी । स्वाधीनता संग्राम में सामान्य जन की भागीदारी महत्त्वपूर्ण रही है। विशिष्ट लोगों को कार्य दिशा निर्देशन करना व उन्हें सही गलत की पहचान कराना था। भारत में स्वाधीनता की जो लौ जलाई गई, वह मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए नही थी, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए भी थी। भारत में साहित्य, संस्कृति और हिंदी एक दूसरे के पर्याय रहे है, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नही होगी।

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिये का सूल ।।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गून हेात प्रवीन ।
निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।

भारतेंदु ने इन पंक्तियों के माध्यम से वह सब कुछ कह दिया है, जो उन्हे भारतीयों के लिए, हिंदी के लिए कहना था। उनका मकसद भारतीयों के दिल में अपनी भाषा के प्रति प्रेम तथा आदर का भाव जगाना था और जगाया भी। उस भाव ने आज हिंदी को एक नई दिशा प्रदान की है। और यही नई दिशा अब राष्ट्रिय से अंतरराष्ट्रिय होकर अन्य भाषाओं, विशेषकर अंग्रेजी के लिए चुनौती बनी हुई है।

साहित्य में वैश्वीकरण का संबंध लगभग सभी विधाओं में उल्लेखनीय रूप में है। वैश्वीकरण और आज की कविता का संबंध बहुत नजदीक से है। 'आलोचना' पत्रिका के सहस्त्राब्दि अंक में 'प्रेमरंजन अनिमेश' की एक छोटी कविता 'हामिद का चिमटा' प्रकाशित है उसकी पंक्तियॉ निम्न प्रकार है –

''कविता मरे लिए तीन पैसे का चिमटा है।
जिसे बचपन के मेले मे मोल लिया था मैने
कि जले नही रोटियॉ सेकने वाले हात
कि दूसरे को दे सकूॅ अपने चूल्हे की आग।''

मॉल संस्कृति आज अपना जौहर दिखा रही है। गली गली आवाज देकर अपनी चीजे बेचती औरते आज

नजर नहीं आती है। मॉल आपनी बहुमंजिला इमारत में सभी जीवनावश्यक वस्तुओं की पूर्ति कर रहा है। विज्ञापन लोगों तक इन वस्मुओं की जानकारी देता है। हरि मृदुल की 'चादर' कविता आधुनिकता का बोध कराने के साथ – साथ इसमें डूब कर फिर एक बार अपनी जगह लौटने की ओर संकेत करते हुए लिखते है –

''एक दिन आम हो जाएगी वाशिंग मशीन
कोई बात नही करेगा डिटरजेंट पावडर की
लडकी बूढ़ी हो जाएगी
मर जाएगा विज्ञापन
चर्चा में रहेगी फिर भी चादर
चादर वही कबीर की
साढे पॉच सौ साल पुरानी झीनी झीनी बीनी।''

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य की कविता पाठक को सोचने के लिए बाध्य करती है कि, कविता क्या है और कविता क्यो है ? अपने समकालीन रूढ़ी परंपरा, शोषण, भ्रष्टाचार आदि सामाजिक समस्याओं पर कुठाराघात करने के साथ – साथ कविता के माध्यम से पाठक की बुद्धि तथा हृदय की भूख प्यास भी बढ़ी हुई है, जिनका निरूपण कविता के माध्यम से होना अनिवार्य प्रतीत होता है। मुक्तीबोध ने कहा था – ''आज की दुनिया में जिस हद तक शोषण बढ़ा हुआ है, जिस हद तक भूख प्यास बढ़ी हुई है, उसी हद तक मुक्ती संघर्ष भी बढ़ा हुआ है और उसी हद तक बुद्धि तथा हृदय की भूख प्यास भी बढ़ी हुई है।

वैश्वीकरण में हिंदी कहानी ने अपना अलग स्थान बनाया है। कात्यायनी की कहानियॉ तथा 'रात के सतरी की कहानी' में भी इसका उल्लेख आया है। जिसमें दुनिया भर की औरतों की स्थिति का वर्णन किया है। डॉ. विमल जालान के अनुसार – ''वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग कई तरह से हुआ है एक अर्थ तो शाब्दिक है तो दूसरा अर्थ यह देशी हितों की जगह बहुदेशीय हित को उपर रखने वाला नियम है।'' एकांत श्रीवास्तव ने अपनी कहानी 'लडकी औ आम' में बाजारवाद वैश्विक जीवन को उल्लेखित किया है। इससे ही पता चलता है कि, हिंदी साहित्य और वैश्वीकरण का उल्लेख किया जाने लगा है।

'सब जन हिताय, सब जन सुखाय' का नारा आज वैश्वीकरण के संदर्भ में गूँज रहा है। सारे संसार को व्यापार के लिए एक करने की इसकी दृष्टि से हम समझे तो वह एक आयामी दिखायी देगी। वैश्वीकरण के दौर में हमारी अपनी पहचान बरकरार रखने का कार्य हिंदी साहित्य कर रहा है। भारतीय संस्कृति में जिस ढंग से वैश्वीकरण ने खुद को प्रस्तुत किया है, उससे हमारा साहित्य और संस्कृति प्रभावित हुई है। फिल्मो, विज्ञापनों तथा विदेशी वस्तुओं के चलते मचलते विदेश कब देश जैसा लगने लगा पता ही नही चला।

वैश्वीकरण के प्रभाव को इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मंगलेश डबराल, अरूण कमल, अशोक वाजपेयी, अशोक चक्रधर, लीलाधर जगुडी, राजेश जोशी, चंद्रकांत देवताले, आलोक धन्वा, विनोद कुमार शुक्ल, हूबनाथ, प्रेमरंजन, उदय प्रकाश, रामनिहाल गुंजन, ध्रुव शुक्ल आदि कई कवियों के नाम गिनाएँ जा सकते है, जो वैश्वीकरण प्रवृत्तियॉ एवं परिणामों पर कविताओ के माध्यम से अपनी

बात रख रहे है।

विश्व का बॅटवारा वंश, जाति, धर्म बोली आदि बातों के आधार पर भले ही हुआ हो, प्रांतीय सीमा के बंधन कडे हुए हो, किंतु आज फिर से समग्र विश्व को एक नियमावली, एक संस्कृति, एक भाषा, एक धर्म के आधीन लाने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रयास में हिंदी भाषा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आज समय है कि हिंदी विश्वात्मक बाजार के लिए एक अनिवार्य तत्त्व बन चुकी है। दरअसल भारत में हिंदी के व्यावसायिक प्रयोग के सुगठित विकास की जड़े है। इस जमीन पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पदार्पण और उपके द्वारा यहॉ देशव्यापी या यूँ कह सकते है कि बहुदेशव्यापी बाजार का खुलना अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। ऐसा नही है कि मुगलकाल से और कुछ हद तक उससे पहले से ही देश के बाहर के व्यापारी हिंदी के माध्यम से इस देश के अनेक भागों में अपना व्यापार नही करते अफगानिस्तान से हिंग, अफीम, कम्बल, दरी आदि लाकर देश के उत्तरी क्षेत्र में मुगलकाल से व्यापार करने वाले काबुली वाले की कहानी हम सभी जानते है, परंतु व्यापक रूप से सुनियोजित ढंग से छोटे बड़े सभी ढंग की वस्तुओं का सारे राष्ट्र के स्तर पर, और कुछ हद तक इसी सीमा के पार कुछ दूसरे देशों तक अपने व्यवसाय का फैलाने, अपने माल आपनी सेवा को बाजार देने का काम भारत में विश्वात्मक बाजार के खुलने और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा प्रचलित व्यावसायिकता में हिंदी आज के विश्वात्मक बाजार के लिए अनिवार्य तत्त्व बन चुकी है। पुरे विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या अधिक है।

सारी दुनिया स्थानीयता से शुरू होती है। भाषाएँ भी स्थानीयता से शुरू होती है। अतः इस स्थानीयता को बचाना जरूरी है। हर भाषा का एक विशिष्ट कार्य एवं प्रयोजन होता है, हमे इसे मान लेने में कठोर नही होना चाहिए। इससे पहले कि हमे अप्रवासी हिंदी मिलने लगे, इसे अंर्तराष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिए। हिंदी अंर्तराष्ट्रीय भाषा तो है ही, लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिंदी भाषा को केवल साहित्य तक ही सिमित न रखा जाए।

तात्पर्य इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य और वैश्वीकरण का संबंध निकटतम है। मनुष्य का भविष्य समृद्ध बनाने की बात हो या मनुष्य संवेदन शीलता को कायम रखना हो, मनुष्य के संघर्षों को बतलाना हो पूरे विश्व में हिंदी भाषा काम आ सकती है। वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ –

1) संपा. डॉ. अंजना संधीर – प्रवासिनी के बोल, पार्श्व पब्लिकेशन अहमदाबाद 2006

2) पूर्णिमा देसाई – हिंदी भारत मॉ की बिंदी

3) नेहा गुप्ता – वीरगति

4) नामवर सिंह – आलोचना

5) डॉ. नरसिंह दुबे – अक्षरधारा

6) डॉ. माधव सोनटक्के – वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भाषा और साहित्य

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 279-281

हिन्दी भाषा का महत्व

Dr. Savitri Chaudhary, Principal,
Bharti T.T. College, Anantpura Kota
Kota University, Kota, 1-S-23, Sadhbhawna Block,
Vigyan Nagar, Kota, Rajasthan

प्रस्तावना :-

भाषा का अविष्कार ही विकास को संस्कृति की उन्नति का सूचक रहा है भाषा की अनुपस्थिति में हम संसार की कल्पना भी नही कर सकते है । भाषा मनुष्य को सशक्त और सुव्यवस्थित बनाती है । भाषा वह माध्यम है जिसकी सहायता से मनुष्य अपने भावों व विचारो को व्यक्त करता है ।

हिन्दी भाषा को भारत वर्ष की संस्कृति का सूचक माना जाता है । सही मायने में देखा जाये यह भारत की एक मुख्य पहचान है । क्योंकि भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों मे इसका प्रयोग सर्वाधिक होता है । हिन्दी भाषा हमारे देश को एकता के सूत्र में पिरोए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाति है ।

हिन्दी भाषा का दर्जा :-

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्रीय भाषा होती है जो कि उस राष्ट्र की एकता और अखण्डता की सूचक होते है । इसी दृष्टिकोण के मद्देनजर स्वतंत्र भारत की संविधान सभा ने 14 सितम्बर 1949 को भारत की राजभाषा का दर्जा दिया गया ।

हिन्दी भाषा का महत्व पूरे विश्व में हमारे देश की संस्कृति का प्रचार प्रसार करने का श्रेय हिन्दी भाषा को जाता है क्योंकि इसको भारतीय भाषा की जननी के रूप मे जाना जाता है यह एक एसी भाषा मानी जाती है जोकि सभी लोगो को एकता के सूत्र में बॉन्धने का कार्य करती है । यह भाषा हमारी संस्कृति की पहचान का कार्य करती है । हिन्दी भाषा के महत्व को निम्न लिखित बिन्दुओ के माध्यम से जाना जा सकता है ।

भावनात्मक भाषा :-

भारत गाँवो का देश है यहाँ कि अधिकाँश जनसन्ख्या गाँवो में निवास करती है । गाँवो में सम्प्रेषण की भाषा हिन्दी है क्योंकि इस भाषा के माध्यम से हम आपसी विचारो का आदान प्रदान आसानी से कर सकते है।

हम कितने भी अन्य विदेशी भाषाओ को अपना ले लेकिन हमारी जड़ो मे रची.बसी हिन्दी भाषा को नहे भूल सकते है क्योंकि यह व्यक्ति की भावनाओं को आसानी से व्यक्त करती है । अपने परिवार मे अपने समुदाय व अपने साथी समूहो के बीच इस भाषा के प्रयोग से ही अपनापन महसूस करते है क्योंकि इस भाषा मे भाव है जो कि हमें हमारे अपनो की भावनाओ को समझने व समझाने में सहयोग करते है । हिन्दी भाषा हमारी भावनाओं को जितनी आसानी से व्यक्त करती है उतनी आसानी से और कोई दूसरी भाषा नही कर सकती है हम कितना भी खर्चा करके अन्य भाषाओ को सीखले लेकिन जो अपनत्व हमें हिन्दी भाषा से मिलता है वह किसी और भाषा से नही मिल सकता है।

इंटरनेट मे प्रवेश :–

वर्तमान युग इंटरनेट का युग है और दिन पर दिन इसका विकास और बढ़ता जा रहा है । पूरे विश्व के तार इस इंटरनेट के माध्यम से आपस मे जुड़े हुये है । हिन्दी भाषा इस इंटरनेट के युग मे भी कही पीछे नही है वह अपना स्थान इंटरनेट पर ले चुकी है । समाचार पत्र से लेकर हिन्दी ब्लॉग तक हिन्दी भाषा अपनी पहचान बना चुकी है । इंटरनेट की दुनिया के दो सर्वोत्तम उपागम गूगल और विकीपिडीया हिन्दी भाषा को प्रत्येक व्यक्ति भाषा के महत्व को देखते हुए आज इंटर्नेट पर ट्रांसलेटर सर्च सोफ्टवेयरएफॉट आदि को विकसित किया जा रहा है । दुनिया भर की जानकारी अब इंटरनेट पर हिन्दी भाषा में भी उपलब्ध हो जाती है । किसी भी अन्य भाषा के शब्द को ट्रांसलेटर की सहायता से समझा जा सकता है । इंटरनेट का विशेष हाथ है हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने मे वह दुनिया के प्रत्येक कोने मे हमारी हिन्दी भाषा की पहचान बनाने में।

वैश्विक स्तर पर महत्व :–

भारत ही नही अपितु विश्व स्तर पर भी हिन्दी भाषा अपना स्थान बनाये हुऐं है । हिन्दी भाषा भारत के कोने मे फैलने के साथ साथ विश्व में भी लोकप्रिय होती गई है । हिन्दी भाषा भारत के अतिरिक्त नेपाल एमॉरीशसए सिंगापुर आदि राष्ट्रो में बोली जाती है । समय के साथ साथ हिन्दी भाषा के विकास की यात्रा भी निरंतर गति से चलती जा रही है ।

हिन्दी का विशेष महत्व :–

हिन्दी भाषा प्राचीन होने के साथ – साथ सरल व सुगम भी है । यह भाषा विचारो के आदान प्रदान करने मे अत्यंत लाभकारी है । इसकी वर्णमाला एकदम व्यवस्थित है । इस भाषा को हम आसानी से लिख भी सकती है । हिन्दी भाषा में शब्द जो लिखे होते है वही बोले जाते है । इसकी व्याकरण बहुत शुद्ध है । अतः इन सब कारणो की वजह से हिन्दी का अपना विशेष महत्व है ।

उपसंहार :–

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होने के साथ साथ हमारी मातृभाषा भी है । हमें हिन्दी भाषा के विस्तार के लिए

सभी प्रयास करने चाहिए । हमारा यह प्रयास होना चाहिये कि इसके सम्मान को कभी चोट न पहुँचे तथा विश्व धरातल पर यह अपना परचम लहरा सकें । हमें हमारी राष्ट्र भाषा पर सदैव गर्व होना चाहिये।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

चौहान रीता अग्रवाल पब्लिकेशन

जीत योगेन्द्र विनोद पुस्तक मन्दिर

यादव पवन कुमार लक्ष्मी बुक डिपो

https://blog.mygov.in

https://thesimplehelp.com

https://en.m.wikipedia.org

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 282-285

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में सामाजिक चेतना

सीमा देवी, पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला–171005

मानव जीवन में समाज का विशेष महत्त्व है। एक स्थान विशेष में रहने वाले समस्त व्यक्तियों को समाज की संज्ञा दी जाती है। मानवता में विश्वास रखने वाले व्यक्ति ऐसी मान्यताएं स्थापित करने में तत्पर रहते हैं जिससे सभी समाजवालों का जीवन सुचारू ढंग से चल सके लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का अलग–अलग व्यक्तित्व होने के कारण अनेक स्वार्थी व संकीर्ण सोच के व्यक्ति अनुचित मान्यताओं की स्थापना व परम्परागत रूढ़ियों को अपनाने में यकीन रखते हैं जिसे सहृदय जागरूक व्यक्ति समस्त समाजवालों के विकास में बाधा समझकर खण्डन करते हैं। 'लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश' में सामाजिक का अर्थ, ''सारे समाज से सम्बन्ध रखने वाला, समाज का।'' 'लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश' में चेतना का अर्थ, ''1. बुद्धि 2. बोध करने की वृत्ति या शक्ति 3. जागरूकता, चेतनता 4. चेतनशक्ति।'' 'राजपाल हिन्दी शब्दकोश' में सामाजिक का अर्थ, ''1. समाज का 2. समाज से सम्बन्धित।'' 'राजपाल हिन्दी शब्दकोश' में चेतना का अर्थ, ''1. ज्ञानमूलक मनोवृत्ति 2. बुद्धि, समझ 3. होश–हवास।'' अतः कह सकते हैं कि समझदार व्यक्ति समस्त समाजवालों के सहज जीवन के लिए जब उचित जीवन यापन में विश्वास रखने के साथ ही भ्रष्ट व चेतनहीन लोगों को भी मानवता के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं तो उनकी यह प्रवृत्ति सामाजिक चेतना कहलाती है।

समझदार व्यक्ति आस–पड़ोस के समस्त लोगों के उचित जीवन की चाह में समाज के विविध क्षेत्रों– सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक में व्याप्त समस्याओं व भ्रष्टाचार को खण्डित करने में तत्पर रहते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक नागार्जुन ने इस सन्दर्भ में लिखा है, ''सामाजिक चेतना विच्छिन्न न होकर बहते हुए जल की भांति लगातार विकसित होती चली जाती है तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों से अपना सम्पर्क बनाती हुई अपने पथ पर बढ़ती जाती है। मानव समाज की सामाजिक समस्याएं राजनीतिक उठा–पटक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं से सम्बन्धित नागरिक जीवन की समतामूलक विकास की ओर अग्रसर भावना ही सामाजिक चेतना कहलाती है।'' अतः कहा जा सकता है कि मानवता के साथ जीवन यापन में संलग्न जागरूक व्यक्ति जिस भी स्थान विशेष में रहता है वहां के समस्त लोगों के विकास को महत्त्व देने के कारण समाज में प्रत्येक क्षेत्रों में व्याप्त बुराइयों को मिटाने के लिए भ्रष्ट व्यक्ति को भ्रष्ट प्रवृत्ति का त्याग करने की प्रेरणा देने व संकीर्ण सोच के व्यक्ति को शोषणकारी मान्यताओं को नकारने के लिए प्रेरित करना सामाजिक चेतना है।

कृष्णा अग्निहोत्री आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत् की सशक्त लेखिका है। लेखिका की हिन्दी साहित्य में अपनी एक अलग पहचान है। इनका सृजनात्मक साहित्य हिन्दी की अनमोल निधि है। इनके कथा–साहित्य में जागरूक पात्र समाज के समस्त पहलुओं के सकारात्मक परिवेश के लिए निरंकुश मान्यताओं व भ्रष्टाचार को खण्डित करने में तत्पर है।

लेखिका की कहानियों में सामाजिक चेतना से युक्त पात्र समस्त समाजवालों के सहज जीवन के लिए मानवता के साथ जीवन यापन में संलग्न रहने के साथ ही शोषणकारी प्रवृत्ति व मान्यताओं को नकारने तथा दूसरों को भी उचित जीवन जीने के लिए प्रेरित करने में अग्रणी है। जैसे लेखिका द्वारा विरचित 'संतुष्टि' कहानी की पात्र कला व उसका पति सभी समाजवालों के सुखद जीवन के लिए अपने बच्चों को बचपन से नैतिक मूल्यों का पालन सिखाने में तत्पर रहते हैं और कला अपनी देवरानी को भी यह समझाती है कि समस्त लोगों के सहज जीवन का मूलाधार बच्चों को बपचन से मानवता के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देना है जिसकी पुष्टि कला के कथन से इस प्रकार हुई है, ''पहले नौकरी का रूतबा था अब बच्चों की बाहों का सुख हैं। ठिल्ले रहने से अच्छा है हम अपने अनुभवों से परिवार संभालते हैं। हम हफ्तों घूमने जाते हैं। रिश्तेदारों से मिलते हैं। बच्चों ने हमें तीर्थयात्राएं करवाई हैं। मेरी अस्मिता कहां टूटी ? हम कभी स्वयं को अधीन नहीं मानते अपितु परिवार की रेखाएं खुशहाली से खींचते हैं। सुख की परिभाषा अपनी स्वयं की जीवन दृष्टि है। मेरे बच्चे चॉकलेटी नहीं संस्कारी भी है।'' निष्कर्षतः कह सकते हैं कि सहृदय सुशिक्षित माता–पिता स्वयं के व दूसरों के सहज जीवन के लिए बच्चों को बचपन में संस्कार देना जरूरी समझते हैं क्योंकि संस्कारी सन्तानों का माता–पिता के साथ–साथ रिश्तेदारों व समाजवालों के प्रति सम्मान भाव होने से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सकारात्मक वातावरण बने रहने से सभी व्यक्ति सहजता से परिपूर्ण जीवन जीते हैं इसलिए जागरूक अभिभावक सन्तानों को बचपन से संस्कारी बनाने के साथ ही अन्य माता–पिता को भी अपने बच्चों को बचपन से संस्कार देने के लिए प्रेरित करते हैं। मानवता से युक्त शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति समस्त समाजवालों के सुखद जीवन को महत्त्व देने के कारण समाज में व्याप्त निरंकुश मान्यताओं को नकारने के साथ ही दूसरों को भी शोषणकारी मान्यताओं के प्रति अविश्वास रखने की प्रेरणा देते हैं। 'कब–कौन' कहानी की पात्र पारसी समुदाय की पदमा को उचित शिक्षा मिलने के कारण वह जातिगत भेदभाव में अविश्वास रखती है और अपने दादाजी को भी जातिगत भेदभाव में विश्वास न रखने के लिए प्रेरित करती है, ''आपने मुझे 'हुयमन रिसोर्सेज' में एम.बी.ए. क्यों करवाया? पढ़–लिखकर में इंसानियत ही भूलूँ? जाति–पाति सब दकियानूसी बातें हैं।'' पदमा सभी धर्म को एक समान समझती है और दूसरों को भी धार्मिक भेदभाव को नकारने की प्रेरणा देती है जिसकी पुष्टि इन पंक्तियों के माध्यम से हुई है, ''पदमा ने उस लहुलुहान नवयुवक को अस्पताल छोड़ा तो नीहाल ने गाड़ी दौड़ा दी– दीदी जी, आपने ऐसा करके खतरा उठाया था। वो मुसलमान था।

– मैंने इतना पढ़ा! घूमी तब भी हिन्दू–मुस्लिम शब्दों से ही चिपटूंगी? ऐसी दिवालिया सोच से तो शर्म ही आयेगी।'' अतः कहा जा सकता है कि उचित शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति समाजवालों के सहज जीवन के लिए उनमें आपसी एकता की भावना को जरूरी समझते हैं इसलिए लोगों में फूट डालने वाली मान्यताओं को खण्डित

करने के साथ ही भ्रष्ट व संकीर्ण विचारधारा वालों को भी अनुचित मान्यताओं को नकारने के लिए प्रेरित करते हैं।

संवेदनशील जागरूक व्यक्ति निर्धन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें आर्थिक मदद देने में विश्वास रखते हैं। जैसे लेखिका द्वारा विरचित 'फिलहाल' कहानी का पात्र गरीब युवा सूरज जब मृणाल सिन्हा के घर में किराये पर कमरा लेते समय उसकी इच्छानुसार किराया देने में स्वयं को असमर्थ बताता है तो मृणाल सिन्हा उसे आश्रय दिलवाने के लिए उसकी आर्थिक क्षमतानुसार किराया तय करके उसकी आर्थिक मदद करती है, ''आप बता दें। सुभीता से कितना किराया दे सकेंगे वैसा तय कर लेंगे।'' निष्कर्षत : कह सकते हैं कि मानवता के साथ जीवन यापन करने वाले चेतनशील व्यक्ति निर्धन लोगों के सुखद जीवन के लिए उन्हें आर्थिक सहायता देने में तत्पर रहते हैं जिससे गरीब लोगों का जीवन खुशनुमा बनने के साथ ही उन्हें भी दूसरों की भलाई करने का मार्ग दर्शन मिलने से समाज में सामंजस्य बना रहता है। सहृदय जागरूक व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में सहनशीलता के साथ आगे बढ़ने में तत्पर रहने के साथ ही दूसरों के संतुलित जीवन के लिए उन्हें भी विपरित परिस्थितियों में धैर्य के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं जिसकी पुष्टि 'हेल्पलाइन' कहानी की इन पंक्तियों के माध्यम से हुई है, ''मेरे भी घाव हैं, मैडम! हममें से किसी के जीवन की स्लेट साफ नहीं होती। अब पिछले वर्ष मेरी शादी तय हुई, तो लड़की मंगली थी। माताजी ने मेरी पसंदगी नकार, सगाई तोड़ दी। दूसरी बार लड़की पसंद आई, तो जब माताजी अंगूठी पहनाने गई, तो लड़की घर छोड़कर ही भाग गई।

–कहां ?

– प्रेमी के साथ उसके घर। अब आप बताएं, मेरी क्या मनःस्थिति होगी? पर मैं संगीत सुनकर, मूवी देखकर दोस्तों के साथ खा–पी सब भुला देता हूँ।'' अतः कह सकते हैं कि मानवीय मूल्यों से युक्त व्यक्ति विपरित परिस्थितियों में सहिष्णुता के साथ जीवन यापन करने के कारण सुखद जीवन जीते हैं इसलिए समाजवालों की कठिन परिस्थितियों में उनके जीवन को सहज बनाने के लिए उन्हें भी धैर्य के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। 'दरमियां' कहानी की पात्र आकांक्षा समस्त समाजवालों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज सेवा को विशेष महत्त्व देती है जिसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है, ''आकांक्षा कुछ बिस्कुट पैकेट, ब्रेड आदि सामान ले जीप से कूदी जिन्हें मेजर ने मिलिटरी कैंटीन से सस्ते में दिलवाया था। अचानक आकांक्षा को दो वृद्धाएं बुरके में कांपती दिखी तो उसने तत्काल अपनी शॉल उन्हें ओढ़ा दिया।'' आकांक्षा की समाज सेवा का वर्णन इन पंक्तियों के माध्यम से भी हुआ है, ''बच्चों को समान बांटती आकांक्षा तीस साल की कर्मठ युवती लग रही थी। हंसते हुए जब वह बच्चों का सामान देती तो प्रसन्नता से भर उठती।'' निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मानवता के साथ जीवन जीने वाले चेतनशील व्यक्ति आस–पास के प्रत्येक लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति को विशेष महत्त्व देने के कारण जरूरतमंद लोगों की जरूरतों का पूरा करने में तत्पर रहते हैं जिससे समाज में संतुलित वातावरण बन जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति के खुशनुमा जीवन के लिए समाज का सकारात्मक परिवेश अति आवश्यक है क्योंकि सभी व्यक्ति का जीवन समाज से प्रभावित रहता है इसलिए प्रत्येक समाज में

बच्चों को बचपन से ही माता–पिता से संस्कार व शिक्षक से उचित शिक्षा मिलना जरूरी है ताकि समस्त लोगों में बचपन से प्रेम व सहयोग की भावना उत्पन्न होने से सभी का जीवन आजीवन सुखद रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. वर्मा रामचन्द्र, लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ० 975 (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2017)
2. वही, पृ० 307
3. बाहरी हरदेव, राजपाल हिन्दी शब्दकोश, पृ० 822 (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण 2019) वही, पृ० 267
4. रानी राजेश, हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, पृ० 5 (दिल्ली : के.के. पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2009)
5. अग्निहोत्री कृष्णा, संतुष्टि, एक पाती ऐसी भी, पृ० 31–32 (कानपुर : अमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019)
6. अग्निहोत्री कृष्णा, कब–कौन, जीना मरना, पृ० 78 (नई दिल्ली : नमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011) वही, पृ० 77
7. अग्निहोत्री कृष्णा, फिलहाल, उड़ानें ऊंची–ऊंची तथा अन्य कहानियां, पृ० 61 (नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016)
8. अग्निहोत्री कृष्णा, हेल्पलाइन, उड़ानें ऊंची–ऊंची तथा अन्य कहानियां, पृ० 14–15 (नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016)
9. अग्निहोत्री कृष्णा, दरमियां, उड़ानें ऊंची–ऊंची तथा अन्य कहानियां, पृ० 106 (नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016)

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 286-287

भारतीय शिक्षा और हिन्दी भाषा

निर्देशक – **डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय**
(संस्कृत विभागाध्यक्ष)
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

सीमा शर्मा (शोधार्थी)
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है, बल्कि यह हमारे जीवन के मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारो की सच्ची संवाहक, सम्प्रेषक और परिचालक भी है। बहुत सरल, सहज और सुगम भाषा होने के साथ हिंदी विश्व की संभवतः सबसे वैज्ञानिक भाषा है जिसे दुनियाभर में बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में मौजूद है। यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है, जो हमारे पारम्परिक ज्ञान, प्राचीन सभ्यता और आधुनिक प्रगति के बीच एक सेतु भी है, हिंदी भारत संघ की राजभाषा होने के साथ ही ग्यारह राज्यों और तीन संघ शासित क्षेत्रों की भी प्रमुख राजभाषा है, संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल अन्य इक्कीस भाषाओं के साथ हिंदी का एक विशेष स्थान हैं।

देश में तकनीकी और आर्थिक समद्धि के साथ–साथ अंग्रेजी पूरे देश पर हावी होती जा रही है, हिंदी देश की राजभाषा होने के बावजूद आज हर जगह अंग्रेजी का वर्चस्व कायम है। हिंदी जानते हुए भी लोग हिंदी में बोलने, पढ़ने या काम करने में हिचकने लगे है।

हिंदी के विकास के लिए राजभाषा विभाग का गठन किया गया है, भारत सरकार का राजभाषा विभाग इस दिशा में प्रयासरत है कि केन्द्र सरकार के अधीन कार्यालयों में अधिक से अधिक कार्य हिंदी में हो। इसी कड़ी में राजभाषा विभाग द्वारा प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस समारोह का आयोजन किया जाता है, 14 सितंबर 1949 का दिन स्वतंत्र भारत के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है, इसी दिन संविधान सभा ने हिंदी का संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था, इस निर्णय को महत्व देने के लिए साल 1953 के उपरांत हर साल 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाता है।

हिंदी भाषा देश की एकता का सूत्र है। पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने का श्रेय एकमात्र हिंदी भाषा को जाता है, भाषा की जननी और साहित्य की गरिमा हिंदी भाषा जन–आंदोलनों की भी भाषा रही है, यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है जो हमारी पारम्परिक ज्ञान, प्राचीन सभ्यता और आधुनिक प्रगति के बीच एक सेतु भी है। हिंदी भारत संघ की राजभाषा होने के साथ ही ग्यारह राज्यों और तीन

संघ शासित क्षेत्रों की भी प्रमुख राजभाषा है।

आज के वैश्विक फलक पर हिंदी स्वयं को एक संपर्क भाषा, प्रचार भाषा और राजभाषा के साथ–साथ वैश्विक भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित करती जा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी का स्वरूप– श्रीमती विनीता पाण्डेय

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य – डॉ. करूणाशंकर उपाध्याय

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 288-290

साहित्य शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध

शाजिया सुल्तान, असिस्टेंट प्रोफेसर
फैकल्टी ऑफ एजुकेशन
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद।

सार :- साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत, नृत्य, भाषा–साहित्य, धर्म–दर्शन, आदर्श–विश्वास और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज के साहित्य एवं शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जिस समाज की संस्कृति आध्यात्मिक होती है उस समाज में शिक्षा स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की प्राप्ति की ओर अधिक होती है और जिस समाज की संस्कृति भौतिकवादी होती है, उसकी शिक्षा प्रतियोगिता पर आधारित होती है और शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में व्यक्ति का श्रम भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर नियोजित होता है, दूसरी ओर कोई भी समाज शिक्षा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति एवं साहित्य को सुरक्षित रखता है। उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचार करता है और उसमें परिवर्तन एवं विकास करता है। इस प्रकार साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का गहरा सम्बन्ध होता है, वे एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं।

मुख्य शब्द :- साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, चारित्रिक एवं नैतिक विकास।

'संस्कृति मनुष्य के विचारों, इच्छाओं एवं कार्यों की अभिव्यक्ति है। धर्म, संस्कृति, मूल्य तथा शिक्षा, समाज के प्रकरण तथा प्रक्रियायें है। सभी समाज कल्याण को महत्व देते हैं। इन सभी का लक्ष्य भी एक ही है। सभी का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। अन्तिम मूल्य एवं शिक्षा के लक्ष्य 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' है। मूल्यों एवं संस्कृति में आचरण को प्राथमिकता दी जाती है। मूल्य एवं संस्कृति की पहचान व व्यवहार तथा क्रियाओं से की जाती है। मूल्यों का स्त्रोत संस्कृति है तथा इनका निकट का संबंध है।' हमारी वर्तमान शिक्षा भारतीय संस्कृति के प्रति संवेदनशील नहीं है । साहित्य शिक्षा और संस्कृति के संबंध में प्रायः दो प्रकार की विचारधाराओं की चर्चा की जाती है। एक के अनुसार शिक्षा संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है, उसका संरक्षण करती है, और युवा पीढ़ी को सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान कराती है तो दूसरी विचारधारा के अनुसार शिक्षा संस्कृति में सुधार लाती है, परिवर्तन करती है और आवश्यकतानुसार संशोधन करती रहती है। जिन समाजों में परिवर्तन धीरे–धीरे होते हैं, उनमें शिक्षा का मुख्य कार्य संरक्षणात्मक होता है। किन्तु जिन समाजों में परिवर्तनों की गति में तीव्रता लानी हो, उनमंआ शिक्षा प्रगतिशील बनाकर नव–निर्माण की नवीन भूमिका निभानी पड़ती है।

किसी स्थान की संस्कृति उसकी की साधना का परिणाम होती है, इसके प्रति उसका विशेष लगाव होता है और इसे वह सुरक्षित रखना चाहता है । शिक्षा उसके इस कार्य में उसकी सहायता करती है । हम देख रहे हैं कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने भारतीयों के जीवन को बहुत बदल दिया है, फिर भी हमारी आस्था अपनी संस्कृति भाषा, संस्कृत और उसके साहित्य में बनी हुई है, हमारे आदर्श विश्वास और मूल्य यही है जो हमारी संस्कृति के हैं। अन्य परिवर्तन होने के बाद भी हम अपनी आध्यात्मिकता का सहारा आज भी ले रहे हैं। आखिर यह कार्य कौन कर रहा है? यह कार्य हमारी शिक्षा कर रही है, यदि शिक्षा की पाठ्यचर्या से भाषा, साहित्य और प्राचीन इतिहास को निकाल दिया जाए तो फिर हम अपनी संस्कृति को खो बैठेंगे।

भारतीय संस्कृति में शिक्षा को पवित्र प्रक्रिया माना गया है। धर्म ग्रंथों में ज्ञान और विद्या की महिमा बताई गई है। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञान को पवित्र घोषित किया । महाभारत में कहा है कि 'नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्य समं तपः' अर्थात् विद्या के समान कोई दूसरा नेत्र नहीं होता । भारतीय संस्कृति के अनुसार साहित्य और शिक्षा व्यक्ति और समाज की उन्नति का सशक्त माध्यम है। संस्कृति एक बहुत व्यापक प्रत्यय है, यह समाज की पूर्ण जीवन–शैली का प्रतीक है। इसमें समाज विशेष की रहन–सहन एवं खान–पान की विधियाँ, व्यवहार, प्रतिमान आचार–विचार, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्य, भाषा–साहित्य, धर्म–दर्शन, आदर्श–विश्वास और मूल्य सब कुछ समाहित होते हैं और प्रत्येक समाज अपनी आने वाली पीढ़ी को इन सबमें प्रशिक्षित करता है और तद्नुकूल शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करता है। हम देख रहे हैं कि धर्म प्रधान संस्कृतियों के समाज की शिक्षा में चारित्रिक एवं नैतिक विकास पर अधिक बल दिया जाता है और भौतिक संस्कृतियों के समाज में व्यवसायिक विकास पर, इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी समाज की संस्कृति एवं साहित्य उस समाज की शिक्षा के उद्देश्यों से प्रभावित होते हैं।

वहीं यदि दूसरी ओर साहित्य की बात करें तो साहित्य मानवता की संस्कृतियों, विश्वासों और परंपराओं की नींव है। यह वास्तविकता का प्रतिबिंब, कला का एक उत्पाद और एक विचारधारा के लिए एक सेतु के रूप में कार्य करता है। समाज के भीतर होने वाली हर चीज को साहित्य के माध्यम से लिखा और सीखा जा सकता है। साहित्य चाहे वह कविता के रूप में हो या गद्य एवं साहित्य के रूप में उस व्यक्ति के प्रति अंतर्दृष्टि, ज्ञान और भावना प्रदान करता है।

जीवन साहित्य के रूप में प्रकट होता है। साहित्य के बिना जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। यह मानवीय त्रासदियों, इच्छाओं और भावनाओं पर आधारित शब्दों का एक अवतार है। वर्तमान पीढ़ी में साहित्य कला की अभिव्यक्ति, ज्ञान के स्रोत और मनोरंजन के साधन के रूप में आज भी मौजूद है। साहित्य नए विचारों को प्रज्वलित करता है। यह उन लोगों को ध्वनि देता है जो जीवन में कुछ चीजों के बारे में अपनी राय व्यक्त करना चाहते हैं–चाहे वह राजनीति, स्वास्थ्य, धर्म और अन्य अवधारणाओं से संबंधित हो।

यद्यपि प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति को उसी रूप में सुरक्षित रखना चाहता है जिस रूप में वह उसे प्राप्त करता है, परन्तु परिवर्तन तो प्रकृति का शाश्वत नियम है, संस्कृति में भी परिवर्तन और विकास होता है, यह बात

दूसरी है कि किसी संस्कृति में इस परिवर्तन एवं विकास की गति बहुत मन्द होती है और किसी में अपेक्षाकृत कम मन्द । परन्तु कोई भी संस्कृति अपने मूल रूप को कभी नहीं छोड़ती। शिक्षा द्वारा एक ओर बच्चे अपने साहित्य एवं संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं और दूसरी ओर देश–विदेश की अन्य संस्कृतियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, अपने अनुभव एवं विवेक के आधार पर उनमें से कुछ में परिवर्तन करते हैं और इस प्रकार अपनी संस्कृति का विकास करते हैं । इतना ही नहीं, अपितु आज तो हम संसार की अन्य संस्कृतियों के भी तत्वों को ग्रहण कर रहे हैं और शिक्षा एवं साहित्य के माध्यम से अपनी संस्कृति का विकास कर रहे हैं। कोई भी शैक्षिक प्रतिमान समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों से अपना मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति तीनों घटक अविभाज्य मानदंड हैं और वे अन्योन्याश्रित हैं। यह एक दूसरे से इस प्रकार संबंधित हैं कि सभी का एक ही उद्देश्य है, यानी किसी व्यक्ति के व्यवहार में सुधार या परिवर्तन। संस्कृति और शिक्षा दोनों ही व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा के साथ जीवन व्यतीत करने तथा व्यवहार में उचित संशोधन करने में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ शर्मा, आर. ए. 'मानव मूल्य एवं शिक्षा', आर लाल बुक डिपो मेरठ।
2. भटनागर, ए.पी. 'भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास', लाल बुक डिपो (2017)।
3. पांडे राम शकल, 'शिक्षा की समसामयिक चुनौतिया', श्री विनोद पुस्तक मंदिर प्रकाशन। (2020)
4. भटनागर, सुरेश, 'आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं', लाल बुक डिपो (2014)।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 291-296

समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका

Smt. Shakuntala Kosariya
Assistant Professor Economics
Govt. T.C.L.P.G. College Janjgir (C.G.)

रूप रेखा :–

A. **प्रस्तावना**

B. **समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका की व्याख्या**

C. **निष्कर्ष**

A. प्रस्तावना :–

समाज शिक्षा के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा भी समाज को प्रत्येक पक्ष पर प्रभावित करती है चाहे आर्थिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक हो।

शिक्षा का प्रारूप समाज के स्वरूप को बदल देती है, क्योंकि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का साधन है शिक्षा के विस्तार से सामाजिक दृष्टिकोण, रहन–सहन, खान–पान, रोजगार तथा रीति–रिवाजों में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है परिणाम स्वरूप समाज का उत्थान निरन्तर जारी है।

शिक्षा एवं सामाजिक उत्थान में घनिष्ठ संबंध है। ''शिक्षा समाज के बालकों का समाजीकरण करके उसकी सेवा करती है। इसका उद्देश्य युवकों को सामाजिक मूल्यों विश्वासों और समाज के प्रतिमानों को आत्मसात करने के लिए और समाज की क्रियाओं में भाग लेने के योग्य बनाना है।'' शिक्षा समाज की प्रक्रिया का आधार है तथा संस्कृति व सभ्यता के हस्तांतरण में शिक्षा समाजिक प्रक्रिया के अंग के रूप में कार्य करती है :–

1. सामाजिक दोशों के सुधार में भी शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिससे सामाजिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त हो पाता है।
2. शिक्षा के कारण ही व्यक्ति समाज की सदस्यता ग्रहण कर समाज के उत्थान में अपना सक्रिय योगदान देने लगते है।

3. समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका की व्याख्या–

4. **समाज से तात्पर्य –**

''समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह है जिसकी रचना व्यक्तियों ने अपने हित के लिए की है। व्यक्ति के विकास का ही अर्थ है – सामाजिक विकास।''

क) समाज एक महान शरीर के समान है जिस प्रकार से शरीर के सभी अंगो और अंगतंत्रो की क्रियाओं पर शरीर का अस्तित्व निर्भर करता है ठीक उसी प्रकार समाज की व्यक्तियों की क्रियाओं पर समाज का उत्थान प्रभावित होता है। ऐसी दशा में शिक्षा के द्वारा समाजहित को महत्व दिया जाता है।

ख) संसार में प्रत्येक व्यक्ति वंशानुक्रम में केवल पाशविक प्रवृत्तियों को ही लेकर जन्म लेता है यह सामाजिक वातावरण का ही तो चमत्कार है जो मनुष्य को दानव से मानव बना देता है। अतः शिक्षा में सामाजिकहित पर विशेष बल देना चाहिए।

ग) समाज उत्थान का अर्थ –

1. मानव बड़ा है अथवा समाज ? यह प्रश्न आदिकाल से ही विचारणीय रहा है। कुछ विद्ववानों ने समाज के हित के समक्ष व्यक्ति को बिलकुल महत्वहीन मानते हुए उसे सामाजिक उत्थान के लिए बलिदान तक कर देने के पक्ष में है।

2. शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य समाज के उत्थान से संबंधित है। व्यक्ति एवं समाज की उत्थान साथ–साथ चलती है। दोनों एक दूसरे के पूरक तथा सहायक है। शिक्षा से व्यक्ति का सर्वांगिण विकास होता है। यद्यपि व्यक्तियों का समुदाय ही समाज है अतः समाज के सदस्यों के विकास के फलस्वरूप ही समाज का उत्थान होता है।

3. रास का मत – ''वास्तव में जीवन और शिक्षा के उद्देश्यों के रूप में आत्मविकास तथा समाज सेवा में कोई विरोध नहीं। क्योंकि दोनो एक ही है। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक में आत्मानुभूति को उत्पन्न करना। इस उद्देश्य द्वारा बालक के व्यक्तिगत विकास के साथ–साथ सामाजिक प्रगति भी संभव है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति स्वविकास के साथ–साथ समाज के उत्थान में योगदान देता है इस प्रकार शिक्षा की योजना ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति और समाज दोनों के बीच समन्वय स्थापित किया जा सके। इससे व्यक्ति एवं समाज दोनों की प्रगति संभव है।

अतः बालक को उसके विकास हेतु पूर्व अवसर प्रदान किये जाने चाहिए परिणामस्वरूप व्यक्ति (बालक) समाज के उत्थान में अपनी भूमिका अदा कर पाएगें।

घ) शिक्षा का अर्थ –

शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण और तकनीकि दक्षता, शिक्षण और विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट है इस प्रकार यह कौशलों, व्यापारी या व्यवसायों एवं मानसिक, नैतिक और सौन्दर्यीवयापक के उत्कर्ष पर केन्द्रित है। शिक्षा समाज की एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। शिक्षा व्यक्ति

की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा व्यक्ति का सामाजीकरण कर देती है, तथा समाज के सदस्य बनने के लिए आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।

ड़) शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य – विशिष्ट, सार्वभौमिक, वैयक्तिक तथा सामाजिक रूप में होते है।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के अनुसार व्यक्ति को अपनी व्यैक्तिक का विकास समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।

शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तित्व, विकास का अर्थ शारीरिक, चारित्रिक, नैतिक और बौद्धिक गुणों का विकास होना। विकसित व्यक्ति ही समाज की प्रगति का आधार बनता है।

च) समाज उत्थान में शिक्षा की भूमिका –

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का जन्म शिक्षा के वैक्तिक उद्देश्य की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ। सामाजिक उद्देश्य के समर्थक व्यक्ति की अपेक्षा समाज को ऊंचा मानते है। उनका दृढ़ विश्वास है व्यक्ति स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। यदि उसे समाज से पृथक कर दिया जाए तो उसका जीवन यापन कठीन हो जाएगा।

प्रत्येक बालक समाज में जन्म लेता है, समाज में ही उसका पालन पोषण होता है। समाज में रहते हुए ही वह बोलना, चलना, शिक्षा तथा संस्कार सीखता है। विचारों के आदान प्रदान द्वारा व्यक्तित्व का विकास तथा विभिन्न आवश्यकताएँ पूरी होती है शिक्षा का सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका है अतः शिक्षा की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा समाज निरंतर उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होता रहें।

दूसरे शब्दो में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण समाज की तात्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए इसलिए कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य पर बल दिया। शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य पर बल दिया। शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य से समाजवाद का जन्म हुआ। शिक्षा के माध्यम से समाज को विकास के अनुरूप सांचे में ढाला जा सकता है। सामाजिक उत्थान के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है।

रेमादे के अनुसार –

''जो विद्वान व्यक्ति को समाज के ऊपर स्थान देते है। उनको स्मरण रखना चाहिए कि निःसमाज व्यक्ति कोरी कल्पना है, अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत चरित्र के साथ–साथ बालक को सच्चा सामाजिक प्राणि तथा नागरिक बनाना है।''

जान डीवी –

''सबसे व्यापक रूप मे सामाजिक कुशलता व्यक्ति में सामाजिक हित की भावना का संचार करने एवं अपने व दूसरे के हितो को अलग–अलग रखने की भावना को नष्ट करने की प्रवृत्ति है। ''शिक्षा से ही समाज अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होकर समाज का उत्थान कर पाते है।''

समाज के अंदर संस्कृति एवं सभ्यता का जन्म तथा पोषण होता है। निःसमाज व्यक्ति की कोरी कल्पना

है अतः समाज को सबल बनाना न्याय संगत है।

बागले तथा डी.वी. ने अपनी पुस्तक एजुकेशनलवैल्युज में सामाजिक दृष्टि के कुशल व्यक्ति में आर्थिक कुशलता नैतिकता, राजनीतिक, कुशलता जैसी प्रमुख विशेषताएं बताई।

छ) सामाजिक विकास में राष्ट्र स्वयं की शिक्षा की एक सुनिश्चित प्रणाली बनाकर लागू करता है। यही नहीं पाठ्यक्रम शिक्षा पद्धतियों तथा अनुशासन को भी इसी प्रकार आयोजित करता है।

शिक्षा से सामाजिक गुणों का विकास होता है तथा व्यक्ति में शिक्षा के द्वारा ही समाज की सेवा भावना का विकास होता है, केवल शिक्षा ही व्यक्ति को उन बुराईयों से बचा सकती है जो व्यक्ति के विकास में प्रमुख बाधा बन रही है अर्थात् जो सामाजिक पतन का कारण बनता है।

शिक्षा से ही व्यक्ति में नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक गुणों का विकास होता है। शिक्षित व्यक्ति निस्वार्थ भाव से अपनी प्रत्येक क्रिया से समाज का हित करना चाहता है।

समाज व्यक्ति को सामूहिक जीवन व्यतित करने के अवसर प्रदान करता है जिससे वह नित नया आविष्कार द्वारा अपने जीवन को अधिक सुखी एवं सम्पन्न बनाता है। अतः व्यक्ति को समाज के कल्याण ही भावना से ओतप्रोत रहना चाहिए।

शिक्षा से व्यक्तिगत शक्तियों का पूर्ण विकास होता है। व्यक्तियों के विकास से समाज का उत्थान स्वतः होती है।

समाज शिक्षा के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। ठीक उसी प्रकार शिक्षा भी समाज के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है चाहे आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्वरूप हो।

सामाजिक उत्थान में शिक्षा का प्रमुख योगदान –

1. शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन – शिक्षा व्यवस्था जहॉ समाज से प्रभावित होती है वहीं शिक्षा भी समाज को परिवर्तित करती है जैसे कि स्वतंत्रता के पश्चात् सबके लिए शिक्षा एवं समानता के लिये शिक्षा मुख्य मुद्दा रहे है। शिक्षा से असमानता, क्षेत्रीय असमानता, आर्थिक असमानता को काफी हद तक दूर करने का प्रयास किया।

एलकड ने स्पष्ट लिखा है – ''समाज का सर्वोत्तम परिवर्तन मानव के स्वभाव में परिवर्तन कर किया जा सकता है और ऐसा करने की सर्वोत्तम विधि शिक्षा द्वारा ही संभव है।''

एलकड ''शिक्षा यह साधन है जिसमें समाज एक प्रकार की महत्वपूर्ण सामाजिक प्रगति की आशा कर सकता है।

2. शिक्षा व सामाजिक सुधार की प्रगति – शिक्षा व्यक्तियों में निर्णय एवं नेतृत्व कुशलता का विकास करती है जिससे वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरितियों, विकास में बाधक रीतिरिवाज के प्रति सेचत होकर उसे दूर करने में अपनी सक्रिय भूमिका अदा करने लगते है। इसी के परिणाम स्वरूप समाज में विकासात्मक परिवर्तन

होता जाता है। शिर्ष समाज के लिए वह साधन है जिसके द्वारा समाज के मनुष्यों के विचारो आदर्शो तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन लाकर समाज की प्रगति की जाती है।

3. शिक्षा और सामाजिक नियंत्रण – शिक्षा समाज का स्वरूप है बदलकर, उस पर नियंत्रण भी करती है। व्यक्ति का दृष्टिकोण एवं उसका क्रियाकलाप समाज को गतिशील रखते है। शिक्षा उपयुक्त सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करती है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार से समाज के पुराना ढांचा में परिवर्तन होने लगा अतः सामाजिक नियंत्रण शिक्षा से आसान हो पाया।

4. शिक्षा तथा सामाजिक उत्थान में घनिष्ठ संबंध है – शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया के अंग के रूप में भावी पीढ़ी के प्रशिक्षण तथा शिक्षा समाज को सभ्य और सुसंस्कृत पीढ़ी प्रदान करती है । शिक्षा समाज की प्रगति का आधार है। एलवुड के अनुसार ''समाज का सर्वोत्तम परिवर्तन मानव के स्वभाव में परिवर्तन कर किया जा सकता है और ऐसा करने की सर्वोत्तम विधि शिक्षा द्वारा ही संभव है।

5. शिक्षा द्वारा सामाजिक स्थिरता – शिक्षा समाज के सदस्यों को सुसंस्कृत तथा तर्कशील बनाकर सामाजिक उत्थान को बल देती है। सामाजिक पतन को रोकने का उपाय सुझाती है। ओर्शिया ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि समाज की शिक्षा व्यवस्था व्यक्तियों का मानसिक, व्यवसायिक राजनीतिक और कलात्मक विकास करके न केवल समाज के अधोपतन की रक्षा करती है वरन उसको स्थिरता भी प्रदान करती है।

6. सामाजिक दोषों के सुधार का आधार – अंधविश्वास, अस्पृश्यता, गलत परम्पराएं, कट्टर धार्मिकता, गलत मान्यताएं, कठोर सामाजिक नियम जैसी समस्याओं को व्यक्तियों में शिक्षा का संचार करके सहजता से दूर किया जा सकता है। बौद्धिक रूप से विकसित व्यक्ति इन बुराईयों का स्वतः त्याग करने के साथ ही विकास को प्रेरित करने वाले नियम मान्यताएं, परम्पराएं का सृजन करने लगेगें।

7. समाज की सदस्यता की तैयार का आधार – शिक्षा समाज के बालको का समाजीकरण करके उसकी सेवा करती है। इसका उद्देश्य युवकों को सामाजिक मूल्यों विश्वासो और समाज के प्रतिमानों को आत्मसात करने के लिए तैयार करता और उनको समाज की क्रियाओं में भाग लेने के योग्य बनाता है शिक्षा व्यक्ति को अपने व समाज के लिए उपयोगी बनाती है प्रारंभ में बालक परिवार का सदस्य होता है शिक्षा बालक सामाजिक गुणों को विकसित कर उन्हे समाज के भावी सदस्य के रूप में तैयार करती है।

8. भावी पीढ़ी के प्रशिक्षण में – शिक्षा समाज के प्रशिक्षित भावी पीढ़ी प्रदान करती है। जो कि समाज का भविष्य होते है, शिक्षा समाज को सभ्य, सुसंस्कृत, आत्मनिर्भर पीढ़ी प्रदान करती है। शिक्षा समाज के व्यक्तियों में निहित गुणों का संवर्धन करती है जिससे उनमें पैतृक गुणों को निखार कर उसे व्यावसायिक कुशलता प्रदान करती है।

9. सभ्यता और संस्कृति के हस्तांतरण की प्रक्रिया – शिक्षा सभ्यता एवं संस्कृति के हस्तांतरण का आधार

बनती है।

टायलर के अनुसार – ''संस्कृति एक जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, प्रथा तथा अन्य योग्यताएं और आदतें सम्मिलित होती है। जिनकी मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में शिक्षा से प्राप्त करता है।''

ज) **निष्कर्ष–**

चूंकि भारतवर्ष प्रजातंत्रात्मक समाजवादी राष्ट्र है इसलिए हमारी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सच्चे इमानदार तथा कर्मठ व्यक्तित्व का विकास करता है आवश्यकता इस बात कि है कि शिक्षा के द्वारा न तो व्यक्ति को इतना महत्व दिया जाए कि वह समाज की अवहेलना करने लगे और न ही समाज को इतना सबल बना दिया जाए कि वह व्यक्ति का दमन और संकुचन करके अपना दास बना ले।

समाज के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है इसलिए जरूरी है समाज के सभी लोग शिक्षित हो। शिक्षा सामाजिक उत्थान का आधार है। शिक्षा से आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्वरूप सुदृढ़ होती है। परिणामस्वरूप सामाजिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है। शिक्षा समाज को अमितव्ययता प्रदर्शन प्रभाव, असमानता जैसी समस्याओं से बचाता है जो सामाजिक पतन का प्रमुख कारण है। जिस विज्ञान का प्रयोग आज समाज को सबल तथा सुदृढ़ बनाने के लिए किया जा रहा है। उसके जन्मदाता गैलिलियों तथा ब्रुनों को उनके समाज में क्या क्या कष्ट नहीं दिये।

https://hi.vikaspedia.in>education

https://www.gkexams.com>ask>3.....

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 297-302

डॉ. रामकुमार घोटड़ जी की लघुकथाओं में परिवार और सामाजिकता का चित्रण

शिवराज, (शोधार्थी)
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़ (कर्नाटक)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के द्वारा करता है। वह अपनी भावना और संवेगों को संप्रेषित करना चाहता है इसी से उसने कहानी कही और सुनी है।

डॉ. रामकुमार घोटड़ ने लघुकथा के क्षेत्र मे समाज के हर हिस्से को छुआ और उनकी गलतियों पर कठोर प्रहार किया है। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में घोटड़ ने ''नेता युग–युग के'' नामक पुस्तक में आज की राजनीति पर कठोर व्यंग्य साधा है और नेताओं की नेता गिरी को सबके सामने लाकर खड़ा कर दिया है। राम कुमार घोटड़ ने बताया कि अंगूठा छाप नेताओं के हाथ में किस तरह देश अपना भाविष्य तलाश कर रहा है।

दलित समाज की लघुकथाएं नामक पुस्तक में तो जैसे डॉ. रामकुमार घोटड़ ने दलित साहित्य का दर्पण पूरे समाज को दिखा दिया है। इस पुस्तक की एक–एक लघुकथा अपने में हर दलित का दर्द टीस पीडा करूणा दुःख और अवसाद को समेटे हुए है जो अपने–आप में विशेष है।

सही मायनों में, साहित्य की जड़ जीवन में है। अपने तमाम–तमाम आयामों में जीवन ही सर्जना के सामने चुनौती पेश करता हुआ साहित्यकार को किसी रचना के लिए प्रेरित करता है। साहित्य के लंबे इतिहास में हम देखते हैं कि वही साहित्यकार प्रतिमान बना सके हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में जीवन को केंद्र में रखा, मानवीय अवधारणाओं या प्रायोजित विचारधाराओं को शब्दजाल का जामा पहनाकर जबरदस्ती का 'साहित्य' पेश करने के लोभ में नहीं पड़े। इस परिदृश्य पर जरा दूसरी तरफ से नजर डालने की कोशिश करते हैं। जीवन में साहित्य किस हद तक उपस्थित है? जीवन की संगति–विसंगति को अपनी दृष्टि के दायरे में रखकर सतत् सार्थक रचनाएं देते जा रहे साहित्यकार ही क्या अपने घर–परिवार में, बंधु–बांधवों, परिचितों के जीवन में कहीं साहित्य की उपस्थिति देख रहे हैं?

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में 'चोतरफा' प्रगति का डंका बज रहा है। हमें अहसास कराया जा रहा है कि ऐसी 'प्रगति' की कल्पना तक हमारे बाप– दादों ने नहीं की होगी। पर जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं तो अब भी वही हैं– सिर के ऊपर एक छत, रोटी जुटाने लायक एक रोजगार, सांस लेने के लिए साफ हवा, प्यास

बुझाने के लिए साफ पानी, पेट भरने के लिए अन्न इत्यादि। और, इन मूलभूत आवश्यकाताअें को पूरा करने के लिए इंसान की मशक्कत और जद्दोजहद को केंद्र में रखकर दुनिया भर के साहित्य में कितना कुछ श्रेष्ठ रचा गया है। पर सारी मशक्कत और जद्दोजहद के बावजूद, इंसान संवेदना से आलोचित होकर अपनी जिंदगी में वह 'थोड़ी सी जगह' भी ढूंढने के लिए अपने को मानसिक रूप से तैयार भी कर सकता है। जीवन की इसी 'थोड़ी सी जगह' में साहित्य भी उपस्थित रहा है, संगीत तथा कला के साथ।

इसी विशिष्ट मानवीय प्रवृत्ति को रेखांकित करने के लिए महाराज भर्तृहरि ने कहा था– 'साहित्य संगीत कलाविहीनः, साक्षातपशु पुच्छविषाणहीनः' (साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति, पूंछ तथा सींग से रहित पशु के समान हैं।) जीवन में साहित्य की उपस्थिति दरअसल जीवन में जीवन से निकले हुए तथा जीवन से जुड़े हुए 'मनोरंजन' की उपस्थिति है। इस 'मनोरंजन' में इंसान के लिए सुकून भी मौजूद है। पढ़े–लिखे तबके तक पहुँचता हुआ साहित्य, अपने श्रेष्ठ उदाहरणों में, मौखिक–लिखित दोनों ही रूपों में समाज के बड़े तबके तक पहुंचे तुलसी–कबीर के साहित्य से आगे वही भूमिका निभाता आया है। आधुनिक काल के उपन्यासों में से ही कुछ उदाहरण देखें: ताराशंकर बंद्योपाध्याय का चिकित्सकीय नैतिकता पर केंद्रित उपन्यास 'आरोग्य निकेतन', कस्बाई जीवन के बहाने विशिष्ट भारतीय विसंगतियों को ही चित्रित कर गया।

राम कुमार घोटड़ ने मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ पुस्तक में अपनों के लिए लघुकथा का वर्णन किया है। जिसमें एक दम्पत्ति के माध्यम से मतलब परस्त परिवार का वर्णन किया किया है। जिसमें पत्नी अपने पति से कहती है कि सब कुछ अपने छोटे भाईयों के लिए ही खत्म कर दोगे, कभी अपने बारे में भी सोचा है। उसके बहुत बोलने पर पति को भी लगने लगता है कि वह ठीक ही कह रही है। थोड़ी देर बाद जब वह सड़क पर घूमने आता है तो उसे एक छोटी लड़की मिलती है जो अण्डे बेचा करती है। वह सारा धन अपने परिवार के सदस्यों पर खर्च करती है। अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखती। उसमें उसे बड़ आनंद आता है। इस प्रकार इस लघुकथा के माध्यम से लेखक ने पारिवारिक सामाजिकता हो दर्शाया है।

समाज में नारी की स्थिति :-

डॉ. रामकुमार घोटड़ ने अपनी लघुकथाओं में समाज में नारी के संघर्ष और शोषण की चर्चा की है। डॉ. घोटड़ ने अपनी लघुकथाओं में नारी विमर्श को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए इस समस्या पर बहुत लिखा है। डॉ. रामकुमार घोटड़ ने अपने साहित्य में नारी जीवन से जुड़े हुए विभिन्न आयामों को पाठकों के समक्ष पेश किया है। साथ ही उसके संघर्ष को भी मुखरता के साथ रूपायित किया है। एक लड़की जन्म से अपने पिता पति के घर अनेक कठिनाइयों का सामना करती है। नारी बल की बात करने वाले समाज में नारी की जो वास्तविक स्थिति है उसका यथार्थ चित्रण घोटड़ ने अपने लघुकथा संग्रहों में किया है। डॉ. राम कुमार घोटड़ की रचनाओं में जहाँ एक ओर नारी को सहनशीलता की मूर्ति, शील की प्रतिमा के रूप् विभिन्न कष्टों को सहन करते हुए बताया गया है वही नारी अन्त समय तक अपनी इच्छाओं का दमन करती पाई गई है। डा. रामकुमार घोटड़ ने अपनी रचनाओं में नारी–विमर्श के विभिन्न बिन्दु और समाज में नारी की स्थिति पर गहराई से प्रकाश डाला है।

नारी–संघर्ष :–

नारी के बारे में कहा गया है–

''कोमल है कमजोर नहीं तू,
शक्ति का नाम नारी है।''

'आंचल में है दूध और आंखो में पानी,
अबला जीवन हाय तुम्हारी, यही कहानी।''

डॉ. रामकुमार घोटड़ की रचनाओं में दहेज–प्रथा जैसी भीषण सामाजिक समस्या को प्रमुखता से उजागर करते हुए इन पर कुठाराघात किया गया है। इन में से एक तरफ जहाँ दहेज–प्रथा विरोधी विभिन्न कार्यक्रमों से लोगों को दहेज के बारे में जागरूक किया जाता है और जगह–जगह लम्बे–चौड़े भाषण दिये जाते है। बेटी बचाओं, दहेज भगाओं के नारे दिए जाते हैं वहीं दहेज प्रथा की समस्या रात–दिन बढ़ती जा रही है। हर लड़के की माँ अपने बेटे का मूल्य लड़की वालों को पहले बता देते है। समाज में अनेक स्त्रियों को दहेज की बलि देनी पड़ती है। प्राचीन समय में जो कुछ उपहार के रूप में अपनी पुत्री को दिया जाता था उसे अब दहेज का रूप दे दिया गया।

एक शिक्षित स्त्री एक शिक्षित देश को जन्म देती है। महिलाओं में अशिक्षित होने का कारण बाल विवाह भी है। छोटी सी उम्र में विवाह होने के कारण लड़कियों को पढ़ने का अवसर नहीं मिलता। इस कारण वह अनपढ़ ही रह जाती है। शिक्षा प्राप्त न कर पाने की वजह से वे अपने बच्चों में अच्छे संस्कार नहीं दे पाती है। महिलाओं द्वारा शिक्षा प्राप्त न कर पाने के कारण उन्हें सामाजिक कुरीतियों का शिकार होना पड़ता है। पुरूष की संकीर्ण मानसिकता, के कारण स्त्री को शिक्षा से वंचित होना पड़ा। जिसके कारण।

वह पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, नियोग–प्रथा आदि अनेक बुराईयों की बेड़ियाँ काटने में असक्षम हो गई। क्योंकि उसका हथियार शिक्षा उससे छीना जा चुका था। शिक्षा जोकि सिर्फ सर्वांगीण विकास ही नहीं बल्कि हमें समाज में व्याप्त बुराईयों से लड़ने की शक्ति भी प्रदान करती है। आज की महिलाएं घर संभालने तक ही सीमित नहीं रह गयी है। वह घर से बाहर निकलकर आगे बढ़ने का प्रयास कर रही है। महिलाएं हर क्षेत्र में आगे निकल रही है। व्यावसायिक क्षेत्र हो या पारिवारिक महिलाएं यह साबित कर रही है कि वह किसी से कम नहीं है। वे हर काम कर सकती है। वह पुरूषो से ज्यादा बढ़ चढ़ कर कार्य कर रही है। बड़े–बड़े शहरों में महिलाएं तो शिक्षित व अपने पैरों में खड़ी है किन्तु गांव व कस्बों में अभी भी शिक्षा के अभाव में जीवन जी रही है। उनके साथ अभी भी अत्याचार किया जा रहा है बाल विवाह के कारण लड़कियों की शिक्षा अपूर्ण रह जाती है तथा उन्हें पुरूषो के द्वारा सम्मान नहीं दिया जाता है। पुरूष आज भी स्वयं को महिलाओं को सम्मान देना पंसद नहीं करते। उनकी मानसिकता आज भी पहले जैसी ही है। माता– पिता की सोच लड़कियों के प्रति अभी भी गलत ही है। उन्हें अभी भी यही लगता है कि बेटी की शादी के बाद उसे दूसरे घर ही जाना होता है तो उसे पढ़ा–लिखाकर खर्चा क्यों करना है। लेकिन जब सरकार के द्वारा लड़कियों के लिए नई– नई योजनाएं आती है तो उनके मन

में लालच आता है और अपनी बेटियों को पढ़ाने के लिए वो तैयार हो जाते है। लालच के कारण लोगों की मानसिकता बदल रही है।

नारी जो ईश्वर की बनाई अनपुम कृति है। नारी के बिना सृष्टि की कल्पना भी असभंव प्रतीत होती है। नारी से नर की ही श्रेष्ठता है। नारी हर रूप में पूजनीय मानी गयी है। नारी अपने विविध रूपों जैसे मां, पत्नी, बहन, बेटी, बहू के रूप मे सिर्फ देती ही आयी है। नारी की व्याख्या अनेक रूपों में हुई है। जैसे नारी दुर्गा होती है नारी की शक्ति को जगाने के लिए वह लक्ष्मी होती है संसार को श्री सम्पन्न और सुन्दर बनाने के लिए सरस्वती होती है साविद्या विमुक्तये की शिक्षा देने के लिए। वह धरती होती है सब सहने के लिए। वह आकाश होती है सभी को अवकाश देने के लिए। वह वायु होती है सबको जीवित रखने के लिए। वह जल होती है सभी को शीतल और स्वच्छ रखने के लिए। वह प्रकाश होती है सभी को अंधकार से बचाने के लिए। संसार में इससे बड़ा कोई नहीं है। "अणोरणीयन महतोमहीयान'' होती है। इसलिए नारी को सदा पूज्य माना गया है। नारी को विविध गुणो से मंडित करके ईश्वर ने उसे उतारा है। नारी को नर से भी श्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि नारी को संतान उत्पन्न करने की शक्ति ईश्वर द्वारा प्रदान की गई है। इसलिए नारी की तुलना ईश्वर से भी की गई है।

औरत :–

डॉ. रामकुमार घोटड़ ने अपनी लघुकथा साहित्य में औरत लघुकथा का वर्णन किया है। इस लघुकथा में एक बहन अपनी छोटी बहन से कहती है कि आज एक और को नोबल पुरस्कार दिया जा रहा है। तो उसकी बहन कहती है कि इससे क्या फर्क पड़ता है आज भी हमारे देश में नारी को अबला, असहाय और भोग्या समझकर बलात्कार, दुराचार और यौन–शोषण हो रहा है। अभी भी पुत्र–जन्म के लिए भ्रूणहत्या का अपराध बढ़ रहा है। अभी भी औरत को प्रताड़ित किया जा रहा है। तब उसकी बहन कहती है कि उसने पुरूष–प्रधान समाज को समझने की कोशिश नहीं की है। आज हमारे देश में स्त्री को सम्मान का दर्जा दिया जा रहा है। औरत अब सांसारिक कड़ियों का निर्वाह करती है। उसके बाद भी वह औरत है।

फीकी मेंहदी :–

डॉ. रामकुमार घोटड़ ने समाज में नारी की दैनीय स्थिति का वर्णन किया है। उन्होंने अपनी किताब मेरी चुनिंदा लघुकथाओं में नारी की स्थिति को दर्शाया है। उन्होंने फीकी मेंहदी लघुकथा के माध्यम से भी नारी के पीड़ा भरे जीवन का चित्रण किया है। इस लघुकथा में दो सहेलियों के वार्तालाप के माध्यम से नारी के त्याग, बलिदान और मजबूरी भरे उसके जीवन का चित्रण किया गया है।

औरत की भूख :–

डॉ. घोटड़ ने इस लघुकथा में यथार्थ का वो चित्रण किया है जो ग्रामीण व गरीब के जीवन की सच्चाई के हर कोने को छूता है और वे बताते हैं कि घर की नारी सभी के बाद जो भी खाना बचता है वही खा लेती है और सन्तुष्ट रहती है कि उसके पूरे परिवार ने खाना खा लिया।

कथानक ने अनुसार जब पति शाम के समय खाना खाता है, बच्चे खाना खाकर बाहर खेलने गए हुए थे और

वो रोटी खाकर कहता है कि दो रोटी मैंने खा ली, एक बची है तुम्हें कितनी भूख है ?

''औरत की भी कोई भूख होती है, भला सभी के खाने के बाद जितना भी बचा–खुचा अलसू–पलसू बच जाए, उतनी ही..... '' और वो मुस्कराने की कोशिश करने लगी।

प्रकोप :–

डॉ. घोटड़ ने इस लघुकथा में परिवार की आर्थिक दशा सुदृढ़ ना होने के कारण लड़की पर जो परिस्थितियों का कहर टूटता है। उसका सशक्त चित्रण किया है। इस लधुकथा में जब एक लड़की की शादी में देरी के कारण उसका पिता उसकी शादी मजबूरी में बूढ़े और बीमार व्यक्ति के साथ कर देता है। कुछ दिन बाद उसकी मृत्यु हो जाती है और समाज वाले उसे जबरदस्ती उठाकर यमला देवी के भक्तों की सेवा में छोड़ आए।

एक और साध्वी :–

इस लघुकथा में डॉ. घोटड़ ने समाज के उस पहलू को उठाया है जब लड़की का विवाह उनकी आर्थिक स्थिति सही न होने पर योग्य वर से न हो पाता है और उस लड़की पर रूदन, पीड़ा और करूणा का जो पहाड़ टूटता है, अपनी इच्छाओं, उमंगों को कैसे वो दबाती है और अंत में वो पागल हो जाती है। यह पुरूष प्रधान समाज के मुँह पर एक झनझनाता तमाचा है।

छोटी भैणा :–

डॉ. घोटड़ की इस लघुकथा में गरीब परिवार का चित्रण हुआ है और पूरे परिवार की आस एक पढ़े–लिखे पुत्र पर है जो पढ़–लिखकर बड़ा आदमी बनना चाहता है और उस घर में बेटी (छोटी बहिन) स्वयं भूखी रहकर अपने भाई को खाना खिलाती है। इस प्रकार यह एक सामाजिक दास्तां का मार्मिक चित्रण है।

समाज की एक तस्वीर :–

डॉ. रामकुमार घोटड़ ने इस रचना में नैतिक व सामाजिक मूल्यों में आ रही गिरावट, नारी जीवन पर हो रहे जुल्म और पौरूष की अहम् की भावना जो दिन–प्रतिदिन बदलती जा रही है, पर करारा व्यंग्य किया है और प्रश्न रूप में ऐसा प्रश्नवाचक लगा दिया है जिसका जवाब शायद किसी के पास नहीं है। एक सन्त भाषण दे रहे थे और बता रहे थे कि एकाकीपन दूर करने, संसार को आबाद रखने के लिए पुरूष के साथ–साथ नारी की भी रचना की। लेकिन आज पुरूष समय के साथ इस बात को भूल गया और अपने आप में पौरूष का इतना अहंकार आ गया कि मादा शिशु को जन्म पर ही खत्म करने के लिए उतारू होने लगा फिर जवान अवस्था में शायद ही ऐसी कसम बाकी रहती है जो नारी और शादी के बाद शुरू होता है– रूदन, विलाप, जुल्मों का सिलसिला, जिसमें रहा–सहा नारीत्व भी मर जाता है, फिर पीछे रह जाती है कुछ क्षण के लिए जिन्दा लाश, जिसमें समाज के सामने अपनी दास्तां कहने का साहस भी नहीं रहता और फिर कुछ क्षणों के साथ बीत जाती है वो ईश्वर की प्यारी कृति और पुरूष फिर सज–धज कर तैयार हो जाता है अपना पौरूष नई कृति पर आजमाने के लिए।

भटकती आत्मा :–

डॉ. रामकुमार घोटड़ की मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ में भटकती आत्मा लधुकथा में उन्होंने पारिवारिक स्थिति का वर्णन किया है। स्वर्ग में कुछ आत्माएँ जो अभी–अभी भूलोक से लौटी हैं, आपस में बातें कर रही थीं। एक आत्मा दूसरी आत्मा से कहती है कि घर का बुजुर्ग बच्चों को इतिहास सुनाता है। वह कहता है कि ग्यारह हजार सौ पहले जब मैं जीवित था मेरा परिवार एक हिन्दु परिवार था। .....

'' आज तुम जिन ग्यारह जनों को खत्म करके आए हो वे सब मेरे बड़े लड़के की पचासवीं पीढ़ी की औलाद थीं और तुम मेरे छोटे लड़के की इक्यावनवीं पीढ़ी हो। तुम दोनों का परिवार मेरा अपना ही परिवार था। मैं तुम्हारा सड़– नाड़ा दादा हूँ''।

''दादाजी'' अब वे सब अपराधबोध से ग्रसित थे।

इस प्रकार डॉ. रामकुमार घोटड़ ने अपनी लघुकथाओं में परिवार और सामाजिकता का प्रभावशाली चित्रण किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ – पृ. सं. 23
2. मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ – पृ. सं. 24
3. मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ – पृ. सं. 90
4. लघुकथा सप्तक – पृ. सं. 13
5. लघुकथा सप्तक – पृ. सं. 14
6. लघुकथा सप्तक – पृ. सं. 15
7. मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ – पृ. सं. 49
8. मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ – पृ. सं. 15
9. मेरी चुनिन्दा लघुकथाएँ – पृ. सं. 16

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 303-305

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और संभावनाएँ

डॉ. श्याम मनोहर गौतम
असिस्टेंट प्रोफेसर
जवाहरलाल नेहरु स्नातकोत्तर शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय सकतपुरा, कोटा (राज.) 324008

आज संचार साधनों की बदौलत स्थानों के बीच की दूरियाँ बेईमानी हो गई है या यूं कहें कि एक तरह से मिट गई है। संपूर्ण विश्व एक गाँव सा बन गया है, जिसमें कभी भी, कहीं से भी, किसी से भी तत्काल संपर्क स्थापित किया जा सकता है, यदि आपके पास उसके लिए अपेक्षित साधन है तो। यह भी भविष्यवाणी की जा रही है कि वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व की 10 भाषाऐं ही जीवित रहेंगी, जिनमें हिंदी भी एक होगी। वैश्वीकरण एवं बाजारवाद के संदर्भ में हिंदी भाषा का महत्व इसलिए बढ़ेगा क्योंकि भविष्य में भारत व्यावसायिक, व्यापारिक एवं विज्ञान की दृष्टि से एक विकसित देश बनेगा।

विश्वभाषाएँ तो विश्व की उस प्रत्येक भाषा को कहा जा सकता है, जिसमें प्रयोक्ता एकाधिक देशों में बसे हुए हैं, किंतु विश्व भाषा पद की वास्तविक अधिकारिणी वे भाषाएँ हैं जो विश्व के अधिकतर देशों में बोली, सुनी और समझी जाती है। हिंदी एक विश्वभाषा है, क्योंकि वह एक देश की राष्ट्रभाषा होने के साथ–साथ अन्य देशों में भी पर्याप्त संख्या में लोगों द्वारा लिखी, बोली और समझी जाती है। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के प्रति सकारात्मक प्रवृतियाँ इस प्रकार दिखाई दे रही है–

–जनतांत्रिक आधार पर हिंदी विश्व भाषा है, क्योंकि उसके बोलने–समझने वालों की संख्या विश्व में तीसरे स्थान पर है।

–विश्व के 132 देशों में जा बसे भारतीय मूल के लगभग 2 करोड लोग हिंदी भाषा में ही अपना कार्य निष्पादित करते हैं।

–हिंदी स्वयं में अपने भीतर एक अंतरराष्ट्रीय जगत छुपाए हुए हैं। आर्य, द्रविड़, आदिवासी, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अरबी, अँग्रेजी, पारसी, चीनी, जापानी आदि संपूर्ण विश्व की भाषाओं के शब्द इसकी अंतरराष्ट्रीय मैत्री एवं वसुदेव कुटुंबकम वाली प्रवृत्ति को उजागर करते हैं।

–प्रवासी भारतीय वैश्वीकरण का सबसे प्रत्यक्ष वाहक है और ऑडियो–वीडियो और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के

माध्यम से हिंदी भाषा एक जीवंत कड़ी बन रही है।

–इंटरनेट पर हिंदी भाषा भी स्वीकार्य और लोकप्रिय बन रही है। हिंदी पत्रकारिता और हिंदी साहित्य भी अब इंटरनेट के माध्यम से विश्व भर में प्रकाशित होने लगा है।

–हिंदी भाषा की व्यापकता के कारण विश्व के 175 देशों में हिंदी भाषा शिक्षण एवं प्रशिक्षण के अनेक माध्यम केंद्र बन गए हैं। हिंदी का शिक्षण एवं प्रशिक्षण विश्व के लगभग 180 विश्वविद्यालयों, शैक्षणिक संस्थाओं में चल रहा है। अकेले अमेरिका में 100 से अधिक विश्वविद्यालय, कॉलेजों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। इससे हिंदी भाषा का वर्चस्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

–''एनाकाटीर एनसाइक्लोपीडिया'' के अनुसार चीनी भाषा के बाद विश्व भर में प्रयुक्त होने वाली सबसे बड़ी भाषा हिंदी है। हिंदी के बाद क्रमशः स्पेनिश, अँग्रेजी, अरबी, रूसी और फ्रांसीसी भाषाओं का स्थान आता है।

विश्व भाषा के रूप में हिंदी भाषा के समक्ष समस्याएँ :–

विश्व भाषा के रूप में हिंदी के समक्ष अनेक समस्याएं हैं। भारत से प्रवचन, पलायन करने वाले बुद्धिजीवियों और श्रमिकों पर हिंदी भाषा टिकी है, किंतु वे बड़े तेजी से अँग्रेजियत के रंग में रंगते जा रहे हैं। उनकी आने वाली पीढ़ी हिंदी भाषा से अपरिचित–सी है। जब इसे संविधान में भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया गया तो ऐसा माना जाने लगा कि इसे देर–सबेर संयुक्त राष्ट्र संघ एवं संसार की अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं–संस्थानों में भी स्थान मिलेगा और अंतरराष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में भी मान्यता प्राप्त होगी, लेकिन आज तक ऐसा नहीं हो सका है।

हिंदी भाषा को विश्वभाषा बनाने के सुझाव :–

हिंदी के प्रति हमें अपने दायित्व पर विचार करना होगा। वस्तुतः हिंदी में हम जितना काम कर पाए हैं? क्या कोई भाषा मात्र अपने साहित्य की वृद्धि से ही विश्व भाषा बन सकती है ? कदाचित नहीं। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के विश्वव्यापी प्रसार की बात तो हम करते हैं किंतु इस दिशा में ठोस प्रयास नहीं करते हैं। हम कागजी योजनाऐं बनाते हैं किंतु उन्हें क्रियान्वित नहीं करते, कार्यान्वयन होता है तो उसे पूर्ण नहीं करते या कर नहीं पाते। आवश्यकता है कि हिंदी भाषा के वैश्विक विकास के लिए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना, जिससे हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचानी जाए। इस दिशा में विश्वस्तर पर कार्य हो रहा है और प्रगति भी दिख रही है।

सन्दर्भ :–

1. डॉ. लोकमान्य मिश्र, हिंदी भाषा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
2. डॉ. संजीव वर्मा, मातृभाषा हिंदी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

3. रामनाथ शर्मा, साहित्यिक निबन्ध, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. डॉ.महेंद्र कुमार मिश्रा, आधुनिक निबन्ध, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
5. यादवेंद्र शर्मा ''चन्द्र'', साहित्य में प्रगति चेतना

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 306-308

हिन्दी एवं उसकी उपभाषाओं का उद्‌भव एवं विकास

स्नेहलता शर्मा, शोधार्थी, समाजशास्त्र,
कोटा यूनिवर्सिटी कोटा राज.

वैदिककालीन संस्कृत से लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं से हिन्दी की भाषा यात्रा में एक चेतना का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद की भाषा सप्तसिंधु या पंजाब से समानता रखती है। सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में कुरू और पांचाल प्रदेशों की भाषा प्राप्त होती है। आर्यों के आगे बढ़ने से यह मध्यप्रदेश में प्रचलित हुई। संभवतया इसी काल में ब्राह्मणों और उपनिषदों की रचना हुई और उन पर स्थानीय भाषा का भी प्रभाव हुआ। इन ग्रन्थों की भाषा पर जनभाषा का प्रभाव हुआ और यह आम बोलचाल के निकट अधिक रही। वैदिक संहिताओं को सामान्य जन हेतु सरल बनाने के लिए पद–पाठ को लौकिक संस्कृत में लिखा गया। इस काल में वैदिक संस्कृत की दुरूहता को हटाकर लौकिक संस्कृत ने पद ग्रहण किया। इससे पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के काल तक वैदिक संस्कृत का प्रचलन रहा बाद में ब्राह्मणों और उपनिषदों में लौकिक संस्कृत का प्रयोग किया गया। लौकिक संस्कृत द्वारा पालि भाषा का विकास हुआ। इसे प्रथम प्राकृत भी कहा गया है। यह भाषा अशोक के शिलालेखों और पालि साहित्य में प्राप्त होती है।

इस काल में गौतम बुद्ध के वचनों को सुरक्षित रखा गया है। इसी समय विशुद्धि भगा, दीपवंश और मिलिन्दपन्हों आदि बौद्ध धर्म संबंधी ग्रन्थों का प्रणयन हुआ था। साहित्य के रूप में त्रिपिटक में इस भाषा में गौतम बुद्ध के उपदेशों का संग्रह किया गया। इस भाषा का प्रचार न सिर्फ भारत अपितु लंका, बर्मा, स्याम, चीन और जापान आदि में भी हुआ। अशोक के गिरनार गुजरात के अभिलेखों की भाषा इससे अधिक साम्यता रखती है। संभवतया राजकुमार महेन्द्र का जन्म स्थान उज्जैन होने के कारण इस पर यह प्रभाव दिखलाई देता है। ग्रियर्सन के मतानुसार यह मगध की भाषा थी और वहां से तक्षशिला तक पहुंची वहां इस पर पैशाची प्रभाव पड़ा क्योंकि महायान का त्रिपिटक संस्कृत भाषा में लिखित है और हीनयान सम्प्रदाय का पालि में लिखित है। माना जाता है कि इसका आधार मध्यप्रदेश की भाषा रही होगी। इसके साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित होते ही इसमें अन्य जनपदों–काशी, कौशल, शूरसेन आदि के तत्वों का समावेश हो गया। संस्कृत से लौकिक संस्कृत के रूप में अनेक ध्वनियों का परिवर्तन हुआ था उसी प्रकार पालि में भी अनेक ध्वनियां परिवर्तित हो गईं।

पालि भाषा के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया और जनभाषाओं के कारण क्षेत्रीय भाषाओं ने अपना वर्चस्व कायम किया। मध्यकालीन आर्यभाषा के संक्रान्ति के रूप में प्राकृत भाषा का जन्म हुआ। यह प्रकृति से उत्पन्न मानी गई

है। हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, धनिक, सिंहदेव आदि ने इसे प्रकृति संस्कृत से उत्पन्न माना है। इसे अलकांर शास्त्रियों द्वारा काव्य और नाटकों में प्रयुक्त भाषा को प्राकृत कहा गया। अश्वघोष के नाटकों में इस भाषा का प्रयोग किया गया है। मृच्छकटिकम में भी इसका श्रेष्ठ प्रयोग है। ग्यारहवीं शती तक संस्कृत नाटकों इसका प्रयोग प्राप्त होता है। प्राकृत में लिखित साहित्य के अभाव के कारण उनके पांच भेद माने गए हैं– शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री और पैशाची। दसवीं शती के लगभग अपभ्रंश से विभिन्न बोलियों के रूप में दिखलाई देता है हांलाकि दसवीं से चौदहवीं शती तक अनेक बोलियों में अपभ्रंश के तत्व विद्यमान रहे। तत्कालीन समय की प्रमुख भाषाओं में हिन्दी, बंगला, असमिया, उड़िया, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, मराठी और पहाड़ी आदि अयोगात्मक हो गईं। इन सभी में लिपि तथा उच्चारण का अंतर, ध्वनियों का परिवर्तन, विदेशी ध्वनियों और शब्दों का प्रयोग, धातु रूपों की संख्या कम हो गई। अपभ्रंश के ह्रास द्वारा भाषा के रूप में प्रचलित बोलियां आधुनिक भारतीय भाषाओं के रूप में प्रचलित हुईं। विद्वान कैरे द्वारा भारत में 33 भाषाओं की खोज की गई।

हार्न द्वारा सबसे पहले आर्य सिद्धान्त के आधार पर अंतरंग और बहिरंग आर्यों की भाषा को चार वर्णों में विभाजित किया– 1. पूर्वी गौडियन–पूर्वी हिन्दी बिहारी के साथ, बंगला, असमी और उड़िया।

2. पश्चिमी गौडियन– पश्चिमी हिन्दी , राजस्थानी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी।

3. उत्तरी गौडियन– गढ़वाली, नेपाली पहाड़ी सहित।

4. दक्षिणी गौडियन–मराठी।

इस वर्गीकरण का खण्डन करते हुए डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने वैज्ञानिक आधार पर वर्गीकरण किया– 1. उदीव्य–सिंधी, लंहदी, पंजाबी। 2. प्रतीव्य–गुजराती, राजस्थानी। 3. मध्यदेशीय–पश्चिमी हिन्दी। 4. प्राव्य–पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, असमिया, बंगला। 5. दक्षिणात्य–मराठी। यह वर्गीकरण अत्यधिक मौलिक नहीं है इसमें हिन्दी के रूपों को भाषा मानकर दूसरे वर्गों में स्थान दिया गया है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने राजस्थानी को, प्राच्य वर्ग से पूर्वी हिन्दी और बिहारी को हटाकर मध्यदेशीय में रखा है।

हिन्दी किसी एक स्थान की भाषा नहीं रही बल्कि इसने उपभाषाओं और बोलियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। इस भाषा मण्डल में पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी के दोनों रूपों के साथ राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी बोलियां सम्मिलित हैं। पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बिहार तक, उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक हिन्दी का विस्तार है। इन सभी मण्डलों की भाषाओं, उपभाषाओं और बोलियों के सम्मिलित और विकसित रूप को हिन्दी कहा गया है । हिन्दी का नामकरण फारसी में स–ह होने के कारण सिंधु–हिन्दू या हिन्द के कारण किया गया। हिन्दी का विकास अपभ्रंश के अवसानकाल से हुआ। भाषाओं के नवीन स्वरूप से पूर्व इस प्रदेश में पांच प्राकृत भाषाएं थीं। उपनागर अपभ्रंश से राजस्थानी, शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, अर्धमगधी से पूर्वी हिन्दी, मागधी से बिहारी, खस से पहाड़ी हिन्दी का विकास हुआ। इस तरह से हिन्दी की पांच उपभाषाएं हुईं– राजस्थानी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी , बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी। हिन्दी की इन उपभाषाओं की साहित्यिक परम्परा रही है। इनके माध्यम से उच्च कोटि के साहित्य का सृजन हुआ।

पश्चिमी हिन्दी की खड़ी बोली में भी साहित्य रचना की गई।

राजस्थानी हिन्दी– यह सिंध और मध्यप्रदेश के कुछ भागों में प्रचलित है। इसका प्राचीन स्वरूप डिंगल भाषा थी जिसमें रासो, ढोला मारू रा दूहा, किसन रूकमणि री बेलि आदि की रचना हुई। राजस्थानी कवि दादूदयाल, चरणदास, हरिदास और मीराबाई ने इसी में बानी लिखी हैं। इनकी भी उपबोलियां हैं– मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी। जयपुर में जयपुरी, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, मेवाड़, सिरोही, पालनपुर और जैसलमेर में मारवाड़ी, जोधपुर में विशुद्ध मारवाड़ी, बूंदी–कोटा में भी इसका प्रचलन रहा। मेवाती का प्रचलन अलवर, भरतपुर में रहा। उज्जैन, देवास और इन्दौर में शुद्ध मालवी प्रसिद्ध रही।

पश्चिमी हिन्दी– यह पंजाब और राजस्थान की सीमा से लेकर पूर्व में अवधी, बघेली की सीमा, उत्तर में पहाड़ी, दक्षिण में मराठी की सीमा तक विस्तृत रही। इसकी प्रमुख बोलियों में– खड़ी, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली (खड़ी, ब्रज) रहीं। हैदराबाद, मुम्बई और मद्रास में मुस्लिम समुदाय में प्रयुक्त दक्खिनी हिन्दी इसी वर्ग की है।

पूर्वी हिन्दी– यह कानपुर से मिर्जापुर, लखीमपुर नेपाल से दुर्ग–बस्तर तक विस्तृत है। अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी इसकी प्रमुख बोलियां हैं। इनमें अवधी भाषा में साहित्यिक रचनाओं की रचना हुई है।

बिहारी हिन्दी– यह बिहार की भाषा है। यहां की प्रमुख बोली भोजपुरी का क्षेत्र उत्तरप्रदेश में स्थित है। इनमें दो प्रमुख बोलियां–मैथिली और मगही हैं किन्तु इनमें कोई समता न होने के कारण यह अपवाद स्वरूप हैं। पहाड़ी हिन्दी– यह नेपाल और गढ़वाल क्षेत्र में बोली जाती हैं। इनमें अनेक साहित्यिक रचनाएं लिखी गई हैं। कुमाउॅनी भाषा में भी साहित्य रचना प्राप्य है। इस क्षेत्र में अनार्य जातियों का निवास था कालान्तर में यहां ऋषियों का साधना केन्द्र होने के कारण यहां आर्य भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव हुआ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वर्तमान हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप अपभ्रंश के ह्रास से हुआ। इसी कारण इनमें परस्पर सम्बद्धता सिद्ध की जा सकती है। समानता के साथ ही इनमें स्वयं के विकास और भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अन्य तत्वों का भी समावेश हुआ। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ही इसमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी दृष्टिगत होते हैं, जो कि इसे बोधगम्यता प्रदान करते हैं। हिन्दी के साथ ही इन सभी भाषाओं की जननी देवनागरी लिपि रही है। इसी कारण इनमें समानता दृष्टिगत होती है। भाषा परिवर्तन की यह प्रक्रिया निरन्तर विकासमान है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :- 1. रस्तोगी डॉ. प्रेमप्रकाश– हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, प्र.सं. 1966

2. बाहरी डॉ. हरदेव–हिन्दी उद्गम : विकास और रूप, किताब महल, इलाहाबाद।

3. मिश्र डॉ. नरेन्द्र– भाषा और भाषा विज्ञान, प्र.सं. 2001

4. डॉ. रत्तू कुमार कृष्ण– भाषा विज्ञानः नए भाषायी संदर्भ, बुक एनक्लेव, जयपुर, प्र.सं. 2003

5. प्रसाद वासुदेव– आधुनिक हिन्दी व्याकरण रचना, भारती भवन, पटना।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 309-316

आंचलिक हिंदी पत्रकारिता - समाचारों में भाषा पर एक दृष्टि

प्रस्तुतकर्त्ता :– **डॉ. सुदीप शुक्ल** मार्ग दर्शन : **डॉ. श्रीमती कमला चतुर्वेदी**
36, श्री कृष्ण कॉलोनी, विदिशा, मध्यप्रदेश–464001

पत्रकारिता की मुख्य धारा की भांति आंचलिक पत्रकारिता का क्षेत्र भी व्यापक हो चुका है। समाज में शिक्षा के प्रति आयी जागरूकता का परिणाम है कि प्रति वर्ष साक्षरता की दर बढ़ रही है। इसमें सरकारी प्रयासों के साथ अंचल में आई चेतना की प्रमुख भूमिका रही है। पिछले दो–तीन दशकों में सैटेलाइट, रेडियो और इससे भी पूर्व आकाशवाणी और टेलीविजन चैनलों की पहुंच घर–घर हुई। इसके फलस्वरूप समाचार प्राप्त करने की उत्कंठा में इन माध्यमों के प्रति लोगों का रूझान तेजी से बढ़ा। उपभोक्ता वादी संस्कृति का प्रभाव भी समाचार माध्यमों पर इसलिए बहुत काम का गया क्योंकि उन्हें विभिन्न उत्पादों के विज्ञापन उपभोक्ता तक पहुंचाने थे। यही उनकी आय का बड़ा जरिया भी था। इस सब के परिणाम स्वरूप आंचलिक पत्रकारिता के सभी माध्यमों यथा समाचार पत्र, पत्रिकाओं रेडियो प्रसारण सेवाओं, टेलीविजन चैनलों का अंचल में प्रापक भी ओर तेजी से ध्यान गया और माध्यमों ने इसके लिए स्वयं का हर स्तर पर विकास कर घर–घर तक पहुंचने हेतु कार्य किया।

आंचलिक हिंदी पत्रकारिता की व्यापकता का अर्थ इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि अंग्रेजी की देश की सबसे ज्यादा बिक्री और पाठक संख्या वाली पत्रिका 'इंडिया टुडे' पहले तो हिन्दी में निकली इसके पश्चात् पिछले दशक में इस पत्रिका के म.प्र. छत्तीस गढ़ संस्करण भी प्रकाशित होने लगे अर्थात् मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के पाठकों के लिए कुछ पृष्ठों में अलग से क्षेत्रीय समाचार दिए जाने लगे। यह प्रयोग इस पत्रिका ने अन्य प्रदेशों में भी किया। क्षेत्रीय पत्रकारिता और हिन्दी पाठकों की शक्ति ही है कि यह प्रयोग सफल रहा। इससे संबंधित पत्रिका की क्षेत्र में बिक्री तेजी से बढ़ी वहीं क्षेत्रीय पाठकों को यह लाभ हुआ कि उन्हें अप ने प्रदेश के प्रमुख समाचार राष्ट्रीय स्तर की इस पत्रिका में मिलने लगे। इसी तरह का प्रयोग समाचार पत्र नब्बे के दशक में कर चुके थे। समाचार पत्रों ने अपने आंचलिक संस्करण निकालने शुरू किए। मध्य प्रदेश में दैनिक भास्कर समाचार पत्र ने सबसे पहले यह प्रयोग किया। इसकी सफलता ही है कि बीते 2–3 दशकों में यह पत्र सब से ज्यादा पाठक संख्या वाला समाचार पत्र बन गया। बाद में अन्य पत्रों ने भी इसी को आदर्श बनाते हुए अपने आंचलिक संस्करण प्रकाशित करना शुरू कर दिए। ऐसे पत्र निरंतर बने रहे वहीं जो पत्र आंचलिक पत्रकारिता और पाठकों की इस शक्ति को भांप नहीं सके और पुराने ढर्रे पर ही चलते रहे वे बिना आंचलिक पाठकों का साथ लिए प्रसार में सिमटते चले गए। इसमें से कई समाचार पत्र तो बंद होने की सीमा पर पहुंच गए या बंद ही हो

गए।

आज अंचल के बड़े समाचार हिंदी समाचार माध्यम राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करते हैं। यद्यपि इनमें अपराध, राजनीति, घटना क्रम आदि के समाचार के समाचार ही अधिक होते हैं तथापि अंचल के समाचार समाचार माध्यमों में अपनी जगह बना रहे हैं। देश की सबसे ज्यादा बिक्री एवं पाठक संख्या वाली पत्रिका 'इंडिया टुडे' ने यदि अपने प्रत्येक अंक में कुछ पृष्ठ विशेष रूप से मध्य प्रदेश–छत्तीगढ़ के लिए सुरक्षित रखते हुए इन्हीं दो राज्यों के समाचार प्रसारित करना आरंभ किया तो यह अंचल की पाठक शक्ति का ही सुफल है।

आंध्रप्रदेश के तेलुगु के समाचार पत्र 'इनाडु' ने आंचलिक ताकि शक्ति को सबसे पहले भांपते हुए इस दिशा में कार्य भी शुरू कर दिया था। 'इनाडु' ने आंध्रप्रदेश में जिलेवार अपने संस्करण प्रकाशित किए। प्रयोग सफल रहा। पाठकों ने अपने अंचल के गांव–गांव के समाचार एक समाचार पत्र में पाकर इसे अच्छा प्रतिसाद प्रदान किया। पत्र की पाठक संख्या, विज्ञापन से आय एवं बिक्री खूब तेजी से बढ़ी। इनाडु की भांति ही मध्य प्रदेश में समाचार पत्र 'दैनिक भास्कर' ने सबसे पहले अपने जिला स्तर के संस्करण प्रकाशित करने आरंभ किए।

मध्य प्रदेश में भी भास्कर की इस नीति को पाठकों का अच्छा प्रतिसाद मिला। आंचलिक पाठकों ने जब इस पत्र को खरीद कर पढ़ना प्रारंभ किया तो एक के बाद एक मध्य प्रदेश एवं तब इसमें सम्मिलित छत्तीस गढ़ के प्रत्येक जिले से दैनिक भास्कर के संस्करण प्रकाशित होने लगे। भास्कर की पाठक संख्या, बिक्री और विज्ञापन से आय में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और यह इन तीनों अर्थों में मध्य प्रदेश का प्रथम स्थान पर विराजित समाचार पत्र हो गया। इस प्रयोग को बाद में अन्य समाचार पत्रों ने भी अपनाया और सफलता प्राप्त की। इधर दूरदर्शन ने अपना क्षेत्रीय दूरदर्शन चैनल दूरदर्शन मध्यप्रदेश के नाम से 1994 मे आरंभ किया। यह उस समय पहला क्षेत्रीय टेलीविजन चैनल होने के कारण शीघ्र ही दर्शकों की पसंद बन गया। इस चैनल के साथ ही मध्य प्रदेश में क्षेत्रीय समाचार एवं मनोरंजन चैनल का आरंभ हुआ। पहले पहल प्रदेश के दर्शकों ने अपने बीच के लोगों को दूरदर्शन के रुप हाल के पर्दे पर देखा तो अपने अंचल के समाचार भी दूरदर्शन पर देखे। इसके बाद इनाडु समूह ने हिंदी में 'ईटीवी मध्यप्रदेश–छत्तीसगढ़' समाचार एवं मनोरंजन चैनल का वर्ष 2002 में प्रसारण आरंभ किया। अब लगभग 24 क्षेत्रीय समाचार चैनल मध्य प्रदेश के अंचलों के समाचार प्रसारित करते हैं। प्रदेश के प्रत्येक अंचल के समाचार प्रमुखता से इन समाचार चैनलों पर प्रसारित किए जाते हैं। अंचल के समाचार कहीं अधिक तेजी से इन समाचार चैनलों पर प्रसारित होते हैं। इसका कारण यह भी है कि लगभग सभी क्षेत्रीय समाचार चैनलों के कार्यालय राज्यो की राजधानी में स्थित हैं। अंचल के समाचार प्राप्त करना इन क्षेत्रीय चैनलों के लिए सरल होता है। वहीं अंचल के समाचार भी शीघ्रता से प्रसारित हो जाते हैं।

आंचलिक पत्र कारिता अब अपनी परिपक्व स्थिति को प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। आंचलिक पत्रकारिता के सुदृढ़ होने का सुफल यह रहा कि अंचल के पाठक को अपने गांव, कस्बे और देहात के सभी महत्वपूर्ण समाचार प्राप्त होने लगे। उसकी समस्याओं को जिला स्तर के अधिकारियों द्वारा संज्ञान में लिया जाने लगा। सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के उद्देश्य अब समाचार पत्र आंचलिक पाठकों को केंद्र में रखकर निर्धारित

करने लगे। समाज, राजनीति, गतिविधियों, अपराध, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं के विषय, व्यवसाय, कृषि, धर्म, खेल की स्थानीय खबरें अब समाचार पत्रों में स्थान प्राप्त कर जन मानस में प्रसारित होती हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी समस्या, उपलब्धि, महत्वपूर्ण संदेश, सिद्धांत, अपराध की सूचना, मनोरंजन से जुड़े समाचार, खेल गतिविधि, सरकार अथवा प्रशासन से होने वाली कठिनाई को समाचार पत्रों के माध्यम से प्रसारित करा सकता है। इससे लाभ यह है कि समस्या सुलझाने हेतु संबंधित व्यक्ति अथवा समूह सचेत होते हैं। मनोरंजन से जुड़ी गतिविधि उसके लक्षित पाठकों तक पहुंच जाती हैं। सरकार अथवा प्रशासन से होने वाली कठिनाई इसलिए दूर होने की संभावना बंधती है क्योंकि पत्र में समाचार के रूप में प्रकाशित विषय न केवल अधिकारियों के संज्ञान में आ जाता है बल्कि सार्वजनिक रूप से अपनी साख बचाने के लिए भी शासन, प्रशासन शीघ्र समस्या के हल के प्रयास करता है। यद्यपि ऐसा हर बार हो यह भी संभव नहीं है तथापि यह शांति के साथ व्यक्ति अथवा समूह द्वारा अपनी समस्या को उजागर कर उसके हल की एक संभावना तो है ही जिसे समाचार माध्यम पूरा कराने के निमित्त साधन है। आगामी समय में होने वाली गति विधियां एक सूचना की भांति होती होती है तो हो चुके आयोजन एवं गति विधियों की के समाचारों से पाठकों को ब्योरा मिल जाता है। इस प्रकार पत्र स्वयं एवं पाठक दोनों के हित आंचलिक पत्रकारिता के माध्यम से पूर्ण होने के प्रयास दिनों–दिन के समाचारों में दीख पड़ते है।

आंचलिक पत्रकारिता की विशेषता यह भी है कि इसमें समाज ठीक प्रकार से परिलक्षित होता है। समाज की गतिविधियां, उपलब्धि, कार्यक्रम, समारोह, नियुक्तियां, व्यक्ति विशेष आधारित समाचार, सामुदायिक गतिविधि, धर्म आदि के समाचार आंचलिक पत्रकारिता में जिस खूबी एवं विवरणात्मक प्रकार से प्रकाशित होते हैं वैसा महानगरीय पत्रों में दृष्टिगोचर नहीं हो पाता है। महानगरीय पत्रकारिता माध्यमों में अति संक्षिप्तता के कारण समाज उतने प्रभावी ढंग से परिलक्षित होता है। यही विशेषता अंचल को समाचार माध्यमोंमे जीवंत बनाए रखती है। "हिंदी पत्रकारिता का गद्य भी इस दौरान बदला है। सूचना क्रांति के विस्फोटक विस्तार ने इसमें नई चमक और सूचनाओं को धारण और वह न करने की नई ताकत पैदा की है इसके बावजूद इसके अब भी यह अभिव्यक्ति और मुहावरे के लिहाज से सक्षम और जीवंत गद्य नहीं है।"[1]

पत्रकारिता में भाषा को लेकर की जा रही चिंता नई नहीं है। हिंदी पत्रकारिता का आरंभ से ही इसे लेकर संपादक एवं पत्रकार भी चिंतित दिखाई दिए हैं। पत्रकार एवं समाचार माध्यमों का सबसे बड़ा संघर्ष पाठक तक पहुंचना एवं उसे समाचार जैसा लिखा गया वैसा समझाना है। यह चुनौती सदैव पत्रकार एवं समाचार पत्र के समक्ष बनी रहती है। यद्यपि भाषा को लेकर अलग–अलग तरह की धारणाएं माध्यमों में भाषा का तरीका एवं प्रभाव भी बदल रही हैं। यह चिंता नवीन नहीं है। लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व 'उचित वक्ता' के संपादक इस पर अपनी चिंता व्यक्त कर चुके थे । 12 जनवरी 1885 के उचित वक्ता के अंत में इसके संपादक ने गद्य के प्रसव की मुश्किलों का जिक्र करते हुए लिखा कि "कोई तो आज संस्कृत शब्दों के प्रति झुक रहे हैं और नाही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन होती है, कुछ सरल कीजिए कि चटपलटकर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गए, फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत शब्दों के मिलाने या उर्दू शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट होगी,

बस चट बदल गए और दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाने पर उतारू हो गए सारांश यह है कि ग्राहकों की खोज में भाषा को भटकाते रहते हैं और लेख प्रणाली को स्थिर नहीं कर सकते।"[2]

समाचार माध्यमों एवं पत्रकारों के मध्य यह स्थिति आज भी बनी हुई है। पत्रों में जो भाषा लिखी जा रही है वह पाठक कितनी ह्रदयंगम करेगा यह तो बहुत दूर की बात है। पाठक श्रोता अथवा दर्शक को समाचार ज्यों का त्यों समझा पाना ही माध्यमों के लिए बड़ा कार्य है। भाषा के घाल मेल से आवाज में असर तो उत्पन्न हो सकता है किंतु समाचार भी प्रभावी बन पड़ेगा यह कहना ठीक नहीं है। हिंदी शब्दों को क्लिष्टमान कर समाचार माध्यमों ने त्याज्य कहां दिया उनके स्थान पर जो शब्द प्रयोग में लाए जाने लगे हैं वह ना तो सामान्य बोल चाल के शब्द हैं और नहीं पिछले हिंदी शब्दों की अपेक्षा सरल ही हैं।

हिंदी पत्रकारिता के समाचारों में भाषा को लेकर आए परिवर्तन इस ओर भी इंगित करते हैं कि नई पीढ़ी के जो पत्रकार समाचार माध्यमों में लेखन करने आ रहे हैं, वे हिंदी के विशेषज्ञ बिल्कुल नहीं है। विशेषज्ञ तो बहुत दूर की बात है वह सामान्य हिंदी से आगे नहीं बढ़ सकते हैं, अर्थात उतनी ही सामान्य हिंदी जो उन्हें शैक्षणिक विषयों में उत्तीर्ण कराने में सक्षम रही है। आश्चर्य की बात नहीं है कि समाचार कक्ष में नए पत्रकार हिंदी के बहुत सामान्य शब्दों का अर्थ अंग्रेजी के शब्दों के अर्थ से साम्य बैठाते हुए पूछते नजर आते हैं। अधिकांश युवा पत्रकार अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करके हिंदी पत्रकारिता में प्रवेश कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप पत्रकारिता की भाषा भी तेजी से अंग्रेजी के प्रभाव में आ रही है। फिर पत्रों एवं अन्य माध्यमों में भी स्वयं को तथा कथित आधुनिक दिखाने की चेष्टा में अंग्रेजी के जो प्रयोग मुख्य शीर्षक एवं समाचारों की भाषा में कराना शुरू किए हैं, उससे हिंदी को अपूरणीय क्षति पहुंची है। ऐसा नहीं है की पाठक हिंदी में लिखें समाचारों को नहीं समझ पाता बल्कि पाठकीय सर्वेक्षण बताते हैं कि समाचारो ंकी मिली–जुली भाषा समाचार की संप्रेषण में बाधा पैदा कर रही है। पाठक हिंदी कि कठिन माने जाने वाले शब्दों को भी बहुत सहजता से ग्रहण कर लेता है किंतु इसके विपरीत जब अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के ऐसे शब्द जो बोलचाल में नहीं है किंतु स्वरों में चमत्कार पैदाकर ने के उद्देश्य से समाचार माध्यमों ने अपनी भाषा में सम्मिलित कर लिए हैं, पाठक पर सकारात्मक असर नहीं छोड़ते। इससे पाठक की भाषा भी पुस्ट नहीं होती।

आंचलिक हिंदी पत्रकारिता की भाषा इस प्रकार की कई समस्याओं से संघर्ष कर रही है। अंचल के समाचार माध्यमों की भाषा के अध्ययन में यह बात स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है कि यहां भाषा को लेकर कोई विशेष चिंताएं नहीं है। अधिक प्रसार संख्या वाले कुछेक पत्रों को छोड़कर अधिकांश समाचार पत्रों में भाषा की त्रुटियां होती हैं। एक दशक की पूर्व के समाचार पत्रों की भाषा अब की भाषा की अपेक्षा अधि कठीक थी। यद्यपि होना यह चाहिए कि भाषा भी शतक परिमार्जित होती चलें। भाषाई परिष्कार के प्रति समाचार माध्यम और अधिक सच तो हो किंतु ऐसा नहीं है। बहुत अधिक नहीं एक दशक में ही समाचार पत्रों की भाषा में बहुत अंतर दिखाई देता है। पुराने पत्रों में समाचारों में त्रुटियां अब की अपेक्षा कम है। छपाई की तकनीक अवश्य 10 वर्ष पहले तनिक कमजोर दिखाई दे सकती है किंतु भाषा आज की भाषा के मुकाबले समाचारों में ठीक है स्थिति में है। भाषा की

त्रुटियों की स्थिति यह है कि अब समाचार के शीर्षकों में भी तो दिया मेरे जाना सामान्य बात है। अंग्रेजी के जो शब्द लिखे जा रहे है ंवह भी हिंदी में लिखे जाने पर त्रुटियों से बच नहीं सके हैं। उच्चारण के अनुसार लिखने मैं पत्रकार इन्हें दोषपूर्ण बना रहे हैं वही एक वचन और बहुवचन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। अन्य भाषाओं के शब्दों के संबंध में भी अधिकांश कहा ऐसी स्थिति सामने आती है।

लेखन में त्रुटियां :-

समाचार जल्दी में लिखे जाते हैं। इन्हें समय पर प्रकाशित करके पाठक तक पहुंचाना होता है। ऐसे में ंसमाचार लेखन में त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है। पहले समाचार पत्र पत्रिका अपने लिए प्रूफ रीडर अथवा शब्द शोधक रखा करते थे। समय के साथ यह पद धीरे–धीरे पत्र–पत्रिकाओं में समाप्त कर दिए गए। जल्दी में लिखा समाचार, जल्दी में संपादित कर, शीघ्रता से पेज पर सजाकर, तेजी से मुद्रित कर पाठक तक पहुंचाया जाता है। इसमें शब्द और वाक्य की कई गलतियां रह जाती हैं। एक बार मुद्रित होकर पाठक के हाथ में पहुंचने के बाद समाचार पत्र पत्रिका में सुधार की कोई स्थिति नहीं रह जाती। त्रुटियों के कारण समाचार पाठक की भाषिक संवेदना को प्रभावित नहीं कर पाता है। अंचल के पत्र पत्रिकाओं में ढेरों शाब्दिक एवं संरचनात्मक त्रुटियां दिखाई देती हैं। अध्ययन में यह भी सामने आता है कि प्रायः नाम एवं उपनाम तक गलत लिखे जा रहे हैं। शब्दों के सुधार के प्रति समाचार माध्यमों का कोई आग्रह है भी नहीं क्योंकि एक समाचार पत्र में एक ही शब्द बार–बार गलत प्रकाशित होने से पता चलता है कि लेखन में भाषा की शुद्धता पर माध्यमों का विशेष ध्यान नहीं है।

वाक्य, वाक्यांश में त्रुटियां :-

समाचारों में वाक्य एवं वाक्यांशों में कई त्रुटियां दिखाई देती हैं। कई बार वाक्य एवं वाक्यांश अधूरे अथवा अस्पष्ट होते हैं। वाक्यों को जोड़ने वाले ने, में, कि, है, हैं आदि कई बार अपने स्थान पर नहीं होते तो कई बार इनका गलत प्रयोग किया जाता है। ऐसी त्रुटियों से पाठक हो समाचार की गति में अचानक व्यवधान उत्पन्न होता है। इससे कई बार समाचार के तत्व एवं आंकड़े भी बदल जाते हैं अथवा वैसे नहीं रहते जैसे समाचार में उन्हें दिया जाना था। चिन्हों के मामले में अभी कई बार त्रुटियां की जाती हैं जैसे योजक चिन्ह के स्थान पर बिंदु का प्रयोग कर देना।

मात्रात्मक त्रुटियां :-

मात्रा को लेकर अंचल में पत्र–पत्रिकाओं में कई प्रकार की त्रुटियां सामने आती हैं। उ और ऊ, इ और ई, ए और ऐ, ओ और औ एवं अनुस्वार कोई स्थान बंदकर देने से बड़ी त्रुटियां हो जाती हैं किंतु अंचल के पत्र पत्रिकाओं में यह त्रुटियां बहुत सामान्य तरीके से की जा रही। ऐसी त्रुटियां पाठक दर्शक अथवा श्रोता के मन में ंसमाचार पत्र की गलत छवि प्रस्तुत करती हैं। समाचार के गांभीर्य को प्रभावित करती हैं एवं समाचार से मिलने वाले रस की उत्पत्ति में व्यवधान आता है। अंचल के छोटे बड़े सभी समाचार पत्र ऐसी गलतियों से बच नहीं पा रहे है ं। इन मात्रात्मक दोषों की बहुलता समाचार पत्रों और हिंदी को नुकसान पहुंचा रहे हैं। इससे समाचारों की भाषिक संवेदना पर सबसे ज्यादा असर पड़ता है। व्यवधान के कारण पाठक कई बार समाचार को पूरा भी नहीं

पढ़ता।

अंग्रेजी शब्दों की त्रुटियां :-

हिंदी के समाचार माध्यमों ने अंग्रेजी के शब्दों को हिंदी भाषा में सम्मिलित कर तो लिया किंतु इससे बसे एक बड़ी चूक होना आरंभ हो गई। अंग्रेजी शब्दों को हिंदी में लिखने जाने पर उच्चारण के अनुसार दोष उत्पन्न होने लगा। अलग–अलग समाचार पत्र एक ही शब्द को अलग–अलग वर्तनी दे रहे हैं। कई बार तो एक ही समाचार पत्र में एक ही शब्द को अलग–अलग प्रकार से लिखा जाता है इससे पाठक के मन में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। अंचल के पत्रों का अध्ययन करने पर यह स्थिति स्पष्ट होती है कि अंग्रेजी के शब्दों का हिंदी में जो प्रयोग किया जा रहा है उसमें पाठक उसी भ्रमकी स्थिति में पड़ जाता है। उदाहरण के तौर पर एग्जीबिशन शब्द को अलग–अलग जगह अलग–अलग प्रकार से लिखा जा रहा है। शिक्षा जिसे अंग्रेजी में एजुकेशन कहा जाता है, उसे भी एज्यूकेशन, एजूकेशन, ऐजुकेशन आदि लिखा जा रहा है। अंग्रेजी शब्द देवनागरी में लिखे जाने में वचन की समस्या भी समाचार माध्यमों में बनी हुई है। शिक्षक शब्द को अंग्रेजी में टीचर कहा जाता है, जब समाचार पत्र इसे देवनागरी में लिखते हैं तो टीचर ही लिखते हैं, किंतु शिक्षकों शब्द लिखने की जब बारी आती है, तब वे टीचरों लिख रहे हैं। इसे कितना उचित माना जाएगा, यह हिंदी के साथ ही अंग्रेजी भाषा को भी चोट पहुंचाने वाला है। न केवल टीचर बल्कि कॉलम, डॉक्टर, इंजीनियर, ऑफिसर, ऑफिस, हॉस्पिटल, स्कूल, मैनेजर, सेक्टर, क्वार्टर, रोड, कॉपी, मोबाइल, वैन, कार, बाइक जैसे कितने ही शब्द हैं, जिन्हें बहुवचन मैं लिखने में गलती की जा रही है। अंग्रेजी के बहुवचन बनाने में जो नियम प्रयुक्त होते हैं उनका प्रयोग करते हुए यहां हिंदी शब्दों को बहुवचन बनाने के नियमों का प्रयोग किया जाता है। यहां दोष पूर्ण तो है ही साथ ही पाठक के लिए समाचार की गति में बाधा उत्पन्न करता है। दोनों अंचल के लगभग सभी समाचार पत्रो, पत्रिकाओं एवं अन्य समाचार माध्यमों में अंग्रेजी शब्दों को बहुवचन बनाने में त्रुटि की जा रही है। आश्चर्य की बात यह है कि इस और समाचार माध्यमों का कोई ध्यान नहीं है।

अंग्रेजी शब्दों को रोमन लिपि में लिखा जाना :-

हिंदी समाचार पत्र पत्रिकाओं एवं अन्य माध्यम में हिंदी के बीच अचानक आए अंग्रेजी शब्द को पाठक सहजता से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। किस अचानक आए शब्द को उसी गति में ग्रहण नही किया जाता है बल्कि पाठक श्रोता अथवा दर्शक को इसके लिए अधिक प्रयास करने होते हैं। समाचार पत्रों ने तो अपने मुख्य शीर्ष पर समाचार पत्र का नाम ही अंग्रेजी में रोमन लिपि में लिखना शुरु कर दिया है। इसका प्रारंभ सबसे पहले नव भारत टाइम्स समाचार पत्र ने दिल्ली में किया था। इस पत्र ने अपने मास्टहेड पर पत्र का नाम अंग्रेजी के संक्षिप्ताक्षर में छठ लिखकर एक नई परंपरा का प्रारंभ किया था। अब यह आम बात हो चुकी है। मित्रो अपने मुख्य शीर्ष अथवा मस्त है पर अंग्रेजी शब्द और रोमन लिपि में स्वयं का नाम लिख रहे हैं। इससे अधिक विडंबन ा हिंदी पत्रकारिता में और क्या होगी की अपना नाम तय करने के लिए पत्रों को विदेशी भाषा का सहारा लेना पड़ रहा है। अन्य समाचार माध्यमों में तो बेधड़क अंग्रेजी शब्द रोमन लिपि में लिखे जा रहे हैं। कई पत्रों की भांति यहां

भी पत्र का नाम अंग्रेजी अथवा संक्षिप्त अक्षर के साथ रोमन लिपि में ही लिखा जा रहा है। पत्र के स्वयं के नाम को अंग्रेजी में लिखे जाने से हम हिंदी पत्रकारिता की भाषा को लेकर बनी मानसिकता को बेहतर समझ सकते हैं।

अंग्रेजी शब्दों में पत्र, पत्रिकाओं एवं समाचार चैनलों के नामकरण :-

दिल्ली से निकलने वाली देश की दो बड़ी समाचार पत्रिकाएं इंडिया टुडे और आउट लुक हैं। इन के नाम अंग्रेजी में है। इसमें क्या सुविधा है। क्या इन शब्दों के आस पास बैठने वाले शब्द हिंदी में उपलब्ध नहीं है । अथवा जान बूझ कर प्रयोग में नहीं लाया जा रहे। उल्लेखनीय है कि इंडिया टुडे देश की पहली सबसे ज्यादा बिक्री वाली समाचार पत्रिका है वही आउट लुक दूसरी सब से बड़ी बिक्री वाली पत्रिका। इससे एक नई परंपरा विकसित हुई और समाचार पत्र पत्रिकाओं में स्वयं के नाम के आगे टुडे और न्यूज जैसे कई अंग्रेजी शब्दों को जोड़ लिया। बहुत दूर न जाइएगा तब भी विदिशा जिले के सिरोंज कस्बे से निकलने वाले पत्र का नाम देखकर हिंदी के समाचार माध्यमों में अंग्रेजी के संक्रमण को सरलता से समझा जा सकता है। पत्र का नाम है सि रोंज टुडे। '6 चउ' भोपाल से प्रकाशित होने वाले एक समाचार पत्र का नाम है। ऐसे कई पत्र एवं पत्रिकाएं प्रकाशित हो रहे हैं जिनके नाम अंग्रेजी में हैं। जब पत्र पत्रिका अथवा टेलीविजन माध्यम का नाम ही अंग्रेजी में हो गा तो इसमें हिंदी के परिष्कार एवं भाषा की शुद्धता की कितनी आशा की जानी चाहिए। इसका आरंभ बड़ी प्रसा र संख्या वाले समाचार पत्रिकाओं ने की थी। अब भी बड़ी प्रसार संख्या वाले पत्र अपने परिशिष्ट के नाम अंग्रेजी श ाब्दों में दे रहे हैं, भले ही लिपि देवनागरी ही हो। अंग्रेजी बहुत तीव्रता से हिंदी समाचार माध्यमों को संक्रमित कर गई है । अब एक नई खिचड़ी भाषा प्रयोग में लायी जा रही है । हिंदी एवं अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोगों वाली इस खिचड़ी भाषा को इंगलिश कहा जाने लगा है । इस का पत्रों में विशेषतः शहर के परिशिष्ट में सामान्य रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

उर्दू, अरबी, फारसी के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग :-

अंचल से प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं में भाषा को लेकर कोई विशेष आग्रह नहीं है। सामान्यतः भाषा में मिले–जुले शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। 1990 के दशक के बाद टेलीविजन समाचार माध्यमों ने अपनी एक खिचड़ी भाषा तैयार। यह भाषा नई थी और हिंदी के साथ उर्दू, अंग्रेजी, अरबी और फारसी के नए शब्दों से मिलकर तैयार की जा रही थी। इलेक्ट्रॉनिक चैनल की रिपोर्टिंग के आकर्षण के वशीभूत होकर इसे अंचल के पत्रकारों ने ज्यों का त्यों अपनाने का प्रयास किया। यद्यपि इसमें जो शब्द लाए गए वह सामान्य बोल चाल के शब्द नहीं है। उदाहरण के रूप में जो शब्द लिखे जा रहे हैं वह हिंदी और दूसरी भाषा में इस प्रकार हैं। उल्लेखनीय के स्थान पर गौरतलब, अपराध के स्थान पर जुर्म, घटना के स्थान पर वारदात, आपराधिक प्रवृत्ति के स्थान पर जरायम पेशा, राजनीति के स्थान पर सियासत, अव्यवस्था के स्थान पर बद इंतजामी, गंभीरता के स्थान पर संजीदगी जैसे सैकड़ों शब्द हैं, जो आम बोल चाल में मीडिया के माध्यम से ही आ रहे हैं। इन शब्दों को इतना अधिक प्रयोग में लाया जा रहा है कि इनके हिंदी शब्द धीरे–धीरे भाषा में चलन खो रहे हैं। सम ाचार

कक्ष के भीतर अंग्रेजी उर्दू अरबी फारसी के कठिन शब्दों को छोड़कर यदि कोई पत्रकार हिंदी शब्दों का स रलता से प्रयोग करना चाहे भी तो संस्थान की नीतियां उसे ऐसा नहीं करने देती बल्कि ऐसे पत्रकारको पुरातन पंथी माना जाता है। बहरहाल, जुर्म, जुल्म, वादा खिलाफी, बदइंतजामी, वारदात, हादसा, बेहतरीन, फलसफा, पर्दाफाश, राजफाश, मालमशरूका, बरामदगी, परवरिश जैसे अनेक शब्द हैं जो वह पाठक सामान्यतः अपनी बोल चाल की भाषा में प्रयोग नहीं करता है जो इन शब्दों से समाचार माध्यमों के माध्यम से परिचित होता है। किंतु यह शब्द दिनभर में कितनी बार सुनें और पढ़े जा रहे हैं कि धीरे–धीरे आम बोल चाल की भाषा में शामिल होने लगे हैं। जबकि इनसे सरल और आकर्षक शब्द हिंदी में उपलब्ध हैं फिर भी अन्य भाषाओं के शब्दों को खूब प्रयोग किया जा रहा है। इससे एक दूसरी हानि यह है कि पाठक श्रोता अथवा दर्शक को अपनी आम बोल चाल की भाष ा ना होने के कारण इन शब्दों के आ जाने से समाचार में तनिक व्यवधान उत्पन्न होता है। इसीलिए प्रायः ऐसे शब्दों पर अधिक ध्यान दिए बिना पाठक समाचार में आगे बढ़ जाता है। एक और खराब स्थिति यह है कि इन शब्दों का अधिक ज्ञान ना होने से अंचल के कई पत्र पत्रिकाएं इनके लिए गलत वर्तनी का उपयोग कर रहे हैं। इससे पाठक और संबंधित भाषा दोनों को क्षति पहुंच रही है।

समाचार माध्यमों की भाषा को लेकर इसलिए भी चिंता की स्थिति है क्योंकि अधिक संख्या में पाठक अथवा समाचार प्राप्तकर्ता अपने खाते में जुटा कर माध्यम बाजार में तो अपनी पैठ बना रहे है किन्तु इससे भाषा के साथ संस्कृति को भी कष्ट पहुंच रहा है। ''जैसे हर तरह के सुगम संगीत के अंतः सूत्र कहीं–न–कहीं शास्त्रीय संगीत से जुड़ते हैं, वैसे ही सारे शब्द माध्यमों के अंतः सूत्र भी साहित्य से जुड़ते हैं। परंतु साहित्य की सृजनात्मक भाषा से हिंदी के अखबार या मीडिया धीरे–धीरे वंचित होते जा रहे हैं, वह बाजार से मिली खिचड़ी भाषा अपना रहे हैं, जो उस ख्वाब की तरह है जो तत्काल तो फसल खूब उग आती है, पर धरती की प्राण शक्ति सूख कर उसकी कोख को जन्म देने लायक नहीं रहने देती। साहित्यिक पत्रिकाएं यदि सशक्त होती हैं तो वह संपूर्ण ंमीडिया तंत्रको कई स्तरों पर सृजन सरणियों से जोड़ सकती हैं।''3 जबकि समाचार माध्यम ज्ञान, सूचना, शिक्षा, मनोरंजन के स्रोत हैं तब यदि वे भाषा, समाज एवं संस्कृति संरक्षण में सहायक होंगे तो समाज माध्यमों के हाथों में अपनी सांस्कृतिक विरासत को सौंपकर निश्चिंत हो सकता है। यद्यपि बाजार के प्रभाव में ऐसा होना संभव जान नहीं पड़ता तथापि स्वतंत्रता संग्राम की पहरुआ रही, नव जागरण की संवाहिकार ही, स्वात ंत्र्योत्तर नव निर्माण में सहायक एवं आपात काल में संघर्ष हेतु दृढ़ रही पत्रकारिता से यह अपेक्षा समाज सदैव करेगा। इसी में शुभ है।

संदर्भ :– 1. मीडिया साहित्य और संस्कृति, ले. माधव हाड़ा, पृष्ठ 32

2.मीडिया साहित्य और संस्कृति, ले. माधव हाड़ा पृष्ठ 33

3. हिंदी, कल आज और कल, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृष्ठ 78

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 317-321

'एक हिन्दी भाषा : शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के सन्दर्भ में'

डॉ. सुमन कौशिक,
सी.एम.आर. युनिवर्सिटी, बेंगलूर कर्नाटक ।

"निज भाषा उन्नित अहै, सब उन्नितको मूल ।
बिन निज भाषा के ज्ञान के मिटत न हिय के शूल ।।

हिन्दी भाषा हर देश की पहचान उस देश की भाषा और संस्कृति और साहित्य से ही होती है किसी भी देश की एकता में उस देश की राष्ट्रभाषा अहम भूमिका निभाती है। हमारे देश की राजभाषा हिंदी है। हिंदी हमारे देश के लगभग सभी राज्यों में बोली जाती है। हमारे देश में बहुत ही कम राज्य हैं, जहाँ हिंदी भाषा को लोग कम जानते हैं जो नहीं जानते हैं फिर भी वे हिंदी भाषा को जानना चाहते हैं। और यदि हिंदी भाषी क्षेत्रों की संस्कृति के बारे में जानना हैं तो हिंदी भाषा जानना जरूरी हो जाता है। मनुष्य जिज्ञासु प्रवृति का जीव है उसे नयी जानकारियाँ जुटाना प्राचीनकाल से ही अच्छा लगता है। दक्षिण भारत के लोगों को 100 वर्ष पहले हिन्दी भाषा का बहुत कम ज्ञान था। महात्मा गाँधी जी के प्रयास से 1920 ई० में दक्षिण भारत में "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, का निर्माण चेन्नई में किया गया और दक्षिण भारत में हिंदी भाषा पढ़ने –लिखने की रुचि को जाग्रति किया जिससे देश में एकता की लहर दौड़ गयी। और हिंदी भाषा का देश को आजाद कराने में बहुत बड़ा योगदान रहा है। भारत के राज्यों में अधिकतर लोग केवल हिन्दी भाषा को ही जानते हैं।

विदेशों में भी हिन्दी भाषा अपनी पहचान दिनों दिन बढ़ाती जा रही है। 10 जून 2022 को संयुक्त राष्ट्र ने हिंदी भाषा को प्राथमिकता दी है जहाँ अरबी, मेड्रिन, इंग्लिश, स्पेन इन भाषाओँ का प्रयोग होता है वहाँ हिंदी भाषा को भी सम्मीलित किया गया है। अब से हिंदी / UN पेज बनाया गया है । यह मिशन 2018 से चल रहा था। जिसे अब सफलता प्राप्त हुई है। "मेरा अपना अनुभव भी है जब हम विदेशों में अपना भारतीय होने का परिचय देते हैं असन्यास ही विदेशी लोगों के मन में एक प्रश्न उठाता है ये भरतीय हैं तो हिन्दी भाषा इन्हें अवश्य आती होगी। कुछ वर्षों पूर्व मुझे इन्फोर्स्सी कम्पनी में कुछ इंजीनियरस को हिंदी भाषा सिखाने का मौका मिला। उस समय कुछ रोचक तथ्य मेरे सामने आये। कुछ इंजीनियरस तो आयु में मेरे से बड़े थे। उन्होंने बताया की

जब कभी विभिन्न देशों के लोग एकत्रित होते हैं और वे कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेते हैं और हिन्दी भाषा नहीं आने पर उन्हें काफी बूरा महसूस होता है। क्योंकि अन्य देशों के निवासी अपने देश की भाषा में सांस्कृति कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं ? जैसे स्पेनिश, जर्मनी, अरबी, रसियन, आदि। और यदि कोई हिंदी भाषा में कार्यक्रम देता भी है तो हम समझ नहीं पाते, इसलिए हमें हिन्दी भाषा सीखना जरूरी है एक और ने बताया मेरे पोते –पोतियों को हिंदी आती है लेकिन उन्हें हिंदी भाषा नहीं आती है। उनके संवादों को वे समझ नहीं पाते। जिससे वे अपने आपको असाह महसूस करते हैं। एक और इंजीनियर ने बताया कि मेरे बच्चों के स्कूल में हिन्दी भाषा पढ़ना जरूरी है मैं उनका होम वर्क कराने में असमर्थ हूं इसलिए कृपया मुझे हिंदी भाषा सिखा दें।,, ये सभी लोग विदेशों में इंजीनियरस रह चुके हैं और करोड़ों रूपये का वेतन पाते हैं। इनको सुनने के बाद मुझे एहसास हुआ। कि एक भाषा हमारे लिए कितनी महत्वपूर्ण है हिन्दी भाषा विदेशों में हमारा भारतीय होने का प्रतिनिधित्व करती है हम दुनिया के किसी भी कोने में रहे भाषा से अपनी पहचान अलग बना सकते हैं। और एक बड़े समुदाय से भी जुड़ सकते हैं। दक्षिण भारत में लोग कई भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। जैसे इंग्लिश, तमिल, तेलगु, कन्नड़, कोंकणी, मलयालम आदि। दक्षिण भारत के सभी राज्यों की जानकारी जुटाना वहाँ के निवासियों को आसन लगता है। उत्तर भारत के बारे में हिन्दी भाषा का ज्ञान न होने पर जानकारी जुटाना कठिन हो जाता है।

शिक्षा :–

नई शिक्षा नीति (2020–21) के अनुसार भारतीय भाषाओँ को बढ़ावा दिया जाने का प्रवधान रखा गया है। किसी भी विषय को आसानी से समझने के लिए विधार्थियों को कम समय लगेगा। और देश के ऐसे हिस्सों में भी बच्चों तक जानकारी पहुंचेगी जहाँ पर बच्चों को अंग्रेजी भाषा नहीं आती है। वे सभी उन विषयों को भी अब पढ़ पाएगें जिन्हें पहले पढ़ने में कठनाई होती थी। अभी मेडिकल और इंजीनियरिंग जैसे कोर्सों की पढ़ाई हिन्दी भाषा में देने का प्रावधान रखा गया है। जिससे हर वर्ग के बच्चे जीवन में आगे बढने की क्षमता रखेगें। दूसरा आज के समय में इंग्लिश स्कूलों के कारण स्कूलों में हर विषय इंग्लिश में ही पढ़ाया जाता है। और बच्चे अपनी प्रादेशिक भाषा (हिंदी) को पढ़ने में रुचि नहीं रखते। जिसके कारण बच्चे अपनी संस्कृति से भी दूर होते जा रहे हैं। हमारी देश की भाषाओँ का विस्तार हो और दूर– दराज के क्षेत्रों का विकास हो। इस उदेश्य को ध्यान में रखते हुए भाषाओँ विस्तार का अवश्य है।

साहित्य :–

आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल आधुनिक काल, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, गघ की विधाओं में कहानी, उपन्यास नाटक, एकांकी यात्रा वृतांत, रिपोताज, जीवनी आदि समय के अनुसार भाषा में भी बदलाव हुआ है। आदिकाल में अपभ्रंश भाषा का प्रयोग हुआ कवि चन्द्रबरदाई ने पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ की रचना की। वहीं भक्तिकाल में कबीर की भाषा को स्धुक्कड़ी कहा गया है। तथा कबीरदास ने निर्गुण राम की उपासना

की है। अवधि, ब्रज भाषा में ग्रन्थों की रचनाओं हुई है रामचरितमानस अवधि भाषा का महाकाव्य है जिसमे श्री राम के चरित्र को कवि तुलसीदास जी ने लोकमंगल, लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। वहीं सूरदास जी ने ब्रजभाषा में कृष्ण, की बाल लीलाओं से अपने जीवन को संवारा है। अष्ठ्छाप कवियों ने भी अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। भक्तिकाल में सभी कवियों ने अपने आराध्यदेव की स्तुति में गुणगान किया है इस भक्ति का असर आज के समय में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक ऐसा समयकाल है जिसमे अनेकों ग्रन्थ लिखेगे हैं। और इन ग्रन्थों का प्रभाव समाज पर प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। इसलिए "भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा गया है।,,रीतिकाल में भक्तिकाल की अपेक्षा राजाओं के आश्रित होकर कवियों ने अपनी रचनाएं की हैं। बिहारी लाल कवि इस काल के प्रमुख कवि माने जाते हैं। इनका 'बिहारी सतसई, के नाम से इनका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है जिसमें 700 दोहे संकलित हैं।

"सतसईया के दोहेड़े जों नाविक के तीर,
देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर।।" (बिहारी सतसई)

बिहारीलाल जी ने लिखा भले ही कम है लेकिन उनके निति के दोहों में शिक्षा और प्ररेणा भरपूर रूप से मिलती है। रस, छंदों अलंकारों का प्रयोग इसकाल के काव्य में भरपूर मात्रा में हुआ है।

आधुनिक काल में गघ और पघ दोनों विधाओं में ही रचनाओं हुई हैं गघ विधा आधुनिक काल में ही प्रारम्भ हुई। इस विधा ने आधुनिक काल में हर क्षेत्र में अपनी पकड़ बनाई कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सब गघ भाषा में लिखे गये अनेक लेखक और कवि इस काल में प्रसिद्ध हुए हैं भारतेंदु हरिश्चन्द्र पहले गघ विधा के प्रारम्भिक साहित्यकार माने जाते हैं। जिन्होंने गघ में नाटक, कहानियाँ, उपन्यास लिखें है। हिंदी गद्य साहित्य को नये आयाम प्रेमचंद जी ने दिए। हिंदी सम्राट के नाम से इन्हें जाना जाता है।। उनके गघ में भी काव्य की अभिव्यंजना देखने को मिलती है गोदान एक उपन्यास होते हुए भी एक महाकाव्य प्रतीत होता है। प्रेमचंद जी के लगभग 300 कहानियाँ और 12 उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि हिंदी साहित्य में निहित हैं। प्रेमचंद जी ने अपने लेखन में किसानों और दलित वर्ग की समस्याओं को पूर्ण रूप से उजागर किया है। समाज में फैली कुरीतियों को अपनी अलग दृष्टिसे सबके सामने रखा है। प्रेमचंद जी ने हिंदी भाषा को अपने लेखन के द्वारा नये आयाम दिये उनकी भाषा शैली ऐसी है कि पाठक पढ़ने के पश्चात् उनके किस्से, कहानियों को भूलता नहीं है। चाहे वर्षों बीत जाए।। उनके द्वारा प्रयोग किये गए मुहावरे, लोकोक्तियाँ ऐसे लगते हैं कि इस वाक्य ही से मुहावरे का निर्माण हुआ है। एक उदाहरण "दाए –बाए चौकन्नी दृष्टि से देखा जैसे कोई सिपाही शुत्रु के किले में सुराख कर रहा हो अगर इस समय वह पकड़ ली गई फिर उसके लिए माफी या रियात की कोई रत्तीभर उम्मीद नहीं, देवताओं को याद किया और घड़ा कुएं में डाल दिया (ठाकुर का कुआं प्रेमचंद) "संघर्ष और परोपकार की ऐसी एक कहानी जो पिता से हर पुत्र को सीखनी चाहिए,, (सुजान भगत, प्रेमचंद) आधुनिक काल में अनेक साहित्यिक विधाओं का जन्म

हुआ। छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, हालावाद, नयी कविता, दलित साहित्य, किन्नर साहित्य आदिवासी साहित्य आदि छायावाद– हिंदी साहित्य के रोमांटिजम्स उत्थान की वह काव्य धारा है जो लगभग 1918 से 1936 तक की प्रमुख युगवाणी रही है छायावाद के मुख्य रूप से चार स्तम्भ हैं जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्द पन्त, पंडित माखन लाल चतुर्वेदी छायावाद के नामकरण का श्रेय श्रीमुकुटधर पाण्डेय को जाता है।

प्रयोगवाद–प्रयोगवाद कवियों ने काव्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों को ही महत्व दिया है इन कवियों ने नये प्रतीकों, नये उपमानों एवं नवीन बिम्बों का प्रयोग कर काव्य को नवीन छवि प्रदान की है। प्रयोगवाद का समय 1943 से 1953 तक माना गया है इसके प्रमुख कवि डॉ. नगेन्द्र, अज्ञेय जी राघेराघव हैं।

प्रगतिवाद–प्रगतिवादी कवियों ने किसान, मजदूर पर किए जाने वाले पूजीं पतियों के अत्याचारों के प्रति अपना विद्रोह व्यक्त करना, सामाजिक यथार्थ का चित्रण, गरीबी भुखमरी अकाल और बेरोजगारी उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के अंतर को समाप्त करने पर बल दिया है। प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल, राम विलास शर्मा, नागार्जुन, निराला, रांगेय राघव, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि।

दलित साहित्य – दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें दलित समाज की समस्याओं को उजागर किया गया हो और उनका हल भी निकाला गया है जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित उपन्यास 'छप्पर, दलित समाज पर लिखा गया पहला उपन्यास है इस रचना का प्रकाशन 1994 में हुआ इस उपन्यास में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं, अम्बेडकर सिद्धान्तों से प्रेरित है और दलितों की संवेदना को दर्शाता है। कहानी संग्रह सरई के फूल, बाँस का किला पथेरा

गदल, शिलान्यास, आदि उपन्यास और कहानियाँ लिखी गये है।

किन्नर समाज रूमहेंद्र भीष्म द्वारा रचित 'किन्नर कथा उपन्यास, किन्नरों पर लिखा गया उपन्यास है इस उपन्यास में किन्नरों की दशा को एक पीड़ित समाज के रूप रखा गया है। खुशवंत सिंह ने 'भागमती, हिजड़े के माध्यम से दिल्ली शहर के हिजेड़ों की कथा–व्यथा को प्रस्तुत किया है। साहित्यकार चिनुआ अचेबे "शेर जब तक अपना इतिहास स्वयं नहीं लिखेगें तब तक इतिहास में शिकारियों का ही महिमा मंडल किया जाता रहेगा।'' साहित्य इस बात का गवाह है कि स्वयं को अपने हक की लड़ाई हर किसी को लड़नी पड़ती है। समाज बदल रहा है और बदलाव जरूरी है ।

संस्कृति – हमारा भारत देश विभिन्न बोली –वाणियों, भाषा, खान–पान, संस्कृतियों विश्वासों से गुंथा ऐसा महान देश है, जिसमें हर प्रदेश अपने में कमोबेश एक पूरी संस्कृति है कर्नाटक से कश्मीर, गुजरात से बंगाल तक देखें। भिन्नता में एकता देखने को मिलती है कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में "किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया कलापों के पूर्ण परिचय के लिए लोक संस्कृति और संस्कृति परस्पर अपेक्षित रहती हैं। इस

दृष्टि से अर्थवेद, ऋग्वेद का पूरक है। यह दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। "संस्कृति एक सभ्य समाज का निर्माण करती हैं और आने वाली पीढ़ियों को संदेश देती है। जिससे हमारी सभ्यता की जड़ें मजबूत रहती हैं।

"मातृभाषा बिन व्यर्थ है दुनिया का सब ज्ञान।
भारत माँ की बोली हिंदी करो इसका सम्मान।।"

सन्दर्भ :–

1. भारतेंदु हरीशचंद्र के शब्दों।
2. बिहारी सतसैई से।
3. कहानी 'ठाकुर का कुआं, मुंशी प्रेमचंद
4. साहित्यकार चिनुआ अचेबे के शब्दों में
5. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति का रूपरेखा, पृष्ठ, सं–12

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 322-325

प्राचीन भारतीय शिक्षा के केन्द्र

Suman, Research Scholar, History,

प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं में एक है। यह सभ्यता चार हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में शिक्षा को अत्यधिक उत्थान के लिए शिक्षा का महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी। शिक्षा को एक ऐसा साधन समझा जाता था जो कि मनुष्य को सभ्य बनाती है तथा उसका जीवन उन्नत करती है। इस तरह मनुष्य जीवन भर विद्यार्थी ही रहता है। वैदिक साहित्य में एक स्थान पर कहा भी गया है कि 'यावजीवा मघीने विप्रः।[1]

ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्त्वों के मूल को जानने में सहायता प्राप्त करता है तथा सही कार्यों को करने की विधि बताता है। महाभारत में वर्णित हैं, कि विद्या के समान नेत्र तथा सत्य के समान तप कोई दूसरा नहीं है। इसे मोक्ष का साधन माना गया है।[2] प्राचीन काल में शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधन थी। इसका उद्देश्य मात्र पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, अपितु मनुष्य के स्वास्थ्य का भी विकास करना था।

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना था। भारतीय शास्त्रों में सच्चिरत्रता को बहुत महत्त्व दिया गया है। यह व्यक्ति का सबसे बड़ा आभूषण है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्वति का एक प्रमुख तत्त्व गुरूकुल व्यवस्था थी। महाभारत में गुरूकुल की शिक्षा को घर की शिक्षा की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय बताया गया है। बाल्मीकि, कण्व, संदीपनि आदि ऋषि अपने आश्रमों में ही विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे । बौद्ध शिक्षा केन्द्र अधिकतर नगरों में तथा अग्रहार ग्रामों में थे। तक्षशिला शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। छान्दोग्योपनिषद् से पता चलता है कि उद्दालक आरूणि के पुत्र श्वेतकेतु ने गुरूकुल में रहकर अध्ययन किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला के आचार्य चाणक्य से शिक्षा ग्रहण की। वैदिक कालीन शिक्षा की सर्वप्रथम विशेषता थी उपनयन संस्कार। यह वैदिक शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार था । गुरू के यहाँ उपनयन के द्वारा दीक्षित होने पर उसका आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता था।

प्राचीन भारत के प्रमुख विश्वविद्यालय :-

तक्षशिला– तक्षशिला प्राचीन भारत की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। वह पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी नामक नगर से 32 किलोमीटर दूर स्थित था। सीमान्त राज्य होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व था। फाह्यान के समय में तक्षशिला में बौद्ध धर्म उन्नत अवस्था में था, किन्तु इत्सिंग की यात्रा के समय तक्षशिला का विध्वंस

हो रहा था। तक्षशिला शिक्षा का जगत्विख्यात केन्द्र था। यहाँ अनेक आचार्य एवं विद्वान रहते थे। छात्र गुरूओं के पास रहकर अध्ययन करते थे। एक आचार्य के पास सौ–सौ छात्र पढ़ते थे।[2] विद्याथी 16 वर्ष की आयु में उच्च शिक्षा प्रारम्भ करता था। शिक्षा अवधि छः से आठ वर्ष तक होती थी। यहाँ पर धार्मिक, साहित्यिक, धनुर्विधा, हस्तविद्या, मन्त्र विद्या, शल्य विद्या तथा चिकित्सा आदि अध्ययन के मुख्य विषय थे। यहाँ न केवल भारत के विभिन्न कोनों से, अपितु विदेशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। चाणक्य तथा आचार्य कश्यप मातंग ने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। पाणिनी भी तक्षशिला में ही शिक्षक थे। विख्यात शल्य चिकित्सक कुमारजीव तथा बिम्बिसार का राजवैद्य जीवक तक्षशिला के ही विद्यार्थी थे। इस प्रकार तक्षशिला प्राचीन भारत में ज्ञान–विज्ञान का प्रसिद्ध केन्द्र था।[4] नालन्दा विश्वविद्यालय– नालन्दा विश्वविद्यालय प्राचीन भारत में शिद्वाा का जगत् विख्यात केन्द्र था। पाटलिपुत्र के पास लगभग 35 किलोमीटर दूर दक्षिण–पश्चिम में नालन्द संस्थापक गुप्त सम्राट कुमार गुप्त था। यहाँ पहले बौद्ध भिक्षु पठन–पाठन का कार्य करते थे। गुप्त सम्राटों ने नालन्दा में अन्य भवन बनाए एवं उनकी व्यवस्था के लिए ग्रामों की आय दान में दे दी। अन्य सम्पन्न लोगों में भी दिया। नालन्दा बिहार में हजारों भिक्षु पठन–पाठन कार्य करते थे। शनैः शनैः यहाँ पर बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के ग्रन्थ भी पढ़े जाने लगे। नालन्दा में अनेक बड़े–बड़े विद्वान रहते थे तथा वहाँ पर वाद–विवाद व शास्त्रार्थ होते रहते थे। अतः नालन्दा एक महान् विश्वविद्यालय के रूप में परिभाषित हो गया। हेनसांग विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थी तथा डेढ़ हजार शिक्षक थे। नालन्दा में न केवल भारत के अपितु लंका, तिब्बत, मंगोलिया, चीन, कोरिया एवं अन्य देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। हेनसांग, इत्सिंग, हिएनचिन आदि चीनी विद्वानों ने यहीं अध्ययन किया था। कोरिया के हुईन्येह तथा आर्यवर्मन नामक बौद्ध भिक्षु भी नालन्दा में विद्याध्ययन के लिए आए थे। इस प्रकार नालन्दा विश्वविद्यालय ज्ञान–विज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बन चुका था।[5]

नालन्दा विश्वविद्यालय में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। उनके निवास, भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था मुफ्त दी जाती थी। विद्यार्थियों, भिक्षुओं तथा आचार्यों के निर्वाह हेतु राजाओं एवं सम्मानित व्यक्तियों द्वारा काफी आर्थिक अनुदान दिया जाता था। इत्सिंग के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय के निर्वाह हेतु दो सौ गांवों की आय दान दी गई थी, विद्यार्थियों को भोजन में चावल, घी, तेल तथा अन्य खाद्य पदार्थ दिए जाते थे। विश्वविद्यालय में प्रवेश से पूर्व परीक्षा ली जाती थी। प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जाता था। हेनसांग के अनुसार इस परीक्षा में बीस प्रतिशत विद्यार्थी ही उत्तीर्ण हो पाते थे। प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद विद्यार्थियों का ज्ञान बहुत विकसित हो जाता था एवं सर्वत्र उनका आदर होता था।[6]

नालन्दा विश्वविद्यालय में अनुशासन एवं नियम कठोर थे। विद्यार्थियों को अनुशासनबद्ध तथा सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता था। विद्यार्थियों व आचार्यों का जीवन बहुत व्यस्त होता था। पठन–पाठन तथा वाद–विवाद में उनका सम्पूर्ण दिन व्यतीत हो जाता था।

नालन्दा के विद्वान– हेनसांग के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय में डेढ़ हजार आचार्य तथा विद्वान थे।

उनकी विद्वता की ख्याति सर्वत्र फैली हुई थी। वे उज्जवल चरित्र के स्वामी थे। विदेशों में भी उनकी प्रसिद्धि फैली हुई थी। यहाँ के प्रमुख विद्वान आचार्यों में नागार्जुन, आर्यदेव, धर्मपाल, शीलभद्र, वसुवन्धु, चन्द्रपाल, शान्तिरक्षित थे। आचार्य शीलभद्र उच्च कोटि के विद्वान थे। आचार्य शान्तिरक्षित के समय में नालन्दा जगत् का गौरव बन चुका था। वे तिब्बत नरेश के आमन्त्रण पर बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु तिब्बत गए। वहाँ उन्हें तिब्बत नरेश ''आचार्य बोधिसत्व'' की उपाधि से विभूषित किया। तत्त्पश्चात कर्मशील, अविशा, स्थिर मति आदि आचार्य भी तिब्बत गए। कुमारजीव, परमार्थ, धर्मदेव, सुधाकर सिंह आदि आर्चा बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु चीन गए।

पाठ्यक्रम– आरम्भ में नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा बौद्ध दर्शन, संस्कृति व साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। कालान्तर में वहाँ अन्य धर्मों के दर्शन व साहित्य की शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसमें सभी धर्मों व जातियों के व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। बौद्ध साहित्य व दर्शन, वेद, गणित ज्योतिष, तर्कशास्त्र, व्याकरण, तन्त्र–मन्त्र, रसायन विज्ञान चिकित्सा विज्ञान, सांख्य, योग, न्याय दर्शन, शिल्प आदि अध्ययन के प्रमुख विषय थे। गृह–नक्षत्रों के अध्ययन हेतु एक वेद्यशाला भी थी।[7]

वल्लभी– वल्लभी प्राचीनकाल में व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था तथा एक सम्पन्न नगर था। राजा तथा सम्पन्न लोग शिक्षण संस्थाओं को उदारतापूर्वक दान देते थे। मैत्रक नरेश ध्रुव प्रथम की बहिन की पुत्री दया ने वल्लभी में प्रथम बौद्ध विहार स्थापित किया तथा आर्चा भदन्त स्थिरमति ने दूसरा बौद्ध विहार स्थापित किया तथा आचार्य भदन्त स्थिरमति ने दूसरा बौद्ध विहार स्थापित किया। विख्यात बौद्ध विद्वान गुणमती तथा स्थिरमति इस विहार में रहे थे। हेनसांग तथा इत्सिंग ने वल्लभी की यात्रा की थी। छठी से बारहवी शताब्दी तक वल्लभी विश्वविद्यालय शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा। धर्म अर्थशास्त्र, नीति (कानून), चिकित्सा शास्त्र आदि अध्ययन के मुख्य विषय थे। वल्लभी विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय भी था। इस विश्वविद्यालय को राजा तथा सम्पन्न लोग उदारतापूर्वक सहायता देते थे। वल्लभी के आचार्यों की विद्वता की ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी।[8]

विक्रमशिला– विक्रमशिला विश्वविद्यालय बिहार में भागलपुर से लगभग 24 मील दूर पत्थर घाटा स्थान पर स्थित था। इसके संस्थापक पाल नरेश थे। वह शिक्षा का विख्यात केन्द्र था। विद्यार्थियों को प्रवेश परीक्षा देनी पड़ती थी। यहाँ विदेशों से भी विशेषकर तिब्बत से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। भोजन, वस्त्र व निवास की निःशुल्क व्यवस्था थी। रत्नव्रज, लीलाव्रज, गतरक्षित, दीपशंकर, श्रीज्ञान, कमलरक्षित आदि वहाँ के विख्यात आचार्य थे। दीपशंकर श्रीज्ञान ने दो सौ पुस्तके लिखी। इस विश्वविद्यालय में एक भव्य पुस्तकालय, बोधिस्तव की सुन्दर प्रतिमा तथा अनेक तान्त्रिक देवालय थे। धर्म, साहित्य, व्याकरण, न्याय, दर्शन, तन्त्र–मन्त्र शास्त्र आदि अध्ययन के उपाधियाँ देते थे। मध्य युग में विक्रमशिला वज्रयान सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। 1203 ई० में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने इसे नष्ट कर दिया।

ओदन्तपुरी–यहाँ भी एक बौद्ध विहार विश्वविद्यालय के रूप में परिणित हो गया। पाल शासकों के उदय के समय तक यह शिक्षा का विख्यात केन्द्र बन चुका था। यहाँ के आचार्य बड़े विद्वान थे। पाल शासकों ने इस

विश्वविद्यालय को उदारतापूर्वक सरंक्षण दिया। यहाँ एक हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे। प्रभाकर यहाँ का प्रसिद्ध विद्वान था।

वेदों में उल्लिखित मन्त्रों से इस बात का पता चलता है कि कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य एवं महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। स्त्रियें को लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थी। सहशिक्षा को बुरा नहीं समझा जाता था। गोभिल ग्रह सूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती थी। ऋग्वेद की रचना में भी स्त्रियों का योगदान है। ऋग्वेद के दशम मंडल के सूक्त की ऋषिका घोषा, विश्ववारा, इन्द्राणी, शची और अपाला थी। वैदिक युग में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन एवं सांय–प्रातः होम आदि कर्म करती थी। शतपथ ब्राह्मण में व्रतोपनयन का उल्लेख है।

संदर्भ सूची :–

1. पाण्डेय, मिथिला शरण, ''प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएँ'' नव प्रभात प्रिटेक–नई दिल्ली–2016
2. झा, द्विवेद्रनारायण झा, ''प्राचीन भारत'', विजय चौक, लक्ष्मी नगर–दिल्ली–2000
3. गौरव, प्रशान्त, ''प्राचीन भारत'', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
4. सेंगर, शैलेन्द्र, ''प्राचीन भारत का इतिहास'', अन्सारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–2005
5. नागोशि, एल० एस० ''प्राचीन भारत का सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास'', राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर–2007
6. वहीं
7. वहीं
8. गुप्त, परमेश्वरी लाल, ''प्राचीन भारत'', मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली–1962
9. वहीं।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 326-329

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की प्रासंगिकता

सुमित्रा देवी
एम0फिल0 शोधार्थी (हिंदी), महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

भाषा के द्वारा हम अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं यदि मनुष्य के पास वाणी और भाषा नहीं होती तो मनुष्य समाज गूँगों की वीरान बस्ती की तरह होता। वास्तव में भाषा मानव–समाज में विचारों, भावों के आदान–प्रदान का माध्यम है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा देते हुए कहा है, "निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मानव के मुख से निःसृत वह ध्वनि–समष्टि भाषा कहलाती है, जिसका अध्ययन विश्लेषण किया जा सके।"[1] भाषा न केवल वैचारिक आदान–प्रदान का साधन है बल्कि हमारे सामाजिक संबंधों की डोर भी है। भाषा नित नए संस्कार ग्रहण कर संस्कारित व विकसित होती रहती है। इसके अंदर अनेक संस्कृतियों और सभ्यताओं की गंध समाहित होती रहती है।

भारतीय जीवन के संदर्भ में हिंदी भाषा का स्थान केवल अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र का ही नहीं है, वह भारतवासियों की धड़कन से जुड़ी हुई है। हिंदी को संविधान में देश की राजभाषा घोषित किया गया है। यह विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार, "यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।"[2] चीनी भाषा के बाद यह संसार की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। कला, साहित्य, संगीत, भाषा, व्याकरण के साथ–साथ अभिव्यक्ति के सभी साधनों में हिंदी ने अपनी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता को बनाए रखा है।

'हिंदी' शब्द का प्रयोग उत्तर भारत की एक अत्यंत विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए होता है। विभिन्न कालखंडों एवं विभिन्न संदर्भों में हिंदी के लिए अनेक नाम प्रयुक्त हुए हैं जैसे– 'देश बअणा' (विद्यापति), 'हिंदवी', 'दक्खिनी', 'रेख्ता', 'आर्यभाषा' (दयानंद सरस्वती), 'हिंदुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि।

किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रभाषा उसका गौरव होती है। देश की एकता और अखंडता के लिए राष्ट्रीय भाषा अनिवार्य होनी चाहिए। हमारे देश की राष्ट्रीय भाषा हिंदी है, जिसके बिना हम अपनी दिनचर्या नहीं बिता सकते और न ही अपनी प्रगति के बारे में सोच सकते हैं।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 41.03 प्रतिशत लोगों की मूल भाषा हिंदी थी जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार हिंदी बोलने वालों की संख्या 48.63 प्रतिशत हो गई है। बांग्ला भाषा दूसरे व मराठी व तेलुगु भाषा तीसरे स्थान पर है। जनसंख्या के आधार पर भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। हमारा

देश विश्व व्यापार का बड़ा गढ़ माना जाता है। व्यापार में भाषा बहुत महत्वपूर्ण होती है। विश्व के सभी विकसित देश भारत के साथ अपना व्यापार बढ़ाना चाहते हैं। इस प्रकार विदेशी लोग भी हिंदी सीखने में रुचि ले रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों में हिंदी विषय के प्रति विदेशी छात्र–छात्राओं की रुचि बढ़ी है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने एक विशेष राशि अमेरिका में हिंदी, चीनी और अरबी भाषाएँ सीखने के लिए मंजूरी दी थी। यह इस बात का जीता–जागता उदाहरण है कि भारत से अच्छे संबंध बनाने के लिए हिंदी सीखना कितना आवश्यक है।

हिंदी विशाल जनसमूह की भाषा है। यह आज सीमाओं के बंधन तोड़कर विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना रही है। आज हिंदी भाषा राष्ट्रीय व अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर जनसंचार के लिए प्रयोग की जा रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी विदेशी धरती पर यू.एन.ओ. तक में हिंदी में भाषण देते हैं। राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता परीक्षाओं में इसका प्रयोग हो रहा है। संसद में भी हिंदी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। निचली अदालतों में भी हिंदी का प्रचलन बढ़ा है। हिंदी का संसार निरंतर बदल रहा है। हिंदी राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक बनती जा रही है।

सूचना क्रांति और भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में हिंदी समाज की सीमा निरंतर बढ़ती जा रही है। विश्व के लगभग सौ महाविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। हिंदी की दर्जनों साइटें हैं जो संसार के हिंदी भाषियों को जोड़ने का काम कर रही हैं, कला, विज्ञान, वाणिज्य और साहित्य में मौलिक ग्रंथों की रचना हिंदी में हो रही है। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की प्रगति को हम अनेक रूपों में देख सकते हैं। हिंदी विश्व के सबसे बड़े भाषा परिवार की भाषा है और इसके बोलने वालों की संख्या भी सबसे अधिक है। विदेशी विद्वानों जैसे– गार्सा द तासी, जॉर्ज ग्रियर्सन, विलियम जोन्स आदि ने भारतीय भाषा का अध्ययन शुरू किया था।

हिंदी के अंर्तराष्ट्रीय संदर्भ में हम एक और उदाहरण के द्वारा हिंदी के महत्व को समझ सकते हैं– विश्व हिंदी नगर के मुख्य पंडाल में जनवरी, 1975 में जो गोष्टी हुई थी उसके अध्यक्ष मॉरिशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम थे तथा भारत के विदेश मंत्री यशवंत राव चव्हाण मुख्य अतिथि थे। गोष्टी के प्रमुख प्रवक्ता, मॉरिशस के युवा खेल मंत्री श्री दयानंद लाल वसंतराय ने गोष्ठी की शुरुआत करते हुए कामना की– "हिंदी की गंगा द्वारा प्रदान की गई यह विश्वव्यापी भावात्मक एकता अमर रहे और संसार के विभिन्न भागों में बसे हुए हिंदी भाषा–भाषी लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं भावात्मक स्तर पर एक–दूसरे के अधिक से अधिक समीप आकर एक ऐसे भाईचारे में बँध जायें जो सद्भाव, सहयोग, संवेदन, सहिष्णुता तथा मैत्री पर आधारित हो।"[3] उन्होंने मॉरिशस में हिंदी की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था– "मॉरिशस में हिंदी के प्रति बहुत उत्साह है। हिंदी हमारी संस्कृति और धर्म की भाषा है। हमारे उन्मुक्त चिंतन की भाषा है। इसके द्वारा हम विश्व के एक बहुत बड़े जन समुदाय के साथ जुड़े हैं। उससे कटना हमारे लिए संभव नहीं है। हिंदी भारत की राजभाषा है। हमें भारत से सहज–स्वाभाविक प्रेम है। उनकी उन्नति हमें सुख देती है और विपन्नता दुख।"[4]

विदेशों में भी हिंदी में पठन–पाठन का कार्य हो रहा है। विश्व के अनेक देशों जैसे– मॉरिशस, फीजी, बर्मा, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिडाड, रूस, थाईलैंड, चीन आदि में हिंदी स्नातकोत्तर स्तर तक पढ़ाई जाती है। इस प्रकार

हिंदी जनसंख्या, अंतर्राष्ट्रीय संपर्क की नजर से विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं है। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी का समृद्ध स्वरूप विश्व पटल पर फैलता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी का दायरा विस्तृत हो रहा है। सोशल मीडिया ने हिंदी में लेखन व पत्रकारिता के नवीन युग की शुरुआत की है। फेसबुक व व्हाट्सएप हिंदी और भारतीय भाषाओं के साथ सामंजस्य बैठा रहे हैं। हिंदी की वैश्विक स्थिति में मीडिया का भी महत्वपूर्ण योगदान है। आज हिंदी फिल्में अन्य भाषाओं की फिल्मों से ज्यादा लोकप्रिय हैं। हिंदी फिल्में देश के साथ–साथ दूसरे देशों में भी लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी हैं। यह स्थिति संभवतः हिंदी के विस्तार का स्वर्णकाल कही जाएगी जब मनोरंजन के माध्यम से भाषा ने अपनी पैठ वैश्विक रूप से जमाई है। इस प्रकार हम स्पष्ट से देख रहे हैं कि आर्थिक उदारीकरण के दौर में निजी पहल का चमत्कार हमारे सामने आया है और हिंदी भारतीय सिनेमा के माध्यम से विश्व के दूर–दराज के एक बड़े भू भाग में समझी जाने वाली भाषा स्वतः बन गई है।

हिंदी का प्रचार–प्रसार अचानक व अप्रत्याशित नहीं है। इसका बहुत बड़ा योगदान उन प्रवासी भारतीयों को जाता है जिन्होंने अपनी हिंदी भाषा का संरक्षण किया। इसी प्रकार व्यापारियों व व्यवसायियों की भी हिंदी सेवा भावना का मूल्य भी नहीं आँका जा सकता, जिन्होंने अपने व्यवसाय व व्यापार का माध्यम हिंदी को बनाया।

भूमंडलीकरण के दौर में केवल वहीं भाषा टिक पाएगी जिसका शब्द–भंडार विशाल हो। उस भाषा में आत्मसात करने का गुण विद्यमान हो ताकि वह अपने शब्द–भंडार को निरंतर विस्तृत करती रहे। हिंदी को यह सौभाग्य प्राप्त होने के कारण इसने अनेक विदेशी शब्दों को आत्मसात कर अपने शब्द–भंडार में निरंतर वृद्धि की है जो की संस्कृत के प्रभाव से पहले समृद्ध था। हिंदी का शब्दकोष अत्यंत विशाल है जिसमें एक–एक वस्तु और भाव को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द विद्यमान हैं। हिंदी के शब्दकोष में शब्दों की संख्या 2.5 लाख से भी अधिक है जो निरंतर बढ़ती जा रही है। हिंदी भाषा ने अपनी इस विशेषता के कारण अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने में कभी संकोच नहीं किया। जब जहाँ जरूरत हुई नए शब्द हिंदी भाषा में शामिल होकर हिंदी के अपने हो गए और हिंदी की संपन्नता बढ़ती ही चली गई। वास्तव में हिंदी विश्व भाषा बनने की सच्ची अधिकारी है।

आजादी के बाद जब हिंदी को राजभाषा घोषित किया गया, तो कहा गया कि इसमें तकनीकी योग्यता की कमी है जो कि आज के युग में अनिवार्य आवश्यकता है। लेकिन जैसे–जैसे समयनुसार व्यवहार बढ़ता गया हिंदी निखरती चली गई और धीरे–धीरे इसके विकास की गति बढ़ती जा रही है।

आदिकाल से लेकर वर्तमान तक हिंदी के संतो, विद्वानों, लेखकों व हिंदी प्रेमियों ने अपनी रचनाओं व लेखों से हिंदी को समृद्ध किया है। यू.एन.ओ. में नरसिम्हा राव, अटल बिहारी वाजपेयी, नरेंद्र मोदी ने हिंदी में संबोधन देकर हिंदी को विश्व सम्मान व गौरव दिलवाया है। वर्तमान दौर में हिंदी चौनलों की संख्या में वृद्धि हो रही है। बाजारवाद के कारण कई अंग्रेजी चौनलों का हिंदी में रूपांतरण हो रहा है। यह संकेत हिंदी के लिए अत्यंत शुभ है। इस तरह हिंदी वैश्वीकरण के दौर में बड़ी और प्रभावी भाषा बन कर उभरी है। यह विश्व की सबसे

अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषा तो है ही साथ ही साथ वैश्विक मीडिया और नवीन तकनीक की बहु प्रयुक्त भाषा भी बनती जा रही है। अतः भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में इसका भविष्य अत्यंत उज्जवल व आस्वस्तिकारक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. रमेश रावत, हिंदी भाषा–उद्भव और विकास, पंचशील कॉलोनी, जयपुर, पृष्ठ–1
2. "There are the most powerful language in the worldß- World economic forum, मूल से 24 मार्च, 2019 को पुरालेखित।
3. डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. रमेश रावत, हिंदी भाषा– उद्भव और विकास, पंचशील कॉलोनी, जयपुर, पृष्ठ– 208
4. वहीं, पृष्ठ– 208

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 330-336

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका

डॉ. सुनीता राठौर, सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय एम.एम.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चाम्पा

शोध–आलेख :–

समाज उत्थान में हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य ही अच्छे समाज की नीव है, समाज के उत्थान के लिए साहित्य का होना आवश्यक है जहॉ साहित्य नहीं होता है, वह देश मुर्दे के समान है।

''अंधकार है वहॉ, जहॉ साहित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहॉ, साहित्य नहीं है।''

समाज के उत्थान में साहित्य का योगदान :–

समाज की दशा सुधारने के लिए साहित्य का होना आवश्यक है। साहित्य को समाज के रूप में अपनायें और साहित्य के गुणो को समाज में उतारें, साहित्य को समाज साहित्य से समाज को प्रेरणा मिलती है, इसलिए समाज के उत्थान के लिए साहित्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। समाज व्यक्तियों का वह समूह है, जिस स्थान पर मानव एक साथ उठ–बैठकर अपने सुख–दुख को बॉटता है, वही स्थान जिसमे व्यक्ति स्वयं को अच्छा महसूस करता है, जहॉ पर रहकर उसके अस्तित्व की पहचान बनती है, उसके व्यक्तित्व का विकास होता है।

साहित्य में किसी भी समाज की परम्पराओं, रीति–रिवाजों, संघर्षो को लिखित रूप में देखा जाता है। साहित्य कार समाज में घटने वाली परम्पराओं, विचारों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

साहित्य का समाज पर प्रभाव :–

साहित्य का प्रभाव सभी काल पर पड़ता है। समाज को अपनी आवश्यकताओं के लिए जैसे – घर, समाज को अच्छा रखना, अच्छा व्यवहार, अच्छी संस्कृति, अच्छी भाषा ये सब सीखने के लिए साहित्य पर निर्भर रहना पड़ता है। व्यक्ति यदि तनाव में है, तो अच्छी–अच्छी किताबें पढ़ने से मन में सकारात्मक भाव आते है, जिससे तनाव दूर होता है।

समाज का साहित्य पर प्रभाव :–

समाज के प्रभाव के बिना आदर्श साहित्य की रचना संभव नहीं है। साहित्यकार समाज में जो भी घटना घटती है, उससे सीखता है और उसे अपने विचारों के माध्यम से व्यक्त करता है, इसलिए मनुष्य को सामाजिक

प्राणी माना गया है। कबीर, तुलसी, भारतेंदु जी, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि अनेक साहित्यकार हुए है, जिन्होने अपने जीवन के अनुभव को लेखनी के माध्यम से व्यक्त किया है, उन्हे पाठक चिंतन कर अपने जीवन को अमूल्य बनाते है।

किसी भी समाज की उन्नति, अवनति, परम्पराएँ, गुण–दोष साहित्य में दिखाई देता है। समाज में होने वाली घटनाओं और उनकी संस्कृति को साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा साकार करता है।

समाज में साहित्य की भूमिका को यदि हम देखना चाहे तो साहित्य ने समाज को जगाने का प्रयास किया है। हम देखना चाहते है, कि समाज के उत्थान में हिन्दी साहित्य की भूमिका कैसी है तो वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल सभी कालो में साहित्य द्वारा समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन देखे जा सकते है। यदि साहित्य द्वारा समाज में परिवर्तन होता है, तो समाज भी साहित्य के लिए अक्षय ज्ञान सामग्री प्रस्तुत करता है।

वीरगाथा काल में राजाओं की प्रशंसा तथा युद्ध के कारण क्या थे ? 'पृथ्वीराज रासो' तथा आदिकालीन साहित्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। लोक जीवन और वर्ग संघर्ष की खोज के लिए साहित्य का उपयोग सदा से होता रहा है। ऑस्टिन वारेन ने लिखा है – ''साहित्य और समाज के सम्बन्धों के अध्ययन का सबसे आसान तरीका है साहित्यिक कृतियों को सामाजिक दस्तावेज मानकर सामाजिक यथार्थ की कल्पित तस्वीर मानकर उसका अध्ययन करना।''

सामाजिक यथार्थ के बारे में भक्ति कालीन साहित्य में भी देखे जा सकते है। भक्तिकालीन साहित्य जो 14 वीं शताब्दी से लेकर 17 वीं शताब्दी तक भक्ति की विभिन्न निर्गुण सगुण धाराओं को प्रवाहित करते हुए समाज को आंदोलित करता है, को देखा जा सकता है। एक ओर कबीर ने अपने युगीन समाज को लक्ष्य करके जाति–भेद, वर्ग–भेद, छुआछूत, बाह्यआडम्बर पर कठोर प्रहार करते हुए एक समाज चेता का सच्चा रूप प्रस्तुत किया है। उन्होने समाज मे फैले ऊँच–नीच के भेदभाव के लिए हिन्दू–मुस्लिम दोनो को खरी–खोटी सुनाई है। मुसलमान के बारे मे देखिए–

''कॉकर पाथर जोरि के, मसजिद लई बनाय।
तापर मुल्ला बॉग दे, बहरा हुआ खुदाय।।

कबीर दास जी ने मानव जीवन की उन्नति के लिए बहुत प्रयास किए है। तत्कालीन अव्यवस्था, आडम्बर प्रियता, मिथ्यावादिता, अहंकार प्रियता, रूढ़िवादिता का गहराई से अध्ययन करके उन्हें दूर करने का बीड़ा उठाया है, यहि कारण है कि उन्हें उस युग के प्रतिनिधि कवि के रूप में संबोधित किया जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार – ''युग का प्रतिनिधि अथवा लोकनायक उसे माना जा सकता है, जो विभिन्न विरोधो में समन्वय स्थापित कर सके। हिन्दी साहित्य के हजारों वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई कवि पैदा नहीं हुआ, अतः कबीर अपने युग के अद्वितीय कलाकार और एक महान व्यक्ति थे।

कबीर ने हिन्दू एवं मुस्लिमों में व्याप्त व्यक्तिगत भेंदो को दूर करने का प्रयास किया। कबीर हिन्दू

वर्ण–व्यवस्था को समाज द्वारा निर्मित मानते है। जॉति–पॉति का भेद तो जन्म के पश्चात् समाज के लोग मानने लगते है अन्यथा व्यक्ति का जन्म तो एक ही तरह से होता है। हमने ही ब्राम्हण, शुद्र की संज्ञा दे रखी है। अतः वे इस विचार–धारा का विरोध करते है। उन्होने अपने कबीर पन्थ में वर्ण – व्यवस्था को कोई स्थान नहीं दिया है।

''जॉति–पॉति पूछै नहीं कोई।
हरि को भजै सो, हरि का होई।।''

यहॉ समाज का यथार्थ रूप में वर्णित कर एक स्वस्थ्य समाज की कल्पना हमें कबीर साहित्य में मिलती है। कबीर जब मोह–माया, लोभ, क्रोध, स्वार्थ, असंतोष, घृणा के स्थान पर प्रेम, करूणा, सत्य, संतोष एवं मानवतावाद जैसे मूल्यों को जीवन में उतारने की बात करते है, तो निश्चित ही उनकी वाणी समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर लाने का कार्य करती है।

सगुण भक्ति शाखा के अंतर्गत हम तुलसी के साहित्य को समाज सुधार के बारे में देख सकते है। तुलसी का ''रामचरित मानस'' अपने आप में अमूल्य नीधि है। 'मानस' के विश्वव्यापी मूल्य– राजा प्रजा संबंध, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–भाई के सम्बन्धों के आदर्श रूप को प्रस्तुत करते है, जो तत्कालीन समाज में ही नहीं, वह आज भी प्रासंगिक है।

जिस समय महाकवि तुलसीदास ने धर्म क्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय समाज में अनेक विषमताऍ थी। समाज में उस समय कोई आदर्श नहीं था। समाज का धनी वर्ग विलासिता के पाश में जकड़ा हुआ था और निम्न वर्ग शांति के लिए तरस रहा था। इस प्रकार तुलसीदास जी ने इन सभी अंधकार का विनाश किया तुलसीदास के समय तक अनेक संत कवि समाज में जन्म लेचुके थे। महात्मा कबीर ने अज्ञानरूपी अंधकार को समाप्त कर ज्ञानलोक का प्रसार किया, तो सूर ने कृष्ण की आनन्दमयी लीलाओं का गान की उनकी रूप माधुरी का पान कराकर हिन्दुओं के मन को शांत किया।

तुलसीदास ने विश्रृंखल, विच्छिन्न, आदर्शहीन और लक्ष्यहीन सम्पूर्ण समाज को गहराई से देखा। वर्णाश्रम धर्म की कमजोरियों और उनसे होने वाली हानियों को जाना। 'नानापुराण निगमागम' के अध्ययन से वे इस निष्कर्ष पर पहुॅच गये थे कि हमारे शास्त्रों ने समन्वय की जो विराट चेष्टा की थी और जिसके आधार पर उन्होंने विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण और चांडाल को समान माना था, वह अब प्रभावहीन हो गयी है। अतः उन्होने समन्वय को ही सामाजिक उन्नति का उपाय मानकर समन्वय का महान प्रयंत्न किया और इसमें वे पूरी तरह सफल भी हुए। इस समय महात्मा रामानन्द समाज में राम नाम की प्रतिष्ठा कर चुके थे।

आदर्श की स्थापना – तुलसीदास के समय, समाज में कोई आदर्श नहीं था, जिसके पदचिन्हों पर चलकर वे अपना सुधार कर सकते। तुलसीदास ने राम तथा राम से सम्बन्ध रखने वाले पात्रों को जनता के सम्मुख रखकर भावी समाज का निर्माण बड़े अच्छे तरीके से किया है। महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस मे दशरथ के मुख से यह कहलवाया है –

''रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जायॅ पर, वचन न जाई।।''

तुलसीदास जी ने पति–पत्नी के आदर्श को भी जनता के सम्मुख रखा है। राम वन जाने को तैयार है, तो सीता जी भी उनके साथ जाती है। राम वन के कठोर से कठोर कष्टो को बताते है तो सीता जी कष्टो को ही सुख समझती है। सीता जी की दृष्टि में वन के कॉटे पुष्प है, और पति के वियोग में स्वर्ग भी नर्क है। उनके लिए भोग रोग है और भूषण भार। उसमें इतना उत्साह है, कि तेज हवा के लगने से डरती है, पृथ्वी पर सोने को फूल की शैया का आनंद अनुभव करती है। वन का निवास महलो के निवास से बढ़कर है। राम के समझाने पर सीता यह उत्तर देती है–

''राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहन जानि अहि प्राण।
दीनबन्धु सुखद सुखद, सील सनेह निधान।।''

इस प्रकार इस प्रबल इच्छा को सुनकर राम विवश हो जाते है और सीता को साथ ले जाने के लिए तैयार हो जाते है।

भ्रातृ आदर्श – महाकवि तुलसीदास ने अपने 'मानस' में जो भ्रातृ आदर्श दिखाया है, वैसा तो कहीं संसार के इतिहास में दिखाई नहीं देता। जब लक्ष्मण यह सुनते है, कि राम गद्दी पर न बैठकर वन को जा रहें है, तब उनकी व्याकुलता की सीमा नहीं रहती। अयोध्या के सम्पूर्ण सुख उनके लिए दुःख हो जाते है।

लक्ष्मण विलख–विलख कर रोते है, और राम के चरणों में गिर जाते है तथा सोचते रहते है कि उनके भाई राम वन साथ लेकर जायेंगे या नहीं। राम लक्ष्मण को समझाते है कि उनका अयोध्या में रहना अनिवार्य है, क्योंकि पिता वृद्ध है। भरत, शत्रुहन घर पर नहीं है, इसीलिए तुम महाराज की सहायता के लिए घर पर ही रहों क्योंकि –

'' जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसिनरक अधिकारी।।''

परन्तु लक्ष्मण को इन वचनों से बड़ी व्याकुलता होती है, और अन्त मे यह कहते है –

''नाथ ! दास मे स्वामि तुम्ह, तजहु तो कहा बसाही'' लक्ष्मण के लिए तो राम ही पिता है, गुरू है, और सब कुछ वही है। लक्ष्मण कर्तव्य परायण, और सीता तथा राम की सेवा करना ही उनका जीवन है।

इस प्रकार हम कह सकते है, कि तुलसीदास जी के ''रामचरित मानस'' में समाज के उत्थान के लिए आदर्श रूप का चित्रण किया गया है। राजा प्रजा संबंध पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–भाई के सम्बन्धों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसीदास समन्वय के माध्यम से समाज को जोड़ने का प्रयास किया है, इसके संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''उनका सारा काव्य समन्वय गृहस्थ और वैराग का समन्वय, कला और तत्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय, रामचरित मानस शुरू से आखिरी तक समन्वय का काव्य है।

भक्तिकाल के अन्तर्गत जायसी, सूर, मीरा, के साहित्य से कौन प्रभावित नहीं होता है। निश्चित रूप से

भक्ति कालीन साहित्य ने समाज में अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

17 वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी तक रीतिकाल का युग था। राजा भोग–विलास, मदिरापान मे लिप्त रहते थे, प्रजा पर ध्यान नहीं देते थे ऐसे समाज में कवि राजदरबारो का आश्रय प्राप्त करके अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा मे ही कविता लिखते थे। उसमें समाज को सही दिशा दिखाने की प्रवृत्ति उतनी अधिक नहीं मिलती किन्तु हमें कवि बिहारी में दिखाई देती है। कवि बिहारी की एक दोहा देखते है, जिनका प्रभाव राजा पर पड़ता है –

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली में ही बिन्ध्यो आगे कौन हवाल।।''

इस समय काल में न तो अब तक पुष्प में पराग आए हैं, और न ही मीठी मधु मौजूद है, यदि अभी से ही भौरा पुष्प की कली में बेसुध रहेगा तो क्या होगा। इस दोहे के माध्यम से बिहारी लाल जी हिन्दू राजा जय सिंह को यह संदेश देना चाहते थे कि अगर राजन सदैव ही अपनी रानियों के प्रेम में लुप्त रहेंगे और अपने राज्य पर जरा सा भी ध्यान नहीं देंगे तो अनर्थ हो सकता है। इस प्रकार बिहारी के इसी दोहे से प्रेरित होकर राजा जय सिंह मदिरा भोग–विलास को त्यागकर अपना घर, समाज प्रजा को व्यवस्थित रूप से रखा।

समाज में साहित्य की भूमिका के संदर्भ में आधुनिक काल के साहित्य को विशेष रूप से देखा जाता है। यह भारतीय गुलामी का काल था। समाज में देश की आजादी के लिए लोगो में छटपटाहट आधुनिक काल के साहित्य में मिलती है। भारतेन्दु युगीन साहित्य में 'भारत–दुर्दशा, वैदिकी हिंसा, हिसा न भवति, अंधेर–नगरी आदि साहित्यिक विधाओं में तत्कालीन भारतीय समाज की दुर्दशा बतायी गई है। मातृभाषा के प्रचार–प्रसार एवं देशभक्ति की भावना का स्वर साहित्य में स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

'मातृभाषा उन्नति अहै, सबै उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा उन्नति के, मिटै न हिय को सूल।।'

प्रेमचंद की कफन कहानी में समाज मे व्यक्ति अपने किस प्रवृत्ति के कारण उपेक्षित जीवन जीना पड़ता है, इसका चरित्राकंन किया है। व्यक्ति का सबसे बड़ा दुश्मन उसका कामचोर और आलसपन भी है, यदि आलसपन को हम त्याग दे तो बड़ा से बड़ा काम संभव हो जाता है, और जब अच्छा काम करेंगे तो हमारा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, और फिर बच्चे बड़े होकर अपना घर, परिवार, समाज को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। इस प्रकार हम कफन कहानी के बारे में जानना चाहेगें।

कफन के कथानक का प्रारंभ किसी गॉव में रहने वाले एक पद दलित हरिजन परिवार से होता है। इस परिवार में धीसू, उसका पुत्र माधव और पुत्रवधू बुधिया तात्र तीन प्राणी है। निर्धनता और आरामतलबी धीसू को विरासत में मिली है। अपनी आरामतलबी के कारण वह समाज में उपेक्षित रहता है तथा दाने–दाने के लिए तरसता है।

जाड़े के दिनों की ठण्डी रात है। घीसू और माधव दो दिन से भूखे है। अलाव के पास बैठकर दोनो चोरी

से लाये आलुओ को भूनने मे व्यस्त है। कमरे के भीतर बुढ़िया प्रसव वेदना से कराह रही थी, परन्तु भूख की ज्वाला से पिता–पुत्र इतने गिर चुके है कि बुढ़िया की वेदना का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वे आलुओं से अपना पेट भरते है। पति माधव और श्वसुर घीसू बुढ़िया के पास भी नहीं जाते। दूसरे दिन सुबह बुढ़िया की मृत्यु हो जाती है, तो पिता पुत्र बहुत रोते है। गॉव के जमीदार और गांव वाले बुढ़िया के कफन के लिए पॉच रूपये दिये रहते है, उसे लेकर कफन लेने पहुचते है, लेकिन पिता–पुत्र मदिरालय में पहुँच जाते है और शराब और तली हुई मछलियॉ खाते है, किन्तु कफन नहीं खरीदते और गाने लगते है,

''ठगिनी, क्यों नैना चमकावे! ठगिनी।''

इस प्रकार कफन कहानी का अंत हो जाता है। अर्थात् प्रेमचंद जी ने इस कहानी के माध्यम से लोगो को यह संदेश देने का प्रयास किया है, कि व्यक्ति को कामचोर, आलसीपन नहीं होने चाहिए तो, सभी कार्य अच्छे से हो जाते है और समाज सुधर सकता है।

'गदल' कहानी डॉ. रागेय राघव की है, 'गदल' कहानी में कहानीकार ने 'गदल' (स्त्री पात्र) की साहसी और विद्रोही का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों के खोखलेपन की ओर भी संकेत किया है। गदल कहानी में गदल नामक एक वृद्ध महिला विधवा हो गयी थी। उसने मौनी नामक युवक से पुनर्विवाह कर लिया था। गदल के देवर डोड़ी और गदल के पुत्र निहाल को यह आचरण अच्छा नहीं लगा। उसका देवर डोड़ी बहुत दुखी था। गदल के जाने से डोड़ी सोच में डूब गया और मर गया। गदल डोड़ी के काम को स्वयं करती है, उसके पति के काम में केवल 25 लोगों को भोजन करवाया, लेकिन डोड़ी के काम को वह बहुत अच्छे से करती है, केवल 25 आदमी को बिरादरी में भोजन करवाना रहता है, किंतु डोड़ी के काम में 25 से उपर है, करके दरोगा जी आते है, और कहते है कि ''पच्चीस आदमी से उपर है ? ''गिनकर हम नहीं खिलाते दरोगा जी!'' दरोगा कहते है ''मगर तुम कानून तो नहीं तोड़ सकते, ''राज का कानून कल का है, मगर बिरादरी का कानून सदा का है, हमें राज नहीं लेना है, बिरादरी से काम है।'' इस प्रकार गदल कहानी में समाज के महत्व को बताया गया है। ''युवको का समाज में स्थान'' निबंध में आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा है, कि सामान्यतः उन समाजों में, जहॉ स्थिरता आ गई है, और जहॉ विकास की गति अत्यन्त मन्द है, वृद्धों की सबसे, अधिक प्रतिष्ठा होती है। ऐसे समाज में वृद्धों का ही नेतृत्व होता है और उनका अनुभव ही समाज का मुख्य आधार होता है। चीन और भारत के समाज इसके उदाहरण है। हमारे पूर्वजों का कहना है, कि ''वह सभा ही नहीं जहॉ वृद्ध नहीं है।'' इस प्रकार समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है, और इसके लिए संभव है युवक।

आचार्य नरेन्द्र देव ने इस निबंध में पुरानी पीढ़ी की तुलना में नवयुवको की नयी पीढ़ी को अधिक महत्व देते हुए, उन्हे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। इनके अनुसार युवक शक्ति के भण्डार होते है। उनमें साहस, शौर्य और पराक्रम अर्थात कुछ कर दिखाने की भावना होती है। वे नूतन समाज की रचना करने तथा प्रचलित सामाजिक पद्धति को तोड़ने में समर्थ होते है। युवकों के सहयोग के बिना समाज में किसी प्रकार का क्रांति कारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। युवक आदर्श प्रिय, निर्भीक, साहसी और मेहनती होते है। युवक परिस्थितियों

एवं परिवेश के अनुकूल अपने को बदलने और समायोजित करने में सक्षम होते है। इस प्रकार युवक समाज के उत्थान में सहायता देते है, किंतु समाज का उत्थान वृद्धों एवं युवकों दोनों के समर्थन द्वारा होता है।

निष्कर्ष – निष्कर्षतः हम कह सकते है, कि समय–समय पर साहित्यकारों की रचनाएं समाज को आदोलित उद्वेलित, परिवर्तित करती रहती है। वास्तव में माननीय मूल्यों की रक्षा करते हुए उसे जनमानस तक ले जाने का सिद्ध कार्य साहित्य ने किया है। निःसंदेह समाज को दिशा और दशा देने मे साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित है। हाल के दिनो संचार साधनो के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियॉ समाज के नवनिर्माण मे अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही है। आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझे कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है, और उसके मूल तत्वों को संरक्षित करना जरूरी है, क्योकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची –

1. समाज में साहित्य की भूमिका – प्रो. कमलेश कुमारी (नेट से)
2. साहित्य और समाज निबंध 2021 (नेट से)
3. नवबोध परीक्षा सार 2014 हिन्दी साहित्य – बी.ए. प्रथम वर्ष (प्रथम प्रश्न पत्र)
   नवबोध शिक्षा समिति द्वारा सम्पादित, नवबोध प्रकाशन, 7, समता कॉलोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़) पृ. सं. 25, 26, 115
4. नवबोध, परीक्षा सार 2014, हिन्दी साहित्य, बी.ए.प्रथम वर्ष, (द्वितीय प्रश्न पत्र), नवबोध शिक्षा समिति द्वारा सम्पादित, नवबोध प्रकाशन, 7, समता कॉलोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़) पृ. सं 77, 80, 96
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास आ. रामचन्द्र शुक्ल
6. हिन्दी के श्रेष्ठ निबंध एवं प्रयोगगत व्याकरण, प्रधान संपादक – डॉ. सत्यभामा आड़िल, विकल्प प्रकाशन, पृ. सं. 7, रायपुर (छत्तीसगढ़)

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 337-341

प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानी 'तरकीब' में नारी पात्र

उधम सिंह, पी.एच.डी. (हिन्दी शोधार्थी)
जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश

प्रवासी का अर्थ है 'परदेश में रहने वाले' विश्व के दूसरे देशों में रहने वाले भारतीय प्रवासी भारतीय कहलाते हैं। ये प्रवासी दुनिया के अनेकों देशों में बसे हुए हैं । भारत में प्रवास की परंपरा सदियों पुरानी है । प्रवासी हिन्दी साहित्य सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा है ।

प्रवासी हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत साहित्य की लगभग सभी विधाओं का सृजन हुआ है ।

प्रवासी साहित्य सर्वथा नवीन नहीं है । भारतीय मूल के विदेशों में रहने वाले साहित्यकारों के लेखन को प्रवासी साहित्य कहा जाता है और जिन्होंने हिन्दी को माध्यम बनाकर लिखा है वे प्रवासी भारतीय साहित्यकार हैं ।

हिन्दी का प्रवासी साहित्य बहुत समृद्ध है। प्रवासी हिन्दी साहित्यकार ब्रिटेन, अमेरिका, लंदन, कनाड़ा, मॉरीशस तथा सूरीनाम आदि अनेक देशों को अपनी कर्मस्थली बनाकर साहित्य सृजन करते आए हैं ।

प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानियाँ, अनूदित साहित्य, महाकाव्य, नाटक, कविताएँ, आत्मकथा तथा एकांकी आदि अनेकों विधाओं पर लेखन कार्य किया है । हम इन साहित्यकारों के साहित्य को पढ़कर विदेशों के अनेक अनुभवों, भावनाओं, संवेदनाओं, परंपराओं, रीति–रिवाजों को जान व समझ सकते हैं ।

हरिशंकर आदेश, डॉ. महेन्द्र शर्मा, दिव्या माथुर, अभिमन्यु अनंत, अचल शर्मा, ऊषाराने सक्सेना, ऊषा वर्मा, कादम्बरी मेहरा, दिव्या माथुर, ऊषा प्रियवंदा नीना पॉल, जाकिया जुबैरी, तेजेन्द्र शर्मा आदि अनेक प्रवासी साहित्यकार हुए हैं । जिन्होंने हिन्दी का विश्व पटल पर परचम लहराया है ।

तेजेन्द्र शर्मा ब्रिटेन में बसे भारतीय मूल के हिन्दी कवि लेखन कहानीकार हैं । इनका जन्म 21 अक्टूबर 1952 को पंजाब के जगराँव शहर में हुआ । 11 दिसम्बर 1998 को एयर इण्डिया की नौकरी को छोड़कर वह लंदन जाकर बस गए । वे सर्वप्रथम समाचार वाचक तथा उसके बाद ब्रिटिश रेल मंन चालक की नौकरी पर लगें।

दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेजी विषय में एम. ए. तथा कंप्यूटर में डिप्लोमा किया । तेजेन्द्र जी हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू तथा गुजराती भाषाओं का ज्ञान रखते हैं हिन्दी साहित्य के एकमात्र अंतरराष्ट्रीय सम्मान इंदु शर्मा कथा सम्मान प्रदान करने वाली संस्था 'कथा यू. के.' के सचिव हैं।

लंदन से प्रकाशित पत्रिका 'पुरवाई' का संपादन कर रहे हैं तथा दूरदर्शन के लिए 'शांति' सीरिल का लेखन भी तेजेन्द्र शर्मा जी ने किया है। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ द्वारा एम. बी. ई. (मेम्बर ऑफ ब्रिटिश एम्पायर–2017) से इनको सम्मानित किया गया। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं– काला सागर (1990), ढिबरी टाईट (1994), देह की कीमत (1999), यह क्या हो गया। (2003), बेघर आंखें (2007), सीधी रेखा की परतें (2009– तेजेन्द्र शर्मा की समग्र कहानियां भाग–1), कब्र का मुनाफा (2010), सभी कहानी संग्रह। ये घर तुम्हारा है...(2007–कविता एं गजल संग्रह)। दीवार में रास्ता (कहानी संग्रह–2012), प्रतिनिधि कहानियां (कहानी सग्रह Kitabghar–2014), मेरी प्रिय कथाएं (2014), सपे मरते नहीं (कहानी संग्रह–2015), श्रेष्ठ कहानियां (कहानी संग्रह–2015, National Book Trust), गौरतलब कहानियां (कहानी संग्रह–2017)

तेजेन्द्र शर्मा जी कहानियों में जिन नारी पात्रों का उन्होंने वर्णन किया है उनकी स्थिति त्रासदी और संघर्षशील प्रदर्शित की गई है। आज के पुरुष प्रधान समाज में नारी को कुछ खास छवियों में जकड़ कर बंद कर दिया है। वहीं शर्मा जी ने आधुनिक समाज से प्रभावित नारी पात्रों का अपनी कहानियों में वर्णन किया है। जो अपने स्वार्थ तथा इच्छापूर्ति के लिए समाज व परिवार की परवाह नहीं करती है। इस प्रकार तेजेन्द्र शर्मा जी ने अपनी कहानियों में नारी के विविध रूपों का वर्णन किया है।

'कोख का किराया' कहानी में मुख्य पात्र 'मनप्रीत' एक खुले विचारों की लंदन में पली लड़की है उसके नियमों में बँधकर रहना पसंद नहीं है जो हर काम को अपनी इच्छानुसार करती है।

'मलवे की मालकिन' नामक कहानी में जब अमिता एक बेटी को जन्म देती है तो उसके परिवार के लोग उसे कोसते व ताने मारते है ? जैसे अमिता ने बेटी को जन्म देकर कोई अपराध कर दिया है।

'देह की कीमत' नामक कहानी की नायिका परमजीत आम भारतीय स्त्री का प्रतीक है तो उसकी सास संवेदनहीन व अंधविश्वासी नारी है।

'तरकीब' नामक कहानी में पति और पत्नी के बीच बाहरी घटनाओ के कारण उत्पन्न हुए अविश्वास और भय को बेहद संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत किया है। समीना और तबस्सुम दोनों ही इस तरकीब से घबरा जाती हैं कि एक पति अपनी पत्नी को पाकिस्तान ले जाकर मरवा देता है तथा हत्या के आरोपी अपने चचा–जान भाई को शरीयत कानून के अनुसार खुद माफ कर देता है और तलाक के बाद होने वाली वित्तीय परेशानियों में छुटकारा भी पा लेते हैं।

शिक्षित नारी :–

तेजेन्द्र शर्मा जी ने समीना को एक शिक्षित नारी पात्र के रूप में चित्रित किया है । जिसकी शादी अदनान नामक एक विदेश में रहने वाले अनपढ़ व्यक्ति से कर दी जाती है। जब कभी समीना अपने पति से तर्क से बातें

करती है तो उल्टा उसके ऊपर डिग्री खरीदने का आरोप उसका पति लगा देता है परन्तु जब अदनान से उसका बेटा फरहान पढ़ाई के बारे में बातें करता है तो उसको समीना की तरफ देखना पड़ता है।

"यदि कभी–कभार फरहान अपनी पढ़ाई के बारे में कोई बात पूछ भी लेती तो अदनान उबानियाँ लेने लगता, साहबजादे, यह जो तुम्हारी अम्मी साहिबा है न, उन्होंने कॉलेज और यूनिवर्सिटी की डिग्री ले रखी है ।"[1]

भयभीत नारी पात्र :–

कहानी की नारी पात्र समीना तथा तबस्सुम अपने पतियों से इतनी डरती हैं कि वह उनकी किसी गलत बात का विरोध भी नहीं कर पाती हैं। अदनान समीना की बात–बात पर पिटाई कर देता है, परन्तु समीना सब कुछ चुप चाप सहती रहती है। जब से समीना तथा तबस्सुम को पता चला कि किसी पति ने तलाक की परेशानियों से बचने के लिए अपनी पत्नी को अपने देश पाकिस्तान ले जाकर मरवा दिया तथा हत्या के आरोपी को मुसलिम कानून शरीयत के हिसाब से माफ कर दिया। इस खबर को सुनकर वह इतनी डर जाती है कि वह अपने पति के साथ अपने मुल्क जाने में भी डरती है।

"बस समीना, बेगम मैंने तो जबसे सुना है वापस मुल्क जाते हुए डर लगने लगा है। उस वाहियात सी खबर ने हमारे तीस साल शादीशुदा जिन्दगी को हिलाकर रख दिया है ।"[2]

धार्मिक नारी :–

समीना एक धार्मिक सीधी सादी महिला है जो अपने माता–पिता की इच्छा के अनुसार धार्मिक रीति–रिवाज से अदनान से शादी करती है। "अदनान रिजवी, तुम्हारा निकाह समीना जैदी जल्द आफताब जैदी के साथ सिक्का का मुल्क पच्चीस हजार रुपये में तय हुआ है।"[3]

साहसी नारी :–

लेखक ने समीना को एक साहसी नारी के रूप में स्थान दिया है। वह आदनान की गलत हरकतों को सहन करती है ताकि उसकी शादी ना टूटे। वह पिटाई तक खाती है और अपने पति के घर में ही रहती है। उसका पति खुद यह सोचकर परेशान हो जाता है कि वह अपनी पत्नी पर क्या आरोप लगाए कि वह उससे पीछा छुड़ा सके, परन्तु जब उसे लगता है कि अदनान की हरकतें नहीं बदलने वाली हैं तो वह अदनान की गलत हरकतों का विरोध करती है। "तुम मुझे तलाक क्यों नहीं दे देते ?.....अब हम दोनों के बीच बचा ही क्या है ?... मैं तुम्हारी बेहूदगियाँ अब और बर्दाश्त नहीं कर सकती।"[4]

अदनान समीना की यह हिम्मत देखकर हैरान है ।

सामाजिक कार्यकता :–

समीना स्वयं अपने पति से कई बार बिना गलती के थप्पड़ व गालियाँ खाती है। शारीरिक व मानसिक ढंग से परेशान रहती है। उसे वह सब कुछ शादीशुदा जिंदगी से नहीं प्राप्त होता जिसकी वह हकदार थी। इसलिए समीना उन पाकिस्तानी महिलाओं के हक की लड़ाई शुरू कर देती है। जिनके साथ उनके ससुराल वाले

दुर्व्यवहार कर रहे हैं। ताकि उसकी तरह किसी दूसरी महिला को कष्ट ना उठाना पड़े।

"मेरी दिमागी मौत रोज–रोज होती है....जिन को जिस्मानी और दिमागी तौर पर परेशान किया जा रहा है, उनकी लड़ाई लड़ना मैं अपना फर्ज बना रही हूँ ।"[5] उपर्युक्त प्रसंग के माध्यम से हम देखते हैं कि समीना धार्मिक व साहसी होने के साथ–साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी कार्य करती है।

पारिवारिक नारी :-

समीना की शादी उससे दस–बाहर वर्ष बड़े लड़के अदनान से कर दी जाती है। जिसको शादी के कुछ वर्ष बाद समीना में कोई रुचि नहीं रहती है। वह दूसरी औरतों के साथ नाजायज संबंध रखता है। हर दो–तीन साल में अपनी सेक्रेटरी बदल देता है। समीना के साथ गलत व्यवहार करता है। "मन ही मन सोचती तो कई बार है कि अदनान से अलग हो जाए लेकिन उसकी परवरिश उसे उस बात की अनुमति नहीं देती।"[6] इतना सब कुछ होने के बाद भी समीना अपने परिवार के साथ रहना पसंद करती है ।

मिलनसारी नारी :-

समीना और तबस्सुम दोनों का व्यक्तित्व मिलनसार है। अदनान जब इफ्तिखार को परिवार सहित अपने घर बुलाता है तो समीना सभी के लिए आदरभाव से खाने का प्रबंध करती है।

"भोजन के बाद कॉफी का कप लेकर अदनान और इफ्तिखार एक ओर बैठ गये और समीना तबस्सुम को लेकर अपने कमरे में चलती गई है।"[7] वही तबस्सुम का व्यक्तित्व भी समीना की तरह मिलनसार है वह अपनी – अपनी समस्याएँ पर एक दूसरे से खुलकर वार्तालाप भी करती हैं।

तर्कशील नारी :-

समीना एक पढ़ी लिखी लड़की है। मौलवी की बातों पर अपने पति की तरह आँखें बंद करके विश्वास नहीं करती है। वह तर्क के साथ बात करती है। जिसके कारण उससे मौलवी तक वार्तालाप करने से दूर भागते हैं। "अल्लाह को तो मानती ही नहीं। कुरान शरीफ के बारे में भी सवाल खड़े कर देती है। मौलवी साहब तक को डरा रखा है।"[8] समीना धर्म के नाम पर अपनी दुकान चलाने वालों के खिलाफ है क्योंकि वह पढ़ी लिखी है और सही गलत में फर्क समझती है।

तेजेन्द्र शर्मा जी ने अपनी कहानियों में नारी के विविध रूपों का वर्णन किया है। उनकी कहानियों को पढ़ने से पता चलता है। कि आज भी समाज में नारी को वह सम्मान तथा अधिकार नहीं मिलता जिसकी वह हकदार होती है।

तरकीब कहानी में समीना और तबस्सुम साहसी, मिलनसार, पारिवारिक, शिक्षित तथा तर्कशील नारी होने के बाद भी भयभीत है। जब उन्हें पता चलता है कि किसी पति ने अपनी पत्नी से छुटकारा पाने के लिए पत्नी को अपने देश पाकिस्तान ले जाकर मरवा देता है तथा हत्या के आरोपी को शरीयत के हिसाब से माफ कर देता है जिससे वह तलाक से होने वाली परेशानियों से बच जाता है। यह खबर सुनकर समीना तथा तबस्सुम दो

भयभीत हो जाती हैं । तेजेन्द्र शर्मा जी की प्रत्येक कहानी में नारी पात्रों की अलग परिस्थिति दिखाई देती है।

संदर्भ :-

1. शर्मा तेजेन्द्र, दीवार में रास्ता (तरकीब), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या–67।
2. वही, पृष्ठ संख्या–74।
3. वही, पृष्ठ संख्या–63।
4. वही, पृष्ठ संख्या–63।
5. वही, पृष्ठ संख्या–69।
6. वही, पृष्ठ संख्या–69।
7. वही, पृष्ठ संख्या–72।
8. वही, पृष्ठ संख्या–70।

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 342-346

समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका

विनय कुमार, (असिस्टेंट प्रोफेसर),
तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

सारांश :–

समाज की आर्थिक उन्नति एवं प्रगति में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा के बिना सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। शिक्षा और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार जिन उद्देश्यों का निर्धारण करता है उन उद्देश्यों की प्राप्ति बिना शिक्षा के संभव नहीं, सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा अपनी पूर्ण भूमिका निभाती है। समाज व्यक्तियों से मिलकर बना होता है इन व्यक्तियों को शिक्षित करना उनके ज्ञान को विस्तृत करना शिक्षा के द्वारा ही संभव है। शिक्षा समाज में तकनीकी लाती है और औद्योगीकरण को बढ़ावा देती है, समाज के लोगों की सोच को विस्तृत करती है, उनकी संकीर्ण मानसिकता पर अंकुश लगाती है, शिक्षा ही समाज में सभी व्यक्तियों के लिए समान अधिकार की बात करती है, शिक्षा ही संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के साथ–साथ व्यक्तियों को उनके कर्तव्यों का भी बोध कराती है। शिक्षा ऊंच–नीच के भेदभाव को खत्म करके समाज में समानता लाती है। शिक्षा प्रत्येक समाज के निर्माण की आधारशिला है। एक शिक्षित समाज अपने देश के विकास में बहुत बड़ा योगदान दे पाता है। समाज की उन्नति में ही देश की उन्नति होती है और यह उन्नति शिक्षा और इसके विकास से ही संभव हो पाती है।

शब्द कुंजी–शिक्षा का अर्थ, समाज का अर्थ, समाज और शिक्षा में संबंध, शिक्षा का समाज पर प्रभाव, समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका, निष्कर्ष।

शिक्षा का अर्थ :–

शिक्षा किसी समाज में निरंतर चलने वाली एक उद्देश्य पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार से उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरंतर विकास करते रहते हैं।

अपने व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है।

समाज का अर्थ :–

समाज शास्त्र में व्यक्तियों के मध्य पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों को 'समाज' कहते हैं। समाज शास्त्रीयों का यह मानना हैं, कि मात्र व्यक्तियों के संग्रह या झुंड को समाज नहीं कहा जा सकता, बल्कि व्यक्तियों के मध्य पाए जाने वाले संबंधों व अंतः संबंधों से ही समाज का निर्माण होता है अतः इसे ही समाज कहते हैं। दूसरे शब्दों में, समाज शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समाज के निर्माण हेतु सामाजिक संबंधों का होना आवश्यक है।
समाज और शिक्षा में क्या संबंध है ?

शिक्षा और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा के बिना समाज अधूरा है, और समाज के बिना शिक्षा। मानव सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है और अपने क्रियाकलापों का निर्वाह करता है। समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप से मानव का संबंध स्थापित होता है।

शिक्षा के द्वारा मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि की जाती है और उसके आचरण को निश्चित दिशा दी जाती है। शिक्षा के द्वारा ही उसमें विचार करने एवं सत्य असत्य में भेद करने की शक्ति का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में राजनीतिक जागरूकता आती है और व्यक्ति अपने अधिकार एवं कर्तव्य से परिचित होते हैं।

समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल जिन उद्देश्यों का निर्धारण करता है उन उद्देश्यों की प्राप्ति शिक्षा के द्वारा ही संभव हो पाती है अर्थात समाज एवं शिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं एक दूसरे के बिना दिन का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाएगा।

शिक्षा का समाज पर प्रभाव :-

इससे पहले कि हम समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका पर विचार विमर्श करें हमारे लिए यह जाना अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा किस प्रकार से समाज को प्रभावित करती हैरू

1. शिक्षा समाज के स्वरूप का निर्धारण करती है।
2. शिक्षा समाज पर नियंत्रण रखती है ।
3. शिक्षा समाज में परिवर्तन लाती है ।
4. शिक्षा समाज की राजनीतिक स्थिति को प्रभावित करती है ।
5. शिक्षा समाज की भौगोलिक स्थिति पर नियंत्रण रखती है ।
6. शिक्षा समाज की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है ।
7. शिक्षा समाज की संस्कृति का संरक्षणव करती है हस्तांतरण ।

समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका :-

हमारी सरकारें आजादी के समय से ही शिक्षा के महत्व से अवगत रही हैं। इसलिए, समय–समय पर बेहतर शिक्षा और समाज के उत्थान के लिए समय–समय पर बहुत सारे शिक्षा आयोगों की व्यवस्था की गई है। आज भी हमारी सरकार समाज में शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूक है जैसा कि हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के शब्दों में है–

"जो समाज शिक्षा को महत्व नहीं देता वह प्रगति नहीं कर सकता। कोई भी सरकार हो, भारत को शिक्षा

के क्षेत्र में चमकाने का वजन होना चाहिए।"

शिक्षा के दम पर हम अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। वो शिक्षा ही है जो किसी भी व्यक्ति की छिपी हुई प्रतिभा और कौशल को जगाती है। जो व्यक्ति शिक्षित होता है, उस व्यक्ति का जीवन हमेशा खुशहाल ही रहता है। अगर उसके जीवन में कोई परेशानी या तकलीफ आती भी है, तो वह अपनी शिक्षा और समझ से बहुत ही आसानी से उस परेशानी का हल निकाल ही लेता है। शिक्षा हमें जीवन में एक बेहतर नागरिक बनाने में हमारी मदद करती है। बिना शिक्षा प्राप्त किए हमारा जीवन जानवर के जीवन के बराबर है। अशिक्षित व्यक्ति और एक पशु में कोई अंतर नहीं रह जाता। शिक्षा हमें शिष्टाचार और जीवन के नियम के बारे में भी बताती है। शिक्षा से हमारे चरित्र का निर्माण होता है और शिक्षा से हमारे भीतर सामाजिक कौशल, समस्या को सुलझाने का कौशल, निर्णय लेने का कौशल और रचनात्मक कौशल पैदा होता है। शिक्षा से हमारे विचारों में सकारत्मकता आती है।

शिक्षा हमारी नकारात्मक सोच को सकारात्मक सोच में बदलती है। शिक्षा लोगों के मस्तिष्क को उच्च स्तर पर विकसित करने का कार्य करती है और समाज में लोगों के बीच सभी भेदभावों को हटाने में मदद करती है। यह हमारी अच्छा अध्ययन कर्ता बनने में मदद करती है और जीवन के हर पहलू को समझने के लिए सूझ–बूझ को विकसित करती है। यह सभी मानव अधिकारों, सामाजिक अधिकारों, देश के प्रति कर्तव्यों और दायित्वों को समझने में भी हमारी सहायता करता है। शिक्षा के महत्व को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है समाज के लोगों को चाहिए कि वे पढ़ लिखकर अपने समाज का और देश का उत्थान करें और इसके विकास में अपना योगदान दें। शिक्षा, मनुष्य को एक जिम्मेदार नागरिक बनाने में भी मदद करती है शिक्षा हासिल करके एक मनुष्य समाज में सम्मानित पद हासिल करता है वही अशिक्षित व्यक्ति किसी का प्रिय नहीं होता है तो इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा ना सिर्फ मनुष्य बल्कि पूरे समाज और देश के लिए विकास की कुंजी है।

सामाजिक उत्थान में शिक्षा की भूमिका को निम्नलिखित के आधार पर समझा जा सकता है –

1) शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों, गलत परम्पराओं के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते है और धीरे–धीरे समाज में परिवर्तन हेाता जाता है। शिक्षा समाज के प्रति लेागों को जागरूक बनाते हुये उसमें प्रगति का आधार बनाती है।

2) शिक्षा संवैधानिक मूल्यों के अनुकूल लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समाज के व्यक्तियों को उनके अधिकारों के साथ–साथ उनके कर्तव्यों का बोध भी शिक्षा ही कराती है। शिक्षा समाज में व्यक्तियों को शिक्षित करती है जो लोकतंत्र का आधार है ।

3) शिक्षा निश्चित रूप से व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करती है। शिक्षा किसी के ज्ञान, कौशल में सुधार करती है और व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को विकसित करती है। सामाजिक विकास की रीढ़ शिक्षा को ही माना जाता है ।

4) शिक्षा के बिना समाज का विकास असंभव है। जहां शिक्षित व्यक्ति होते हैं वही सभ्य समाज होता है। अतः समाज के विकास में शिक्षा की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।

5) समाज पर शिक्षा का प्रभाव पड़ता है जहां शिक्षा होती है। वह समाज शिक्षित तथा सभ्यता की ओर अग्रसर होता है। वह सृजन करता है शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अपने शक्तियों का दुरुपयोग करता है, जिससे समाज का अहित होता है।

6) समाज में व्याप्त अन्य बुराइयों जैसे रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, अस्पृश्यता आदि के उन्मूलन में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।

7) शिक्षा समाज के व्यक्तियों में हम की भावना को जागृत कर राष्ट्र के प्रति सच्ची भावना विकसित करती है।

8) शिक्षा समाज के लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करती है जो समाज की आर्थिक व तकनीकी उन्नति के लिए अत्यंत आवश्यक है ।

9) शिक्षा मनुष्य के अंदर अच्छे विचारों को भरती है और अंदर में प्रविष्ट बुरे विचारों को निकाल बाहर करती है। शिक्षा मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। यह मनुष्य को समाज में प्रतिष्ठित करने का कार्य करती है। इससे मनुष्य के अंदर मनुष्यता आती है।

10) शिक्षा समाज की संस्कृति का संरक्षण करती है साथ ही समाज की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

11) शिक्षासमाज के उन विघटनकारी तत्वों के उन्मूलन में सहायक है जो राष्ट्र की भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता में बाधक है ।

12) शिक्षा समाज के व्यक्तियों को शिक्षित करती है और उनके जीवन स्तर को उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।

13) किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का विकास मुख्य रूप से उसके प्राकृतिक संसाधनों एवं मानव संसाधनों पर निर्भर करता है शिक्षा मानव संसाधन के निर्माण का साधन है ।

14) किसी भी समाज की आर्थिक प्रगति का आधार शिक्षा है शिक्षा के द्वारा ही समाज में तकनीकी का आगमन होता है और तकनीकी के आधार पर ही समाज की आर्थिक प्रगति संभव हो पाती है ।

15) शिक्षा संवैधानिक मूल्यों को सशक्त करती है तथा शिक्षा के आधार पर ही समाज के व्यक्तियों को अपने अधिकारों का ज्ञान संभव हो पाता है ।

16) शिक्षा एक आदर्श समाज का निर्माण करती है जिसमें मुख्य रुप से विद्यालयों एवं शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है जो शिक्षा के आधार पर ही संभव हो पाता है ।

17) शिक्षा ही समाज के वंचित वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, जनजाति, भौगोलिक दृष्टि से पिछड़े हुए व्यक्तियों एवं पिछड़े वर्गों के उत्थान हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।

18) शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का आधार है शिक्षा के द्वारा ही समाज में परिवर्तन संभव हो पाता है अगर समाज में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या अधिक है तो समाज में होने वाला सामाजिक परिवर्तन सकारात्मक होगा।

19) जातिवाद, भाषावाद, सांप्रदायिकता आदि तत्व जो देश की एकता को खंडित करते हैं साथ ही समाज की आर्थिक व तकनीकी उन्नति में बाधक है का उन्मूलन शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है ।

20) शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों गलत परम्पराओं के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते है और धीरे–धीरे समाज में परिवर्तन हेाता जाता है।

निष्कर्ष :–

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि समाज और शिक्षा अन्योन्याश्रित होते हैं। बिना शिक्षा के किसी भी समाज के उत्थान की कल्पना तक नहीं की जा सकती शिक्षा ही समाज के निर्माण की आधारशिला है। शिक्षा समाज के व्यक्तियों को शिक्षित करती है जो समाज के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। शिक्षा ही समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है। शिक्षा ही समाज में तकनीकी लाती है। तकनीकी आधारित शिक्षा ही समाज के व्यक्तियों के कौशलों को विकसित करती है जो समाज की आर्थिक उन्नति व प्रगति में अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा कुशल और विशिष्ट श्रमिकों का उत्पादन करती है। ये कुशल श्रमिक जटिल मशीनों या तकनीकों का प्रबंधन कर सकते हैं जिनका उपयोग अकुशल श्रमिकों द्वारा नहीं किया जा सकता है। मनुष्य के जीवन में जितना महत्त्व भोजन, कपड़े, हवा और पानी का है, उससे कहीं अधिक महत्त्व शिक्षा का है इसीलिए हमेशा ये ही कहा जाता है कि शिक्षा का मानव जीवन में बहुत महत्त्व है। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिससे मनुष्य में ज्ञान का प्रसार होता है। इंसान की बुद्धि का विकास शिक्षा अर्जित करने से ही होता है। शिक्षा मानव सामाजिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। शिक्षा व हथियार है जिसका प्रयोग करके समाज के किसी भी टूटे हुए अंग को जोड़ा जा सकता है एवं सामाजिक प्रगति शिक्षा की प्रगति से ही संभव है।

References :-

1. Prof. Raman Bihari Lal Þ Educational Thoughts And Practiceß- R-L Book depot- Meerut 25001-2009
2. Wikipedia- 2022 www-wikipedia-org
3. https://hi-quora-com
4. https://www-hindikiduniya-com/essay/importance-of-education-essay-in-hindi/
5. Encyclopedia

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 347-350

21 वीं सदी में हिन्दी की चुनौतियां

डॉ. विनीता स्वर्णकार, सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान)
शासकीय जे. योगानंदम छत्तीसगढ़ महाविद्यालय रायपुर

सारांश :-

हिन्दी राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की कड़ी है। हिन्दी जोड़ने वाली भाषा है। हिन्दी विश्व की सबसे शक्तिशाली तृतीय भाषा के रूप में उदित हो रही है।

तकनीकी आविष्कारों के कारण और नए क्षेत्र में कामकाज होने के कारण हिन्दी में नए–नए प्रयोग हो रहे है। सरकारी अनुवाद की व्यवस्था, केन्द्रीय अधिनियमों, नियमों विनियमों का प्राधिकृत अनुवाद विधि मंत्रालय, के राजभाषा खण्ड द्वारा किया जाता है।

विकास की कई अवस्थाओं से गुजरकर एवं लोक आंदोलन का रूप लेकर जनभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के भिन्न–भिन्न सोपान ही हिन्दी के विविध आयाम है। इन सोपानों तक विकसित होने के लिए हिन्दी को बहुत से संसाधनों का योगदान मिला।

हिन्दी जिस भावात्मक एवं साहित्यिक रूप में पूरी दुनिया में अपनाई जा रही है उसका कारण यह है कि हिन्दी प्रेम सद्भाव और सहयोग की भाषा है।

प्रस्तावना :-

अपनी सहजता, सरलता और स्वरूप के कारण देश के अधिकांश हिस्सों में शताब्दियों से जनसंपर्क की भाषा रही हिन्दी 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा द्वारा राजभाषा के पद पर विभूषित हुई।

मुसलमान बादशाहों के शासन–काल में मुहम्मद गोरी से लेकर अकबर के समय तक हिन्दी शासन कार्य का माध्यम थी। अकबर के गृहमंत्री राजा टोडरमल के आदेश से सरकारी कागजात फारसी में लिखे जाने लगे। मैंकाले ने आकर अंग्रेजी को प्रतिष्ठित किया। तब से उच्च स्तर पर अंग्रेजी और निम्न स्तर पर देशी भाषाएं प्रयुक्त होती रही।

राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ स्वभाषा को राजपद दिलाने की मॉग उठी। भारतेन्दु–हरिश्चन्द्र, दयानंद सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, बाल गंगाधर तिलक, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी और बहुत से अन्य नेताओं और जन साधारण ने अनुभव किया कि हमारे देश का राजकाज हमारी ही भाषा में होना चाहिए और वह

भाषा हिन्दी ही हो सकती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले हिन्दी को भारत की सामान्य या संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया गया और स्वतंत्रता के बाद हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया।

हिन्दी की विकास यात्रा :-

राजभाषा हिन्दी का प्रयोग संविधान लागू होने के साथ ही नहीं किया गया, अपितु उसके लिए पन्द्रह वर्ष की अंतरिम अवधि रखी गई, जिससे लोग हिन्दी सीख सके और 26 जनवरी 1965 के बाद हिन्दी में कामकाज करने लायक बन सके। इस दौरान हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने की भी व्यवस्था थी। आगे चलकर अंग्रेजी का प्रयोग 1965 के बाद भी जारी रखने के लिए 1963 में राजभाषा अधिनियम बनाया गया। जिसे 1967 में संशोधित करके देश में द्विभाषिकता की स्थिति सदा के लिए पक्की कर दी गई। इसके एक वर्ष बाद राजभाषा के काम में तेजी लाने के लिए 1968 में एक संकल्प पारित किया गया जिससे 1976 में राजभाषा अधिनियम बना। हिन्दी के प्रयोग के विकास क्रम और वर्तमान पड़ाव तक पहुंचने में इन नियमों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। हिन्दी के प्रयोग की नियमित समीक्षा इन नियमों के बाद शुरू हुई। इसी समय संसदीय राजभाषा समिति का गठन भी किया गया।

आज भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, उपक्रमों और बैंको में रोजमर्रा के कामकाज में हिन्दी का प्रयोग हो रहा है। संविधान की धारा 351 में संघीय सरकार को आदेश दिया गया था कि वह हिन्दी की प्रकृति को अक्षुण्ण रखते हुए भारत की अन्य भाषाओं से आवश्यक शब्द और प्रयोग लेकर देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के लिए इसका विकास करे।

इस तरह हिन्दी की विकास यात्रा अनवरत रूप से जारी है। वर्तमान में सूचना क्रांति के दौर ने हिन्दी के सामने नई चुनौतियां प्रस्तुत की है। कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाईल, पेजर आदि सूचना प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण अस्त्र है। इन सभी के प्रयोग में भाषा के रूप में अंग्रेजी का ही वर्चस्व रहा है। परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों में हिन्दी को कार्यक्षम बनाने के निरन्तर प्रयास हुए है।

सभी जानते है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने परिवर्तन के लिए कुछ प्रावधान किए है। इनमें दो प्रावधान सर्वाधिक महत्व के है। एक तो जाति व्यवस्था से उत्पन्न कुंठा को दूर कर समतामूलक समाज का निर्माण करने के लिए अधिकार वंचित जातियों हेतु आरक्षण के रूप में विशेष सुविधाएं ओर दूसरी विदेशी भाषा से उत्पन्न बौद्धिक कुंठा को दूर करने के लिए जनभाषाओं के उपयोग का संकल्प। ये दोनों निर्णय संपूर्ण व्यवस्था पर एक छोटे से वर्ग के एकाधिपत्य को समाप्त करने वाले थे। अगर इन दोनों निर्णयों को पूरी ईमानदारी के साथ लागू किया जाता तो आज भारत की गिनती विश्व के अत्यंत पिछड़े देशो में न होती।

चुनौतियाँ :-

संविधान के इन दो क्रांतिकारी संकल्पों के खिलाफ आजादी मिलते ही निहित स्वार्थों के षड़यंत्रो के फलस्वरूप आज आरक्षण का सवाल खटाई में पड़ गया है और भाषा का सवाल भी। षड़यंत्र करने वाले वही वर्ग है जो जन्मजात विशेषाधिकारो के कारण सदियों से सुख भोगते रहे है। इस वर्ग ने सबसे पहले देश के टूटने

और अहिन्दी क्षेत्रो के पिछड़ जाने का भूत खड़ा किया, जिससे डर कर कुछ लोग अपनी भाषाओं की कीमत पर भी अंग्रेजी को बनाए रखने की मॉग करने लगे। एक अजीब तर्क निहित स्वार्थों ने यह भी दिया कि अंग्रेजी हटी तो देश का विघटन हो जायेगा। भाषा का राष्ट्रीय एकता से निश्चय ही संबंध है, लेकिन इस तरह नहीं, जैसा कि इस देश की जनता को आज तक बताया गया है। आधी आबादी जो गरीबी रेखा के नीचे अमानवीय स्थितियों में जी रही है। उसकी रूचि इस बात में है कि देश के विकास और समृद्धि में उसे भी हिस्सा मिले, उनकी भी स्थिति सुधारे। अंग्रेजी भाषा इसमें कुछ मदद नही कर सकती। अंग्रेजी देश की जनता को आम और खास दो हिस्सो में बांटती है। खास लोगों के लिए संपूर्ण समृद्धि को सुरक्षित करती है। एक तरफ भयानक गरीबी और दूसरी तरफ अति समृद्धि। यह द्वन्द देश की एकता का सबसे बड़ा शत्रु है।

रणनीति :–

हिन्दी को नए कलेवर के साथ लोकप्रिय बनाए रखने के लिए साझा प्रयास जरूरी है। पुस्तकों, लेखों के माध्यम से समाज को अतीत की मधुर स्मृतियों से जोड़ना होगा, घर–घर में हिन्दी के संस्कार विकसित करने होगें।

आज वैश्वीकरण के युग में संपूर्ण विश्व एक ''विश्वग्राम'' बन गया है। एक ऐसी संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो विश्व के लोगों को एकता के सूत्र में बांधकर रख सके। इस कार्य हेतु हिन्दी ''पूर्णरूपेण'' सक्षम है।

हिन्दी को विश्वभाषा बनाने, विश्वमंच पर मजबूती से स्थापित करने के लिए उसे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भाषा बनाना होगा। हिन्दी समाज को हिन्दी के प्रचार प्रसार में जरूरी प्रयास के साथ हीनता बोध मिटाने की आवश्यकता है।

वैश्वीकरण का भाषा वैविध्य पर प्रभाव पड़ा है। भारतीय भाषाएं भी इससे अछूती नहीं है। वर्तमान वैश्विक युग में विकासशील देशों की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अस्मिता दॉव पर लगी है। उपभोक्तावाद का प्रचार–प्रसार वैश्वीकरण की प्रमुख शर्त है। अतः व्यवसायिकता के दृष्टिकोण से अंग्रेजी का पलड़ा अन्य भाषाओं पर भारी रहा है।

हिन्दी भारत की अकेली भाषा है जो समय के साथ सबसे तेज गति से बदलती है। जैसे अंग्रेजी में फ्रेंच, लेटिन और तमाम भाषाओं के शब्द घिस–घिस कर अंग्रेजी के हो गए है उसी तरह हिन्दी में न जाने कितनी ही भाषाओं के शब्द रोजाना सम्मिलित होते है और घिसते–घिसते हिन्दी के हो जाते है।

हिन्दी के उत्थान हेतु अब एक नए सांस्कृतिक नवजागरण का आंदोलन चलाया जाना चाहिए जो समाज में साहित्य संस्कृति जैसे विषयों के प्रति रूचि जागृत करने के लिए एक बौद्धिक वातावरण बनाने का काम करें। समाज में यह चेतना तथा रचनात्मक वातावरण बनाना होगा जैसा स्वातत्र्य संघर्ष काल में बनाया गया था। पाठक दर्शक उस मीडिया का बहिष्कार करें जिसमें साहित्य–संस्कृति, जीवन मूल्यों तथा अपनी भाषा के लिए कोई जगह नहीं हो। अनेक अवसरों पर भेंट स्वरूप पुस्तक देने की परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता

है। भारत का साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक महत्व जितना बढ़ता जायेगा उतना ही विश्व मंच पर हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ती जाएगी।

निष्कर्ष :-

हिन्दी को उचित स्थान मिलने से यह द्वन्द खत्म हो सकता है। शासक वर्ग और जनसाधारण की भाषा एक होने से विकास की गतिविधियों में जनता का ज्यादा सहयोग मिल सकता है। साथ ही भ्रष्टाचार भी खत्म होगा क्योंकि अफसरों के कामों पर जनता की सीधी निगरानी होगी। इसके अतिरिक्त जो बच्चे इस समय विदेशी भाषा के आतंक के कारण उचित शिक्षा नहीं ले पाते और बीच में ही स्कूल छोड़ देते है (इनकी संख्या स्कूल जाने वाले कुल बच्चों के 80 प्रतिशत के लगभग है) वे भी पढ़ लिखकर देश के विकास मे ंयोगदान कर सकेगें।

अब समय आ गया है कि हम चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखे। हिन्दी के साथ समस्त भारतीय भाषाओं का भविष्य जुड़ा हुआ है और भारतीय भाषाओं के साथ भारतीय संस्कृति का भविष्य जुड़ा हुआ है। खुशी की बात है कि हिन्दी इन चुनौतियों का बखूबी सामना कर रही है, तथा उत्तरोत्तर विकास यात्रा कर रही है।

– 0 –

संदर्भ :-

योजना – सितम्बर 2015, सितम्बर 2016, सितम्बर 2017, सितम्बर 2018, सितम्बर 2019, सितम्बर 2020

From Internet -

1. वैश्वीकरण का हिन्दी पर प्रभाव
2. विश्व स्तर पर प्रभावशाली भाषा बनकर उभरी हिन्दी
3. देश की आत्मा है हिन्दी
4. वैश्वीकरण के दौर में भाषा के विभिन्न आयाम
5. भूमण्डलीय एवं हिन्दी
6. वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा का महत्व
7. भूमण्डलीकरण के दौर में हिन्दी दशा एवं दिशा
8. राजभाषा हिन्दी के समक्ष चुनौतियॉ एवं सभावनाएं
9. वैश्विक होती हिन्दी की स्थानीय चुनौतियां
10. राष्ट्रभाषा – स्वरूप, चुनौतियॉ और सभावनाएं
11. हिन्दी के सामने नई चुनौतियॉ

संगम Impact Factor : 2.636 www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 10, Issue 9(1)
पृष्ठ : 351-353

समाज उत्थान एंव हिन्दी भाषा में बाल साहित्य की भूमिका

अजय कुमार,

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, म० द० वि०, रोहतक

बाल साहित्य का अर्थ :- बाल साहित्य की परिभाषा के अर्थ में यह कहा जा सकता है कि जो रचना बालकों के हितों को दृष्टि में रखकर मनोरंजक शैली से तैयार की गई हो एवं रसपूर्ण और सरल हो उसे बाल साहित्य कहा जा सकता है। बाल साहित्य लिखते समय बालको की आयु, उनकी आवश्यकता, उनकी मानसिक आयु एवं उनकी रूचि को ध्यान में रखा जाता है। जो साहित्य बालकों के साथ मनोरंजन के अलावा उनकी मानसिक योग्यता एवं सोच को विकसित तथा परिष्कृत करता है वहीं बाल साहित्य कहलाता हैं।

बाल साहित्य की रचना एवं उसका सृजन करने का कार्य बड़ा ही जटिल है। बाल साहित्यकार वही व्यक्ति बन सकता है जो बालकों को अच्छी प्रकार से समझ सकें और उन्हें जान सकें। उस व्यक्ति का व्यवहार सरल एवं सहज वृत्ति वाला होना चाहिए। बाल साहित्यकार को बालकों की रूचि–अरूचि उनके आचार–विचार तथा बालकों के मन की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने आधुनिक युग में बाल साहित्यकारों के लिए और अधिक चुनौतियाँ बढ़ा दी है। आधुनिक युग में कम्प्यूटर क्रांति ने सूचना– साहित्य पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया है। इलैक्ट्रॉनिक मीड़िया की वजह से आज हम बटन दबाते है और हमारे सामने सैकड़ों सूचनाएँ एवं आँकड़े उपस्थित हो जाते है। आज अगर हम देखे तो बाल साहित्य में मनोरंजन और रोचकता का पक्ष पहले की बजाय और अधिक प्रबल हो गया है। आज का बाल – साहित्य दृश्य माध्यमों पर अधिक आधारित है। जिससे बालकों के पास मनोरंजन और रोचकता के लिए अनेक साधन उपलब्ध हो गए हैं। आज का बालक इलैक्ट्रॉनिक मीड़िया एवं प्रौद्योगिकी से बहुत प्रभावित है।

''इलैक्ट्रॉनिक मीड़िया और प्रौद्योगिकी क्रांति के दौर से गुजर रहे हैं। हमारे बच्चें दूरदर्शन, कंप्यूटर तथा अन्य संचार माध्यमों से प्रभावित हो रहे हैं। कोई चाहे भी तो इस आँधी से बच्चों को अलग नहीं कर सकता। भविष्य में बाल साहित्य केवल किताबों तक सीमित नहीं रहेगा। कंप्यूटर का युग आया है तो उससे संबंधित अनेक पुस्तकें बाज़ार में आ गई है– प्रोग्राम साफ्टवेयर पर। ऐसी दुकाने कुछ बड़े नगरों में है, जहाँ मात्र यही पुस्तके मिलती है। इसके साथ किताबें टेप पर, डिस्क पर भी आने लगी हैं। और भविष्य में तो यह भी संभावना है कि बालक का स्कूली बस्ता आराम से उसकी जेब में आ जाएगा। टॉफी चाकलेट जैसी किताबे होंगी। बालक पर बढ़ते हुए बस्ते के बोझ की शिकायत नहीं रहेगी। बालक की 50–100 किताबों की लायब्रेरी उसकी जेब में ही आने लगेंगी लेकिन इस सबसे बाल साहित्य को खतरा नहीं है। उसके सामने नई चुनौतियाँ अवश्य हैं। आज के मुकाबले बालसाहित्य कहीं अधिक रंग–बिरंगा, आकर्षक तथा मनोरंजक होगा। हर घर में बालक का निजी

पुस्तकालय होगा। यह फैशन माना जायेगा।''

मनोरंजन एवं रोचकता पर आधारित बाल साहित्य बालकों को मानसिक रूप से शांति और सुकून प्रदान करता है। कोरे आदर्शों एवं परंपरागत मूल्यों में ढ़ालने वाला साहित्य बालकों में लोकप्रिय नहीं होता। जो साहित्य उनके मनोरंजन पक्ष और उनकी रूचि को बढ़ाता है वहीं साहित्य बालकों को अत्यधिक प्रिय होता है।

बाल साहित्य का महत्व :– बाल साहित्य गेय अथवा पद्यात्मक शैली में होना चाहिए। पद्यात्मक शैली में रचित बाल साहित्य बालकों को अभिव्यक्ति और संतुष्टि दोनों प्रदान करता है। अच्छा बाल साहित्य बालकों में अच्छे संस्कारों का भी सृजन करता है। जिससे बालक संस्कारित होता है। गद्य की भांति ही पद्य भी बालकों की कल्पनाओं को आनंद लोक में ले जाती है और उन्हें हर्ष एवं आनन्द प्रदान करती है। पद्य भाग में दो पक्ष है– एक वस्तुपक्ष दूसरा कलापक्ष। जिसके अन्तर्गत भाव और विचार आते हैं वह वस्तुपक्ष है और जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य या शिल्प आते हैं उसे कलापक्ष कहते हैं। बाल साहित्य में विचारों की प्रमुखता की बजाय भाव प्रमुख होते है क्योंकि बाल हृदय में संवेग, अनुभव की व्यापकता एवं संवेदना की गहनता होती है। इसमें बालकों का बाह्य परिवेश एवं उनका खेल–जगत् सब समाहित होता है।

आज का समाज भ्रष्टाचार, दूषित राजनीति, आतंकवाद, भाई–भतीजावाद जैसे मानवता विरोधी तत्वों से दूषित हो रहा हैं। शक्ति या ताकत के बल पर इनका निराकरण कर पाना बिलकुल संभव नहीं होगा। यदि हमें समाज एवं देश में मानव–प्रेम को विकसित करना है तो हमें इसके लिए अपने बालकों को तैयार करना होगा। यदि हम बालकों को वास्तविक और विश्वबंधुत्व को प्रेरित करने वाला साहित्य उपलब्ध करवाएँ तो निश्चित ही हम समाज में पनप रही समस्याओं को काफी हद तक समाप्त कर सकते हैं।

वर्तमान संसाधनों को ध्यान में रखकर शाश्वत मूल्यों पर आधारित बाल साहित्य का बालकों पर प्रभाव अच्छा पड़ता है। छोटी–छोटी गेय कविताएँ बालकों को बहुत अच्छी लगती है। जैसे 'रेल' कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''छुक-छुक-छुक मेरी रेल चले
भैया अपना खेल चले
दिन अपने घर लौट रहा है
गाड़ी छूटती सांझ ढले।''
एक अन्य कविता
'' कितनी अच्छी कितनी प्यारी
सब पशुओं से न्यारी गाय।
सारा दूध हमें दे देती
आओं इसे पिला दें चाय।''

बाल साहित्य का रूप :– वास्तव में आज सभी साहित्यकारों ने यह स्वीकार कर लिया है कि उत्तम बाल साहित्य ही बालकों में अच्छे संस्कारों एवं सद्गुणों का बीजवपन करता है। बीज रूप में सद्गुणों को अंकुरित करता है, उन्हें पल्लवित करता है एवं पुष्पित करता है। उनमें सत्यनिष्ठा, करूणा, परोपकार, दया आदि के प्रति आस्था जगाकर उनको आत्मिक संतुष्टि भी प्रदान करता है। अच्छा बाल साहित्य बालकों को वस्तु और परिवेश

की जानकारी के साथ–साथ अन्तर्दृष्टि भी प्रदान करता है। जिससे वे अपने जीवन में उपस्थित विकट परिस्थितियों में अपना मनोबल बनाए रखें और संघर्ष जारी रखते हुए विजयश्री को प्राप्त करे। इससे उनके साहस में अत्यधिक वृद्धि होगी और उनका आत्म विश्वास बढ़ेगा।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है्। इसी नियम के अनुसार बाल साहित्य की प्रवृत्तियों में निरंतर बदलाव आया है। कुछ समय पहले राजा–रानी एवं सामंतयुग की कहानियाँ, भूत–प्रेत की कहानियाँ, कल्पना लोक की परीकथाएँ, लोककथाएँ सब बच्चों के आकर्षण का केन्द्र थी। प्राचीन धार्मिक–पौराणिक विषय भी बहुत लोकप्रिय थे परंतु आज आधुनिक भावबोध व वैज्ञानिक चेतना जगाने वाला बालसाहित्य समय व युग की आवश्यकता बन गया है। आज समयानुसार बाल मनोवैज्ञानिक साहित्य अधिक लिखा जा रहा है। आज बालकों की जिज्ञासा इतनी अधिक प्रबल हो गई कि वह अतीत की जानकारी के साथ–साथ वर्तमान से भी जुड़ना चाहता हैं। आने वाला कल (अर्थात्) भविष्य के गर्भ में भी जाना चाहता है। आज बालकों के द्वारा काल्पनिक साहित्य को भी पंसद किया जा रहा है। क्योंकि बाल साहित्य से उनका मनोरंजन होता है जो उन्हें आनन्द प्रदान करता है और साथ में समसामयिक यथार्थ जीवन से जोड़ता है।

बाल साहित्यकार की रचना सोद्देश्य होती है वह यह जानता है कि सिखने का उद्देश्य यदि उपदेशात्मक अधिक होगा तो बालक अवश्य ही उससे परहेज करेगा। बाल साहित्य में कहानियों और कविताओं के माध्यम से बालकों को मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षित किया जाता है। एक अच्छा बाल साहित्यकार अपनी रचनाओं को उपदेशात्मक वाक्यों से बोझिल नहीं बनाता बल्कि उसमें ऐसे निश्चित संदेश, विचार और लक्ष्यों को रखता है जिसको बालक सहजभाव से ग्रहण कर सकें। सामाजिक उत्थान एवं हिन्दी भाषा में रचित बाल साहित्य की विशेष भूमिका है। हिन्दी भाषा में छपे लेखों और हिन्दी में रचित बाल साहित्य का हमारे समाज के उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं।

इंदौर और भोपाल में बालसाहित्य शोध–केन्द्रों की स्थापना आज बाल साहित्य के महत्त्व को पूर्णरूप से सिद्ध करती है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से प्रकाशित 'वार्षिकी' में हर वर्ष बाल साहित्य की विकास यात्रा पर निरंतर रूप से लेख प्रकाशित होते हैं। बाल साहित्य की उपयोगिता इस बात से सिद्ध होती है कि अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं आलोचना, ज्ञानोदय, धर्मयुग, आजकल, भाषा, उत्तरप्रदेश आदि में बालसाहित्य लेख निरंतर छपते रहते हैं। समय के अनुसार आज हिन्दी में ही नहीं बल्कि अनेक भाषाओं में बाल साहित्य रचना हो रही है। हिन्दी अकादमी और साहित्य अकादमी एवं प्रकाशन विभाग के द्वारा प्रत्येक वर्ष बाल साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृतियों का प्रकाश इसके महत्त्व एवं उपादेयता को दर्शाते हैं। बाल साहित्य के विषय में नागेश पाण्डेय जी कहते है कि–

''साहित्य कोई भी हो, उसे युगानुरूप होना चाहिए। बाल साहित्य का मूल उद्देश्य मनोरंजन है किन्तु वर्तमान समय को देखते हुए उसे शिक्षाप्रद, वैज्ञानिक और सूचनात्मक बनाए जाने की भी आवश्यकता है। बाल साहित्य के विषयों का चयन बालक की अवस्था (शिशु, बालक एवं किशोर) तथा मनोविज्ञान के आधार पर किया जाना चाहिए। बालक के लिंग (बालक/बालिका) तथा परिवेश (शहरी/ग्रामीण/भौगोलिक इत्यादि) को भी ध्यान में रखा जाए। रस, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिंब, शैली आदि बाल साहित्य को आकर्षक एवं हृदयंगम बना सकते हैं।''

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर सम्पादकीय कार्यालय 6-एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान-335001 से वितरित की।

ISSN 2321:8037